'निशा-निमन्त्रण' से

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

हो जाय न पथ में रात कहीं,
मञ्जिल भी तो है दूर नहीं,
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है !

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों से झाँक रहे होंगे,
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चञ्चलता है !

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

मुझसे मिलने को कौन विकल ?
मैं होऊँ किसके हित चञ्चल ?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को भरता उर में विह्वलता है !

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

— 'बच्चन'

अपनी बात

स्त्री के अर्थ-स्वातन्त्र्य का प्रश्न

२

भारतीय समाज में जिस अनुपात से स्त्री जाग्रत हो सकी, उसी के अनुसार अपनी सनातन सामाजिक स्थिति के प्रति उसमें असन्तोष भी उत्पन्न होता जा रहा है। उस असन्तोष की मात्रा जानने के लिए हमारे पास अभी कोई मापदण्ड है ही नहीं, अतः यह कहना कठिन है कि उसकी जागृति ने उसकी चिर-अवनत दृष्टि को जिस क्षितिज की ओर फेर दिया है, वह उजले प्रभात का सन्देश दे रहा है या शक्ति सचित करती हुई आँधी का। ऐसे असन्तोष प्रायः बहुत कुछ मिटा-मिटा कर स्वयं बनते हैं और थोड़ा सा बना कर स्वयं ही मिट जाते हैं। भविष्य को उज्ज्वलतम रूप देने के लिए समाज को, कभी-कभी सहस्रों वर्षों की अवधि में धीरे-धीरे एक-एक रेखा अङ्कित कर बनाए हुए अतीत के चित्र पर काली तूली फेरना पड़ जाती है। कारण, प्रत्येक निर्माण विध्वंस के आधार पर स्थित है और प्रत्येक नाश निर्माण के अङ्क में पलता है।

असंख्य युगों से असंख्य संस्कार और असंख्य भावनाओं ने भारतीय स्त्री की नारी-मूर्ति में जिस देवत्व की प्राण प्रतिष्ठा की थी, उसका कोई अंश बिना खोए हुए वह इस यन्त्रयुग की मानवी बन सकेगी, ऐसी सम्भावना कम है। अवश्य ही हमारे समाज को, यह सोचना अच्छा नहीं लगता कि उसकी निर्विकार भाव से पूजा और उपेक्षा स्वीकार कर लेने वाली चिर मौन प्रतिमा के स्थान में ऐसी सजीव नारी-मूर्ति रख दी जावे, जो पल-पल में उसके मनोभावों के साथ रुष्ट और तुष्ट होती रहती हो। वास्तव में तो भारतीय स्त्री अब तक वरदान देने वाली देवी रही है, फिर अचानक आज उसका कुछ माँग बैठना क्यों न हमें आश्चर्य में डाल दे! झाँझ और घड़ियाल के स्वरों में धूप-दीप के मध्य अपने पूजागृह में अन्ध वधिर के समान मौन बैठा हुआ देवता यदि एकाएक उठ कर हमारी पूजा-स्तुति का निरादर कर हमारे सारे गृह पर अधिकार जमाने को प्रस्तुत हो जावे, तो हम वास्तव में सङ्कट में पड़ सकते हैं। हमारी पूजा अर्चा की सफलता के लिए यह परम आवश्यक है कि हमारा देवता हमारी वस्तुओं पर हमारा ही अधिकार रहने दे और केवल वही स्वीकार करे जो हम देना चाहते हैं। इसके विपरीत होने पर तो हमारी स्थिति भी विपरीत हो जायगी। भारतीय स्त्री के सम्बन्ध में भी यही सत्य हो रहा है। उसको बहुत आदर मान मिला, उसके बहुत गुणानुवाद गाये गए, उसकी ख्याति दूर-दूर देशों तक पहुँचाई गई, यह ठीक है, परन्तु मन्दिर के देवता के समान ही सब उसकी मौन जड़ता में ही अपना कल्याण समझते रहे। उसके अत्यधिक श्रद्धालु पुजारी भी उसकी निर्जीवता को ही देवत्व का प्रधान अंश मानते रहे और आज भी मान रहे हैं।

इस युगान्तदीर्घ जीवन-शून्य जीवन में स्त्री ने क्या पाया, यह कहना बहुत प्रिय न जान पड़ेगा, परन्तु इतना तो 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' के अनुसार भी कहा जा सकता है कि इस व्यवहार से उसके मन में जीवन को जानने की उत्सुकता जाग्रत हो गई। पिछले कुछ वर्षों में जीवन की परिस्थितियों में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि उस कोलाहल में स्त्री को कुछ सजग होना ही पड़ा। इसमें सन्देह है कि इससे भिन्न स्थिति में वह उतनी शीघ्रता से सतर्क हो सकती या नहीं। इस वातावरण को बिना समझे हुए स्त्री की माँगों के सम्बन्ध

में कोई धारणा बना लेना यदि अनुचित नहीं तो बहुत उचित भी नहीं कहा जा सकता।

वर्तमान युग में भी जिनकी परिस्थितियाँ श्वास लेने की स्वच्छन्दता भी नहीं देतीं और जिन्हें जड़ता के अभिशाप को ही वरदान समझना पड़ता है, उनके सुख दु ख तो हृदय की सीमा से बाहर झाँक ही नहीं सकते, फिर उनके सुख-दु खों का वास्तविक मूल्य आँक सकना हमारे लिए कैसे सम्भव हो सकता है ! परन्तु जिन स्त्रियों के निराश असन्तोष में हमें अपने समाज का असहिष्णुता से भरा अन्याय प्रत्यक्ष हो जाता है उनके स्पष्ट भाव को समझने में भी हम भूल कर सकते हैं। ऐसी स्थिति मे हमारी विश्वास योग्य धारणा भी इतनी विश्वास योग्य नहीं है कि हम उसे बिना तर्क की कसौटी पर कसे स्वीकार कर सकें। हम प्रायः अपनी सनातन धारणा का जितना अधिक मूल्य समझते है उतना दूसरे व्यक्ति के अभाव और दु ख का नहीं। यही कारण है कि जब तक व्यक्तिगत असन्तोष सीमातीत होकर हमारे संस्कार-जनित विश्वासों को आमूल नष्ट नहीं कर देता तब तक हम उसके अस्तित्व की उपेक्षा ही करते रहते हैं। स्त्री की स्थिति भी युगों से ऐसी ही चली आ रही है। उसके चारो ओर संस्कारों का ऐसा क्रूर पहरा रहा है कि उसके अन्तर्तम जीवन की भावनाओं का परिचय पाना ही कठिन हो जाता है। वह किस सीमा तक मानवी है और उस स्थिति में उसके क्या अधिकार रह सकते है, यह भी वह तब सोचती है जब उसका हृदय बहुत अधिक आहत हो चुकता है। फिर उसके व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा के साधनों के विषय में कुछ कहना तो व्यर्थ ही है। समाज ने उसकी निश्चेष्टता को भी उसके सहयोग और सन्तोष का सूचक माना और अपने पक्षपात और सङ्कीर्णता को भी अपने विकास और उसके जीवन के लिए अनुकूल और श्रेयस्कर समझने की भूल की।

स्त्री के जीवन की अनेक विवशताओं में प्रधान और कदाचित उसे सबसे अधिक जड़ बनाने वाली अर्थ से सम्बन्ध रखती है और रखती रहेगी, क्योंकि वह सामाजिक प्राणी की अनिवार्य आवश्यकता है। अर्थ का प्रश्न केवल उसी के जीवन से सम्बन्ध रखता है यह धारणा भ्रान्तिमूलक है। जहाँ तक सामाजिक प्राणी का सम्बन्ध है, स्त्री उतनी ही अधिक अधिकार-सम्पन्न है जितना पुरुष, चाहे वह अपने अधिकारों का उपयोग करे या न करे। समाज न उसके उपयोग का मूल्य घटा सकता है और न बढ़ा सकता है, केवल वह बन्धनों से उसकी शक्ति और बुद्धि को बाँध कर उसे जड़ बना सकता है, परन्तु उन बन्धनों में कुछ ऐसे भी हो सकते है, जो केवल उसके लिए ही नहीं, वरन् सबके लिए घातक सिद्ध होंगे।

अर्थ का विषम विभाजन भी एक ऐसा ही बन्धन है, जो स्त्री-पुरुष दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है। यह सत्य है कि यह प्रश्न आज का नहीं है, वरन् हमारे समाज के समान ही पुराना हो चुका है, परन्तु यह न भूलना चाहिए कि आधुनिक युग की परिस्थितियाँ प्राचीन से अधिक कठिनतर हैं। जसे जेसे हम आगे बढ़ते जाते हैं, हमारा जीवन अधिक जटिल होता जाता है और हमें और अधिक उलझन-भरी परिस्थितियों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इसीसे अतीत के साधन लेकर हम अपने गन्तव्य पथ पर बहुत आगे नहीं जा सकते। आदिम युग की नारी के लिए जो साधारण कष्ट को स्थिति होगी वह आधुनिक नारी का जीवनयापन हो कठिन कर सकती है। वर्तमान युग में अन्य व्यक्तियों के सामने जो जीवन-निर्वाह की कठिनाइयाँ हैं, उनसे स्त्री भी स्वतन्त्र नहीं, क्योंकि वह भी समाज का आवश्यक अङ्ग है और उसके जीवन के विकास से ही समुचित सामाजिक विकास सम्भव हो सकता है। सुदूर अतीत काल में विशेष परिस्थितियों से प्रभावित होकर निरन्तर सघर्ष के कारण समाज स्त्री को जो न दे सका उसी को आदर्श बनाकर उसके प्रत्येक अधिकार को तोलना न आधुनिक समाज के लिए कल्याणकर हो सका है न हो सकने की सम्भावना है। उचित तो यही था कि नवीन परिस्थितियों में नवीन कठिनाइयों को दृष्टि में रखते हुए वह किया जाता जो पहले से अधिक उपयुक्त सिद्ध होता। प्राचीन हमारे भविष्य की त्रुटियों को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकता,

उसका कार्य तो उनकी ओर संकेत मात्र कर देना है। यदि हम उस संकेत को आदेश के रूप में ग्रहण करें और उसीसे अपनी सब समस्याओं को सुलझाना चाहे तो यह इच्छा हमारे ही विकास की बाधक रहेगी।

कोई नियम, कोई आदर्श सब काल और सब परिस्थितियों के लिए नहीं बनाया जाता, सबमें समय के अनुसार परिवर्तन सम्भव ही नहीं अनिवार्य हो जाते हैं। प्राचीन आधार-शिला को बिना हटाये हुए हम उसपर वर्तमान का निर्माण करके अपने जीवन के मार्ग को प्रशस्त करते रह सकते हैं, अन्यथा कोई प्रगति सम्भव ही नहीं रहती।

समाज ने स्त्री के सम्बन्ध में अर्थ का ऐसा विषम विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्ग से लेकर सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है। वह केवल उत्तराधिकार से ही वञ्चित नहीं है, वरन् अर्थ के सम्बन्ध में सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की विवशता के बन्धन में बँधी हुई है। कहीं पुरुष ने न्याय का सहारा लेकर और कहीं अपने स्वामित्व की शक्ति से लाभ उठा कर उसे इतना अधिक परावलम्बी बना दिया है कि वह उसकी सहायता के बिना संसार-पथ में एक पग भी आगे नहीं बढ सकती।

सम्पन्न और मध्यम वर्ग की स्त्रियों की विवशता, उनके पतिहीन जीवन की दुर्वहता समाज के निकट चिरपरिचित हो चुकी है। वे शून्य के समान पुरुष की इकाई के साथ सब कुछ हे, परन्तु उससे रहित कुछ नहीं। उनके जीवन के कितने अभिशाप उसी बन्धन से उत्पन्न हुए हैं, इसे कौन नहीं जानता! परन्तु इस मूल त्रुटि को दूर करने के प्रयत्न इतने कम किये गये हैं कि उनका विचार कर आश्चर्य होता है। जिन स्त्रियों की पाप-गाथाओं से समाज का जीवन काला है, जिनकी लज्जा-हीनता से जीवन लज्जित है, उनमें भी अधिकांश की दुर्दशा का कारण अर्थ की विषमता ही मिलेगी। जीवन की आवश्यक सुविधाओं का अभाव मनुष्य को अधिक दिनों तक मनुष्य नहीं बना रहने देता, इसे प्रमाणित करने के लिए उदाहरणों की कमी नहीं। वह स्थिति कैसी होगी, जिसमें जीवन की स्थिति के लिए मनुष्य को जीवन की गरिमा खोनी पड़ती है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। स्त्री ने जब कभी इतना बलिदान किया है तब नितान्त परवश होकर ही और यह परवशता प्राय अर्थ से सम्बन्ध रखती रही है। जब तक स्त्री के सामने ऐसी समस्या नहीं आती जिसमें उसे बिना कोई विशेष मार्ग स्वीकार किये जीवन असम्भव दिखाई देने लगता है तब तक वह अपनी मनुष्यता को जीवन की सबसे बहुमूल्य वस्तु के समान ही सुरक्षित रखती है। यही कारण है कि वह क्रूर से क्रूर पतित से पतित पुरुष की मलिन छाया में भी अपने जीवन का गौरव पालती रहती है। चाहे जीर्ण शीर्ण ठूँठ पर आश्रित लता होकर जीवित रहना उसे स्वीकृत हो, परन्तु पृथ्वी पर निराधार होकर बढना उसके लिए सुखकर नहीं। समाज ने उसके जीवन की ऐसी व्यवस्था की है, जिसके कारण पुरुष के अभाव में उसके जीवन की साधारण सुविधाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। उस दशा में हताश होकर वह जो पथ स्वीकार कर लेती है वह प्रायः उसके लिए ही नहीं, समाज के लिए भी घातक सिद्ध होता है।

आधुनिक परिस्थितियों में स्त्री की जीवनधारा ने जिस दिशा को अपना लक्ष्य बनाया है उसमें पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता ही सबसे अधिक गहरे रङ्गों में चित्रित है। स्त्री ने इतने युगों के अनुभव से जान लिया है कि उसे सामाजिक प्राणी बने रहने के लिए केवल दान की ही आवश्यकता नहीं है, आदान को भी है, जिसके बिना उसका जीवन जीवन नहीं कहा जा सकता। वह आत्म-निवेदित वीतराग तपस्विनी ही नहीं, अनुरागमयी पत्नी और त्यागमयी माता के रूप में मानवी भी है और रहेगी। ऐसी स्थिति में उसे वे सभी सुविधायें, वे सभी मधुरकटु भावनायें चाहिए, जो जीवन को पूर्णता प्रदान कर सकती हैं।

पुरुष ने उसे गृह में प्रतिष्ठित कर वनवासियों की जड़ता सिखाने का जो प्रयत्न किया है उसकी साधना के लिए वन ही उपयुक्त होगा।

पहली मई

[श्री० कुँवर राजेन्द्रसिंह]

मई अङ्गरेज़ी का पाँचवाँ महीना है। रोम देश के प्राचीन समय के पञ्चाङ्गों में यह तीसरा महीना था। कहा जाता है कि इसका नाम उस देश की एक देवी Maia के नाम से पड़ा था और उसी का अपभ्रंश May है। अपने देश के नाम शायद किसी देवी या देवता के नाम पर नहीं हैं। ज्येष्ठ का नाम कुछ समझ में आता है। इसी महीने में सब से बड़ा दिन होता है। एक अपने यहाँ के कवि ने ख़ूब कहा है कि—'दुष्ट दीर्घजीवी होते है, जैसे गर्मियों का दिन और जाड़ों की रात।' न मालूम क्यों सब देशों के कवियों का यही कहना है कि बुरे आदमी बड़ी उम्र और अच्छे आदमी कम उमर वाले होते हैं। अङ्गरेज़ी में एक कहावत है कि जिनसे ईश्वर प्रेम करता है वह बहुत दिनों जीवित नहीं रहते हैं। बुरों से तो सभी डरते हैं, 'टेढ़ जानि शङ्का सब काहू, वक्र चन्द्रमहिं ग्रसत न राहू।' ईश्वर भी इन्हें अपने से दूर रखना चाहता होगा, या यमराज को भी इनके निकट आने में डर लगता होगा। ख़ैर, बात चाहे जो हो, लेकिन है सही यही कि बुरे ज़िन्दा ज्यादा रहते हैं।

अपने यहाँ की तरह प्राचीन रोम देश में भी हर चीज़ का देवी या देवता था। कम से कम हम भारत-वासी कभी किसी से पीछे नहीं रहे और न अब भी हैं। हमारे देवी और देवताओं की संख्या ३६ करोड़ कहलाती है। इस देश की जन-संख्या से अब भी उनकी संख्या अधिक है, परन्तु कुशल इतनी है कि बढ़ नहीं रही है। प्राचीन रोम देश के रहने वाले मई की पहली तारीख को Egeria देवी का पूजन करने वहीं की एक गुहा को जाते थे। कवीन्द्र रवीन्द्र की एक अङ्गरेज़ी कविता का भावार्थ यह है कि यदि ईश्वर कन्दराओं में रहता है तो यह विश्व फिर किसके रहने का स्थान है। अस्तु! इस देवी के लिये यह कहा जाता था कि यह वहाँ के बादशाह, Numa Pompilius को अपने सदुपदेशों द्वारा सहायता किया करती थी। अब इस देवी का नाम लाक्षणिक भाव से उन स्त्रियों के लिये प्रयोग होता है, जो पुरुषों को उनके कामों में प्रोत्साहन देती हैं। इस देवी का पूजन Floralia उत्सव में हुआ करता था। यह उत्सव हर साल २८ अप्रैल से १ मई तक होता था। रोम देश के पुराणों में Flora फूलों की देवी कहलाती है। इसका मन्दिर रोम में Circus Maximus के नज़दीक बना हुआ था। Flora लैटिन भाषा का शब्द है और अङ्गरेज़ी में बिना किसी स्वरूपान्तर के प्रयोग होता है, इसके अर्थ हैं "शाक जाति"। इसका विशेषण Floral होता है, तब इसके अर्थ होते हैं "पुष्प सम्बन्धी।" Floralia शब्द के सङ्गठन से मालूम होता है कि यह उत्सव उस समय होता होगा जब फूलों की अधिकता होती होगी, जिसे हम लोग बसन्त कहते हैं। होता तो मौसम बड़ा बढ़िया है। देव जी ने कहा है—"मदन महीप जू को बालक बसन्त ताहि प्रात ही जगावत गुलाब चटकारी दे।" अपना देश उष्ण-प्रधान है, यहाँ अप्रैल के अन्त तक अच्छी तरह गर्मी होने लगती है। रोम देश की बात दूसरी है। यहाँ हर साल पहाड़ जाने वाले मार्च ही में बोरिया-बँधना बाँधने लगते हैं। अपने यहाँ मई के महीने में सूर्य की प्रचण्डता से पृथ्वी तप्त होने लगती है और किसी-किसी साल लू भी चलने लगती है और छाँह-छाँह ढूँढने लगती है।

प्रायः अपने यहाँ मई वैशाख में पड़ती है और देहात में इसे 'बैसाख' कहते हैं। 'साख' शब्द के अर्थ 'साक्षी, प्रमाण, शहादत' के हैं और 'बै' उपसर्ग है। इसका यह नाम इस वजह से पड़ा कि इस महीने में गरीबों के सब सुख-स्वप्न भङ्ग हो जाते हैं और पेट भरने की फिर कठिन समस्या सामने आने लगती है। देहात में चैत्र चैन का महीना होता है—सबके पास कुछ न कुछ खाने को होता है। मज़दूर मौके के बादशाह बने होते है और सातवें आसमान पर उनका दिमाग होता है। गरीबों के मुरझाये चेहरे खिल जाते हैं। देहात में कहते हैं कि 'चैत में चिड़ियों के भी घर गुलगुले होते हैं' और 'सावन' में कहा जाता है कि सुये भी उपास (उपवास) करते हैं। चैत्र में जो कुछ मिला वह खा-पी करके बराबर कर दिया और वैशाख में फिर वही जीवन-संग्राम की जटिल समस्या सामने आ जाती है और इसी वजह से इसे बैसाख कहते हैं।

प्राचीन रोम देश वाले मई में विवाह नहीं करते थे, क्योंकि इसी महीने में उनके यहाँ दुखी विगत आत्माओं का दिवस मनाया जाता था। विगत आत्माओं के लिये सब ही धर्म्मावलम्बी कुछ न कुछ करते हैं। और मज़हब वाले केवल एक दिन मानते है। अङ्गरेजों के यहाँ All Souls Day कहते है। हम हिन्दुओं में पन्द्रह दिन माने जाते हैं। अब तो कुछ रङ्ग ही दूसरा है—बाप का श्राद्ध होटलों में होता है। अगर औरङ्गजेब अपने पितृभक्ति का नमूना न छोड़ जाते तो आजकल के नवजवानों को 'फैशनेबुल' कहलाने में बड़ी दिक्कत पड़ती। हम लोग उनको भी जल देते हैं, जिनके जल देने वाला कोई नहीं रह गया है। ख़ैर, अब यह पुरानी और बेसमझी की बातें समझी जाने लगी हैं।

छठी शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक और कुछ बाद तक भी इङ्गलैण्ड में १ मई को बड़ी धूमधाम होती थी। उस रोज़ सभी लोग बहुत सबेरे उठते थे और दिन भर ख़ुशियाँ मनाते थे। दरख़्तों की डालें और फूल शहरों और गाँवों में उत्सव मनाते हुये लाये जाते थे। जो जन-समूह साथ होता था, उसके मध्य भाग में एक ख़ूब फूलों का सजा झण्डा होता था। इसको अङ्गरेज़ी में may pole कहते थे। इसके चारों तरफ लोग नाचते थे और उछलते-कूदते थे। यह झण्डा उस दरख़्त की पतली डाल का बनता था, जिसको अंगरेज़ी में birch और संस्कृत में "भूर्ज" कहते हैं। इसी के पत्ते भोज पत्र कहलाते हैं। इस झण्डे को लाकर एक दिन भर के लिये गाड़ देते थे। लन्दन में यह प्रथा थी कि इस झण्डे को उस लकड़ी का बनाते थे कि जो मज़बूत हो और जल्दी न सड़े, क्योंकि इसे वह लोग हमेशा गाड़े रखते थे। puritans इससे चिढ़ते थे। ईसाइयों में दो भेद हैं, रोमन कैथलिक और प्राटेस्टेंट। अन्त कथित मतावलम्बियों में १६ वीं और सत्रहवीं शताब्दियों में कुछ लोग ऐसे थे, जिनका यह कहना था कि पूजन में किसी प्रकार का दिखावा न होना चाहिये, जिसकी आज्ञा उनके धर्म्म के ग्रन्थों में न हो। इन्हीं को 'प्यूरीटस' कहते थे। यह अपने यहाँ के आर्य्य-मतानुयाइयों के ढङ्ग के होते होंगे। यह अपने यहाँ के एक प्राचीन कवि का दोहा है—'जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम, मन काचे नाचे वृथा साचे राचे राम।' अब तो आडम्बर ही पूजन कहलाता है। 'पंडित सोइ जो गाल बजावा' और उस पण्डित को भी कोई पूछने वाला नहीं है, जिसने 'जो है सो' भुला दिया है। अस्तु। 'प्यूरिटंस' के चीख़ने-चिल्लाने से १६४४ में पार्लियामेन्ट ने इन झण्डों के गाड़ने के ख़िलाफ़ क़ानून पास कर दिया। किसी भी प्रथा का तभी तक महत्व रहता है जब तक वह प्रचलित रहे—जहाँ एक दफे छूटी कि बस छूट गई। अपने त्योहारों और उत्सवों के प्रति जितने हम हिन्दू उदासीन हैं उतना शायद ही कोई और हो। 'छुटे हमसे जाते पुराने तरीक़े'—जहाँ हमारा कोई त्योहार आया कि हमें फैशनेबुल कहलाने की धुन सवार हुई और अपने ही को हम बुरा-भला कहने लगे। उस जाति की ईश्वर ही रक्षा करे जो खुद अपनी निगाहों में गिरी हुई हो। अन्य धर्मावलम्बी किस चाव और उत्सुकता से अपने त्योहारों की प्रतीक्षा करते हैं और एक हम हैं कि

उनसे दूर भागते हैं। होली के अवसर पर लोग घर छोड़ कर चले जाते हैं कि कहीं एक छींट भी रंग की उन पर न पड़ जाय। पश्चिमीय सभ्यता-सेवी इस ओर ध्यान नहीं देते हैं कि जिनकी वह नकल किया चाहते हैं, वह अपने त्योहार किस तरह मनाते हैं। बड़े दिन के अवसर पर हम शुभ-कामनाओं के कार्ड भेजते हैं, परन्तु होली के दिन मित्र को भी गले लगाने में आपत्ति होती है। यह हमारा पारस्परिक प्रेम है। अस्तु। क्रामवेल के बाद जब द्वितीय चार्लस १६६० ई० में बादशाह हुये, तब 'मे पोल' के गाड़ने की प्रथा पुनः प्रचलित हुई। रुका हुआ पानी थोड़े समय तक बहुत ज़ोर से बहता है। १६६१ ई० में भावी द्वितीय जेम्स ने जो अपने पिता के सामने ड्यूक आफ यार्क कहलाते थे, अपनी देख-रेख में १३४ फीट ऊँचा 'मे पोल' गड़वाया था। इसको बारह मल्लाहों ने गाड़ा था। पहले अपने यहाँ भी वसन्तपञ्चमी को जो रेंड का पेड़ गाड़ते थे वह भी बहुत ऊँचा होता था। वजह यह थी कि इसे अपशकुन समझते थे कि होली के जलने में यह भी जल कर गिर जाय। अब तो शहरों में रेंड की एक पतली टहनी बिजली के खम्भे से बंधी दिखलाई देती है और होली के दिन एक-दो टोकरी घास-फूस डाल कर जला देते हैं। उमङ्ग जाती रही—केवल प्रथा का पालन रह गया है।

१८८६ ई० में अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-दल की कॉङ्ग्रेस ने पहली मई को छुट्टी का दिन निश्चित किया और तब से इसको राजनैतिक महत्व प्राप्त हुआ है। इस दिन को अंगरेज़ी में Labour Day (मजदूरों का दिन) भी कहते हैं। इसी दिन मजदूरों की संस्थायें और साम्यवादियों की पार्टियाँ उत्सव मनाती हैं। यह प्रथा सभी देशों में है, सिवा अमेरिका के संयुक्त राज्य और कनाडा के। अपने देश का भी यही हाल है कि इस दिन उत्सव मनाने का कोई खास दिन नियत नहीं है। इटली में इस रोज़ उत्सव मनाना क़ानून से रोक दिया गया है और इसकी जगह पर वह तारीख़ नियत की गई, जिस दिन रोम की स्थापना हुई थी। रूस में भी और जगहों का ऐसा दस्तूर है।

कुछ साम्यवादी लेखकों ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि १ मई और मजदूरों के दिवस के उत्सवों में प्राचीन सम्बन्ध है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मालूम हो जायगा कि बात यह नहीं है। राबर्ट ओयन ने १८३३ में सहस्र वर्षीय संख्या का पहला दिवस १ मई को माना था और १८८६ ई० में द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादियों की कॉङ्ग्रेस ने, जिसकी बैठक पेरिस में हुई थी, यह निश्चित किया था कि यह सब राष्ट्रों के मजदूरों का दिन समझा जाय और सब देशों में उत्सव मनाया जाया करे। इस प्रस्ताव के उपस्थित करने वाले ने अपने भाषण में कहा था कि १ मई को मजदूरों को खुद छुट्टी ले लेना चाहिये, चाहे कोई दे या न दे, और उस तारीख को सप्ताह का कोई भी दिन हो। यूरोप के महाद्वीप में यही होता है। उस रोज़ छुट्टी मनाने के लिये मजदूरों को किसी की आज्ञा की आवश्यकता नहीं होती है और कभी-कभी इसी वजह से पुलीस से भी मुठभेड़ें हो गई हैं। संभव है कि मजदूरों या उनके पक्षपातियों में जोश होने की वजह से कोई बात ऐसी हो जाती हो कि जो वहाँ के कानून के खिलाफ़ होती हो। यहाँ किसी बड़े आदमी का स्वागत करने के लिये बाहर के गाँवों से देहाती बुलाये जाते हैं और यदि किसी ने ज़रा आगे बढ़ कर देखने के लिये कदम बढ़ा दिया तो लाल पगड़ी धारण करने वालों के बेतों की वह बौछार होती है कि स्वागत करने का मज़ा पीठ के दर्द की वजह से बहुत दिनों याद रहता है। अभी बहुत दिन नहीं हुये जब किसी का स्वागत करने के लिये बाहर से देहाती सरकारी खर्चे पर लारियों पर चढ़ा कर बोलाये गये थे। इन लोगों ने न कभी उसे देखा था, जिसके स्वागत के लिये आये थे और न कभी महात्मा गाँधी को देखा था। प्रथम कथित का कभी नाम भी नहीं सुना था और अन्तः-वर्णित के नाम से देश भर प्रतिध्वनित हो रहा था। जब गाड़ी नज़दीक आई तब किसी ने कह दिया कि महात्मा जी आ रहे हैं, बस फिर क्या था, इस ज़ोर से महात्मा गाँधी की जय-ध्वनि हुई कि पुलिस के बेतों का कुछ असर नहीं हुआ और स्वागत करने को बुलाये जाने वाले बगैर चबेने के पैसे भी पाये पैदल घर का रास्ता नापते चले गये।

ब्रिटेन में मजदूरों का दिवस १ मई के बाद जो रविवार पड़ता है उस दिन मनाया जाता है। इसका उत्सव हाइड पार्क में होता है। यह लण्डन का बहुत मशहूर पार्क है। एक दफा कोई इसी पार्क में भाषण दे रहा था। उसने कहा कि Conviction के लोग कहाँ मिलते हैं। अङ्गरेज़ी भाषा में 'कन्विक्शन' शब्द के अर्थ निश्चित विचारों के हैं और दोषी प्रमाणित होने के भी हैं। भाषण सुनने वालों में से एक ने कहा कि ऐसे आदमी जेलखानों में मिलते है। वाक्चतुरता सब में नहीं, वरन् किसी-किसी में होती है। अस्तु। १८९२ ई० तक ब्रिटेन में मज़दूर दिवस नहीं मनाया जाता था।

अमेरिका के संयुक्त राज्य में और कनाडा के प्रान्तों में 'मज़दूर दिवस' सितम्बर महीने के पहले सोमवार को मनाया जाता है। पहले इस दिवस से वहाँ के कर्मचारी बहुत भयभीत रहते थे। आन्दोलन ही शासित का अस्त्र है। वहाँ के लोगों ने भी आन्दोलन किया। १८८२-८३-८४ में इस दिवस के पक्षपाती धूम मचाते न्यूयार्क शहर की सड़कों पर घूमते थे। आन्दोलन को सफलता हुई। १८८४ में उन लोगों ने प्रस्ताव पास किया कि सितम्बर का पहला सोमवार मज़दूरों का दिवस समझा जाय। फिर आन्दोलन की आवश्यकता हुई और तब वहाँ की गवर्नमेंट ने इस दिन मज़दूरों को छुट्टी देना स्वीकार किया। नौकरी करने वालों की प्रत्येक संस्था ने इस आन्दोलन में सहायता दी थी।

१८८७ ई० में अमेरिका की सब संस्थाओं ने मज़दूर-दिवस के समथन में प्रस्ताव पास किये। सिर्फ प्रस्ताव ही पास करने से कब और कहाँ काम चला है। प्रस्तावों को जब तक आन्दोलन की सहायता न हो तब तक बक-बक करके केवल जबान थकाना है। प्रस्तावों के पास करने के बाद फिर आन्दोलन हुआ, तब १८९४ में वहाँ की कॉङ्गरेस ने यह बिल पास किया कि इस दिन मज़दूरों को छुट्टी हुआ करे। राज्य सयुक्त तो थे, परन्तु सबके यहाँ के शासन विधानों में भिन्नता थी और सबके यहाँ यह कानून पास होना था और यह कोई आसान काम नहीं था। कोशिश करते-करते १९२८ में सब सयुक्त राज्यों में सिवा फिलीपाइन्स के यह कानून पास हो पाया, क्योंकि फिलीपाइन्स वाले १ मई को मज़दूरों का दिवस मनाते हैं। चाहे जो तारीख हो, मनाया यह दिवस वहाँ भी जाता है। अन्य देशों में इस दिवस के मनाने की तारीख नियत है। परन्तु कहीं-कहीं यह प्रथा है कि हर साल घोषणा करनी पड़ती है। घोषणा का वही ढङ्ग होगा जो अपने देश में है। हर साल सम्राट की वर्षगाँठ मनाई जाती है। तारीख नियत होने पर भी हर साल यह घोषणा पत्रों में प्रकाशित होती है कि अमुक तारीख को सर्व-साधारण को छुट्टी होगी। इस तारीख को सूर्योदय की बड़ी बेकली से प्रतीक्षा की जाती है। इसी रोज खिताब बँटते हैं। कहा जाता है कि इच्छायें मृगतृष्णा के समान होती है। इनके पीछे दौड़ते जाओ और यह पीछे हटती जाती हैं। यह कुछ मानुषी प्रकृति है कि जितना जिसके पास होगा, उतनी ही ज्यादा उसकी इच्छाएँ होंगी। इस कथन का प्रमाण खिताब है। 'राय साहेब' ही हो जाने के लिये क्या है, जो लोग नहीं करते हैं परन्तु लाल फीता पहनते ही शर्मा जाते है और दूसरे साल 'राय' के साथ 'साहेब' की जगह पर 'बहादुर' जुड़ जाने के लिये और पैर नीचे गिरता जाता है।

यूरोप में यह सिर्फ मजदूरों का दिन समझा जाता है। इसके शाब्दिक अर्थ लिये लाते हैं। अमेरिका में यह बात नहीं है। वहाँ सब रोजगारी धन्धे बन्द हो जाते है और अमीर, गरीब सब इस दिवस को मनाते हैं—सभाएँ होती है, सड़कों पर लोग झण्डे लेकर निकलते हैं, दावतें होती है, दङ्गल होते हैं, बस कमी इतनी ही है कि अपने यहाँ की तरह पार्टियों में लड़कों को बहलाने वाले बाजीगरों के तमाशे नहीं होते हैं।

पति से अधिक बड़े घर की पत्नियाँ

[श्री० प्रेमनारायण अग्रवाल, एम० ए०]

हमारे गाँव में एक कहावत मशहूर है, उसका मतलब यह है कि शादी-विवाह आदि सम्बन्ध ऐसे घरों की लड़कियों से करने चाहिये, जो भावी पतियों के बराबर ही मालदार व प्रभावशाली हों और ऐसे घर की लड़कियों से नहीं, जो पति के घर वालों की अपेक्षा किसी बात में बढ़-चढ़ कर हों। पहिले के लोग प्राय इसी कहावत के अनुसार लड़कियों को अपने से बड़े घर व्याहा करते थे और लड़कों को अपने से छोटे घर। पर अब ज़माने के साथ परिस्थितियाँ बदल रही हैं, रीति-रिवाजों में भी अन्तर आ रहा है। अब जो कुछ हो रहा है वह किसी खास नियम के अनुसार नहीं, वरन् प्रत्येक की अपनी निजी सुविधा तथा स्वार्थ के अनुसार। लड़कियाँ अपने से छोटे घर और लड़के अपने से बड़े घर प्राय विवाह में जाते हैं। कुछ तो ऐसा जानबूझ कर अपने स्वार्थ के कारण करते हैं और कुछ परिस्थिति से मजबूर होकर। हमारा मतलब यह है कि इस प्रकार की प्रवृत्ति के कारण हमारा अपना पुराना तरीका धीरे-धीरे मिट रहा है।

बेकारी तथा आर्थिक कठिनाइयों के कारण युवक-समाज परेशान है। समाज का गठन इस प्रकार का है कि गरीब अधिक गरीब हो रहे हैं और मालदार अधिक मालदार। और भारत में इस समय मालदारों की अपेक्षा गरीबों की सख्या बहुत अधिक है। इस परिस्थिति से प्रभावित युवकों में बेचैनी की लहर फैल रही है। उन्हीं को नौकरी मिलती है और कमा-खा सकते हैं, जिनकी सिफारिशें हो सकती हैं, वही ऊपर उठ सकते हैं, जिन्हें कोई सहारा लगा दे। सिफारिश और सहारे के बल पर अयोग्य युवक आगे बढ़ रहे हैं और उनके सामने अधिक योग्य मारे-मारे फिर कर अपनी मिट्टी खराब कर रहे हैं। इसका नतीजा यह हो रहा है कि होनहार प्रखर बुद्धि वाले और सब तरह से योग्य युवक की बाज़ी को एक साधारण सी अक्ल वाला अयोग्य युवक मार ले जाता है, सिर्फ इस कारण से कि उसके रिश्तेदार, मित्र आदि उसको सहायता दे देते हैं। चारों ओर इन बातों का जोर है। उन जगहों में भी जहाँ खुली प्रतियोगिता (Open competition) का डङ्का पीटा जाता है और वह लोग भी, जो निष्पक्षता का दावा करते हैं, इन बातों से परे नहीं हैं। ऊपर से कुछ भी कहा जाय, पर यह बातें सबमें होती हैं। बहुतेरे ईमानदार तथा मुँहफट आदमी तो साफ कह भी देते हैं कि अमुक स्थान को पाने के लिये किसी की सिफारिश अमुक आदमी के पास पहुँचनी चाहिये। यदि उनकी बात आप उनसे पूछें और वह सच्ची बात बताने लगें तो आप यही पायेंगे कि वह भी इन्हीं नये उपायों द्वारा उस पद पर आसीन हैं और अब मजे उड़ा रहे हैं।

जीवन की गुजर-बसर करने के लिये इस प्रकार दिक्कतें दिन पर दिन बढ़ती जा रही हैं। पहिले कोई काम नहीं मिलता और काम मिलता भी है तो अधिक परिश्रम करने पर भी पेट भर भोजन लायक मुश्किल से आय हो पाती है।

हमारा युवक समाज इन परिस्थितियों से खूब परिचित होता जा रहा है और इस जीवन में किसी प्रकार सफलता पाना ही अब उसका एकमात्र उद्देश बन रहा है। उसे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को किसी प्रकार पूरा करना चाहिये, बस यही उसका मुख्य लक्ष्य अब होता है। उसे यह परवाह अब नहीं रही है कि उसके कार्य

से समाज पर कैसा और क्या असर पड़ेगा या बाद में उस पर स्वयं ही क्या बीतेगी। वह तो तत्कालिक लाभ के लिये तैयार है, भविष्य की तथा अन्य लोगों की उसको चिन्ता नहीं। वह जानते हैं कि अविवाहित रहना समाज के लिये अहितकर है, पर स्वयं अविवाहित रहते हैं। रहने को मजबूर होते हैं। विवाहित जीवन का भार वह सम्हाल नहीं सकते। उनकी आय इसकी आज्ञा नहीं देती, और भी कितने ही कारणों से वह अविवाहित रहने को मजबूर होते हैं। इसका फल समाज पर यह पड़ रहा है कि लड़कियों के लिये योग्य वर मिलना कठिन हो रहा है। खास कर ऐसी लड़कियों के लिये जो आगे बढ़ी हुई हैं और शिक्षा प्राप्त हैं। उनसे शादी करना भी अधिक व्ययसाध्य तथा खतरनाक है। लड़कियों को इसलिये अविवाहित रहने के लिये तैयार होना पड़ता है। वही युवक शादी को तैयार होते हैं, जो किसी प्रकार अपनी जीविका उपार्जन कर लेते हैं या जो समय की गति से अपरिचित हैं और अपने माता-पिता के हाथ की कठपुतली होकर अपने अन्धकारमय भविष्य की चिन्ता से मुक्त हैं। जो समय की गति से परिचित है, जिसे अपने भविष्य को सम्हालने का खयाल है, जो अपनी स्थिति को समझता है, विवाह उसके लिये ज़बरदस्त बन्धन है।

युवकों को स्वभाव से ही अधिक स्वतन्त्रता होती है। वह अपने माता पिता के क़ाबू से शीघ्र ही बाहर हो जाते हैं और अपने विचारों को दृढतापूर्वक प्रकट करने लगते हैं जब कि लड़कियों के लिये ऐसा करना मुश्किल है। उनके लिये ऐसा समय भी अभी नहीं आया है। इससे युवक अपने माता-पिता की बातों की परवाह न करके अपने को शादी के बन्धन से दूर रखते हैं। उनके अभिभावक भी उनकी दिक़्क़तों को तथा समय की रफ़्तार आदि बातों से परिचित होकर उनकी बात मान लेते हैं कि वह जब कमाने लगें तब ही एक बीबी के चक्कर में आवें। परन्तु लड़कियों की तो उनकी ठीक अवस्था में शादी कर ही देनी चाहिये। वह इनको नहीं रख सकते। उनके लिए योग्य वरों का मिलना कठिन है। उनके माता-पिता को उनके भविष्य के जीवन की परवाह होती है, अतएव वह उनको योग्य वरों को ही देना चाहते हैं। ऐसे वर प्रायः उनके समान घरों में नहीं मिलते। आजकल सभी घरों के युवक अमीर-गरीब अपने से ऊँचे ऊँचे रिश्तेदारों को चाहते हैं, ताकि समय पर उन्हें तथा उनके बच्चों को उचित सिफ़ारिश या सहारा मिल सके। इस कारण सभी ऊँचे मालदार या प्रभावशाली या दोनों प्रकार के मनुष्यों में अपना रिश्ता करना चाहते हैं; अपने समान घर में तब करना पसन्द करते हैं जब उन्हें काफ़ी रकम दहेज में मिलती है।

मालदार आदमियों को कभी-कभी अपने समान घरों में भी उचित वर नहीं मिलते। मालदार या प्रभावशाली घरों के लड़के इतने तेज़, होशियार और बुद्धिमान नहीं होते जितने प्रायः कम मालदार या अपेक्षाकृत गरीब घरों के लड़के। इतिहास में जितने बड़े प्रभावशाली आदमी हुये हैं, उनमें ऐसे थोड़े ही हुये हैं, जो पहिले से ही बड़े घरों के हों। अधिकतर वे ही बड़े होते हैं, उन्हें ही अधिक मौके होते हैं और वही अधिक परिश्रमी, तेज़ भी होते हैं जो अपेक्षाकृत गरीब और उपेक्षित होते हैं। केवल धन की बात को छोड़ कर वह अन्य बातों में इतने अच्छे होते हैं कि उनके मुक़ाबिले में बड़े घरों में लड़के शायद ही मिलें। तब कुछ लोग अपने से छोटे घरों के लड़कों के साथ भी अपनी कन्याएँ ब्याह देते हैं।

कुछ लोगों को अपने से कम मालदार घर के लड़कों के साथ अपनी लड़कियाँ अन्य कारणों से भी मजबूरन ब्याह देनी पड़ती हैं। कुछ जातियाँ पिछड़ी हुई हैं और उनके दो एक आदमी आगे बढ़ कर मालदार हो गये। उन्हें अपनी ही जाति में अपने से बड़े या अपने समान घर के लड़के नहीं मिलते।

इन कारणों के अतिरिक्त और भी दो एक कारण हो सकते हैं। पर सबसे अधिक प्रचलित एक ही कारण है कि लड़कों के अभाव में बड़े-बड़े मालदार तथा प्रभावशाली घर के लोगों को अपनी लड़कियों की शादी अपेक्षाकृत बहुत गरीब या मामूली गरीब लड़कों से कर देनी पड़ती है। ऐसा करने में उन्हें मजबूर होना

पड़ता है। सम्भवतः वह खुशी से इसे पसन्द नहीं करते। शादी से पहिले उन्हें काफी रुपया देना पड़ता है, ताकि वह कोई अपनी आय कर सके या किसी काम में लगवाना पड़ता है या अपने ही किसी काम में रख कर उनका सारा खर्चा स्वयं देना पड़ता है। मतलब यह कि लड़कियों के माता-पिता को या तो अपने धन का या अभाव का उपयोग करके उस युवक के लिये, जिससे वह अपनी लड़की का विवाह कर देते हैं, खाने-कमाने का प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि वह उस युवक के लिये पर्याप्त आय का प्रबन्ध नहीं कर पाते तो उनकी लड़की को उतना आराम नहीं मिलता, जिसकी वह आदी रही है अपने पिता के घर। प्राय: लड़की के पिता को ऐसा करने में दिक्कत नहीं होती, क्योंकि वह स्वयं उनका प्रबन्ध अपने ऊपर ले सकते हैं। पर अधिकाश मामलों में उनका प्रभाव उन्हें कहीं काम दिलवा देता है। ऐसा भी हुआ करता है, जब वह उस युवक तथा अपनी लड़की को अपने यहाँ ही बना रहने देते है।

इस उपाय के द्वारा लड़की वालों को अपनी लड़की को ब्याह देने का मौक़ा मिल जाता है। इसे भी हम दहेज का एक दूसरा रूप मान सकते हैं। इसमें धन या अन्य सामान न देकर, नौकरी दिलवानी होती है, या उनके लिये आमदनी का प्रबन्ध करना पड़ता है। वह तो दहेज से भी बढ़-चढ कर है। इससे उनके निजी स्वार्थ की पूर्ति किसी प्रकार हो जाती है। उन्हें इसकी शायद स्वप्न में भी चिन्ता नहीं होती कि इसका समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा, बेचारे गरीब लोग अपनी लड़कियों के लिये वर कहाँ से लायँगे। गरीब लोगों पर इसका प्रभाव यह पड़ रहा है कि उनको अपनी लड़कियों की प्राय: उन लोगों से शादी कर देनी पड़ती है जिनकी प्रथम, द्वितीय या तृतीय पत्नी का देहान्त हो चुकता है और वह अपनी दूसरी, तीसरी या चौथी शादी करते हैं। इस समय उनको बड़े घर की लड़कियाँ नहीं मिलतीं क्योंकि उनके पिता तो अपने धन से कोई कुँवारा वर ढूँढ़ सकते हैं। गरीब आदमी धनाभाव से लड़के कहाँ से लायें, तब उन्हें अपनी कन्यायें इन्हें देनी पड़ती हैं। जो लोग स्वयं मालदार भी हैं उन्हें भी अपनी दूसरी तथा तीसरी शादी करने के लिये अपने समान घर की कन्याएँ शायद ही मिलती हों। वह ज़्यादातर गरीब लोगों की कन्याएँ लेते हैं। और भी कितने ही प्रकार से इन पर मालदारों की इस स्वार्थी मनोवृत्ति का प्रभाव पड़ता है।

बड़े घर की लड़कियों से शादी करने वाले युवकों का खास मतलब होता है अपनी आय के प्रबन्ध करने का, क्योंकि एक तो वह कार्य करने को रुपया दे देंगे या कार्य ही कहीं दिलवा देंगे। कहने का तात्पर्य यह कि कमाने की चिन्ता युवकों पर न रह कर उनके ससुर पर हो जायगी। इस प्रकार शादी करके वह अपनी बेकारी का अन्त कर लेते हैं। ऐसा करके युवक लोग लाभ में रहते हों, सो बात नहीं है। इसमें भी नुक़सान है, जबरदस्त नुक़सान है, उनके लिये ही। पर प्रश्न यह है कि वह उसे महसूस करें या न करें? समाज पर जो प्रभाव पड़ता है वह तो अलग ही रहा।

आजकल की बेढब परिस्थिति में अधिकतर युवक ऐसे भी हैं, जो इस प्रवृत्ति को पसन्द करके अपने जीवन-यापन का साधन सुगम बना लेते हैं। पर सभी इस प्रवृत्ति के अनुयायी नहीं हैं। ऐसे युवकों की संख्या भी काफी है, जो इस प्रकार अपने जीवन को काटना कभी पसन्द नहीं करते। उनकी दृष्टि में ऐसा करना अपनी जबरदस्त कमज़ोरी साबित करना है। जीवन-संग्राम की कठिनाइयों से भाग कर वह मुँह छिपाते हैं। वह मनुष्य ही क्या, जिसने जीवन की कठिनाइयों का सामना न किया। यह युवक समुदाय इनको कमज़ोर, नपुंसक, डरपोक, भीरु आदि नाना प्रकार के विशेषणों से सम्बोधित करता है। मनुष्य की मनुष्यता इसी में है कि जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों का मुक़ाबिला करके उसमें सफल उतरे। इस समुदाय के लिये इसी में आनन्द है, इसी में सांसारिक सुख, और इसी में मनुष्य-जीवन की सफलता का रहस्य। समझदार, होनहार और फौलाद के समान मजबूत वही पुरुष होते हैं, जो परेशानियों से न घबरा कर अपने को मनुष्यता से च्युत नहीं होने देते, जो जीवन की दिक़्क़तों का बहादुरी से मुक़ाबिला करते हैं। यदि उनको जीवन में सफलता मिलती

है तो संसार उनको self made man कह कर उनका आदर करता है और यदि उनकी पराजय हुई तो वह एक आदर्श छोड़ जाते हैं। दूसरे के आश्रित रहकर मनुष्य मनुष्य नहीं बन सकता। हाँ, किसी प्रकार जीवित अवश्य रह सकता है और शायद उसमें सन्तुष्ट रहे। एक साहसी एवं मजबूत आदमी इस परिस्थिति को कभी पसंद नहीं करेगा। मुझे ऐसे युवकों को देखने का मौका मिला है जिन्होंने इस प्रकार के प्रलोभनों को ठुकरा कर अपने आत्मसम्मान तथा पुरुषत्व की रक्षा की है और यह दिखलाया है कि आखिर दुनिया में धन ही दुनिया की सफलता, यदि इस प्रकार सफलता मिले, नहीं है और उनका अपना व्यक्तित्व इन बातों से अलग है। उन्होंने आजीवन ग़रीब रहकर ज़िन्दगी बितानी पसन्द की, पर मालदार या प्रभावशाली की लड़की से शादी करके अपने आप को बेचना पसन्द नहीं किया, और न अपने आदर्शों, महत्वाकांक्षाओं आदि को बलि करना ही।

वह युवक भी जो इस प्रकार शादी करके अपने अवशेष जीवन को आराम से व्यतीत करने का प्रबन्ध कर लेते हैं, शायद कोई विशेष लाभ में नहीं रहते। प्राय: उन्हें अपनी आत्मा का हनन करना पड़ता है। उनका मुख्य लक्ष्य धन ही होता है। धन की धुन में यह भी परवाह नहीं होती कि लड़की, जिससे वह शादी करने जा रहे हैं, उनके उपयुक्त है या नहीं। समझदार युवक के लिये यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। यह चाहे भले ही इसकी ओर से बेपरवाह रहे। प्राय उनको ऐसी लड़कियों से शादी करनी पड़ती है जिनसे शादी करना वह कभी स्वीकार न करे, यदि उन्हें धन का लोभ न हो। ऐसे उदाहरण भी अनेक मिलते हैं, जिनमें युवकों ने किसी युवती को किन्हीं कारणों से नापसन्द कर दिया, पर बाद में रुपये के लालच से या किसी अन्य प्रकार की सहायता की उम्मीद में उन्होंने उसी लड़की से शादी कर ली। इसका नतीजा यह होता है कि उन्हें धन तो अवश्य कुछ न कुछ मिल जाता है, पर लड़की का कुछ ठिकाना नहीं रहता कि किसे कैसी मिलती है। लड़की, जिससे उनको ज़िन्दगी भर काम पड़ता है, उसको वह इतना महत्व न देकर धन को या अन्य किसी प्रकार की सांसारिक सफलता की उम्मीद में, वह इसे अधिक महत्त्व देते हैं। यह चीजें अस्थायी होती हैं, जिन्हें बाद में प्राप्त किया भी जा सकता है, पर लड़की से तो उन्हें सदैव काम पड़ेगा और वह सदा एक सी ही रहेगी। इस प्रवृत्ति के फल-स्वरूप लड़की वालों को प्राय. अच्छे लड़के मिल जाते हैं, क्योंकि उनके रुपये से शादी करने के लिये कितने ही युवक तैयार हो जाते हैं। परन्तु रुपये देने वाले लड़की वाले अधिक संख्या में नहीं होते। अतएव युवकों के हाथ अच्छी लड़कियाँ प्राय. नहीं आतीं। उनको ख़राब से ही सन्तोष करना पड़ता है। पर वह यह शिकायत नहीं कर सकते, क्योंकि वह तो लड़की की योग्यता उपयुक्तता आदि की परवाह न करके केवल धन की परवाह करते हैं। और अच्छी लड़कियों को मामूली या अनुपयुक्त वर मिलते हैं, क्योंकि वह प्राय धन देकर युवकों की धनलिप्सा पूरी नहीं कर सकतीं।

इस प्रकार वह शादी करके अपने विवाहित तथा सांसारिक जीवन को सुखी, शान्त और फलते-फूलते देखना चाहते हैं। दूसरे लोगों के सामने वह अपनी सफलता की डींग हाँकते हैं, उनके सामने ऐंठ के चलते हैं, उन पर अपना प्रभाव जमाना चाहते हैं, पर अक्सर वह इस बात में सफल नहीं होते। समाज उनकी तरक्की की असलियत से परिचित होकर उनको अच्छी निगाह से नहीं देखता। उसके खिलाफ भले ही समाज के व्यक्ति साफ़-साफ़ बात कहने से सकुचावें, पर वह बात सब के दिल में खटकती रहती है, वह युवक उनके दिलों पर प्रभाव नहीं जमा सकता। ऐसे युवक समाज को धोखा देने के लिये भले ही कुछ करें, पर उनको मानसिक शान्ति शायद ही कभी उपलब्ध होती है। कभी-कभी उन्हें अपने कार्य पर और अपनी कमज़ोरी पर पश्चात्ताप होता है, वह इस बात को महसूस अवश्य करते हैं कि धन लेकर पत्नी प्राप्त करके तथा इस प्रकार सांसारिक सफलता पाकर उन्होंने संसार की आँखों में धूल झोंका तो अवश्य ही, पर साथ में अपने साथ भी अन्याय किया। किसी-किसी व्यक्ति पर इसका अधिक

प्रभाव पड़ता है और वह इसे अधिक महसूस करते हैं। इससे उनके जीवन में स्थायी शान्ति तथा आनन्द का समावेश नहीं हो सकता। इस तरह से प्राप्त पत्नियों के उपयुक्त न होने पर भी उनको परेशानी होती है। इसके अतिरिक्त पति-पत्नी में एक और प्रकार की भावना का उत्पन्न होना स्वाभाविक होता है। पति में Inferiority complex तथा पत्नी में Superiority complex की भावना तीव्र गति से विद्यमान होने लगती है। पति अनुभव करता है कि उसने अपनी पत्नी के माता-पिता से धन लेकर जीवन में प्रवेश किया या सफलता पाई और इसका श्रेय उनको ही है, और पत्नी भी खूब समझती है कि उसके पति की सारी शान-शौकत उसके पिता की दी हुई ही तो है, स्वयं पति महाशय ने इसमें क्या किया। इस प्रकार के विचारों की सृष्टि होना अस्वाभाविक नहीं है और इनसे पति पर पत्नी का प्रभाव अधिक रहता है, पति सदैव अपने को पत्नी से नीचे दर्जे का समझता है और पत्नी अपने को अपने पति से ऊँचा। पत्नी इसे अपनी हुकूमत में रखना चाहती है और पति महाशय को उसके प्रभुत्व का सिक्का मान लेना पड़ता है। इस प्रकार के ऊँच-नीच तथा भेद-भाव की भावनाओं से उनके आपस के प्रेम में भी अन्तर पड़ सकता है। पति-पत्नी के सम्बन्ध को प्रेममय बनाने के लिये दोनों का एक का दूसरे के प्रति सद्भावना का रखना तथा समानता के भाव का होना आवश्यक है। समानता के भावों की अनुपस्थिति में उनके दिलों में अन्तर पड़ कर उनके विवाहित जीवन का मज़ा किरकिरा हो जाता है। तब पति महाशय को अपनी ग़लती महसूस होती है, पर अब ग़लती को सुधारने का समय नहीं होता। कितने ही दम्पति इस मानसिक चक्र में फँस कर विवाहित जीवन के आनन्द से वञ्चित रह जाते हैं, वह अपने उन अरमानों को पूरा नहीं कर पाते, जिन्हें वह शादी के समय अपने दिल में भरे होते हैं।

साधारण तौर से खाते-पीते और सम्पन्न घरों के युवक भी अपने से अधिक मालदार तथा आगे बढ़े हुये परिवारों की कन्याओं से शादी करना चाहते हैं और पसन्द करते हैं। उनके सामने रुपये का प्रश्न नहीं होता, पर इस बात का तो अवश्य ही होता है कि उनके रिश्तेदार ऊँचे-ऊँचे प्रभावशाली होंगे। इनसे उनका कोई खास लाभ न हो, पर भविष्य का ख़याल करके वह उनमें अपना विवाह-सम्बन्ध हो जाने देते हैं। मामूली तौर पर इस प्रकार की शादियों का अधिक हानिकर प्रभाव बहुत कम पड़ता है, या मालूम देता है, पर यदि हम गौर से देखें और बारीकी से छान बीन करें तो हमें तुरन्त मालूम पड़ जायगा कि कुछ न कुछ बुरा प्रभाव इसका भी पड़ता है। ऐसे थोड़े से ही उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें वह लाभप्रद हो या नुकसानदायक न मालूम पड़े, पर अधिकतर केसों में उनका प्रभाव दम्पति या पति के हितों के विपरीत ही पड़ता है। बड़े घर की लड़की की आदतें, रहन-सहन का ढङ्ग, सब उसके अनुरूप होंगे। जब पति के घर में लड़की पहुँचेगी तो उसे दूसरे प्रकार के ही रङ्ग-ढङ्ग देखने को मिलेंगे और उनके अनुकूल उसे अपने को भी मोड़ना पड़ेगा। इस प्रकार अपने को ऐसी बातों के लिये उपयुक्त बनाना पड़ता है, जिसे उसने पहिले कभी नहीं किया या पसन्द नहीं है। ऐसा करने में उसे तकलीफ़ होती है, इसका प्रभाव उसके मन पर पड़कर उसके जीवन में अजीब-अजीब प्रकार के विचार उत्पन्न कर सकता है। जो किसी प्रकार अपनी आदतों पर अपने पति की नई परिस्थितियों के अनुकूल नियंत्रण नहीं कर पाती, वह अपने पतियों के लिये आफ़त बन जाती हैं। प्रायः वह अधिक खर्चीली होती हैं, पति महाशय अपनी कम आय के कारण उनकी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते। इसी प्रकार और भी कितनी ही दिक्कतें दोनों के सामने खड़ी होती हैं, जिससे दोनों को परेशान और असन्तुष्ट रहना पड़ता है। इस प्रकार न तो उन्हें शान्ति मिलती है और न कोई आनन्द।

इस वर्ग के युवक लोग यदि अपने ही समान वाले घरों की कन्याओं से या अपने से नीचे घरों की लड़कियों से शादी किया करें तो शायद वह अधिक सुख तथा प्रसन्नता का अनुभव करें। इस वर्ग से उन्हें अच्छी अच्छी लड़कियाँ अधिक योग्य तथा उपयुक्त मिल सकती हैं जैसी उन्हें अपने से ऊँचे वर्ग में शायद ही कभी मिलें।

हमारा तो ख़याल है कि अपने से ऊँचे वर्ग में दम्पति का सुन्दर जोड़ मिलना अत्यन्त कठिन है, पर पति से नीचे वर्ग में बहुत ही उत्तम जोड़ मिल सकता है। क्योंकि लड़की के माता पिता पुराने रिवाज के अनुसार सदैव अपने से अधिक सम्पन्न परिवार ढूँढ़ते हैं। यही वर्ग यदि धनी है और रुपया ख़र्च कर सकता है तब इसको अच्छे से अच्छे योग्य लड़के मिल सकते हैं। इन कन्याओं से शादी करने से युवकों को धन भले ही मिले, न कोई मदद ही मिले, पर पत्नी अवश्य अच्छी मिल सकती है, जिसे पाकर उनके जीवन में सुख, शान्ति की सृष्टि होगी। उनके वैवाहिक जीवन में उन्हें बहुत कुछ अंशों में सफलता मिलेगी। उसकी आदतें, रहन-सहन के ढङ्ग के प्रतिकूल कोई बात उसे उनके घरों में न मिलने से उसे ख़ुशी होगी और उसकी ख़ुशी में विवाहित जीवन की सफलता छिपी हुई होती है। वास्तव में पत्नी घर की देवी होती है। बहुत अंशों में घर का सम्हलना-बिगड़ना, सुख-दुख, शान्ति-अशान्ति आदि बातें उसी पर निर्भर करती हैं। यदि वह चाहे तो गार्हस्थ्य-जीवन में स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करावे या उसे नरक से भी ख़राब बना दे। अतएव जीवन के इतने उपयोगी और आवश्यक साथी के चुनाव में अधिक से अधिक अक़्ल से काम लेने की आवश्यकता होती है। किसी एक पहलू पर विचार करके काम नहीं बन सकता है, इसके लिये आवश्यक है कि ज़िन्दगी के सभी पहलुओं पर बड़ी सावधानी से गम्भीर दृष्टि से विचार किया जाये। विचार करने वाले ख़ूब सुलझे हुये दिमाग़ के अनुभवी व्यक्ति हों। इसी कारण से शायद हमारे समाज में शादी करने का भार लड़की-लड़के के माता-पिताओं पर डाला गया है, क्योंकि वह स्वयं अपने सङ्कुचित अनुभव तथा ज्ञान से जीवन-मरण के इतने जटिल प्रश्न पर ठीक तरह से विचार नहीं कर सकते।

किसी भी हिसाब में अपने से ऊँचे घर में शादी करके युवक अपने अस्तित्व को क़ायम नहीं रख सकता। उसमें कितने ही गुण हों, वह कैसा ही भला आदमी हो, पर उसको कोई नहीं पूछेगा। जनता उसको अमुक व्यक्ति के जमाता (Son-in-law) के रूप में ही देखेगी, क्योंकि उसका प्रभाव उस युवक से अधिक होगा ही। उसका अपना परिचय जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिये काफ़ी न होगा। जनता पर प्रभाव डालने के लिये, उससे अपना उल्लू सीधा करने के लिये यह ज़रूरी होगा कि यह बताया जाय कि यह अमुक व्यक्ति के दामाद हैं। जनता उनको जानती है, उनकी योग्यता, धन या प्रभाव से परिचित है, तो उस युवक को भी जान लेती है। पर युवक महाशय तभी तक जनता पर अपना प्रभाव रख सकते हैं, जब तक जनता में उनके ससुर साहब का नाम है। उनके साथ ही इनका भाग्य सूत्र ही बँध जाता है, सदा के लिये। बाद में यह युवक अपना निजी योग्यता, गुण के कारण कोई सुन्दर कार्य करें या आगे बढ़ें तो जनता इसका श्रेय उन्हें न देकर उनके ससुर साहब को ही देती है। इसमें जनता का कुछ क़ुसूर भी नहीं होता, क्योंकि वह उनको उन्हीं के कारण जानती है। इस तरह से उनके सारे अपने निजी गुण छिप जाते हैं और उन पर उनके ससुर साहब की छाप लग जाती है। इस तरीक़े से उनका अपना सारा व्यक्तित्व बेकार हो जाता है, और उन्हें अपने कामों का श्रेय नहीं मिलता। जनता उनके परिश्रम और कार्य को नहीं जान पाती। यदि वह कभी कोई काय अपने भरोसे ही करें, अपने परिश्रम के फल से सफल हों, उसका सारा श्रेय उनका ही हो, पर आम जनता इसे मानने से इन्कार कर देगी और उनकी सारी कार्य-पटुता या सफलता का उनकी पत्नी के पिता को कारण समझेगी।

इस प्रकार की शादियों से दोनों बातें हैं। अयोग्य को आगे बढ़ने का मौक़ा मिलता है, दूसरे के भरोसे पर और योग्य की अपनी सारी विशेषता दूसरे के कारण मारी जाती है। उसको अपने कार्यों के लिये भी श्रेय नहीं मिलता। हमारे इस कथन की सत्यता पाठक किसी भी समय कसौटी पर कस कर जाँच सकते हैं। इस समय भी हमारे देश में ऐसे कितने ही उदाहरण हैं और उनके बहुतेरे लोग परिचित हैं। यदि हम इन मामलों का बारीकी से विश्लेषण करके देखें तो मालूम पड़ जायगा कि हमारी बात में कितनी सच्चाई है। हम अपने अध्ययन के आधार पर तो इसी नतीजे पर पहुँचे हैं

कि किसी-किसी ने बड़े बनने में अपना निजी परिश्रम, योग्यता काफी खर्च की है और उसकी तत्कालीन अवस्था का श्रेय बहुत अंशों में उसी का है, फिर भी जनता उसके इस पहलू से अपरिचित होकर अमुक व्यक्ति के जमाता होने को ही श्रेय देती है। कुछ लोग वास्तव में अपने ससुर की बदौलत ही कुछ हो पाते हैं, क्योंकि उनमें उतनी योग्यता कुछ नहीं होती और उनकी वर्तमान अवस्था को पहुँचने में उनका कुछ भी हाथ नहीं होता। उनको वही बनाते हैं। पर हर एक आदमी इस बारीकी से कैसे परिचित हो सकता है। जनता में आमतौर से यही धारणा फैली हुई है कि प्रायः ऐसे लोग स्वयं बिलकुल मूर्ख और निकम्मे होते है, तभी तो दूसरे का सहारा ढूँढ़ कर ऊँचे उठने का प्रयत्न करते हैं। जो स्वयं योग्य होगा, जिसमें परिश्रम करने तथा आगे बढ़ने की लगन होगी, वह दूसरों का मुँह क्यों ताकने लगा। वह दूसरों का सहारा क्यों चाहने लगा, वह तो स्वयं बड़ा बन सकता है। उसे किसी की कृपा की आवश्यकता नहीं, वह किसी का ग़ुलाम नहीं बन सकता, वरन अन्य लोग उसकी योग्यता, कार्यशीलता पर मुग्ध होकर स्वयं उसकी सहायता करने को आगे आवेंगे। इसके लिये उसे किसी से भीख माँगने की आवश्यकता नहीं, उसे लोग स्वय सहायता देंगे। बिना किसी प्रकार के अहसान के या लोभ-लालच के। मनुष्य मात्र का स्वभाव है कि वह पात्र को अपने आप आगे बढ़ाता है और कुपात्र से सभी दूर भागते हैं।

जनता कभी-कभी बड़ी कटु आलोचक सिद्ध होती है। उसकी कसौटी पर खरा उतरना अत्यन्त कठिन काम है। वह प्रत्येक व्यक्ति के प्रभाव या दबाव में नहीं आ पाती या उस पर स्थायी प्रभुत्व प्रत्येक व्यक्ति नहीं जमा पाता। ऐसा वही लोग कर पाते हैं, जिसमें स्वयं अपना कुछ गुण होता है। दूसरों के सहारे बड़े हुए व्यक्ति भले ही मनबहलाव के लिए ख़ुश हों, पर जनता उनका उतना ही आदर करती है जितने के वह योग्य होते हैं। उसके सामने वही टिकता है और वही उसकी श्रद्धा का भाजन बनता है, जो self made man होता है, बाकी के लोगों के प्रति उसकी श्रद्धा विशेषणों से मुक्त होती है।

हमारा तो खयाल है कि बड़े घरों की लड़कियों से शादी करके जीवन में सफलता की आशा करना, जो प्राय ऐसी शादी करने वालों का उद्देश होता है, (कहें या मानें भले ही वह न इस बात को, पर होता यही है सबके साथ) अपनी अयोग्यता का ढिंढोरा पीटना तथा अपने ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव पास करना है। इसके अतिरिक्त वह जिस प्रकार की सफलता की उम्मीद में ऐसा करके समाज के सामने बुरा आदर्श उपस्थित करते हैं, वह प्राय पूरा नहीं होता। दूसरा आदमी किसी को वहाँ तक सहायता कर सकता है, जब तक कि उसमें स्वयं कुछ न हो। यदि वह किसी आदमी को आगे तक पहुँचा भी देता है, तो वह अपनी अयोग्यता के कारण अपनी पुरानी जगह वापस आ ही जाता है। योग्य तथा होनहार को किसी की सहायता दरकार नहीं होती—वह अपना रास्ता स्वय चुनता, निर्माण करता है और उसके लिये किसी का मोहताज भी नहीं होता। यह दूसरी बात है कि उसे अपने उद्देश को प्राप्त करने में विभिन्न परिस्थितियों के कारण अधिक समय लगे, अधिक क़ुरबानी करना पड़े, अधिक परिश्रम करना पड़े। पर सफलता उसे एक न एक दिन अवश्य मिलती है और यह सफलता अधिक स्थायी तथा सम्मानयुक्त होती है।

अपने से ऊँचे घर की लड़की से शादी करने से उनका मंशा पूरा नहीं होता। दोनों हाथ लड्डू नहीं आते। न तो उन्हें वह सफलता ही मिलती है, जिसे समझदार तथा विचारशील युवक सम्मानपूर्वक चाहते हैं और न विवाहित जीवन का वास्तविक सुख तथा आनन्द।

अधिकतर लोग जो इस प्रकार की शादी करते हैं, दोनों में से किसी भी वस्तु को नहीं पाते। एक न एक तरफ से उनको घोर असन्तोष बना ही रहता है। बल्कि ज्यादातर केसों में दोनों तरफ से ही उन्हें निराश होना पड़ता है। ऐसे थोड़े से ही सौभाग्यशाली दम्पत्ति निकलते हैं, जिन्हें इनमें से किसी एक क्षेत्र में या दोनों में कुछ सफलता मिलती है। पर इनकी संख्या इतनी नहीं होती,

जिससे यह साबित नहीं होता कि यह प्रवृत्ति आगे बढ़ाने लायक है। वह समय शीघ्र ही आने वाला है, जब हमारे युवक युवतियाँ इस बात को अधिक गम्भीरता के साथ सोचेंगे और समय के प्रवाह के साथ बहने को एकाएक तैयार न होंगे। नई परिस्थितियों के कारण इधर कुछ दिनों से इस प्रकार की बातें अधिक देखने-सुनने को मिल रही हैं, पर अभी वह समय नहीं आया है, जब सब का ध्यान इस ओर आकर्षित हो और वह इसके लाभ-हानि के दोनों पहलुओं पर गौर करके आगे को कदम बढ़ावें। इस प्रकार के सम्बन्ध करने वाले युवकों को इस प्रश्न पर अधिक गहराई से विचार करने की आवश्यकता है, ताकि उनके सुख-स्वप्न दुराशा में परिणत होने से बच सकें।

जहाँ ऊपर के नतीजे पर पहुँचते हैं, तब सफलता से हमारा मतलब गार्हस्थ्य-जीवन की सुख शान्ति से होता है और यह प्राय बड़े घर की लड़कियों से शादी करने वाले युवकों को नहीं मिलती, पर उनका आर्थिक प्रश्न अवश्य हल हो जाता है। उनको आसानी से पर्याप्त रुपया खर्च के लिये मिलने लगता है। इसे प्राप्त करने में इतनी दिक्कत, परेशानी, मेहनत और सङ्घर्ष नहीं करना पड़ता है, जितना उन्हें वैसे करना पड़ता। बिना इतनी कठिनाइयों से उलझे उन्हें अच्छी-खासी आय हो जाती है, जो शायद उस तरह के कमजोर आदमी के लिये असम्भव होती। मजबूत आदमियों को कमाने-खाने के लिये कहीं अधिक दिक्कतें होती हैं, पर फिर उसके कमाने की तादाद भी निश्चित नहीं होती। वह कितनी ही बढ़ सकती है, पर इनकी तो ज्यादातर मामलों में उतनी ही बनी रहती है या थोड़ा-बहुत अन्तर ही पड़ता है। हाँ, यदि यही संघर्ष हो तो अधिक कमा सकते हैं। पर जो साहसी, मेहनती युवक होते हैं, वह इस प्रकार दूसरों का सहारा नहीं ढूँढ़ते। वह स्वयं अपने पर विश्वास करके जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त करते हैं। इन युवकों के दृष्टिकोण से उनकी आर्थिक स्वतन्त्रता ही सब कुछ है, दुनिया में इनके लिये धन ही एक प्रधान वस्तु है। संसार की अन्य किसी भी बात का कोई महत्व नहीं, तो यह अवश्य उनके लिये अभिमान की वस्तु हो सकती है। पर. संसार में इस विचार के व्यक्ति कम मिलेंगे, जो इनके इस पहलू की सफलता को दाद दे सकें। अधिक लोगों के सामने धन प्रधान वस्तु न होकर अन्य प्रधान वस्तुओं को प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन अवश्य है। यदि धन पर वह अपने सारे अरमानों को, जीवन की सब अच्छाइयों को, उसके सुख को, न्यौछावर करना चाहें तो ख़ुशी से करें।

सभी युवक इसी कारण बड़े घर की लड़कियों से शादी नहीं करते। कुछ और-और कारण भी होते हैं। पर अधिकता उन्हीं की होती है, जिनका प्रमुख उद्देश आर्थिक सफलता पाना ही होता है। जिनका खास कारण यह ही होता है, वह भी इसे छिपाने के लिये अन्य कितने ही कारण ढूँढ़ निकालते हैं। वह कारण देखने में भले ही तर्कयुक्त जँचे, पर उनका भी परिणाम सम्भवत ऐसा ही होता है। कुछ शादियाँ इस कारण हो जाती हैं कि बड़े घर की लड़कियों का मामूली या गरीब घरों के लड़कों से प्रेम हो गया और बाद में उनके माता पिताओं को शादी करनी पड़ी। यहाँ हम इसी प्रश्न पर विचार कर सकते हैं कि क्या इस प्रकार प्रेम की शादियाँ जीवन में आगे चलकर सफल साबित होती हैं। इस सम्बन्ध में अधिक न लिखकर हम इतना ही कहना चाहेंगे कि अनुभवी तथा बारीकी से समाज की प्रगति को अध्ययन करने वालों की राय में यह प्रेम विवाह प्राय असफल होते हैं।

शिक्षा का पुनर्निर्माण

[श्री० गौरीशङ्कर अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०]

भारत में भीषण निरक्षरता फैली हुई है। जब कि गत ६०-७० वर्षों में इङ्गलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, जापान, कनाडा और आस्ट्रेलिया आदि अन्य समृद्ध, सम्पन्न और समुन्नत देशों में निरक्षरता निवारण और शिक्षा-प्रचार में समुचित उन्नति होकर वहाँ पर साक्षरों की संख्या ४, ५ अथवा ६ प्रतिशत से बढ कर ९६ अथवा ९८ प्रतिशत तक हो गई है। हमारे हतभाग्य देश में ब्रिटिश कथित सुशासन में पिछले १००—१५० वर्षों में यह संख्या मुश्किल से २·५ प्रतिशत बढी है। हमारे संयुक्त प्रान्त की स्थिति और भी अधिक शोचनीय है। यहाँ पर अनिवार्य शिक्षा के कानून १७ वष से जारी होने पर भी प्रति बालक पीछे, जो स्कूल में शिक्षा पाता है, लगभग चार ऐसे हैं जिनकी शिक्षा के लिए कोई साधन अथवा प्रबन्ध नहीं है। जब कि प्राय: सभी सभ्य देशों में बालक और बालिकाओं को निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा मिलना प्रजा का जन्म-सिद्ध अधिकार और शासन का विशेष और सर्वोपरि कर्त्तव्य समझा जाता है। हमारे दीन देश की यह स्थिति है। यह बड़ी असन्तोषप्रद और असहनीय दशा है और देश की आर्थिक उन्नति और सामाजिक और राजनैतिक उत्सर्ग में बाधा-स्वरूप है। हमें सभ्यता और समृद्धि की घुड़-दौड़ में अन्य राष्ट्रों के साथ कदम बढ़ाना है और इसलिए हम भावी नागरिक बालकों की शिक्षा की ओर से उदासीन नहीं रह सकते। यदि हमें बालकों के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन और उत्तरदायित्व पूर्ण करना है तो हमें आधुनिक शिक्षा प्रणाली, प्रबन्ध और साधनों में मौलिक और क्रान्तिकारी परिवर्तन और सुधार करते हुए ऐसे उपायों का अवलम्बन करना चाहिये जिनसे अभीष्ट ध्येय की प्राप्ति अर्थात् बालकों में निरक्षरता निवारण हो सके। ऐसे ही उपायों में शिक्षा-प्रकरण में दोहरा स्कूल प्रणाली या उसके किसी रूपान्तर अर्थात् विभक्त कालिक शिक्षा-प्रणाली का प्रयोग एक आवश्यक सीढी है, जिसके अवलम्बन से बिना किसी विशेष हानि के शिक्षा व्यय लगभग आधा किया जा सकता है अथवा वर्तमान शिक्षा-व्यय से इस समय से प्रायः दुगने बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

विभक्त-कालिक शिक्षा-प्रणाली का शिफ्ट प्रणाली एक प्रधान रूप है। वस्तुत: प्रयोगात्मक रूप से ग्रामों अथवा नगरों में स्थिति के अनुसार यह अनेक रूपों में प्रचलित हो सकती है। ग्रामों में जहाँ विद्यार्थियों की संख्या जो एक स्थान में एकत्रित हो सकते हों अल्प है, जैसे २० या ३० है। एक सप्ताह में दूसरे, तीसरे या चौथे लगातार या विषम दिनों में स्कूल खोला जा सकता है और सप्ताह के शेष दिनों में अध्यापक दूसरे ग्रामों में जा सकता है। हमारे देश अथवा प्रान्त में जहाँ ग्राम एक दूसरे से अधिक दूरी पर नहीं हैं, एक अध्यापक प्रातःकाल एक ग्राम में और मध्याह्न के उपरान्त दूसरे ग्राम में सरलता से पढ़ा सकता है। इस विभक्त-कालिक शिक्षा का ध्येय सर्वदा यह होना चाहिये कि अध्यापक पर औसत हिसाब से लगभग ६०-६५ विद्यार्थियों का शिक्षा-भार पड़ जाय। जब कैरीक्युलम (पाठ्य क्रम) सरल हो जायगा और पाठ्य पुस्तकें संशोधित होकर स्थानीय अवस्थाओं के अनुकूल बना दी जावेंगी (जिस विषय पर यथावकाश किसी आगामी अङ्क में प्रकाश डाला जावेगा) तो इस

सुधार-स्कीम के अनुसार कोर्स पूरा करना कठिन नहीं होगा। इस प्रणाली से वर्तमान उपलब्ध शिक्षकों और साधनों से जितने विद्यार्थी अब शिक्षा पाते हैं उनसे लगभग दूने पढ़ाए जा सकेंगे। यह स्कीम भले ही आदर्श न हो, परन्तु यह निस्सन्देह अत्यधिक प्रयोगात्मक है और संसार के बहुत से सभ्य देशों ने और हमारे देश के कुछ भागों ने भी अपने शिक्षा-विस्तार की विभिन्न अवस्थाओं में इसका प्रयोग किया है और यह उनकी अभीष्ट समस्या के सुलझाने और ध्येय की पूर्ति में बहुत कुछ सफल हुई है। अब हम यहाँ संक्षेप में कुछ देशों की विभक्त कालिक शिक्षा के विभिन्न विधानों का विवेचन करते हैं।

यूरोपीय देशों में सर्व-प्रथम जर्मनी ने प्राथमिक शिक्षा की निम्न कक्षाओं के लिए अर्ध-दिवस स्कूल प्रणाली का व्यवहार किया था। जर्मनी के अन्तर्गत सैक्सनी और प्रशा रियासतों ने यह अर्ध-दिवस प्रणाली ग्रहण की थी। इस प्रणाली का आविर्भाव आवश्यकताओं की पूर्ति और इसका प्रयोग अध्यापकों पर बढ़ते हुए शिक्षा-भार निवारण और कक्षाओं में विद्यार्थियों की अत्यधिक बढ़ती हुई संख्या को खपाने के लिए हुआ था तथा आर्थिक कारणों से इसकी अतिशय आवश्यकता समझी गई थी और तदनुसार यह प्रचलित की गई थी। इस समय भी जर्मनी में नवीन प्रणाली के अनुसार चलाए जाने वाले स्कूलों में जो 'ग्रण्डशूल' अथवा 'आधार स्कूल' कहलाते हैं, प्राथमिक शिक्षा की निम्नतम अथवा प्रथम कक्षा में सप्ताह में १८ घण्टे से अधिक शिक्षा नहीं दी जाती।

फ्रांस में (सन् १६०० ई० के लगभग) शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर के प्रस्ताव पर शिक्षा विभाग की काउन्सिल को स्कूल-विधान के नियमों के अनुसार यह अधिकार प्राप्त था कि वह म्युनिस्पिल काउन्सिल की अनुमति से किसी कम्यून या म्यूनिस्पैलटी अथवा उसके किसी भाग में अर्द्ध दिवस स्कूल स्थापित कर देवे। ऐसी अवस्था में स्कूल का डायरेक्टर (अध्यक्ष) विद्यार्थियों की संख्या को दो भागों में विभक्त कर देता था, जिनमें से एक भाग सुबह ८ बजे से ११ बजे तक और दूसरा दोपहर बाद १ बजे से ४ बजे तक शिक्षा प्राप्त करता था।

इटली में अब भी यदि विद्यार्थियों की संख्या ६० से अधिक होती है, तो अर्द्ध भाग वर्ष के आधे में और दूसरा भाग अवशिष्ट वर्ष में पढ़ाया जा सकता है और अतिरिक्त अध्यापक की नियुक्ति नहीं की जाती।

स्वीजरलैण्ड में (सन् १६०५ में) प्राथमिक स्कूलों के प्रथम और द्वितीय कक्षा के लिए न्यूनतम घण्टों की संख्या प्रति सप्ताह में कम से कम क्रमशः १५ और १८ नियत थी।

डेनमार्क में (सन् १६१२ में) यद्यपि नियत रूप से अर्द्ध दिवस शिक्षा का क्रम स्थापित नहीं हुआ था, तथापि ऐसी व्यवस्था की गई थी कि बड़े विद्यार्थी ग्रीष्म काल में पूर्ण समय के बजाय एक सप्ताह में तीन पूरे दिन और दो आधे दिन शिक्षा प्राप्त करें और छोटे बच्चे जाड़ों के दिनों में इसी ढङ्ग पर शिक्षा प्राप्त करें। कुछ दशाओं में उपस्थिति और भी कम की जा सकती थी।

स्वीडन में (सन् १६०२ में) बहुत से स्थानों में स्कूल हल्का दो या अधिक भागों (rota) में विभक्त कर दिया गया था और शिक्षा-वर्ष को दो या अधिक भागों में बाँट कर स्कूल एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाता था। साधारण स्कूलों में भी स्कूल-वर्ष कई भागों में विभक्त किया जाता था। जिनमें से प्रत्येक समय विभाग में या सप्ताह में प्रति तीसरे दिन विद्यार्थियों के एक दल को शिक्षा दी जाती थी जिससे वस्तुतः प्रयोगात्मक रूप से बहुत से स्वीडिश बच्चे एक वर्ष में चार महीने शिक्षा पाते थे।

नार्वे में (सन् १६०० में) अनिवार्य स्कूल-उपस्थिति प्रति वर्ष १२ सप्ताह के लगभग थी। ऐसे स्कूल हल्कों में जहाँ विद्यार्थियों की संख्या २० से कम थी, स्कूल क्रमशः अभिभावकों के घरों पर, जहाँ उपयुक्त स्थान प्राप्त हो सकता था, खोले जाते थे। कुछ स्कूलों में बच्चे हर तीसरे दिन उपस्थित होते थे और बीच के दिनों में उन्हें घर पर ही सहायता दी जाती थी। इस व्यवस्था से बहुत लाभकर परिणाम हुए।

पोर्चगाल में (सन् १६०५ में) ग्रामीण स्कूलों में उन स्थानों को छोड़ कर जहाँ स्कूल की इमारत उपस्थित विद्यार्थियों के लिए अपर्याप्त हो, प्रायः प्रति दिन

समसामयिक दो मीटिङ्ग होती थीं। स्कूल-भवन छोटा होने की दशा में आधे बालकों को प्रातःकाल शिक्षा दी जाती थी और आधों को मध्याह्न के उपरान्त।

अमेरिका के संयुक्त राज्य में (सन् १९१२ के लगभग) स्कूल के विद्यार्थियों की उपस्थिति के दिनों की संख्या भिन्न-भिन्न प्रदेशों में वर्ष में १०० से लेकर २०० दिन तक भिन्न-भिन्न थी, जिसका औसत लगभग १५७ दिन था। इससे पता चलता है कि अमेरिका के संयुक्त प्रदेशों में प्राथमिक स्कूलों के विद्यार्थियों को औसत हिसाब से शिक्षा के पूर्ण दिवस के आधे से कुछ अधिक समय तक शिक्षा दी जाती थी।

आर्जेन्टाइन रिपब्लिक में (सन् १९२५ में) स्कूल सुबह और दोपहर बाद खुलते थे, परन्तु उन समयों में विद्यार्थियों के भिन्न दल पढ़ाए जाते थे।

आस्ट्रेलिया के प्रदेशों ने अपनी छितरी जन-संख्या और कृषि-विषयक समस्याओं के साथ साथ जनता की शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक नवीन व्यवस्थाओं और साधनों का व्यवहार किया था। उन्होंने अर्द्ध दिवस स्कूलों की स्थापना की जो प्रति दिन कुछ समय प्रात या दोपहर बाद या तीसरे दिन अथवा प्रति सप्ताह पाँच से कम दिन खुलते थे। घर घर स्कूल खोले गये थे, जिनमें एक ही अध्यापक को अध्यक्षता में दो या दो से अधिक स्कूल रहते थे और इसी प्रकार के अन्य विभक्त-कालिक स्कूलों की स्थापना की गई थी।

सन् १९१६ ई० में क्वीन्सलैण्ड के स्कूलों के सम्बन्ध में निम्नाङ्कित रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी :—

"इस प्रणाली की सब से बड़ी मनोरञ्जक बात यह है कि अध्यापक अलग अलग स्थानों में जाकर उन बच्चों को शिक्षा देते थे, जो सार्वजनिक व्यय करने पर भी सवारी के द्वारा सुव्यवस्थित स्कूलों में नहीं पहुँचाए जा सकते। इस प्रकार की शिक्षा अनेक प्रकार से, जैसे घूमते हुए अध्यापकों के द्वारा, शनिवार के स्कूल, सप्ताहान्त स्कूल, घर-घर स्कूल, विभक्त-कालिक स्कूल और कैम्प-स्कूल के द्वारा दी जाती है।

जापान में सन् १८७९ में नवीन शिक्षा-विधान व्यवहृत हुआ था। इसके अनुसार प्राथमिक स्कूलों के पाठ्य क्रम बहुत सरल बना दिये गए थे और विद्यार्थियों को ६ से १४ वर्ष तक के शैशव काल में न्यूनतम केवल १६ मास तक शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था की गई थी। इसका अर्थ यह है कि नवीन कोड के अनुसार एक वर्ष में औसत हिसाब से दो मास ही की शिक्षा नियत थी। एक ही अध्यापक को उन कई ग्रामों में जाकर अध्यापन कार्य करने की, जो स्वतन्त्र स्कूल चलाने में असमर्थ थे, प्रथा भी प्रोत्साहित की गई। सन् १८८६ में स्थिति में और उन्नति हुई और निर्धन मनुष्यों के बालकों के लिए, जो फीस नहीं दे सकते थे, विशेष स्कूल खोले गए, जिनमें कोर्स अधिक से अधिक तीन वर्ष का था और प्रतिदिन दो घण्टे से अधिक और तीन घण्टे से कम शिक्षा दी जाती थी। सन् १९०३ ई० में कुछ विशेष परिस्थितियों में चलने वाले सब स्कूलों में विभक्त-कालिक प्रणाली प्रचलित कर दी गई।

आधुनिक मिश्र, टर्की और रूस में, जो इस समय शिक्षोन्नति के द्वार पर हैं, इसी प्रणाली के अनुसार बहुत कुछ किया जा रहा है। उनकी और साथ ही लङ्का की इस प्रणाली पर प्रयोग-विधि हमारे लिए शिक्षा-स्वरूप है। इजिप्ट में यद्यपि अधिकांश उपलब्ध स्थान और साधनपूर्ण कालिक शिक्षा के निमित्त हैं, परन्तु मन्त्रिमण्डल की यह नीति है कि वह शनैः शनैः अर्ध-कालिक शिक्षा के रूप में, जिसके अनुसार आधा समय केवल बालकों के लिए और शेष आधा बालिकाओं के लिए नियत हो, परिवर्तित हो जाय जिससे विद्यार्थियों की महती संख्या के लिए नवीन अध्यापकों की अधिक नियुक्ति तथा स्थान-वृद्धि के बिना ही, शिक्षा व्यवस्था में सुविधा हो जाय। टर्की में आज उपस्थित होने वाले बालकों की संख्या लगभग ५ लाख हो गई है, जो सन् १९२३ में ३ लाख से कुछ ही अधिक थी। यहाँ भी कुछ स्थानों में स्कूलों की बढ़ती हुई विद्यार्थी संख्या की शिक्षा-सुविधा के लिए अर्ध-कालिक प्रणाली पर कार्य करना पड़ता है। सोवियट सरकार के स्कूलों का नव वर्षारम्भ १ सितम्बर सन् १९३७ को दो करोड़ सत्तर लाख बालकों से भी अधिक से हुआ था जब कि इसके विपरीत ज़ार शासन-काल में वह संख्या केवल अस्सी

हज़ार थी। विद्यार्थियों की संख्या में यह आश्चर्य-जनक वृद्धि निश्चय ही विभक्त-कालिक प्रणाली के किसी न किसी रूप के अपनाने के कारण ही हुई होगी।

हमारे बहुत समीप ही यह प्रणाली सीलोन (लङ्का) में प्रचलित है, जहाँ इसके द्वारा शिक्षा-प्रचार में परम हितकर परिणाम हुए हैं। यहाँ के स्कूल जो दोहरी शिक्षा-प्रणाली पर कार्य कर रहे हैं, 'दोहरे स्कूल' या द्व्यर्ध सामयिक स्कूल कहलाते हैं। लेखक की डायरेक्टर शिक्षा-विभाग, सीलोन की कृपा से प्राप्त सूचना के अनुसार प्रतिदिन इन्फेन्ट क्लास को दो घण्टे, दूसरी कक्षा को तीन घण्टे और अन्य कक्षाओं को चार घण्टे शिक्षा दी जाती है। सीलोन के बहुत से स्कूलों में छोटे बच्चों की संख्या सम्पूर्ण उच्च कक्षाओं के बालकों की संयुक्त संख्या के लगभग बराबर है और ऐसी दशा में जो अध्यापक वर्ग छोटे बच्चों के शिक्षा-कार्य के लिए नियुक्त किया जाता है, वही छोटे बच्चों को छुट्टी मिलने बाद तीन घण्टे के लिए उच्च कक्षाओं को शिक्षा देने के लिए उपलब्ध हो जाता है। सीलोन में द्व्यर्ध-सामयिक स्कूलों के लिए कोई विशेष पाठ्य कोर्स नियत नहीं है, कोर्स एक वर्ष में पूरा किये जाने के लिए न्यूनतम पाठन-कार्य अङ्कित रहता है इस कारण उन कक्षाओं में भी, जो प्रतिदिन स्कूल में २, ३ या ४ घण्टे के लिए होते हैं नियत कोर्स को पूरा करने में कठिनाई का सामना नहीं पड़ता। यद्यपि प्रारम्भ में यह प्रणाली स्कूल-इमारतों की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए स्थान-व्यवस्था की दृष्टि से सर्व-प्रथम कोलम्बो में व्यवहृत की गई थी, परन्तु बाद को ज्यों ज्यों अधिक व्यय और अधिक पाठ्य स्थान की आवश्यकता और बहुत से स्थानों में तीव्र होती गई, अध्यापक संख्या में वृद्धि न कर और कैरीक्युलम को सरल बना कर यह सर्वत्र प्रचलित करदी गई। अब तो यह प्रणाली उस द्वीप में सुपरीक्षित सिद्ध हो चुकी है और वहाँ की शिक्षा व्यवस्था का एक सुस्थिर अङ्ग बन गई है। समय-व्यवस्था के सम्बन्ध में यह सम्भव नहीं जान पड़ा कि समस्त द्वीप के लिए एक ही स्कीम बनाई जाय अतएव यह डिवीजनल-इन्सपेक्टरों पर ही छोड़ दिया गया कि वे स्थानीय सुविधाओं के अनुकूल व्यवस्था कर दें।

हमारे देश में भी यह प्रणाली एकदम अपूर्व, अननुभूत अथवा अपरीक्षित नहीं है। बम्बई प्रेसीडेन्सी के कुछ भागों में, जिनके अन्तर्गत बम्बई नगर भी है, बड़ी सफलता के साथ इसका व्यवहार हितकर परिणाम साधन करता हुआ हो रहा है और यह आशा की जाती है कि बहुत शीघ्र ही कलकत्ता कारपोरेशन भी इसका प्रयोग करेगा तथा बंगाल-सरकार ने भी बड़े ज़ोरदार शब्दों में इसका समर्थन किया है।

सन् १९२५ में कलकत्ता कारपोरेशन ने शिफ्ट प्रणाली अपने स्कूलों में व्यवहृत की थी। दुर्भाग्यवश विद्यार्थियों के अभिभावकों और संरक्षकों ने उस समय उसके लाभों को नहीं पहचाना और इसका परित्याग कर दिया गया। इस प्रकार केवल आठ मास तक इस प्रणाली का प्रयोग रहा, परन्तु शिक्षा के दृष्टिकोण से निस्सन्देह यह बहुत हितकर सिद्ध हुई। तभी से सामान्य जनता की इन मामलों में सुस्थिर शिक्षा से बहुत सी कठिनाई दूर हो गई है। अब फिर हाल ही में कलकत्ता कारपोरेशन के तत्कालीन एज्यूकेशन आफ़िसर श्रीयुत् के० पी० चट्टोपाध्याय ने एक स्कीम पेश की थी, जिसमें उन्होंने शिफ्ट-प्रणाली के प्रयोग पर यह ज़ोर दिया था कि वह नगर में सार्वजनिक शिक्षा-वृद्धि के लिए विकल्प-रूप से व्यवहृत की जानी चाहिये। आशा है कि यह स्कीम बहुत शीघ्र वहाँ प्रचलित हो जायगी।

यही नहीं, लगभग दो वर्ष हुआ, बङ्गाल सरकार ने भी स्कूल शिक्षा के पुन सङ्गठन के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया था और बाद में एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी। इसमें सरकार ने असंदिग्ध और स्पष्ट शब्दों में प्राथमिक शिक्षा की प्रथम दो कक्षाओं में शिफ्ट प्रणाली के प्रयोग पर ज़ोर दिया था।

बम्बई नगर में यह स्कीम अधिक सफल हुई है और आश्चर्यजनक सफलता के साथ काम कर रही है। इस प्रेसीडेन्सी में इसका प्रचार बहुत से स्थानों में है, जिनमें प्रमुख बम्बई नगर और उसके निकट कस्बा थाना है। किन्हीं देहाती हल्कों में भी यह प्रचलित है, उदाहरणार्थ

कोलाबा के जिले में और बम्बई नगर के उपग्रामों में। यहाँ भी हमारे प्रान्त के समान प्राथमिक शिक्षा पाँच वर्ष में पूरी होती है और इसी प्रकार पाँच कक्षाओं के नाम हैं। आजकल शिफ्ट प्रणाली इनफैन्ट कक्षा और प्रथम कक्षा में व्यवहृत है और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि क्रमशः एक या दो ऊँची कक्षाओं में भी इसका प्रयोग बढ़ा दिया जाय।

बम्बई नगर में सन् १९३२ में अनिवार्य शिक्षा प्रचलित होने पर वहाँ के सुविख्यात एज्यूकेशन आफिसर श्री० आर०बी० पैरुलेकर के सुयोग्य सञ्चालन में कारपोरेशन के स्कूलों में बड़े पैमाने पर इस प्रणाली का प्रयोग आरम्भ हुआ। यहाँ सर्वप्रथम इन्फैन्ट कक्षा में इसका प्रयोग हुआ और इससे जो बचत हुई वह बहुत काफी थी। बम्बई में म्युनिसिपल स्कूलों में इन्फैन्ट कक्षा में उस समय २४,००० विद्यार्थी थे और ३० छात्र पीछे एक अध्यापक के हिसाब से उन विद्यार्थियों के लिए ८०० शिक्षकों की आवश्यकता होती थी। इस प्रणाली के व्यवहृत होने से एक अध्यापक एक दिन में दो अलग-अलग समय में सुबह ११ बजे से १–३० बजे तक और शाम को २—३० से ५ बजे तक छोटे विद्यार्थियों के दो दलों को, जिनमें हर एक में ३० विद्यार्थी होते थे, पढ़ाने लगा और इसलिए उनके शिक्षण के लिए ८०० के स्थान पर ४०० अध्यापक काफी हो गये, अर्थात् लगभग १२००० विद्यार्थी उन पर होने वाले व्यय के बिना ही शिक्षा प्राप्त करने लगे। बम्बई नगर में प्रति छात्र शिक्षा-व्यय अभाग्यवश बहुत अधिक है और लगभग ४०) रुपये पड़ता है और यदि शिफ्ट प्रणाली द्वारा हुई बचत का हिसाब लगाया जावे तो मालूम होगा कि यह बचत लगभग १२०००×४० =४८००००) अर्थात् लगभग पाँच लाख हुई। इस प्रणाली ने उनकी आर्थिक समस्या को सुलझाने में बड़ी सहायता पहुँचाई है और प्राथमिक स्कूलों में प्रतिवर्ष लगभग ४-५ हजार छात्रों को पढ़ा कर वे अपना कार्य सुचारु रूप से चला रहे हैं। यहाँ पर यह बता देना अप्रासङ्गिक न होगा कि बम्बई नगर में जनता ने और कुछ सीमा तक अध्यापकों ने आरम्भ में इस प्रणाली का काफी विरोध किया था, परन्तु अधिक व्यय करने में असमर्थता तथा प्राथमिक शिक्षा-वृद्धि में बाधा न डालने की परम लालसा ने इस प्रणाली को जारी रखने के लिए स्कूल कमेटी को प्रोत्साहित किया और कहते हैं कि अब विरोध दब गया है और यह भी पता चलता है कि शिक्षा की दृष्टि से प्रचलित करने से पूर्व के प्राप्त हुए परीक्षा-फल से अब के नतीजे कुछ कम अच्छे नहीं हैं।

बम्बई के शिक्षा-विशेषज्ञ इस प्रणाली के केवल दो चार स्थानों में ही प्रचलन करने से सन्तुष्ट नहीं हैं, परन्तु वे इसको सर्वत्र विस्तृत एवं प्रचलित करने के लिए निरन्तर कठिन परिश्रम और अबाध चेष्टा कर रहे हैं। वे इसके विस्तार के लिए जनता में, प्लेटफ़ार्म पर, प्रेस में, सभा और कान्फरेंसों में उत्तेजना फैला रहे हैं। बम्बई प्रेसीडेन्सी में मराठा जिलों के स्कूल-बोर्डों के शासन-प्रबन्ध-कर्ता अफसरों और निरीक्षकों की कान्फरेंस में, जो जून सन् १९३४ को बम्बई में हुई थी, सर्व-सम्मति से अनेक प्रस्ताव पास किए गये जिनमें शिक्षा-विभाग और सरकार से प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की दृष्टि से शिफ्ट प्रणाली को प्रचलित करने और वर्तमान कैरीक्युलम को सशोधित और सरल बनाने के लिए प्रार्थना की गई थी।

हमारे प्रान्त में भी शिक्षा-कमेटियों के चेयरमैन की कॉन्फरेंस में जो ११ और १२ जनवरी सन् १९३५ को लखनऊ में काउन्सिल-भवन में हुई थी "दोहरी स्कूल प्रणाली को प्रयुक्त किया जाय" इस विषय पर विचार हुआ था (देखो रिपोर्ट पृष्ठ २०)। हमारे वर्तमान कॉङ्गरेसी शिक्षा-सचिव पं० प्यारेलाल शर्मा ने भी प्राथमिक शिक्षा के पुनःसङ्गठन के विषय में डबल शिफ्ट प्रणाली के प्रयोग का सङ्केत किया है।

हमें अब यह देखना है कि हम किस सीमा तक इस प्रणाली को अपने प्रान्त में व्यवहृत कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह निवेदन किया जाता है कि प्राथमिक शिक्षा की सभी कक्षाओं में इसका समुचित लाभकर प्रयोग हो सकता है। इसे शीघ्र ही इन्फेन्ट कक्षा में और दो या अधिक से अधिक तीन वर्ष की परीक्षा के उपरान्त प्रथम और द्वितीय कक्षाओं में या उनके समान कक्षाओं में, जिस किसी भी नाम से वे पुकारे जावें और उससे

इतने ही समय बाद शेष कक्षाओं में प्रचलित कर देना चाहिये। समय-व्यवस्था को स्थानीय अधिकारी वर्ग और सर्किल इन्सपेक्टरों पर छोड़ देना चाहिये, जिससे वे स्थानीय स्थिति, वातावरण और विचार-दृष्टि के अनुसार एक ऋतु से दूसरी ऋतु तक आधे घण्टे से लेकर एक घण्टे का अन्तर रखते हुए समय नियत कर लेवें। समय-व्यवस्था इस प्रकार हो सकती है कि ग्रीष्मऋतु में प्रात ६-३० से ६ बजे तक और दोपहर ३ से ५-३० बजे तक तथा जाड़ों में प्रात ७-३० से १० बजे तक और दोपहर २ से ४-३० बजे तक। इन्फैन्ट व दर्जा २ तक के लिए २-३० घण्टे और कक्षा ३ व ४ के लिए ३ घण्टे और कोर्स पाँच वर्ष के बजाय चार वर्ष का हो जाने पर प्रथम और द्वितीय कक्षा के लिए २-३० घण्टे और तृतीय और चतुर्थ कक्षा के लिए ३ घण्टे की शिक्षा इस प्रणाली का प्रयोग करने वाले देशों और स्थानों के अनुभव के अनुसार ही पर्याप्त नहीं है, परन्च लेखक के व्यक्तिगत अनुभव और विचार से भी कोर्स सक्षिप्त और संशोधित हो जाने पर, जिस पर किसी आगामी लेख में यथावकाश प्रकाश डाला जावेगा, पूर्णरूपेण उपयुक्त है। हमारा विश्वास है कि इस प्रणाली को स्वीकृत और प्रचलित करने में और समय-व्यवस्था में परिवर्तन करने में किसी प्रकार भी शिक्षा-विभाग को क़ानूनी बाधा या आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि यहाँ के शिक्षा एक्ट और उसके अन्तर्गत कायदे केवल पाठ्य कोर्स को नियत करते हैं, समय-व्यवस्था को नहीं। एक अध्यापक को शिक्षणार्थ दो कक्षा मिलनी चाहिये, एक मध्याह्न से पूर्व और दूसरी उसके उपरान्त और दोनों का समय मिलाकर ५-३० घण्टे होना चाहिये। यद्यपि अध्यापकों को, जिनकी सङ्कटमय अवस्था और आर्थिक कठिनाइयाँ सर्व विदित हैं, वर्तमान समय से कुछ अधिक कार्य करना पड़ेगा, परन्तु उनकी सर्विस की स्थिति सुव्यवस्थित एवं सुस्थिर की जाने पर उन्हें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उनके ध्येय की सफलता केवल थोड़ा सा अधिक धन प्राप्त करने में ही नहीं है, वरन् सहस्रों शिक्षित एव सुयोग्य बच्चों की कृतज्ञता-प्राप्ति में तथा उस शिक्षा हित के साधन, वृद्धि और पूर्ति में है, जो उनके हृदय-मन्दिर में सर्वोपरि अधिष्ठित है। साथ ही नौकर-पेशा और दफ़्तरों में काम करने वाले लोगों के काम करने का समय भी साधारणतया इतना ही होता है। यदि अध्यापकों को कुछ अधिक समय काम करना पड़े तो उन्हें उस अधिक कार्य का कुछ एलाउन्स दिया जा सकता है, जो बचत की अपेक्षा नगण्य होगा।

इस स्कीम का प्रयोग नागरिक और ग्रामीण भागों में, जहाँ घनी अथवा छीदी आबादी है, बहुत अच्छे प्रकार से हो सकता है। यह प्रणाली वर्तमान अध्यापकवर्ग, स्थान और साधनों के द्वारा लगभग दुगने छात्रों को ही शिक्षा देने में समर्थ नहीं होगी, परन्तु साथ ही छात्र, अध्यापक और सरक्षकों की स्वस्थता और सौख्य का साधन बनेगी तथा इसके द्वारा अधिकारी वर्ग की आर्थिक, शासनात्मक और प्रबन्धात्मक बहुत सी कठिनाइयाँ कम हो जावेंगी। इससे बहुत से रुपये की, जो प्रतिवर्ष स्कूल बिल्डिङ्गों में व्यय किया जाता है, बचत हो जावेगी। इस प्रणाली के व्यवहार से अध्यापन कार्य के लिए किराये पर लिए हुए बहुत से मकानों की आवश्यकता न रहेगी, जो घनी बस्ती में होते हैं, जिनमें प्रकाश और वायु के लिए पर्याप्त खिड़कियाँ और झरोखे नहीं होते और जो गन्दे और अस्वस्थ वातावरण के कारण शिक्षा कार्य के लिये सर्वथा अनुपयुक्त हैं। हमारे प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा समय प्राय गर्मियों में प्रात· ६—३० से ११ बजे तक और जाड़ों में दोपहर १०—३० से ३ बजे तक है। इतने लम्बे समय तक शिक्षा देना आवश्यक या बुद्धिमत्ता नहीं है। बच्चों से अधिक पठन-कार्य लेना मस्तिष्क और शरीर दोनों के लिए हानिकारक है। एक साथ ही इतना अधिक लम्बा-शिक्षा समय होने पर यह आवश्यक है कि बच्चे स्कूल में कुछ न कुछ खाना खावें। इसके अतिरिक्त जाड़ों के दिनों में मामूली मध्यम श्रेणी के कुटुम्बों में दोपहर का भोजन स्कूल-समय से पूर्व बहुत कम तैय्यार हो पाता है और बेचारे निर्बोध बालकों को बासी खाना खाकर या बग़ैर खाए स्कूल जाना पड़ता है। जो खाना बच्चे स्कूल में खाते हैं, वह प्राय गन्दा खोमचा,

चाट या मिठाइयाँ होती हैं, जिनमें अधिकांश खोया या मावा होता है। यह कहाँ तक बालकों के कोमल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, इसकी विवेचना की आवश्यकता नहीं है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम तो निर्दोष और निर्बोध बालकों की अस्वस्थता ही है, जो शिक्षा के नाम पर अपना बहुमूल्य स्वास्थ्य खो बैठते हैं। इस प्रणाली के प्रयोग से छात्रों और शिक्षकों की यह कठिनाई दूर हो जावेगी। विभक्त कालिक शिक्षा के द्वारा छात्रों के पिता या संरक्षकों को चाहे वे किसी भी वर्ग, वर्ण या वृत्ति के हों अपने बालकों को अपनी सुविधा के समय में स्कूल भेजने का अवसर प्राप्त हो जायगा। इसमें केवल छात्र को ही नहीं, वरन् उसके अभिभावक को भी उपयुक्त समय चुनने की सुविधा होगी। इससे विद्यार्थियों को उनकी सुविधा, चुनाव और मनोवृत्ति के अनुसार विभाजित करने का सुयोग प्राप्त हो जावेगा। इस स्कीम के अन्तर्गत सम, विषम और मध्यम बुद्धि और क्षमता के छात्रों के पृथक-पृथक रूप बनाये जा सकते हैं। अतएव इस स्कीम के द्वारा शिक्षा-ज्योति से सुदूर के अन्धकारमय दो-चार ही झोपड़े वाले ग्राम भी भली प्रकार आलोकित हो सकते हैं। दो या तीन ऐसे ही ग्राम जिनमें कम विद्यार्थी हों, एक साथ मिलाए जा सकते हैं और एक ही अध्यापक के अधिकार में छोड़े जा सकते हैं, जो प्रत्येक ग्राम में प्रति सप्ताह दो या तीन दिन जाकर पढ़ावे। अत इस प्रकार म्युनिस्पिल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा अन्य स्थानीय शासन-संस्थाएँ इस स्कीम के प्रयोग से यथोचित लाभ उठा सकती हैं।

❀ ❀ ❀

बेबसी

[श्रीमती सुमित्रा-कुमारी सिन्हा]

एक अति लघु कण मनुज जग-सिन्धु-पारावार का रे!
कौन दे पाया पता है, उर-रहस्यागार का रे!

आह! पल भर को कभी उल्लास जो उमड़े हृदय का,
थाम लेना है उसे भी मूल्य इतना ही हृदय का!

जल रही हो आग उर मे राग की पर आह मत कर!
साधना वैराग्य की ले, 'हाय' की परवाह मत कर!

मुसकिराते डोलता रह दाग दिल मे रह छिपाये!
तोड़ मत दे बाँध को, उर उमड़ कर बह क्यो न जाये!

रुँधे कण्ठो से मधुर स्वर भर पुलक के गीत गा तू!
घन उदासी व्याप्त उर से विश्व में मधु ऋतु मना तू!

आज रीते हृदय-पट पर चित्र भी कोई न आता;
देख दुखिया, कर अदेखी, जा रहे सब तोड़ नाता!

यह नियम है, प्यास को पी-पी बुझाना चिर-पिपासा;
घाव की पीड़ा जगाने मत खड़ी कर मृदुल आशा!

कौन समझेगा किसे दिखला रहा तू विरस मेला!
प्राण रोने को मिले, पर्याप्त! है तो कब अकेला!

आज रह-रह कर कभी सूने क्षितिज को देखती हूँ,
झिलमिलाती तारिकाओ मे विगत युग लेखती हूँ!

आत्मा

[श्रीमती शिवरानी देवी]

आज लाला तुलसीराम जी को रायसाहब की उपाधि मिली है। उसकी खुशी में गवर्नर साहब तथा अन्य मित्रों को प्रीति-भोज भी दिया है। उसी में सबको बुलाया था। रात को जब सब लोग विदा हो गये तो लाला जी ने सब चाँदी के बर्तन साफ करवा करके अपने सोने वाले कमरे में रख दिये। बर्तन आज ही नहीं रखाये, बल्कि लाला जी का नित्य का यह नियम है।

इनके घर में बहुत से आदमी थे। रात में सब लोग सो गये, पर लाला जी अभी जग रहे थे। लाला जी कवि थे। इन्हें सब कामों से फुरसत मिलने पर कविता करने का शौक था, इसी से आज भी कविता की कड़ियाँ सुलझा रहे थे। इतने ही में देखते क्या हैं कि एक चोर पास के कमरे में आ गया, जहाँ कि सब सामान रक्खा था। लाला जी कहाँ तो कविता की कड़ियाँ सुलझाने में लगे थे, अब यहाँ चोर की कड़ियाँ सुलझाने लगे। अपने मन ही मन में सोचते थे कि आदमी क्या है और गरीबी क्या बला है। देखो, थोड़े से रुपयों के लिए अपनी सबसे मूल्यवान् आत्मा को खो रहा है। हाय गरीबी! तूने सबको चौपट कर दिया है। यह विचारा क्या है, आया है चोरी करने। मैं इसको पकड़वा भी सकता हूँ और इसकी जान भी ले सकता हूँ।

फिर अपनेआप कहने लगे—नहीं, मैं कुछ नहीं करूँगा। सबसे बड़े चोर तो हमी हैं, जो दुनिया भर की दौलत घर में रख ताला लगाकर बैठे हैं और सोचते है कि हमारे बराबर कोई नहीं है। क्या इसमें आत्मा की कम हत्या होती है? यह सब तो कहने की बातें हैं। इसीलिए जो बड़े-बड़े महात्मा होते हैं वे अपने पास पैसा कभी भूल करके भी नहीं रखते। वही सब तो महात्मा हैं। हम सभी रुपया रखने वाले चोर हैं। क्योंकि जब दुनिया में पैदा हुए तो सबको समान अधिकार है। अगर एक आदमी सबकी दौलत समेट कर अपने घर में रख लेता है और सब भूखों मरते हैं या चोरी करते हैं तो क्या वे चोर हैं, और हम सब साह हैं? यह मैं मानने को तैयार नहीं हूँ। लालाजी हाथ में तिजोरी की चाभी लेकर उसी कमरे में गये जहाँ चोर गया था।

चोर बड़े-बड़े मनसूबे बाँध रहा था। सोचता था कि अब बहुत दिनों के लिए छुट्टी पा जाऊँगा। फिर सोचता यदि कहीं पकड़ गया तो चक्की ही पीसनी पड़ेगी। पहले की चक्की में तो बहुतों की मुझसे हमदर्दी थी, लेकिन अब की तो मुझे सभी नीची निगाह से देखेंगे। फिर सोचता—देखो, यह सब दुनिया की चालें है। जब बड़े लोग बहुत सा रुपया घर में रखे हैं, तब बड़ी-बड़ी बातें सूझती है, मेरी तरह भूखों मरते होते तब मालूम होता कि दुनिया की धर्म-चर्चा कैसी होती है। मैं इसे मानने को तैयार नहीं हूँ। फिर ललचाई हुई आँखों से सामान को देखता है। जब कोई खटका होता तो सिहर उठता, हाथ-पाँव काँपने लगते, किन्तु साहस बटोर कर सामान इकट्ठा करने लगता।

लाला जी सामने जाकर बोले—भाई, इन सब सामानों को लेकर क्या करोगे? लो, मैं अपनी तिजोरी की चाभी देता हूँ, जितना रुपया चाहो ले लो।

चोर के मुँह से आवाज़ नहीं निकलती थी, वह थरथर काँपता था। लाला जी ने उसको साहस दिया—भाई, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। इसका दोष हम लोगों को है। सारी दुनिया भर की दौलत हम लोग

अपनी समझते हैं। जो लोग भूखों मरेंगे, वे चोरी नहीं करेंगे तो और क्या करेंगे? मैं तुमसे सच कहता हूँ, मेरी बातों का विश्वास मानो। मैं दिल से कहता हूँ, ईश्वर की शपथ खाकर कहता हूँ—मैं तुम्हें कुछ नहीं करूँगा और यह भी कहता हूँ कि अब तुम चोरी कभी न करना। जब रुपयों की जरूरत पड़े तब मुझसे माँग ले जाओ। जैसे मेरे और बच्चे हैं उसी तरह तुमको भी आज से समझूँगा। सच पूछा जाय तो दुनिया में जो-जो पाप होते हैं, सब के भागी हमी मोटे आदमी हैं और सबकी आत्मा की हत्या का पाप हमीं लोगों को होगा।

चोर को साहस मिला। विश्वास अपनाया, आत्मा जगी, लाला जी के चरणों में गिर पड़ा और बोला—आप मेरे ईश्वर हैं, भगवान् हैं। मेरे पास क्या है, जो आपकी सेवा में भेंट दूँ। मेरे पास तो मेरी जान है, उसी को समर्पित करता हूँ और केवल एक वरदान माँगता हूँ यदि आप मेरे ईश्वर इस पापी को दें। बस एक यही अपने चरणों की सेवा, और कुछ नहीं। जल्दी करो, वर्ना इस पापी के पाप का घड़ा भर गया है, फूट जायगा। इसलिए जल्दी से जल्दी अपना लो।

लाला जी ने झुक कर चोर को उठा कर उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। चोर रोते-रोते बेहोश हो गया। जब उसकी बेहोशी दूर हुई, तो अपने को रायसाहब की गोद में पाया और रोकर बोला—मेरे ईश्वर, मैं बड़ा ही पापी हूँ। यदि आप मेरे पाप की कहानी सुन लेवें तो मेरे पाप कुछ अवश्य ही कम हो जायँगे। क्योंकि मैं बचपन से सुनता हूँ कि जो आदमी ईश्वर के सामने अपने पाप को कबूल कर लेता है, तो उसके पापों में कुछ अवश्य ही कमी हो जाती है।

रायसाहब की आँखों में आँसू भर आये, वह बोले—भाई मैं ईश्वर नहीं हूँ, मैं भी तुम्हारे जैसा आदमी हूँ।

चोर—नहीं, आप देवता हैं, आपने मुझे आदमी बनाया है, मैं तो अभी तक पशु था और मुझे आप ऐसा कोई आदमी नहीं मिला, तब मैं कैसे समझूँ कि आप आदमी हैं; और आप आदमी हैं भी तो देवता के रूप में। आदमी के रूप में मेरी रामकहानी सुनिए।

राय साहब बोले—तुम नहीं मानते हो तो कहो, मैं सुनने के लिए तैयार हूँ। मैं तो कहता हूँ कि अब तो तुम्हें मेरे साथ रहना ही है तो कभी भी कह सकते थे। क्या कहना अभी आवश्यक है?

चोर—मुझे अपने पापों का स्मरण आते ही हृदय फटा जाता है। जब से होश हुआ, मैंने आप जैसा देवता कभी नहीं देखा।

रायसाहब बोले—कहो भाई, मैं सुनने को तैयार हूँ।

चोर इधर-उधर देखकर बोला—मेरी रामकहानी बड़ी ही लम्बी है।

रायसाहब—मैं बड़े ही शौक से सुनने को तैयार हूँ, तुम कहो न?

चोर—अच्छा सुनिए, मैं पहले लावारिस था, मेरे माँ बाप बचपन में मर गये। मैं जाति का चमार था, गाँव में चोरी करता था, टुकड़ा माँग कर खाता था, साथ-साथ मार भी पड़ती थी। कुछ समय के बाद एक साहब मेरे गाँव में गये, वे मिशन के पादरी थे, उनको मेरे ऊपर दया आई, अपने साथ ले गये, और दो-तीन साल अपने पास रखकर अंग्रेजी पढ़ा दिया। मेरा क़द लम्बा था ही, साथ-साथ तगड़ा भी था, वहीं पर जहाज़ में पादरी साहब की कोशिश से जगह मिल गई। आदमी भी कुछ बन गया। इसी प्रकार तीन साल तक कार्य किया, हाँ, एक बुरी लत को न छोड़ सका। वह थी शराब। जो कि मेरे गुरु जी की चीज़ थी। जैसे-जैसे गुरु जी के गुणों को अपनाता था, ठीक उसी तरह शराब को भी अपनाता गया। ख़ैर साहब, जब तक मैं नौकर था, कोई बात नहीं। एक बार बीमार पड़ा तो दो महीने की छुट्टी लिया। तबियत ठीक होने पर इच्छा हुई कि जिस गाँव में १२ साल व्यतीत हुए उस गाँव के दर्शन तो कर लें। उस वक़्त मैं बम्बई में था, मुझे जाना था पटना के एक गाँव में। मैं जब चला तो बहुत ख़ुश था कि अपने घर चल रहा हूँ। उसी तरह ख़ुश था जैसे

घर के सब आदमी, माँ, बहन, भाई बन्धु सब मेरे देखने को उत्सुक हों । था मेरे कोई नहीं, परन्तु खुशी अपार थीं । जब पहुँचा तो वहाँ अपना कोई नहीं दिखाई पड़ा । गाँव के लोगों को अपना पता बतलाया, अपनी हिस्ट्री बतलाई, तो मेरे घर के पास एक चमार का घर और था, उसका लड़का और वह मर गया था, मगर उसकी बुढिया औरत ज़िन्दा थी । मालूम होने पर वह दौड़ी हुई आई और मुझे छाती से लगा कर रो पड़ी । साथ साथ मैं भी रो पड़ा । इसके बाद अपनी झोपड़ी में ले गई । मै कुल दस दिन रहने पाया था कि एकाएक क्या देखता हूँ कि उसी बुढ़िया को ज़मींदार का प्यादा मार रहा है, गाली बक रहा है और वह रोती है और करुणा भरी आवाज़ में कहती है कि भैया बेटा मर गया, आदमी भी मर गया, जो कुछ खेती में हुआ था, इन दोनों की बीमारी में खर्च हो गया, ज़िन्दा रहूँगी तो अगले साल जो कुछ भी होगा, सब तुम्हें दे दूँगी, और मज़दूरी करके भर दूँगी । अभी दया करो । इसी पर उस प्यादे ने उसको ऐसी ठोकर दी कि बेचारी तिलमिला कर गिर पड़ी । मैंने जो यह हाल देखा, तो अपने को क़ाबू में न रख सका । मैं क्रोध में आपे से बाहर हो गया । मैंने उसको ऐसा थप्पड़ दिया कि मुँह के बल उसी जगह एक पत्थर पर धड़ाम से गिर पड़ा तथा चार-पाँच दाँत भी टूट गये । छाती में काफी चोट लगी । एक तरह से अधमरा-सा हो गया । शोर मच गया । पुलिस विभाग का सब इन्सपेक्टर पुलिस के साथ आ पहुँचा । उसे उठाकर अस्पताल ले गया और मुझे भी गिरफ्तार कर जेल दे दिया गया । जेल के अन्दर जब मेरे ऊपर केस चल रहा था तभी वह ज़मीन्दार का प्यादा परलोक सिधारा । अन्त में मुझे फाँसी तो नहीं हुई ; लेकिन चौदह साल के लिए डामुल हो गया । समझा, फाँसी से तो बचा । खैर, किसी प्रकार दो साल बीते । इसी बीच जेलर से झगड़ा हो गया । कारण जेल में मुझे बहुतों से हमदर्दी थी, बहुतों का कार्य स्वयं करता, जो बीमार होते, बूढ़े तथा ख़ास कर स्त्रियों से मुझे और भी हमदर्दी थी । बेचारा एक बूढ़ा बीमार था, उसका काम खतम नहीं हुआ था, जेलर आया और ठोकर मार कर बोला—साला काम पूरा क्यों नहीं हुआ ?

इसी बात पर मुझे क्रोध आ गया । मैंने सोचा, अब क्या होगा, बहुत होगा फाँसी हो जायगी । अपने जीवन की आशा को छोड़कर जेलर को ख़ूब पीटा । उसके पीटने के कारण दस साल की सज़ा और बढ़ गई । मैंने तो सोच लिया था कि इस पापी का जीवन यहीं पर अन्त हो जायगा , किन्तु ऐसा न हुआ । सज़ा पूरी होने पर छोड़ दिया गया । क्योंकि अभी तो मेरी किस्मत में ~~[illegible]~~ था , फिर भी मै अपनी किस्मत और ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि जो आप से देवता के दर्शन हुए , जो मुझे पशु से आदमी बना दिया, नहीं जो मिला वही मुझे गिराता गया । अब इस पापी को जीवन भर सेवा करने का मौका दीजिए, जिससे कुछ पाप तो कट जाय । रायसाहब की आँखों में आँसू भर आये । बोले—भाई तुम पापी नहीं हो, हम लोग पापी हैं जो हम आदमी को आदमी नहीं समझते । आदमियत से हटाकर पशु बना देते हैं । यह सब धन और पद का मद है । जिसने हम लोगों को पशु बनाया है । ऐसा कहते हुये रायसाहब ने चोर के पेरों में सिर रख दिया । बोले— मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, जब तक ज़िन्दा रहूँगा, तुम्हें अपना सच्चा भाई समझूँगा । आज मुझे मालूम हुआ है कि अपने जीवन में कितने पाप किये, आज समझ रहा हूँ कि अपने लोगों को भी यह समझने का मौका नहीं दिया जाता कि हम कैसे आदमी बने ? कोई ग़रीब को यह नहीं समझता कि यह भी हमारे जैसा आदमी है । उसको पशु से भी नीच समझते हैं । क्योंकि न इनके दिल है न दिमाग है । पाप क्या है, उनका गरीब होना । जो-जो दुनियाँ में पाप होते है, सब बड़े आदमियों के बुरे कर्मो का फल है ।

चोर—नहीं सरकार, हम सब लोगों के कर्मों का फल है । मैं तो कहता हूँ, आप आदमी के रूप में देवता हैं । मेरे बड़े भाग्य थे, जो आपके दर्शन हुये, अब मेरे पाप कट जायँगे ।

सुबह रायसाहब के पास कई आदमी आये, तब रायसाहब ने सब से यही परिचय दिया कि ये हमारे पुराने मित्रों में से एक हैं । नौकरों को हुक्म दिया

कि इन्हें स्नान करा कर नये वस्त्र पहना कर आराम से रक्खो।

२

चोर उस दिन से रायसाहब के साथ रहता था। रायसाहब के इशारे पर काम करता। इसी प्रकार कई साल रायसाहब के साथ रहते हो गये। रायसाहब उसका आदर की दृष्टि से देखते थे। वह रायसाहब को ईश्वर समझता था। इन्हीं दिनों रायसाहब बीमार हो गये। उनके बीमार होने पर रात-दिन इसका खाना और सोना हराम होगया। रात-दिन उन्हीं के पास रहता। उनकी सेवा में अपने को मिटा देना चाहता था।

रायसाहब बोले—भाई, अब तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि अब मै नहीं बचूँगा, क्योंकि शक्तियाँ जवाब देती जा रही हैं।

चोर—नहीं देवता, मैं अपने जीते जी आपको नहीं जाने दूँगा।

राय साहब—मित्र, न इसमें मेरा वश है न तुम्हारा ही। तुमको मैं एक काम सौंपता हूँ, जो तुम मेरे बाद भी करते रहना। वह यह कि अब मेरे यहाँ किसी को सजा न दी जाय।

चोर—मैं ख़ुद जिन्दा नहीं रहना चाहता। आपको छोड़ कर जिन्दा रहूँ, यह नहीं हो सकता। क्योंकि आप मेरे देवता हैं?

रायसाहब रोकर बोले—भाई, बहुत कष्ट है, अब नहीं सहा जाता है, मेरे लड़कों को बुला दो अब मुझे यहाँ से बिदा होना है।

३

चोर डॉक्टर साहब को लेकर लौटा तो देखा कि रायसाहब के चारों लड़के आये हैं। रायसाहब की तकलीफ और भी ज्यादा हो गई है, लड़के सब इधर-उधर टहल रहे हैं।

डॉक्टर बोला—आपके अच्छा होने के लिए एक चीज़ की सख्त आवश्यकता है वह यह कि मनुष्य के बदन का ताज़ा लहू। उसी से बचने की सम्भावना है। आप लोगों की जैसी इच्छा हो, कहिए। यदि मुझे पहिले से मालूम होता तो इन्तज़ाम भी कर लेता, मगर इतनी जल्दी कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि युवक ही ख़ून दे सकता है, बूढ़ों के प्राणों का डर है।

रायसाहब के लड़के बोले—साहब, पुआल को सींच कर तो हरा करना नहीं है, हम लोग क्यों अपना ख़ून देवें। व्यर्थ की सब दवा है, अब तो उनके मरने के दिन ही आ गये हैं।

डॉक्टर—आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए, राय साहब बहुत ही उपकारी आदमी हैं, और इनकी दुनिया में बड़ी ज़रूरत है।

लड़के—दुनिया को ज़रूरत है तो अपना ख़ून देवे, हम लोगों को क्या ज़रूरत है कि अपना ख़ून व्यर्थ में देवें। यह सब कहने की बातें हैं। जब तक आदमी ज़िन्दा रहता है और काम करता है, तब तक सभी को ज़रूरत रहती है, जब वही आदमी ख़त्म हो जाता है और दुनिया से सदा के लिए मिट जाता है तो उसका साथ कोई देने नहीं जाता।

डॉक्टर—भाई, यह समय बात करने का नहीं है। अब थोड़ी देर के और मेहमान हैं। यदि कुछ लाभ हो गया तो हो गया, वर्ना आशा नहीं है।

एक साथ सब लड़के बोल उठे—डॉक्टर साहब, तो दवा करना बेकार है। क्योंकि हम लोग अपना ख़ून देना नहीं चाहते हैं।

उसी समय चोर बाहर से आया और बोला—डॉक्टर साहब, कोई दवा आपने दी? और नाड़ी कैसी है?

डाक्टर बोला—अब कोई दवा कारगर नहीं हो सकती। एक ही दवा है कि कोई आदमी अपना ताज़ा ख़ून दे, उसे कोई युवक ही दे सकता है, उसमें भी ख़ून देने वाले को ख़तरा है, क्योंकि सब ख़ून मशीन के सहारे रायसाहब के बदन में डाल देना है।

चोर रोकर बोला—डाक्टर साहब! आपकी महती कृपा होगी, मैं अपना ख़ून देने को तैयार हूँ।

डॉक्टर—तुम मर जाओगे, क्योंकि जब युवकों



को खतरा है तो तुम तो अवश्य ही मर जाओगे। इस-लिए मैं तुम्हारा खून नहीं दे सकता।

चोर—नहीं, मेरे मरने में और रायसाहब के मरने में बहुत फर्क है। क्योंकि मेरे जैसे अधम दुनिया में बहुत है, लेकिन रायसाहब ऐसे देवता बहुत ही थोड़े हैं। इसलिए मैं उनको ज़िन्दा रखना बहुत जरूरी समझता हूँ। आपकी इस कार्य के लिए महती कृपा होगी। अत: मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ। आप मेरे इस नीच की प्रार्थना सुन लीजिए। इस पुण्य, कार्य में आगा-पीछा न कीजिए। बस, देर करने से क्या फायदा? मेरे ऊपर रायसाहब के बहुत से एहसान हैं। जिसे मैं इस जन्म में क्या, सात जन्म में भी अदा न कर सकूँगा।

डॉक्टर—पहले उनके बच्चे तो अदा कर देवें जिनके साथ साथ रायसाहब ने अपना ख़ून पानी की तरह बहाया है। जब उन्होंने जवाब दे दिया कि हम ख़ून नहीं दे सकते तो तुम्हारे साथ कौन सा एहसान कर दिया है कि जिसके लिए मैं तुम्हारे जैसे साधु का प्राण लेकर रायसाहब को ज़िन्दा कर दूँ। यदि सरकार को मालूम हो जाय तो फाँसी की सज़ा भुगतना पड़े।

चोर फिर भी रोकर बोला—डॉक्टर साहब, रायसाहब को आदमी न समझना चाहिए, बल्कि देवता समझना चाहिए। आज मै आपको अपना सच्चा किस्सा बतला रहा हूँ। इतने पर भी रायसाहब मुझे अपना मित्र कहते थे और तारीफों के पुल बाँधते थे। मैं भला उनका मित्र किस प्रकार हो सकता हूँ। और मित्र बनने योग्य भी तो नहीं हूँ। मैंने अपना सारा किस्सा उनको सुना दिया, मैं चोर, बदमाश, हत्यारा आदि सब कुछ भी हूँ, किन्तु रायसाहब ने मुझे आदमी बना दिया। इसलिए उनको मैं हृदय से अपना ईश्वर मानता हूँ। अब आप से यही निवेदन है, शायद प्राण देकर कुछ बदला लौटा सकूँगा तो आपको भी धन्य मानूँगा।

डॉक्टर को चोर से बड़ी हमदर्दी हो गई, उसके साधुपने से दया टपकने लगी। बोले—अच्छा मित्र, मै तुम्हारे पुण्य कार्य में अपनी जान भी खतरे में डाल कर हाथ बटाऊँगा। मैं शीघ्रता के साथ जाता हूँ और ख़ून देने की मशीन लेकर आता हूँ। तब तक जो कुछ तुमको भी करना हो, कर लो, क्योंकि अब समय बहुत थोड़ा है।

चोर राय साहब का बार-बार मुँह चूम कर पैर पकड़ कर रोता। रायसाहब तो बेहोश पड़े थे। अपनेआप बकता—स्वामी मेरे कसूरों को क्षमा करना, मै तो जन्म का नीच हूँ। आपने मुझे आदमी बना दिया। फिर कहता—मैं अपने को आदमी समझता हूँ, इसके माने यह नहीं हैं कि मैं सचमुच आदमी हो गया हूँ, अपने को क्या मैं पहिले आदमी नहीं समझता था, किन्तु था नहीं आदमी। उसी तरह फिर भी कहता हूँ, इसको भी आप मेरी बेवकूफी समझ करके क्षमा कर दीजिए। स्वामी, आप मेरे ईश्वर हैं। ईश्वर को मैंने नहीं देखा कि वह कैसा है, लेकिन आपको अपनी आँखों देख भी लिया। समझ लिया। इसलिए यह न समझना कि मैं इसमें भी गलती करता हूँ, जो अपने को आदमी समझता हूँ। मैने अपने जीवन में ऐसा कौन सा काम किया है, जो आदमी को करना चाहिए था। मै तो अपने को सब से अधम देख रहा हूँ। चोर अपने विचारों में तल्लीन था, इसी बीच डॉक्टर आकर बोला—अब भाई शीघ्रता से तैयार हो आओ, अब देर न होनी चाहिए।

चोर जैसे अपने विचारों से जागा, बोला—डॉक्टर साहब आप आ गये?

डॉक्टर—हाँ, मै आ गया, अब तुम तैयार हो जाओ।

चोर—मै पहले से तैयार हूँ, सिर्फ एक बार अपनी आँखों से रायसाहब को अच्छा होने पर देखना चाहता हूँ।

डॉक्टर—मैं भाई इसका ज़िम्मा नहीं ले सकता।

चोर—कोई हर्ज नही है, क्योंकि मैं नहीं देखूँगा तो कोई हर्ज नहीं, उनसे बहुतों का जीवन तो सुधरेगा।

मुझे इसकी खुशी में सब कुछ भूल जायगा। अब देरी न कीजिए।

डॉक्टर—मै पहले से सब तैयार करके बैठा हूँ।

चोर आकर बैठ गया, डॉक्टर बोला—भाई, शायद तुम भी जीवित रह जाओगे और रायसाहब भी अच्छे हो जायँगे।

चोर—मुझे इसकी भी इच्छा नहीं है, आप अपना काम शुरू कर दीजिए।

डॉक्टर ने ख़ून देने वाली मशीन रायसाहब के बदन में तथा ख़ून खींचने वाली मशीन चोर के बदन में लगा दी। रायसाहब के बदन में ताजा ख़ून पहुँचने पर इस प्रकार ताज़गी आती थी, जैसे सूखते हुये धान में पानी पड़ रहा हो।

उधर चोर बेचारा निर्जीव होता जाता था, मगर अब भी आँखें रायसाहब के देखने में लगी थीं कि देख लूँ अब रायसाहब अच्छे हो रहे है कि नहीं। ईश्वर से यही कामना करता था कि राय-साहब को जीवित कर दें। स्वामी वही मुझे आदमी बनाने वाले हैं और मुझी को क्यों, अपने जीवन में बहुतों को आदमी बनाया और बहुतों को बनाएँगे।

डॉक्टर देखता था और कोशिश करता था कि कैसा अच्छा हो कि मैं इन दोनों को जीवित रख सकूँ। मगर ऐसा नहीं कर पाया। दोनों की नाड़ी देखता था।

रायसाहब की आँखें खुलीं और बोले—मित्र पानी दो, बड़ी प्यास लगी है। डॉक्टर ने थोड़ा सा पानी देकर चुप रहने को इशारा किया। उधर चोर को देखा कि निर्जीव हो गया, मरते समय उसके मुँह से एक प्रभा सी झलक उठी, और बहुत ही धीमे स्वर में बोला—मेरे देवता जीवित हैं।

डॉक्टर बोला—हाँ जीवित हैं, और जिन्दा रहेंगे।

चोर बोला—एक बार दर्शन करा दो।

उसी समय रायसाहब को होश आया। कई महीनों के बीमार रायसाहब को न मालूम उनके बदन में कहाँ से इतनी शक्ति आ गई कि उठकर अपने जीवनदाता के पैरों में गिरकर रो पड़े। हाय! मेरे गुरु, जीवनदाता, तुम तो अपना जीवन सफल करके जाते हो, असल में तुम्हारा ही तो सफल जीवन है और इसी का नाम जीवन है।

चोर के इतना सुनने के बाद उसके मुँह पर एक प्रकार की आभा-सी आ गई, और मरते समय मुस्करा दिया। एक स्वर से पास के सभी लोग बोले उठे—इसी का नाम सफल जीवन है। रायसाहब तथा साथ के सभी लोग रो पड़े।

ज्योति-सङ्घ

[श्री० रामस्वरूप व्यास]

जब मानव-जीवन में किसी नई विचार-धारा का जन्म होता है, तो उसे कार्य रूप में परिणत करने के साधन भी मनुष्य ढूँढ़ लेता है। राष्ट्रीय जागृति के इस युग में जहाँ हमने अपनी शिक्षा, आर्थिक परिस्थितियों तथा राजनैतिक परतन्त्रता पर ध्यान दिया वहाँ स्त्रियों का जीवन भी इस हलचल से अछूता नहीं बचा। यदि सच कहा जाय तो वास्तव में जितना उत्साह और उत्तेजन इस नवयुग में स्त्रियों को मिला वैसा शायद ही कभी मिला हो। सदियों से सोयी हुई और सामाजिक अन्याय सहती हुई स्त्रियों ने भी जब स्वतन्त्रता और समानता की आवाज़ सुनी, तो वह भी जाग गयीं और ऐसी जागीं कि उन्होंने अपनी कार्यक्षमता से सबको चकित कर दिया।

अहमदाबाद जहाँ अनेक राष्ट्रीय संस्थाओं का घर है, वहाँ वह स्त्रियों की एक अनोखी राष्ट्रीय संस्था का भी घर है। यह है 'ज्योति सङ्घ'। इसका ध्येय स्त्रियों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ-साथ उनमें निर्भयता, स्वावलंबन, आत्म-विश्वास, बन्धुत्व तथा राष्ट्रीयता के भाव पैदा करके, और उनमें से कौमी भेद भाव को दूर करके उन्हें योग्य नागरिक बनाने का है। आदर्श तो अनेक संस्थाओं के ऊँचे होते हैं, परन्तु कार्य की दृष्टि से भी यह संस्था कसौटी पर पूरी उतरती है।

'सङ्घ' का कार्य-क्षेत्र तीन विभागों में विभक्त है। शिक्षण, उद्योग तथा स्त्रियों की सहायता। शिक्षण-विभाग कई छोटे छोटे विभागों में विभक्त है। इनमें एक तो विद्यार्थिनी विभाग है, दूसरा प्रौढ़ शिक्षण-विभाग तथा तीसरा विशिष्ट व कार्यकर्ता तालीम विभाग है। विद्यार्थिनी विभाग मुख्यतः उन विद्यार्थिनियों के लिए है जो स्कूलों में पढ़ती हैं, परन्तु अपनी शिक्षा की किसी कमी को पूरा करना चाहती हैं। यह वर्ग शनिवार, रविवार, तथा गर्मियों की छुट्टियों में चलते हैं और अनेक लड़कियाँ इनसे लाभ उठाती हैं। इस विभाग की उपादेयता निम्न अङ्कों से भली प्रकार मालूम हो सकेगी। १९३४-३५ में इस विभाग में केवल ४० विद्यार्थिनियाँ थीं, परन्तु १९३६-३७ में इस विभाग में २४४ विद्यार्थिनियाँ हो गईं। साधारण स्कूली शिक्षा में जिन-जिन विषयों का अभाव रहता है, उन विषयों को यहाँ पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है। इस शिक्षा का एक विशेष उद्देश यह भी है कि लड़कियाँ स्वावलम्बी बन सकें और यदि कभी उनकी निराधार स्थिति हो, तो घबड़ाएँ नहीं। इसी दृष्टि से विद्यार्थिनियों को किसी एक उद्योग अथवा हुनर में प्रवीण होने के लिये उत्साहित किया जाता है। साथ ही उन्हें अच्छा नागरिक बनने की शिक्षा भी दी जाती है। यह सब शिक्षा स्कूल की शिक्षा के अतिरिक्त होती है।

दूसरे विभाग में सामान्य-वर्ग की शिक्षा का क्रम बनाया गया है। यह शिक्षा प्रौढ़-शिक्षा के सिद्धान्तों पर रची गई है। यह वर्ग उनके लिए है, जिन्हें या तो किसी कारण स्कूल की शिक्षा छोड़नी पड़ी हो, और या उन स्त्रियों के लिए जो अब तक कुछ पढ़ न पाई हों। काफी संख्या में इन वर्गों से स्त्रियों ने लाभ उठाया है, और १९३६-३७ में ऐसी स्त्रियों की संख्या ६०६ थी। इन वर्गों में एक कोई भी उद्योग तथा गुजराती व गणित सीखना आवश्यक है तथा हिन्दी व अङ्गरेजी सीखना

विद्यार्थिनियों पर छोड़ दिया जाता है। अङ्गरेजी के वर्गों में १९३६-३७ में ९५ तथा हिन्दी के वर्गों में ३० स्त्रियाँ थीं। आरम्भ से तो हिन्दी की शिक्षा का कुछ अच्छा प्रबन्ध न था, परन्तु हरिपुरा महासभा के अनुभव के बाद सङ्घ द्वारा हिन्दी सिखाने के लिये अच्छा प्रबन्ध किया जाने वाला है तथा हिन्दी के लिये विशेष वर्गों की योजना की जा रही है। इन विषयों के अलावा सङ्गीत व चित्रकला की शिक्षा भी दी जाती है।

इनके अतिरिक्त दो वर्ग और हैं, जो विशिष्ट तथा कार्यकर्ता तालीम वर्ग कहे जाते हैं। इन दोनों वर्गों में तीन-तीन वर्ष का शिक्षा-क्रम है। विशिष्ट वर्ग में साधारणतया उन्हें लिया जाता है, जिनका अक्षर ज्ञान अच्छा हो, परन्तु कभी-कभी उन्हें भी ले लिया जाता है जिन्हें अभी तक अक्षर-ज्ञान न मिल सका हो। इन वर्गों में अक्षर-ज्ञान, गणित, भूगोल, इतिहास के अतिरिक्त स्त्रियोपयोगी विषय भी हैं, और विशेष रूप से उन्हे स्त्रियों की समस्याओं को समझाया जाता है, तथा संसार को गति से भी अनभिज्ञ नहीं रहने दिया जाता। इसके लिये वहाँ तीन विशेष पाठ्य क्रम हैं—सुघरता व सुन्दरता, स्त्रियों की समस्यायें तथा आधुनिक हलचलें। पहले तीन वर्षों में साधारण ज्ञान लगभग मिडिल तक का हो जाता है। दूसरे तीन वर्षों का शिक्षा-क्रम कार्यकर्ता तालीम-क्रम कहा जाता है। इसमें कुछ विषय तो साधारण शिक्षा से बिलकुल भिन्न हैं। उपरोक्त विषयों के अलावा उन्हें समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान, संस्कृति के विकास का इतिहास, मानव-जाति के इतिहास की रूपरेखा, स्वास्थ्य, शरीर-विज्ञान इत्यादि की भी शिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा इस दृष्टि से दी जाती है कि स्त्री किसी सस्था या किसी राष्ट्रीय प्रवृत्ति को स्वय चला सके। इस शिक्षा में व्यावहारिक ज्ञान का भी सम्मिश्रण होता है। यह शिक्षा 'ज्योति-सङ्घ' के भिन्न-भिन्न विभागों में काम करने से मिल जाती है। इसी विभाग द्वारा ग्राम-सेविकाओं के शिक्षण का भी प्रबन्ध किया जा रहा है।

उपरोक्त सब शिक्षा-क्रम केवल बौद्धिक ही नहीं होते। उनमें व्यावहारिक ज्ञान भी होता है और शारीरिक-शिक्षा का भी समावेश होता है।

जहाँ सङ्घ ने बौद्धिक व शारीरिक शिक्षण को स्थान दिया है, वहाँ उद्योगों की शिक्षा को भी काफी महत्व का स्थान दिया है। और वास्तव में किसी भी उद्योग की शिक्षा स्त्री के जीवन में आवश्यक हो जाती है। आर्थिक जीवन में बेकारी बढ़ने से पुरुष अकेला गृहस्थी के बोझ को सँभालने में असमर्थ हो जाता है, और कभी-कभी दूसरे कारणों से भी स्त्री को भरण पोषण के लिये कुछ न कुछ करना आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त जब स्त्री पुरुष के साथ समानता चाहती है तो उसे समान बनने की योग्यता भी पैदा करनी होगी। यदि वह सदियों से पड़ी हुई परावलम्बन की बेड़ियों से मुक्त होना चाहती है, तो वह उद्योग द्वारा ही छुटकारा पा सकती है। इन सब कारणों से उद्योग की शिक्षा तो स्त्रियों के लिये आवश्यक हो ही गई है, और सङ्घ ने इस शिक्षा को महत्व का स्थान देकर अपनी व्यवहार-कुशलता का परिचय दिया है।

औद्योगिक शिक्षण के मुख्य चार विषय हैं—सीना, कसीदा, स्प्रे प्रिंटिङ्ग (एक प्रकार छाप-काम) तथा टाइपराइटिंग। इन सब विषयों की शिक्षा पूर्ण रूप से व्यावहारिक होती है। सीने के वर्ग में काट-छाँट की शिक्षा भी सम्मिलित होती है। एक वर्ष सीख लेने के बाद कोई भी साधारण स्त्री १० से १५ रुपये तक कमा सकती है। सीने का काम सीख कर काफी स्त्रियों ने उससे लाभ उठाया है। १९३७ में सीना सीखने वाली स्त्रियों की सख्या ५३५ थी।

कसीदे का काम ज़रा अधिक मुश्किल है। इस कारण इसे सीखने वाली स्त्रियों की सख्या भी कम है। इस काम में योग्यतानुसार स्त्री घर बैठे १० रु० से २० रु० तक कमा सकती है। पिछले वर्ष इस वर्ग में सीखने वाली स्त्रियों की सख्या ७७ थी।

स्प्रे-प्रिंटिङ्ग का काम भी कसीदे जैसा ही है। इसमें भी चित्रकला तथा रंगों के मिश्रण का ज्ञान आवश्यक है, परन्तु इसे सीख लेने पर कोई भी स्त्री अच्छी कमाई कर सकती है। और यदि काफी योग्यता हो जाय तो ५०) मासिक पैदा कर लेना कोई बड़ी बात नहीं होगी। पिछले वर्ष ३१ स्त्रियों ने इस काम को सीखा था।

टाइप राइटिङ्ग तो एक बौद्धिक विषय है और इसके लिये काफी भाषा-ज्ञान की आवश्यकता होती है। 'ज्योति सङ्घ' का टाइप राइटिङ्ग क्लास प्रमाणित है और बम्बई के इण्डियन मरचेन्ट चेम्बर की ओर से इसकी परीक्षा होती है। यह काम लगभग ५० स्त्रियों ने सीखा है तथा ६ स्त्रियों ने इसकी परीक्षा भी पास की है।

इन विषयों के उपरान्त सङ्घ की ओर से सङ्गीत तथा चित्र-कला की शिक्षा भी दी जाती है। इन विषयों की शिक्षा का ध्येय यह होता है कि इन्हें सीख कर स्त्री सङ्गीत-शिक्षिका तथा चित्र-शिक्षिका हो सके। इनमें चित्र-कला का ज्ञान व्यापारिक दृष्टि से भी कराया जाता है, तथा साइनबोर्ड, पोस्टर इत्यादि के बनाने का ढङ्ग सिखाया जाता है। स्प्रे प्रिंटिङ्ग के लिये जो फ़र्में व्यवहार में आते हैं, वह भी इसी विभाग में बनते हैं।

उद्योग की शिक्षा की दृष्टि से सङ्घ द्वारा एक खाद्य-वस्तु-विभाग और एक दुकान का भी सञ्चालन होता है। पापड़, अचार, चिवड़ा इत्यादि तैयार किये जाते हैं और यह 'कमला ज्योति हाट' पर बेचे जाते हैं। सङ्घ में परदे, थैलियाँ, मेज़पोश वगैरह जो बनते हैं वह भी इस दूकान पर बेचे जाते हैं। यह सब वस्तुएँ शुद्ध खद्दर की होती हैं। कुछ खास-खास मौक़ों पर सङ्घ अपनी दूकान लेकर बाहर भी जाता है। पिछली लखनऊ, फ़ैज़पुर तथा हरिपुरा महासभा के अवसर पर सङ्घ की दूकानें वहाँ गई थी। हरिपुरा में तो सङ्घ ने अख़बार बेचने का ठेका भी लिया था। दूकान का सब काम मुख्यतः स्त्रियों द्वारा ही होता है, और बेचने वाली भी स्त्रियाँ ही होती हैं। उद्योगों के विषय में इस बात को पूरा ध्यान रखा जाता है कि जितनी भी शिक्षा स्त्रियों को दी जाय, वह पूरी तरह व्यावहारिक हो और आवश्यकता पड़ने पर स्त्री स्वतन्त्र रूप से काम कर सके।

उद्योग की शिक्षा के साथ उद्योगों की खोज का एक विभाग ज्योति-सङ्घ में है। यह विभाग इस दृष्टि से खोला गया था कि इसके द्वारा उन कामों का पता लगाया जाय जो स्त्रियाँ सामान्यतया करती हैं, तथा उनसे संबन्धित अवस्थाओं का भी ज्ञान प्राप्त किया जाय, जैसे, आय, काम करने के घण्टे, तथा काम करने वाली स्त्रियों की स्थिति। इस प्रकार की पूरी जाँच अभी तक अहमदाबाद के एक ही भाग में की जा सकी है, परन्तु साधारणत ११८ कामों के बारे में सूचनाएँ और आँकड़े इकट्ठे किये जा चुके हैं। इन कामों से संबंधित कुछ आँकड़े तथा फोटोग्राफ सहित पोस्टर्स पिछले महासभा के प्रदर्शन के स्त्रियों के विभाग में रखे गये थे। यह विभाग रसील बहन के स्मारक-स्वरूप है।

स्त्रियों के उद्योग की जाँच-प्रवृत्ति को और भी प्रोत्साहन मिलना चाहिये। जैसे, शास्त्रीय तरीके पर अहमदाबाद के सारे शहर की जाँच हो सके, तो अच्छा होगा। इस प्रकार की जाँच से हमारा सामाजिक जीवन का ज्ञान बढ़ता है और कितनी बातों के विषय में जो ग़लत धारणाएँ बन जाती है, वह इसके द्वारा ठीक हो सकती हैं। साधारणतया यह समझा जाता है कि स्त्री आर्थिक सङ्घर्ष के अयोग्य होती है और वह इस जीवन में अधिक हिस्सा नहीं बँटाती। परन्तु ग़ौर से देखने पर यह बात सत्य के विरुद्ध मालूम पड़ती है। अनेक कामों में स्त्रियों का हाथ रहता है। खेत में मजूरी वह करती है, टोकरी वह ढोती है, मिल में काम वह करती है, दस्तकारी वह करती है, दुकान भी वह चलाती है। केवल उच्च वर्ग या मध्यम वर्ग के लोगों की थोड़ी सी स्त्रियों को छोड़ कर प्राय सभी कुछ न कुछ करती हैं। परन्तु फिर भी वह स्वतंत्र नहीं हैं। यहाँ हमें इस बात को विचारना पड़ता है कि वह लोग, जो कहते हैं कि यदि स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो सके तो वह पुरुष की पराधीनता से मुक्त हो जायगी, कहाँ तक सत्य है। यह बात ठीक तो अवश्य है, परन्तु इसके साथ यह भी आवश्यक है कि स्त्री अपने स्वत्वों को पहिचाने, क्योंकि बिना इसके आर्थिक स्वतंत्रता पाने पर भी वह पराधीनता से मुक्त न हो सकेगी। शिक्षण और उद्योग के दो नियमित विभागों के अतिरिक्त सङ्घ में कई छोटे-छोटे विभाग भी हैं। पुस्तकालय का

भी एक छोटा सा विभाग है। पुस्तकालय में अङ्ग रेज़ी तथा गुजराती की पुस्तकें लगभग २००० हैं। दैनिक समाचार पत्र तथा मासिक भी गुजराती के कुछ आते हैं, परन्तु हिन्दी भाषा की पुस्तकों व पत्रों का अभाव है।

'गुजरात-समाचार' नामक दैनिक पत्र मे सप्ताह में ~~एक बार~~ 'ज्योति-पूर्ति' का एक पृष्ठ स्त्रियों के प्रश्नों की विवेचना करता है। यह ज्योति-सङ्घ के प्रचार विभाग की ओर से सम्पादित होता है और इसमें स्त्री-विषयक प्रश्नों का गहन विवेचन होता है।

सङ्घ में कितनी ही स्त्रियाँ ऐसी आती हैं, जो अपने बच्चों को घर पर छोड़ कर नहीं आ सकतीं। ऐसी स्त्रियों के लिये एक बाल-विभाग है, जिसमें पढ़ने या दस्तकारी सीखने के समय वह अपने बच्चों को छोड़ सकती हैं। बच्चों की देख रेख के लिए एक नर्स है। प्रति मास इस व्यवस्था के लिये हर एक बच्चे के लिये चार आने देने पड़ते हैं।

स्त्रियों का आपस का सामाजिक जीवन तो नहीं के बराबर होता है। दोपहर में फुरसत मिलने पर जब कभी चार स्त्रियाँ पास बैठती हैं तो उनके पास आपस के झगड़ों के अतिरिक्त दूसरे विषय नहीं होते। साधारणत: जनमत है कि पुरुष तो कितने ही साथ में काम कर सकते हैं, परन्तु स्त्रियाँ तो दो भी साथ नहीं रह सकतीं। यह धारणा गलत हो सकती है या इस कारण हो सकती है कि स्त्रियों का घर में रहने के कारण कुछ स्वभाव ऐसा बन गया हो, परन्तु इसमें सत्य की थोड़ी बहुत मात्रा तो अवश्य है। इसलिये उनके सामाजिक जीवन को स्वस्थ बनाने के लिये सङ्घ ने कुछ प्रवृत्तियाँ रखी हैं। गुजरात के लोक-नृत्य गरबा, रास बहुत आकर्षक होते हैं और इनसे कलात्मक मनोरञ्जन तथा स्वास्थ्यकर व्यायाम मिलता है। गरबा, तथा रास के कार्यक्रम सङ्घ की ओर से विशेष अवसरों पर रखे जाते है और साथ हो साथ उन्हें पर्यटन में भी ले जाया जाता है, जिससे वह संसार का कुछ ज्ञान प्राप्त कर सके।

इस सङ्घ का एक विभाग और है, जो स्त्रियों को भिन्न प्रकार की सहायता देता है। इस विभाग से स्त्रियों को तीन प्रकार की सहायता मिलती है। १ डॉक्टरी, २ कानूनी, और ३ संरक्षण। अनेक बार समाज के बर्बर अङ्ग से त्रसित स्त्रियों को उक्त सहायताओं की आवश्यकता पड़ती है। साधारणतया समाज यों भी स्त्रियों के विषय में उदासीन है, परन्तु यदि वह समाज की परिधि के बाहर किसी प्रकार का आचार कर बैठे तब तो समाज की दृष्टि और भी वक्र हो जाती है और स्त्री को ऐसा लगता है कि मानो उसे जीवित रहने का अधिकार ही नहीं। समाज के अनेक अङ्ग स्त्री को गिरने की प्रेरणा तो देते है, उसे उठाने में विरले ही सहायता करते हैं।

स्त्री के क़ानूनी स्वत्व तो वैसे ही कम हैं, परन्तु जो कुछ हैं उनका भी वह उपयोग नहीं कर पाती। अदालत के झूठ से भरे हुए वातावरण में जहाँ केवल पैसे को ही सब पूछते है, आर्थिक दृष्टि से आश्रित स्त्री को कौन पूछता है। इसलिये वह सब अत्याचार बिना मुँह खोले, या लड़े बिना सह लेती है और इसी कारण स्त्री को कानूनी सहायता देने की आवश्यकता पड़ती है।

और स्त्रियों के संरक्षण करने की आवश्यकता का किसे ज्ञान नहीं? क्या हम अक्सर नहीं पढ़ते कि स्त्रियों का व्यापार करने वाला एक गिरोह पकड़ा गया? इस प्रकार स्त्रियों के व्यापार करने वाले अनेक दल हैं जो स्त्रियों को अपने आर्थिक लाभ के लिये एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में लेजा कर बेचते हैं। इन्हीं लोगों के पञ्जों से छुड़ा कर संरक्षण करने की आवश्यकता पड़ती है। देश में स्त्रियों के सरक्षण करने वाली संस्थाओं की बहुत कमी है। कुछ विधवा-आश्रम तथा अनाथ-आश्रम हैं भी, परन्तु विधवा आश्रम तो कहीं कहीं इतने बदनाम हो चुके हैं कि इन्हें व्यापारी संस्थाएँ कहा जा सकता है। जब तक स्त्रियों की संस्थाएँ स्त्रियों द्वारा न चलाई जायँगी, तब तक इसमें सुधार होना कठिन है। स्त्रियों को संरक्षण देने के लिये यहाँ एक 'विकास गृह' की स्थापना की गई है। यह है तो एक प्रकार सङ्घ से स्वतन्त्र, परन्तु इसकी देख-रेख भी सङ्घ की अधिकारिणी

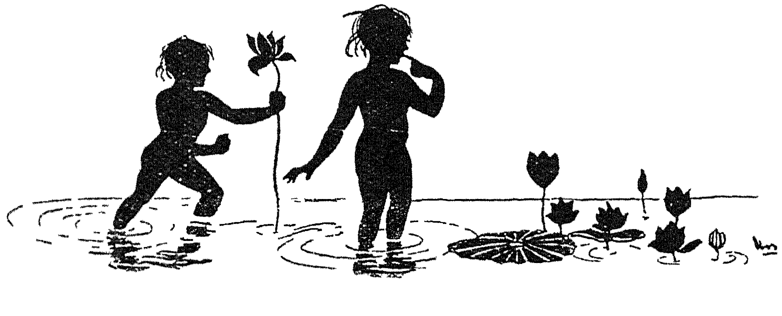
श्री मृदुला बेन साराभाई, तथा श्री पुष्पावती मेहता करतो हैं।

यह संस्था भारतवर्ष में एक अनोखी और अपने ही ढङ्ग की है। यों तो भारतवर्ष में अनेकों स्त्री-संस्थाएँ और शिक्षणालय हैं, परन्तु जो विशेषताएँ इसमें है सम्भवत बहुत थोड़ों में हों। यह स्त्रियों की संस्था स्त्रियों द्वारा ही सञ्चालित होती है। पुरुषों का इसमें सहकार अवश्य है, परन्तु विशेष स्थान नहीं। स्त्रियाँ ही सब विभागों की व्यवस्था करती है और सब विभागों की योजना स्त्रियों की ही अनुकूलता देखकर की गई है।

सङ्घ का काम अधिकतर चन्दे से ही चलता है। सङ्घ का खर्च लगभग १२००) प्रति मास के है। दो हज़ार रुपये प्रति वर्ष सङ्घ को अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी की ओर से प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education) के लिये मिलते हैं। इसके अतिरिक्त बाकी सब चन्दे से ही जमा किया जाता है।

शिक्षण और उद्योग सिखाने का जो इस संस्था में प्रबन्ध है, वे दोनों ही स्त्री के जीवन के विकास के लिये आवश्यक हैं। बिना अपने स्वत्वों को समझे हुए स्त्री एक मूक प्राणी के समान रहेगी। और जब तक वह इस दशा में रहेगी वह अपनी तथा समाज की उन्नति में सहायक नहीं हो सकेगी। इसीलिए इस संस्था में साधारण अक्षर ज्ञान से लेकर उच्च शिक्षा देने तक का प्रबन्ध है। और किसी भी समय अपढ़ स्त्री से लेकर थोड़ी बहुत शिक्षा पाई हुई स्त्री इसके शिक्षा-क्रम में प्रवेश पा सकती है। उसकी फीस आठ आना प्रति मास है और जो यह भी न दे सके उसके लिए इसमें से भी घटा दिया जाता है। इतनी कम फीस देने में किसी को भी कठिनाई न होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त जो स्त्री अपने लिए किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं कर सकती, उसके लिए सङ्घ की तरफ से लोन मिल सकता है। यह लोन शिक्षा पूरी होने पर धीरे-धीरे चुका देना होता है। सघ की नीति फ्री छात्रवृत्ति देने की नहीं है।

सङ्घ ने जिन प्रवृत्तियों को चला रक्खा है वह स्तुत्य हैं। स्त्री के लिए शिक्षा, उद्योग और संरक्षण तीनों ही की आवश्यकता है और उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि वह स्वयं अपने लिए कुछ कर सकें। इन सबको सङ्घ में प्रमुख स्थान मिला है। ऐसी सस्थाएँ हमें प्रगति की ओर ले जाती है जिसकी हमारे जीवन में भारी आवश्यकता रहती है। इसलिए इनके विकास में सहयोग देना प्रत्येक प्रगति-प्रिय मनुष्य का धर्म है।



छुट्टी के दिन

[श्रीमती ललिताप्रसाद]

दो विपरीत प्रवृत्तियों के सयोग से ही मनुष्य के चरित्र का निर्माण हुआ है। इन दोनों को हम कहते हैं—भला और बुरा, देव और दानव। अस्तु, मनुष्य की सुबुद्धि का यदि क्रमश विकास होता जाता है, तो उसके विरोध में कुबुद्धि का भी। यही कारण है कि मानव जाति के इतिहास में हमें सृष्टि और प्रलय दोनों के ही लक्षण दीख पड़ते हैं। यदि विज्ञान की आशातीत उन्नति हो रही है तो इससे उत्पन्न हानियाँ या बुराइयाँ भी कम नजर नहीं आतीं।

विज्ञान के फलस्वरूप मनुष्य जीवन में एक ऐसी ही विकट कठिनाई आ उपस्थित हुई है। समय और दूरी को जीत कर मनुष्य ने अपने लिए अशेष छुट्टी कमायी है। मोटर, रेल, तार, जहाज़, इञ्जिन इत्यादि अद्‌भुत यन्त्रों की सहायता से अब वह जिस काम को दस दिन में कर सकता था, उसे ही अब एक घण्टे में समाप्त कर लेता है। यह कम आश्चर्य की बात तो है नहीं, परन्तु इसके परिणाम ? बेकारी और जो इस भीषण ज्वर से सुरक्षित हो सके है, उनके लिए लम्बी लम्बी छुट्टियाँ। इसके अतिरिक्त कार्य की अवधि में ही एक ही काम के सदैव होने के कारण उनका जी कुछ ऐसा ऊब जाता है कि जब तक किसी प्रकार के नवीन मनोरञ्जन एव आह्लादपूर्ण अभिनयों का प्रबन्ध न किया जा सके, तब तक उनके नीरस जीवन में सरसता एवं स्फूर्ति का समावेश हो ही नहीं सकता।

अस्तु, हमें तो यह देखना है कि आधुनिक युग में विज्ञान के तीव्र प्रभाव में पड़ कर, ढेर के ढेर अवकाश को हम किस प्रकार बिताएँ, जिससे हमारे शरीर, हृदय और आत्मा को विस्मरण, आनन्द, और नव जीवन का अनुभव हो, और साथ ही स्वाभाविक रूप मे इनके विकास में भी किसी प्रकार की रुकावट न हो।

इस प्रश्न को हल करने के लिए अनवरत परिश्रम वे ही जातियाँ तन-मन से कर रही हैं, जो स्वतन्त्र हैं और उन्नति के शिखर पर अग्रसर हो रही हैं। इस बात में तो अधिकतर यूरोप और अमेरिका के निवासी इस प्रकार दत्तचित्त हैं कि काम के समय अपने कर्त्तव्य को मुस्तैदी से पूरा करना ही वे नहीं जानते, बल्कि आराम के समय को भी आनन्द और लाभ के साथ व्यतीत करना जानते हैं। इटली में इस भावना का इतना बड़ा प्रभाव है कि वहाँ सभी लोग और उनके सर्वे-सर्वा, मुसोलिनी भी, छुट्टी के दिन को बिताने के निमित्त अनेक प्रकार प्रबन्ध करते, जिससे प्रत्येक नर-नारी का जीवन शुष्क न हो, जिससे उनका शरीर एकदम स्थूल, निर्जीव और व्यर्थ न पड़ जाय, बल्कि रोमास, (साहस) उच्च आदर्श और दैहिक पराक्रम से उनके अन्तस्तल में एक महान् जोश का प्रादुर्भाव हो। वहाँ की रिपोर्ट से पता चलता है कि इटली में लगभग १३०० नये नाट्य-मन्दिरों का निर्माण हो चुका है। केवल १६३५ ही में एक वर्ष के भीतर ही ३५,००० नाटकों का अभिनय हुआ था। इसके अतिरिक्त नाट्यकला की शिक्षा के लिए वहाँ ४५ स्कूल और १४ पुस्तकालय भी मौजूद हैं।

ऐसा हो भी क्यों नहीं। जो राष्ट्र जितना ही उन्नत एवं शक्तिशाली होता है, वह अपने देश की सभ्यता, कला-कौशल और साहित्य की उन्नति के लिए उतनी ही चेष्टा करता है। यही कारण है कि यूरोप के प्रत्येक देश, अमेरिका तथा सोवियट रूस में यह भावना बड़े ही

जबर्दस्त रूप में पायी जाती है। पर हाँ, एक बात तो निश्चित है ही। वहाँ के मनोरञ्जक साधनों में जातीयता का अथवा राष्ट्रीय प्रेम का विरोध नहीं मिलता। जनता आनन्द भी उठाती, लाभ भी और साथ ही उनके हृदय में देश-प्रेम की एक प्रबल धारा भी उमड़ आती है। पर भारतवर्ष—भारतवर्ष में तो लाखों बेकार है, करोड़ों को अधिक से अधिक छुट्टी भी मिलती है, परन्तु अवकाश के इस समय को या तो बिताने के साधन ही उनके सम्मुख मौजूद नहो और यदि है भी तो वे पूरी तरह उपयोग ही नहीं कर पाते। शहरों में अवश्य ही कुछ प्रबन्ध है, पर उनसे अनिष्ट के बदले लाभ की आशा करना ही व्यर्थ होगा।

मनुष्य कोई मैशीन नहीं कि बिना कोई रुकावट के दिन-रात काम में जुटा रहे। उसे तो काम और आराम दोनों की ही बड़ी आवश्यकता है। सुविख्यात् डॉक्टर जॉनसन कहा करते थे कि स्वास्थ्य और शक्ति को क़ायम रखने के लिए समय को तीन भागों में बाँट रखना चाहिए, जैसे प्रतिदिन आठ घण्टा काम, आठ घण्टा शयन, और आठ घण्टा आराम या मनोरञ्जन, जैसे खेल, कूद, तमाशा, वार्त्तालाप इत्यादि। वे एवं इसी कार्यक्रम का बड़ी मुस्तेदी से अनुकरण करते थे। परन्तु उनके युग और हमारे युग में महान् अन्तर हो गया है। हमें तो जबर्दस्ती ही अधिक छुट्टी या बेकारी का सामना करना पड़ता है। अतएव, हम अब इन दिनो को किस प्रकार बिताएँ, यही प्रश्न आ उठता है।

यूरोप और अमेरिका ने इस समस्या का साहसपूर्वक सामना किया है। यही कारण है कि छुट्टी के दिनों में वहाँ कोई भी नर-नारी, बाल-वृद्ध, युवा, निकम्मे और आलसी होकर बेठे नहीं रहते।

खेल-कूद, स्वास्थ्यप्रद स्थानों में भ्रमण, नाच तमाशा इत्यादि में सब लग जाते हैं। सिनेमा थियेटर की ही बात लीजिए। इस कला को तो अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक टॉम्स एडिसन ने आविष्कार किया था। और कुछ ही समय में इसकी इतनी आश्चर्यजनक उन्नति हुई कि U. S. A. (अमेरिका) में भोजनपान एव मोटर गाड़ियों के कारबार के पश्चात् इसको ही गणना होती है। वहाँ तो इस काम में लगभग चालीस करोड़ पौण्ड की पूँजी फँसी हुई है। विलायत (इङ्गलैण्ड) की पूँजी करीब सात करोड़ पौण्ड है। इङ्गलैण्ड में चार हजार से भी अधिक सिनेमा भवन हैं, पर इतने बड़े विशालकाय भारतवर्ष में केवल आठ सौ। इसका कारण भारतवर्ष की दरिद्रता और अज्ञान है, पर इसमें सन्देह नहीं कि इस मनोरञ्जक व्यापार की वृद्धि से यहाँ की सरकार को भी यथेष्ट धन मिल सकता है। इङ्गलैण्ड में १९३४ में साढे पञ्चानबे करोड़ टिकट की बिक्री हुई थी, जिनके ऊपर टैक्स बैठाने से सरकार को नौ करोड़ रुपये की ठोस आय हुई। पर भारतीय सरकार इस ओर कुछ ऐसी उदासीन है कि कच्चे फिल्मों पर कड़ा कर बैठा कर इस व्यापार की वृद्धि के निमित्त कोई खास प्रबन्ध नहीं कर सकती। तब भी विदेश से ही इस देश में १९३५-३६ में करीब २१ लाख रुपये के कच्चे फिल्म मँगाये गये थे।

अमेरिका की बात मत पूछिए। वहाँ तो बीस हजार स भी अधिक सिनेमा और थियेटर के घर है, यद्यपि वहाँ की जन-संख्या यहाँ से बहुत कम है। और इस काम मे वहाँ प्रतिदिन तीन लाख से भी अधिक आदमी लगे रहते हैं, पर भारत में केवल उसका बारहवाँ हिस्सा अर्थात् केवल पच्चीस हज़ार।

केवल सिनेमा, थियेटर, नाच-रङ्ग का ही आधिपत्य वहाँ नहीं है। घुड़-दौड़, हवाई जहाज़, समुद्री जहाज़, तैराक, कुश्ती, क्रिकेट, फुटबाल, टेनिस, इत्यादि के लिए स्पर्द्धा में मग्न हो वहाँ के नर-नारी जिस तन्मयता से भाग लेते है, वह धन्य है। जीवन के विकास के लिए जीवन का ही बलिदान कर देना तो उनके लिए आमोद-प्रमोद की बात है। मिस अमेलिया इअर हार्ट ने जो कला दिखाई, वह गौरव की बात नहीं तो क्या है?

जर्मनी की तो शिक्षा-प्रणाली ही ऐसी है कि छुट्टी के दिनों में विद्यार्थीगण मज़दूर का काम कर प्राकृतिक दृश्य और खुली हवा में विचरण कर न केवल अपने शरीर और मन को ही दृढ़ बना लेते हैं, पर जीवन का एक महत्व-पूर्ण पाठ भी सीख लेते है। अमेरिका की ओर एक

हलकी नजर फेरिये। गर्मी की छुट्टी हुई कि लाखों की तादाद में नर-नारी समुद्र तट पर स्वास्थ्योन्नति के लिए दौड़ लगाना आरम्भ कर देते हैं। संयुक्त राज्य के भूतपूर्व राष्ट्रपति तो अवकाश के समय मछलियाँ मार, नावों में घूम कर या शिकार के द्वारा वृद्धावस्था में भी अपने मन को बहलाया करते थे। इङ्गलैण्ड के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री मि० मैकडानेल्ड, मि० बाल्डविन तथा वर्त्तमान् प्रीमियर मि० चैम्बरलेन, सभी इस कौतूहल में पीछे नहीं हटते। पर भारतवर्ष ?

यहाँ तो छुट्टी के दिन आलस्य, निरर्थक शयन, लड़ाई-तकरार अथवा गप्प में ही बीत जाते हैं। यहाँ की स्त्रियों की, जिनकी संख्या १५ करोड़ से कम नहीं, हालत और भी भयानक है। ढेर के ढेर फ़िज़ूल समय के रहने से, जिसका सदुपयोग वे किसी तरह भी न कर पातीं या करना ही नहीं चाहतीं, उनका जीवन कितना दु:खमय हुआ जा रहा है, इसका पूर्ण अन्दाज़ा वे ही लगा सकते हैं, जो परतन्त्र और स्वतन्त्र देशों की नारियों की स्थिति को तुलनात्मक दृष्टि से समझ सकें।

यहाँ के अज्ञानी और ग़रीब किसानों की अवस्था तो और भी दर्दनाक है। वर्षा के दिनों में तो वे कामों में फँसे रहते हैं, किन्तु खेती से जहाँ फ़ुर्सत मिली कि फिर आलस्य में रहने के कारण मुक़द्दमेबाज़ी अथवा ख़ून-ख़राबी में पड़ कर, अथवा नशा एवं कुसङ्गति में पड़ अपना अर्जित किया हुआ धन स्वाहा कर महाजनों के सदा के लिये वे गुलाम बन ही बैठते हैं।

किन्तु ज़रा इटली की ओर एक सरसरी दृष्टि दौड़ाइए। वहाँ तो 'Dopolavoro' (After-work) नामक एक चाल ही १९३५ से चल पड़ी है। स्वयं मुसोलिनी इसे बड़ा प्रोत्साहित करता है। वहाँ नाट्य-गाड़ियाँ व्यवहार में लाई जाती हैं, जिनमें मनोरञ्जन की बहुत सी चीज़ें मौजूद रहती हैं। भड़कीली पोशाकों में जुलूस ले जाना, धार्मिक त्योहारों एवं पुर्वों में धूमधाम आदि तो बड़े ही जनप्रिय हो रहे हैं। अनाज के काटने के समय किसान तरह-तरह के आमोद-प्रमोद में लग जीवन का आनन्द उठाते हैं। लम्बी-लम्बी यात्राएँ, देहाती सरकस एवं व्यायाम, खेल-कूद तो साधारण हैं ही।

मैशीन युग के आवागमन के कारण विश्राम और आमोद प्रमोद का प्रश्न विश्वव्यापी हो गया है। सभी राष्ट्र के सूत्रधार समझते हैं कि इसे शीघ्रातिशीघ्र निपटाना ही होगा। और कई देश तो उपर्युक्त उदाहरणों के अनुसार बहुत दूर आगे भी निकल गये हैं, पर हमारा ही देश—दरिद्र, ज्ञानशून्य और कमज़ोर—सब से पीछे पड़ा हुआ है।

सर्वप्रथम सम्मेलन इस अन्तर्राष्ट्रीय सभा का Los Angels में हुआ और दूसरा १९३६ में हैमबर्ग में। प्रोफेसर विनयकुमार सरकार ही भारत के प्रतिनिधि होकर वहाँ गये थे। उक्त सरकार महोदय का तो यह दृढ़ विश्वास है कि वैज्ञानिक उन्नति, श्रमिक-आन्दोलन एवं कलपुर्जे के आधिपत्य के कारण ही हमारे जीवन में पूर्ववत् वह मधुमय सङ्गीत नहीं सुन पड़ता। अस्तु, मनोरञ्जन के निमित्त सम्पूर्ण संसार को ऐसे प्रबन्ध करना उचित है, जिनसे हम फिर उस सङ्गीत की मधुर तान से अपने हृदय को सुखी बना सकें।

अस्तु, हमारे देश का यह कर्त्तव्य है कि यहाँ के स्त्री-पुरुषों के लिए मनोरञ्जन, खेल कूद आदि के निमित्त ऐसी-ऐसी व्यवस्थाएँ की जायँ जिनके द्वारा फ़िज़ूल समय में बैठ कर, मक्खी मार कर, अथवा गाली-गलौज, लड़ाई-झगड़े कर भारतीय राष्ट्र की शक्ति का ह्रास न हो।

अतएव हमें तो इस कर्त्तव्य के लिए तैयार हो जाना चाहिए। हिन्दुओं, मुसलमानों एवं अन्य जाति वालों के लिए तीर्थ-यात्रा करना, त्योहार के अवसर पर धूम-धाम से उत्सव मनाना अत्यावश्यक है। हाँ, इन कामों में फ़िज़ूल खर्च कदापि न होना चाहिए।

पर्वत, समुद्र, अथवा अन्य स्वास्थ्यकर स्थानों में जाना अतीव लाभप्रद और आल्हादकारी है। स्वास्थ्य-गृहों के लिए जितना प्रबंध हो सके उतना ही अच्छा। कितने दु:ख की बात है कि अपने ही देश में अनेक स्वास्थ्यप्रद स्थानों के होते हुए भी हमें विदेश की यात्रा करनी पड़ती है और अधिकांश लोग तो गरीबी के कारण जाने का स्वप्न भी नहीं देख सकते। कार्ल्सबाद ऐसे स्थान जहाँ राष्ट्रपति श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस को, तन्दुरुस्ती की खोज में जाना पड़ा था, हिन्दुस्थान में भी मिल सकते हैं, पर कौन इनके

लिए परवाह करता है। हिटलर ने कितने ही झरनों की तरक्की इसलिए करायी है कि जर्मनी की जनता वहाँ जाकर लाभ उठा सके। पर भारत में क्या होता है? बिहार प्रान्त के राजगृह में—मुँगेर में कितने ही ऐसे स्थान है, जिन्हें वैज्ञानिक रीति से रखने से साधारण जनता को बहुत ही लाभ हो सकता। यदि कॉङ्ग्रेसी मन्त्रिमण्डल इसकी ओर ध्यान दे तो देश का अवश्य ही महान् उपकार होगा।

रेडियो, लालटेन लेक्चर, छोटी-छोटी फ़िल्मों का प्रदर्शन, जिनके द्वारा बालकों और किसानों को शिक्षित बनाया जा सके, सरकस पार्टी, इत्यादि का प्रबंध यदि हिन्दुस्थान के सात लाख गाँवों में हो सके तो, मेरा विश्वास है कि हमारे भाई और बहनों में एक नूतन ज्ञान, साहस और बल का प्रवेश होगा और जीवन के कठिन सग्राम के लिए वे अधिक योग्य हो सकेंगे। रेडियो और सिनेमा का प्रचार जितना ही अधिक हो उतना ही अच्छा, पर इस महान् कार्य का सम्पादन बिना सरकार (केन्द्रीय एवं प्रान्तीय) एवं जनता के सहयोग के कदापि नहीं हो सकता।

उपर्युक्त कार्यक्रम के लिए प्रान्तीय सरकारों को जितना जल्द हो सके, भरपूर कोशिश करनी चाहिए। इस दृष्टि से बिहार के शिक्षा-मन्त्री आनरेबुल डॉक्टर सैयद महमूद से हमें बड़ा उत्साह मिलता है। उन्होंने सैनिक शिक्षा के लिए चार स्कूल खोलने का निश्चय कर लिया है। इससे कितने ही विद्यार्थियों का, जो केवल अध्ययन में ही मस्त रहते है, स्वास्थ्यपूर्ण मनोरञ्जन भी होगा और देश की सेवा के लिए समय आने पर योद्धा भी बन सकेंगे।

सबसे अधिक छुट्टी स्कूल और कॉलेजों में मिलती है। यहाँ के छात्रों को तो अमेरिका और जर्मनी के विद्यार्थियों के जीवन का अनुकरण करना चाहिए। वे मजे में देहातों में घूमकर ग्राम्य-सुधार सम्बन्धी बहुत से कार्य कर केवल देश की ही सेवा न करेंगे, बल्कि अपने व्यावहारिक ज्ञान की परिधि और शरीर की मज़बूती को भी बढा सकेंगे।

छुट्टी के दिन को इस प्रकार व्यतीत करने से केवल व्यक्तिगत लाभ न होगा, बल्कि सामूहिक लाभ भी होगा।



'द्विज' जी की काव्य-धारा

[श्री० प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक]

मानव-हृदय का प्रसार और समुचित विकास जितना सुन्दर करुणा से हो सकता है उतना और किसी भी भाव से नहीं। भगवान बुद्ध ने भी इसकी महत्ता मानकर इसे विश्व के हृदय में बोध कराया था। मानव-हृदय की समस्त वृत्तियाँ न जाने किस आकर्षण की तीव्रता में केन्द्रीभूत होकर इस चिरतन दु.ख की सत्ता में मिल जाना चाहती हैं, उसका पता नहीं। वृत्तियो का पारस्परिक सङ्घर्ष भी अन्त में विषाद और करुणा में ही शान्ति पाता है। इसीलिए विश्व-साहित्य में करुणा और विषाद की यह पावन धारा भी अविश्रात और अनाविल गति से बह चली है। साहित्य में विषाद और करुणा का जितना स्थान है, शायद ही उतना किसी और भाव या वृत्तियों का है। जिस साहित्य में करुणा और विषाद के जितने गहरे तत्व पाये जाएँगे, समझ लेना चाहिए कि उस साहित्य ने विश्व के वास्तविक तथ्य को उतना अधिक पहचाना है, परन्तु इसके लिए भी एक आदर्श की सीमा रहती है। जिस साहित्य ने किसी की हत्या कर या किसी निस्सहाय की भूखी झोली में धूल झोंककर करुणा के आदर्श की सृष्टि की है, उसने करुणा की सृष्टि नहीं बल्कि हत्या की है। पाश्चात्य साहित्य का यह दावा है कि हमने उस आदर्श को प्राप्त कर लिया है। आदश कोई पाने को वस्तु नहीं, वह तो अनुसरण करने की चीज है। जो आदर्श है वह सदा आदर्श ही बना रहेगा। जिसने आदर्श को प्राप्त कर लिया है वह स्वय ही एक आदर्श है, इसीलिए विश्व की कोई भी वस्तु उसका केवल अनुसरण ही करती है।

हिन्दी साहित्य की गति आरम्भ से ही उसी विषाद-तत्व की ओर रही है, परन्तु अभी वह गति बड़ी तेजी के साथ आगे की ओर दौड़ रही है। भारतीय सामाजिक भावना और प्रेरणा भी इस आधुनिक गति का एक कारण है, इसमें अत्युक्ति नहीं। सभ्यता की वृद्धि के साथ साथ भावना और कल्पना भी अपने-अपने ढङ्ग की होती हैं। सभ्यता का यह प्रसाद साहित्य को सब दिन से मिलता आ रहा है। हमारे साहित्य में अभी जो व्यथा, करुणा और विषाद आदि भावनाएँ प्रविष्ट हुई हैं, उनके मूल में शोक नहीं बल्कि रति-भाव छिपा हुआ है। प्रिय के अभाव या विरह से इस वेदना और कसक की सृष्टि हुई है, फिर भी वर्त्तमान हाहाकार की गूँज इसमें नहीं गूँजती है ऐसा नहीं। यह उस प्रेम का विरह मिलन नहीं जिसकी भित्ति विषय-वासना के ऊपर अवलम्बित है, वरन् यह एक भावात्मक अव्यक्त प्रेम है जिसका सम्बन्ध हमारी आध्यात्मिकता से है। साहित्य में जो अलौकिकता और आदर्श की प्रतिष्ठा रहती है, वह यही है, पर प्रच्छन्न रूप से ही।

हाँ, तो प्रेम के चरम आदर्श को प्राप्त करना ही मानव का प्रधान लक्ष्य है—चाहे वह प्रेम देश के प्रति हो या विश्व के प्रति। अतः मानव-जीवन की इस सम्पूर्ण दौड़-धूप का रहस्य, उसके हास्य-रुदन, सुख दुख का निष्कर्ष भी प्रेम ही है। इसी के लिए वह सब कुछ करता है। यही उसके जीवन का स्वर्ग और यही उसके जीवन का नरक भी है। जिसने इसके वास्तविक तत्व को पहिचाना उसके लिए तो यह स्वर्ग और जिसने दैहिक लालसा-तृप्ति का इसे साधन मात्र समझ कर इसका अनादर या दुरुपयोग किया उसके लिए यह नरक है। मानव होकर जिसके हृदय में एक बार शुद्ध-प्रेम की धारा नहीं बही, इसके निर्मल स्रोत से जिसने अपने हृदय को नहीं धो

लिया, विश्व के हृदय के साथ अपने हृदय को प्रेम से नहीं मिला लिया, उसने मानव होकर भी जीवन में क्या किया ?

मानव हृदय का यह उद्‌गार उसके साहित्य में भी 'सयोग' और 'वियोग' की दो धाराओं में फूट निकला है। परन्तु जैसा कि मैंने कहा है, वियोग श्रृङ्गार की धारा किसी भी साहित्य में जितनी विशाल और अनाविल है उतनी सयोग की नहीं। वियोग श्रृङ्गार प्रेम की वास्तविक कसौटी है। रीति-काल के सयोग श्रृङ्गार और उसकी अश्लीलता से हमारे साहित्य को जो कलङ्क लगा है, आज वह प्रच्छन्न रूप से वियाग श्रृङ्गार से ही धोया जा रहा है।

साहित्य में वियोग के भी दो रूप किये जा सकते हैं—वासना-मूलक और अध्यात्म-मूलक। वासना-मूलक वियोग में जितनी तड़पन, करुणा और कसक आदि का संचार होता रहता है वह प्रिय-मिलन के साथ हो साथ मिट जाता है। उसके चित्रण से साहित्य का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। परन्तु भारतीय प्राचोन साहित्य में उसका भी कहीं-कहीं बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। इतना ही नहीं, बहुतों को पूरी सफलता भी मिली है। किन्तु जिस विरह के मूल में आध्यात्मिकता काम करती है, उसमें वासना का लेश भी नहीं रहता। उसमें तो प्रेमी केवल इतना ही चाहता है कि मैं उसके चरण की धूल ही बनकर रहूँ। उससे अधिक वह चाहता नहीं और चाहे भी कैसे जब कि उसके पास उतनी शक्ति और अधिकार नहीं। सूफ़ीय प्रेम-साहित्य में भी "मुहब्बत" का अर्थ प्राय ऐसा ही है। इसका अर्थ है—सौन्दर्य की गूढ़ रसानुभूति के लिए अन्तर की तीव्र आकांक्षा। यह अनुभूति रूपगुणातीत, निष्काम, पवित्र, निर्मल और मादकता रहित है। वास्तव में भौतिक प्रेम में जो रस और विलास रहता है, आध्यात्मिक प्रेम में उसका स्थान तत्व और चिन्तन ही ले लेते हैं। ऐसे प्रेम में जब वासनाएँ जल-जल कर राख बन जाती हैं, कामनाएँ वाष्प बनकर नील गगन को शून्यता में विलीन हो जाती हैं और बची रहती है केवल शुद्ध हृदय की आतुरता, तभी जाकर वह प्रिय का आभास मात्र पाता है, चाहे वह स्वप्न में हो या और कहीं। अगर उसके हृदय में वासना की बू तक रहती है तो वह विकल कण्ठ से अपने "प्रेम देवता से" कह उठता है —

> "मेरे तिमिर भरे अन्तर में
> एक बार प्रिय ढार
> प्यार के नवप्रकाश की धार,
> नहाकर जिसमें मेरे प्राण
> बहादें मलिन मोह के पाप,
> दाह की दारुणता के साथ
> निकल भागें सारे संताप,
> निखर जाए, हो विगत विकार
> वासना का काला ससार।

प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप यही है। एक बार रवि बाबू के तरल हृदय से ऐसा ही गीला गान निकला था। कविता जब मानवता की उच्च भाव-भूमि पर पहुँचती है तब मनुष्य वेदना और जलन को दाहक न समझकर उसको हृदय से लगाता है और उसे ही सफलता का साधन मान कर कह उठता है:—'मेरे जन्म जन्मातर की वेदने! तूही मेरे अनन्त जीवन की एकात साधना है। अतएव, तुझसे मेरा अनुरोध है कि एक बार तू अपनी तीव्र ज्वाला को खूब अच्छी तरह से धधकने दे। मुझे असमर्थ जान कर मुझपर तनिक भी दया न कर। तेरी ज्वाला जितनी ही असह्य होगी, मैं उसे अवश्य सहन करूँगा। तू एक बार भीषण रूप में प्रज्वलित होकर मेरी समस्त वासनाओं को भस्म कर दे।'

द्विज जी की काव्य धारा भी ऐसी ही शुद्ध भाव-भूमि के ऊपर बह चली है। इनकी कविताओं में प्रेम के साथ-साथ भक्ति और आध्यात्मिकता का जो सुन्दर एकीकरण हुआ है उसका अलग विभाजन नहीं किया जा सकता।

द्विज जी का विश्वास है कि 'उसके' बिन मुझे मुक्ति नहीं मिलेगी और जब कि सारा विश्व ही बन्धनमय है

तो मैं ही अकेले परित्राण कहाँ ढूँढ़ने चलूँ। उनके सामने दूसरी और सब से बड़ी अड़चन तो यही है कि अपने ऊपर भी स्वयं उनका अधिकार नहीं, वे तो किसी चरण पर चढे हुए फूल हैं और वही उनका बन्धन तथा मुक्ति भी है। उसी को प्यार करेंगे, चाहे वह ठुकरा दे या प्यार करे। इसीलिए वे जगत के कटु व्यवहार से व्यथित होकर कहते हैं —

"ढूँढने चलूँ कहाँ परित्राण ?
चिर अभिशापित को कब देगा
कौन कहाँ वरदान ?
जिन चरणों का चढा फूल हूँ
हैं अब तक वे दूर !
ठुकराया-सा जान मुझे है
कुचल रहा जग क्रूर !
सिसकते रहते झुलसे प्राण
ढूँढने चलूँ कहाँ परित्राण ?"

प्रेम और करुणा का कितना सुन्दर सामंजस्य है! प्रिय के चरणों में एक छोटे से फूल के रूप में अपने को चढ़ा कर क्या उनका हृदय कुछ विशाल नहीं हो गया है ? कितना बढ़िया आत्म-समर्पण है। इसी आत्म-समर्पण में ही भक्ति का मार्मिक रूप छिपा हुआ है। वे जानते हैं कि प्रिय ने मुझे ठुकराया नहीं, उनका भी मेरे ऊपर अटूट प्रेम है, परन्तु केवल जगत ही मुझको ठुकराया सा समझ कर कुचल रहा है।

इनका प्रिय मिलन भी जगत के असीम कोलाहल से दूर जब विश्व के पलकों में नींद खेल रही थी, तभी स्वप्न के उस सुरभित विपिन में हुआ था, जहाँ केवल उनकी भावनामय सत्ता ही विद्यमान थी। स्वप्न के उस प्रथम मिलन में ही उनका हृदय बँध गया। वास्तव में मनुष्य के पास हृदय भी तो एक ही है ? न जाने उस बन्धन से वह कब उन्मुक्त होगा। उसका जीवन एक अनन्त अभिसार है और उस अभिसार की परिसमाप्ति उसके चिर-मिलन में ही सम्भव है। फिर भी वह हृदय की पीड़ाओं को शान्त करने के लिए कभी कभी रो दिया करता है :—

"सुरभित मेरे स्वप्न-विपिन में
करके समुद विहार,
बाँध चुके अपनी सीमाएँ
जो निज बाहु पसार
किए बैठे हैं वे अब मान।"

* * *

वास्तव में उनका प्रिय बड़ा ही निर्दय है, नहीं तो योंही बार-बार उन्हें नहीं ठुकरा देता —

"भिगोया जिन चरणों को नित्य
हृदय का सारा सार निचोड़,
चढ़ा दी जिनपर मधु की राशि
मृदुल नव जीवन कलिका तोड़,

* * *

सदयता का करके संहार,
बने वे कितने निर्दय आज ?"

तथापि उन्हें यह विश्वास है कि मेरे प्रिय इतने निष्ठुर नहीं हैं, जो एक बार भी इस दुखिया को देख नहीं जायेंगे, वे आवेंगे और अवश्य आवेंगे। अगर वे मान करेंगे तो औरों को भी मान करना आता है। इस बार उनके आने पर मैं पूछ लूँगा कि मेरे जीवन का भी कुछ मोल है ?

"व्यथा का यह करुणामय दृश्य,
वही आ देखेंगे दृग खोल,
उन्हीं से पूछूँगा 'प्राणेश',
दुखी के जीवन का क्या मोल ?"

यही विश्वास ही प्रेम का आधार है। जब तक किसी पर अटल विश्वास नहीं हो जाय तब तक उस पर प्रेम कभी नहीं टिक सकता। हिंदी-साहित्य की वर्त्तमान काव्य-धारा में करुणा और वेदना का ही भार रहा है। 'द्विज' जी की और-और कविताओं में भी करुणा का समावेश मिलेगा, फिर भी उसके खास-खास स्थान हैं और वहीं पर उनका उत्कर्ष हुआ है। करुणा का यह दिगन्त-व्यापी हाहाकार हृदय के मर्मस्थल तक पहुँच कर किसके हृदय को एक बार नहीं हिला देगा :—

"देव, मेरी दुनियाँ के देव !
करोगे प्यास-भरी यह भेंट
तड़पता अबल प्यार स्वीकार ?
सुखों की सूनेपन की भीख
माँगकर पाल रहा जो प्राण,
दया आयेगी तुमको क्या न
छोड़ते उस पर तीखे बाण ?
फेंक ही दोगे कह कर "नहीं"
मुझे इस सीमा के उस पार ?"

इसी सिलसिले में कवि और भी कहता है और विवश होकर कहता है, क्योंकि उसके रोने का भी अधिकार छीन लिया गया है ! जिस आँसू को पी-पीकर वह जीता था, अगर वह भी छीन लिया जाय तो उसके जीने का और अवलम्ब ही क्या रह गया !

"चुका पाऊँगा आँसू से न
तुम्हारी नीरवता का मोल ,
क्यों न दे देते हो फिर भीख
प्यार की दो-दो बातें बोल ?
मान ? किससे करते हो मान ?
विवशता के बन्दी से ? हाय !
हो गया मैं तब तो सब भाँति
तुम्हारे आगे अब निरुपाय !
रह गया दर्द-भरा दिल एक,
छिन गया रोने का अधिकार !"

करुणा की इस अमर थाती और वेदना की इस असीम जलन को पालते हुए भी उन्हें इसमें शीतलता का अनुभव होता है। प्रेम की सचाई और शुद्धता तभी न मालूम होती है जब प्रेमी प्रिय की दी हुई प्रत्येक वस्तु को हृदय से स्वीकार करे और उसे प्रिय से कम महत्व नहीं दे। प्रिय के वियोग-जनित कर्षण का आनन्द क्या उसके साक्षात् दर्शन से कोई कम प्रिय वस्तु है ? तब प्रेमी उसको ही क्यों न प्यार करे ?

"वह अलभ्य है और दूर है
उस पर क्या मेरा अधिकार ?
कर्षण यह ही क्या कुछ कम है ?
और चाहिए कितना प्यार ?"

प्रिय-वियोग से जो भीषण सन्ताप और करुण सिसक मिली है, उसे कवि किसी पावन तप का पुण्य प्रसाद मान कर कहता है —

"वह शीतल सन्ताप किसी—
पावन तप का है पुण्य प्रसाद ;
भरा हुआ है इसी सिसकने में
समस्त जीवन आल्हाद !"

आध्यात्मिक प्रेम में जो आत्म-सन्तोष का भाव निहित रहता है, वह यही है। अगर जीवन में किसी ने प्रेम की शीतलता में शुद्ध आत्म-सन्तोष को नहीं प्राप्त किया तो उसका प्रेम 'प्रेम' नहीं। उसका जीवन क्या ही सुख-मय है, जिसने इस अमूल्य रत्न को प्राप्त कर लिया है। जीवन के सुख-दुःख और हास्य-रुदन में जब वह एक समान विचरण करने की क्षमता रखता है; सिसक में व्यथा का अनुभव न कर आल्हाद को खोजता है और ढूँढ़ता है पुण्य प्रसाद को जीवन के निगूढ़ सन्ताप में , तब क्या वह जीवन के वास्तविक तत्व के निकट नहीं पहुँच गया है ? इससे यह प्रतीत हो रहा है कि जागतिक कर्म-सम्पादन में कवि घबराता नहीं। विश्व का प्रत्येक कर्म, चाहे वह सुखमूलक हो या दुःखमूलक, उसे प्रेम का उपहार समझ कर आनन्दपूर्वक संपादित करता चला जाता है।

उच्चकोटि का साहित्य दर्शन के भीतर चला जाता है, कारण उसमें जीवन के विश्लेषण के तत्व रहते हैं। द्विज जी की कविताओं में प्रेम के साथ साथ दार्शनिक अनुभूति भी रहती है। प्रकृति के इस विशाल भवन में दो ही मूलतत्व सर्वदा वर्तमान रहते हैं और वे हैं सुख और दुःख। इसी सुख-दुःख के मूल भाव को लेकर कवि कविता बनाता है ! किसी ने सुख को ही अधिकतर लिया है और किसी ने दुःख को, परन्तु जिस कवि ने जगत् को जितने ही नज़दीक से देखा है, उसने दुःख की ओर झुकने का उतना ही अधिक प्रयत्न किया है, अन्धकार की ओर अग्रसर होने की उतनी ही कोशिश की है।

इसका कारण क्या है ? इसका कारण यही है कि दुःख की कालिमा में जो गाम्भीर्य और स्थायित्व है, वह सुख के प्रकाश में नहीं। दिगत प्रसारित सुनील गगन की स्तब्ध निबिड़ता में जो चिरत्व है वह दोलायमान प्रकाश में नहीं। दुःख और परिताप को जीवन का बाधक न मानकर हमारे बहुत से कवियों ने इसीलिए साधक के रूप में ग्रहण किया है।

मानव सुख चाहता है। सुख के लिए जप, तप, आराधना करता है। परमेश्वर से सुख की भीख माँगता है, किन्तु उसे मालूम नहीं कि वह सुख लेकर क्या करेगा, जब कि सुख में भी दुःख का अधिवास है। वह उसकी अज्ञानता है, माँगता है माँगे। 'द्विज' जी को यह मालूम है। उनके प्रियतम ने एक बार उन्हें विभव का कुछ दान देना चाहा, पर उसे देखते ही ये चौंक उठे, क्योंकि विभव की दारुण ज्योति को सहन वे नहीं कर सकते। उन्हें तो केवल अभाव चाहिए, वे अभाव की पूजा करना चाहते हैं।

"ज्योति यह दारुण है, हाँ, देव !
क्योंकि मैं हूँ चिरतम का दास।
सुखी रहता है दुःख में डूब,
कहाँ जाऊँ किस सुख के पास ?
सँभाले सँभलेगा भी कभी
किसी का मुझसे इतना प्यार ?
वासना में विष है, है आग
लालसा में सुख में सन्ताप।
पुण्य पालूँगा मैं किस भाँति ?
कहाँ जायेगा मेरा पाप ?
विश्व की पीड़ाओं को कहाँ
मिलेगा प्रश्रय, मधुर दुलार ?"

ठीक है, जगत की पीड़ाओं को भी तो कहीं तनिक आराम मिलना चाहिए, ज़रा प्यार मिलना चाहिए ?

विश्व की अविश्रांत गति उठती, गिरती, बलखाती आगे बढ़ती चली जा रही है। उसको किसी की परवाह नहीं कि उस धारा में पड़ कर कौन बनता है और कौन बिगड़ता है। इसे हम देखते हैं, आप देखते हैं और कवि भी देखता है, इसी जगत के किसी निभृत कोने में बैठ कर। इसी बनने और बिगड़ने में हम सृष्टि और विनाश का दृश्य देखते हैं। किन्तु इसके वास्तविक तथ्य को हम समझ नहीं पाते, समझता है केवल कवि। उसने विश्व के सुख दुःख को पहचान कर उसकी अमरता को भी पहचान लिया है। इसीलिए उसने सृष्टि, स्थिति और प्रलय को एक समान देखा है और भेद में अभेद की सृष्टि की है। क्योंकि सृष्टि स्थिति की ओर उन्मुख और स्थिति संहार की ओर प्रवृत्त है, सृष्टि का परिणाम स्थिति और स्थिति का परिणाम संहार है। स्थिति में सृष्टि की छाया और संहार का इंगित है। सृष्टि स्थिति का कारण और स्थिति सृष्टि का कार्य तथा स्थिति संहार का कारण और संहार स्थिति का कार्य है। तब विनाश-लीला में ही वह प्यार क्यों न देखे ? 'द्विज' जी कहते हैं :—

"उस विनाश-लीला के परदे में
था छिपा हुआ जो प्यार,
उसे आज पहचान सका हूँ
मिलकर तुममें, प्राणाधार !"

यही उनकी वास्तविक अनुभूति है। जीवन में कितने सुख, वैभव और आल्हाद के दिन आते हैं, परन्तु मानव उसे रख नहीं पाता। भला उसका वश ही क्या, जो वह रख सके ? वस्तु की उपलब्धि में कष्ट उठाना नहीं पड़ता; किन्तु उसे रख सकने की साधना चाहिए। मानव में वह शक्ति और साधना है कहाँ ! कवि को भी वह रत्न एक बार मिला था, पर वह भी उसे सँभाल नहीं सका। इसीलिए प्रियतम से "विस्मृति भिक्षा" माँगते हुए वह कहता है :—

"अवसर वह था सचमुच अमोल
गाया जब मैंने प्रथम गान,
पाया तुझको औ एक साथ
वैभव का उतना अधिक दान,
पर रख न सका उसको सँभाल।
जा भूल मुझे अब तू उदार !"

महाकवि गुप्त जी ने भी यशोधरा के विगलित हृदय की कातर तन्त्री के साथ अपनी रागिणी मिलाकर कहा है :—

"पाना दुर्लभ नहीं, कठिन है
रखवाने का ही प्रसङ्ग,
मिला मुझे क्या नहीं स्वप्न में
किन्तु हुआ वह स्वप्न भङ्ग!"

यह नियम है कि लोग पाकर ही खोते हैं, किन्तु ऐसा भी देखा गया है कि लोगों ने खोकर भी पाया है—पर बहुत कम। जिसने खोकर पाया है वह कभी उसे खो नहीं सकता, वह तो उसकी जन्म-जन्मान्तर की वस्तु बन जाती है। 'द्विज' जी का विवश हृदय विलोड़ित होकर इस सन्धान में भी निकला था :—

"पाकर खोता हूँ सतत, किंतु
खोकर पाऊँगा क्या न हाय ?'

कहीं-कहीं इनकी भावना इसी प्रकार बहुत ही ऊँची हो गई है। जिन्होंने केवल ऊपर ही से इनको देखने का प्रयत्न किया होगा, उन्हें इनसे कुछ नहीं मिला होगा, इसमें सन्देह नहीं।

छायावादी होते हुए भी इनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यही है कि समाज की भावनाओं के साथ अपनी भावनाओं को मिला कर चलते हैं। जगत् से बहुत दूर—आकाश में रहकर, केवल कल्पना के बल पर ही जगत् को देखने वाले कवि 'द्विज' जी नहीं, बल्कि वे उन कवियों में से भी एक हैं, जिन्होंने जग के पास ही अपना बसेरा बना लिया है और अपने पड़ोसियों के दुःख से दो आँसू भी बहाना सीखा है। सचमुच करुणा की वृत्ति स्वभावत उदार है, इसलिए 'द्विज' जी का हृदय भी उदार है। जगत् में वे मानव होकर जीना चाहते हैं। परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ कर मर-मर कर जीना उन्हें हरगिज़ पसन्द नहीं। जिसने आत्म-सम्मान के साथ जीना नहीं सीखा है वह मानव नहीं मानव का कङ्काल है! जिस कवि के प्रेम ने दरिद्रों के साथ दो आँसू न बहाया—केवल प्रियतम के साथ ही रहना सीखा तो उसका वह प्रेम और प्रेम-सङ्गीत मानसिक विलास का साधन मात्र है! उदार कवि हृदय तो गायेगा :—

"मर-मर कर जीना न पड़े माँ!
ग्लानि-गरल पीना न पड़े,
शीर्ण हृदय-अञ्चल को प्रतिपल
रो-रोकर सोना न पड़े!"

ऐसा जीना सचमुच जीवन के लिए तो भार-स्वरूप है!

"प्यास बुझाऊँ अरमानों की
ताप तरल पीकर कैसे?
ढोता चलूँ भार साँसों का
जीवन बिन जीकर कैसे?"

ये सब तरह की पीड़ाओं को सह सकते हैं, परन्तु पराधीनता के तरल ताप को पी लेना इनके लिए असह्य है। जिस संसार में मानव मानव का भक्षक हो, जिस सभ्यता में केवल नर-रक्त की ही पिपासा भरी हुई हो—ये उस संसार में ऐसी सभ्यता के साथ जीना तक नहीं चाहते और जीना तभी पसन्द करेंगे, जब बेकस की आहें अपराध की सूची में दाखिल न होंगी, दानवता मानवता को नहीं सतायेगी और स्वाभिमान दासता के बन्धन में पड़कर कुचला न जाता होगा :—

"जिऊँ तभी जब विह्वल विश्व को
व्यथा व्यालिनी डसे नहीं।
कपट दशानन अबल सरलता
सीता को हर हँसे नहीं।
फँसकर बधिक-जाल में बुलबुल
फूट-फूट रोये न जहाँ,
बिन बिकसी कलिका रजकण में
टूट-टूट खोये न जहाँ।"

और—

"जिऊँ, तुम्हारे मन्दिर में जब
ज्योति साधना की जागे।
स्वाभिमान के आँगन से जब
तिमिर दासता का भागे।"

यह तो हुआ उनकी कल्पना का संसार; केवल कल्पना

करके ही चुपचाप बैठने वाले शख्स ये नहीं, बल्कि कुछ करके भी दिखा देना चाहते हैं और माँ से यह वरदान माँगते हैं कि—

"माँ ! उर में वह आग लगा दे ।

* * *

शीतलता शोणित की हर ले,
रग-रग में नूतन बल भर दे,
धधक एक जिसकी ये गोले
यौवन को ज्वालामय कर दे,
उर देकर अब दूर दिखा निज
प्रलय लालिमा की छबि छन में,
उमड़ पड़े आह्लाद मरण का
जिसके आलिंगन से मन में,
जिसकी चिनगारी को चूमूँ
जो मुझमें नवज्योति जगा दे
माँ ! उर में वह आग लगा दे ।"

जिस कवि की कविताओं में युग की पुकार नहीं है, जो अभी पुराने पचड़ों को नहीं छोड़ सका है और बीसवीं सदी में रह कर सोचता है बारहवीं सदी की बातें उससे हमारे साहित्य का कल्याण होना सभव नहीं है । मैं मानता हूँ कि कोई भी जाति अपनी पुरानी रूढ़ियों को एकदम छोड़ नहीं सकती , पर किसी हद तक ही उमे ग्रहण करना उचित है ।

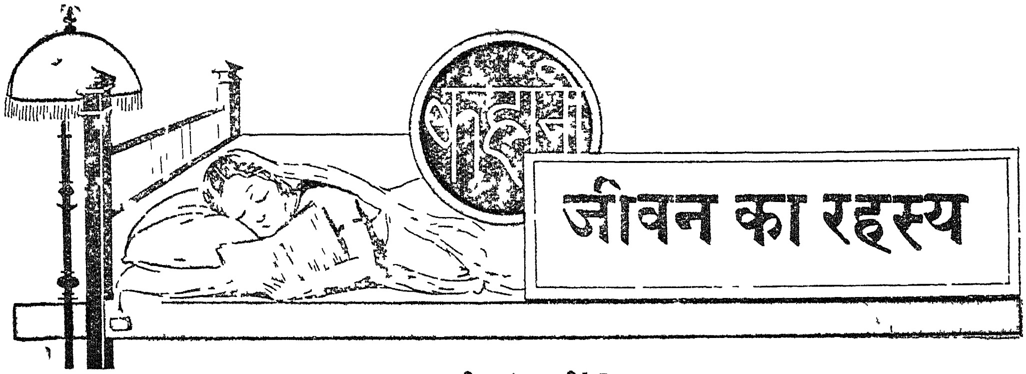
'द्विज' जी की काव्यधारा को समझाने के लिए यह केवल प्रयास मात्र ही है । उनकी और अन्यान्य विशेषताओं को और कभी समझाने की कोशिश करूँगा !

अनुभूति

[श्री० शिवनन्दनप्रसाद]

विश्व है प्रतिरूप मेरा !
आत्महग की कालिमा रजनी, तिलक मेरा सबेरा !
प्रात के शीतल मलय मे है थिरकते प्राण मेरे ;
विश्व तन्त्री की अमर झनकार जीवन गान मेरे ,
विश्व की चिर वेदना हो मौन मम उर मे समाई—
श्रोत से अम्बुधि बना हूँ खिल उठे है प्राण मेरे !
जगत का कण-कण बना है आज नव मेरा बसेरा !
विश्व है प्रतिरूप मेरा !

मृदु कपोलो पर उषा के अश्रु मेरे ही झलकते,
बैठ विटपो पर विहग पद वन्दना करते न थकते,
नील नभ मे है उमड़ती बादलो सी, आह मेरी,
शूल मम कितने हृदय मे अनल बन कर हैं धधकते !
खो गया उस 'एक' मे अणु अणु बचा मेरा न तेरा !
विश्व है प्रतिरूप मेरा !



जीवन का रहस्य

[श्री० 'पहाड़ी']

झुक बैठी लतिका के पास खड़ा किशोर उसे क्या समझाता। लतिका की सूनी और फीकी आँखों के आगे उसका पुरुष दिल पिघल रहा था। कभी क्या वह अपना हृदय इस नारी के आगे खोल कह सका था—मुझमें क्या है, तू भी पहचान ले। देख ले, जाँच ले, जिस भगवान के विश्वास पर तू समझती है सब सगे हे उसकी गवाही भी ले ले।

गुमसुम लतिका बैठी थी। बड़ी देर तक जैसे रोती रही हो। और ज़रा कुछ कहा जाय तो फिर आँसू! दिन भर सूने उस घर में, भला वह क्या सहारा पाती, अब वह विद्रोह भी सन्ध्या की धूप की तरह फैलता-फैलता उसे धोखा देकर भागता लगा।

किशोर ने देखा कि वह चुपचाप सिर झुकाये थी। हथेली का सहारा मात्र ही उस भारी दुःख को थामे लगा। कुछ, किसी की फिक्र उसे अब न थी। दिन भर के बुने जाल में वह इतनी उलझ चुकी थी कि कुछ भी पास न लगता। वह बिलकुल खाली थकी अब थी। सफेद धुली साड़ी में छुपी मात्र कोमलता बाकी रह गई थी, अब और सब तत्व तो दिन भर के खारी आँसू में घुल गये थे। उस कोमलता के समीप पहुँचते दिल आज डर क्यों जाता था?

धीमे किशोर बोला—'लतिका!'

लतिका बुत की तरह चुप बैठी रही।

किशोर चुप हो गया, उसका नाम बार-बार पुकार वह उसके नारीत्व को एकाएक नहीं जगावेगा। वह खुद अपने को समझ, जाग क्यों न जाय। किन्तु अपनी असहायता में सोई नारी को नींद ने उसे अपने में जगह दे, फिर छुटकारा देना नहीं सीखा है।

फिर किशोर ने पुकारा—'लतिका!'

नाम कह कर वह और आगे क्या कहे। सूझ नहीं पड़ता था। क्या वह समझाता।

लतिका अब भी न जागी। निश्चित वह थी। यह पुकार उसके दिल के गड्ढों में भर प्रतिध्वनित न हुई, उस अथाह वेदना में वह वहीं रल गई।

किशोर अपनी असहायता में क्या अब करता। वह मोढ़े पर बैठ गया। कुछ देर बाद मोढ़ा उसने आगे सरकाया। आहट पाकर लतिका चौंकी, उसकी भरपूर खिली आँखें उठीं, किशोर की आँखों ने उन दो आँखों को एक बार फिर पाया, फिर वे आँखें झुक गईं। कुछ सहारा पा बात के पकड़ में आने की उम्मीद से वह बोला—'लतिका!'

लतिका की आँखें अलग हट जाने पर भी, बिन्दु-बिन्दु में सीमित कुछ आँसू फर्श पर टपकते उसने पाये।

अवाक् उसने दुहराया—"लतिका!"

हल्की सिसकियाँ फिर गहरी। आखिर आँसू का तीव्र प्रवाह। अब लतिका अपनी सारी लाज-शरम को हटा रो रही थी। यही सब अब किशोर को सौंपना बाकी रहा था।

किशोर ने लतिका को कब पहचाना था। पिछले तीन साल में हल्की आहट की एक लीक खींचती, जीवन से लगी वह अलग-अलग ही रही। ज़रा अब वह पास

आई थी एक 'मार्फत' मिल जाने पर, हँस खेल चुटकियाँ लेती, अब मज़ाक कर लेती थी। भले ही किशोर में अपना कोई उत्साह बाक़ी न रहा था। फिर भी वह महसूस करता कि एकाएक वह अपने को अकेला नहीं मानेगा। अपनी जिम्मेदारी का खयाल उसे होता। लतिका को पास लगा लेने में अब कोई डर न लगता था।

किशोर ने लतिका को बचपन में कहीं देखा था। तब की इतनी याद बाकी थी—वह छोटी बच्ची थी। सुन्दर कपड़ों में सजी एक बार आगे एक रिश्तेदार के यहाँ मुलाकात हुई थी। लतिका को एकाएक वह पहचान न सका था। लतिका ने जब उसके पाँव छू लेने चाहे, तो वह चौंक पड़ा था। कुछ कहता क्या। आगे लतिका की कोई स्मृति पास न थी। अपने झमेलों और मुसीबतों में इधर-उधर देखने का मौका न मिलता था। एक दिन लतिका जब बिलकुल निकट आ लगी, तब जैसे एक अहसान लतिका पर उसने किया। लतिका पास रही, साथ-साथ वह फिर भी लतिका से बाहर था, भले ही लतिका उसमें थी। दोनों चुपचाप चलते थे। किशोर को अपने ऑफिस के बाद थोड़ा सा वक्त लतिका के लिए बचता था। लतिका घर के काम-काज में मशीन की तरह अपने को जुटाये रहती। 'रुटीन' के उस जीवन में लतिका में कभी-कभी किशोर से बातें कर व पूछ लेने का उत्साह बाकी था। लेकिन किशोर ने अपने को पहचान ख़ुद ही पढ़ लेने की ठान ली थी। लतिका को वह कम जवाब देता। एक सम्बन्ध मान, व पा भी, वह ज़्यादा पास उसे न रखना चाहता था।

किशोर के जीवन का एक लम्बा अरसा उस समाज में कटा था, जो 'रोमांस' के अलावा 'सेंसेसन' पर टिका है। वास्तव भी भीतरी ईमानदारी वहाँ नहीं बरती जाती। वहाँ का रोज़ाना काम घड़ी की टिक-टिक करते 'पैंडूलम' जैसे चलता था। वह सेंसेसन हेड क्लॉर्क की मेज़ के चारों ओर एक घेरा बनाता है, कि आगे बढ डस न ले, सन्देह अपने में उठता। जैसे कि बड़े और छोटे बाबुओं के बीच का ज़रिया वह हो। जो अपनी छाया से सारे दफ़्तर को ढक चैन से रहता है, उस सेंसेसन के कई 'चेप्टर' हैं। वह महीनों की मौसमी हवा की तरह बदलते हैं, 'रोमांस' का बचाव अपने में जगह नहीं देगा। वह इन्कार जीवन को चालू रखने में ठीक लगता। चापलूसी, खुशामद, फरेब वहाँ के भारी हथियार थे। उनके बीच अनजाने वह अपने को पाता। निपट अकेला वह देखता था कि सभ्यता के इस युग में सारी बुराइयों के बीच वह अकेला इकाई है। नौकरी के वातावरण के अलावा, इधर-उधर झाँकने का उसे मौका न मिलता था। ऑफिस में बैठा जब वह काम करता, तब ही देखता कि चाँदी की दहाई वाले 'ग्रेड' की यह नौकरी लेन-देन, व्यवहार में चाँदी की तरह जरूर चमकती है; पर भीतर थोथी है। बड़ी-बड़ी रात तक वह समझना चाहता था, उस व्यवहार को जो ऑफिस में बरता जाता था। उन कानूनों को जो वहाँ चालू है। जिनके लिए वह कह नहीं सकता है। चुपचाप चलता है। कारण पैसा भारी जरूरत है। पैसे से आज की खरीददारी चलती है। बिना पैसे जैसे एक क्षण ठहरने को दुनिया में जगह नहीं मिलेगी। अफ़स-रान की बातें जब दिल पर घाव करतीं, तब एक विद्रोह उठता। उसका घाव भी शरीर के बाहरी घाव की तरह मुलायम पड़ एक दिन ठीक हो दुखता न था। वह चिन्ह देख न पड़ता। चिन्ह से घृणा उदित होती। फिर जैसे पैसे के उस 'ग्रेड' से छुटकारा पा मुक्ति की प्राप्त राह पाने के लिए आत्म-हत्या लाज़िम हो।

टाइप की मशीन के आगे बैठना। दिन भर चुपचाप बैठे काम करना एक सनातन बात थी। जिसकी अवज्ञा और अवहेलना पर मज़दूर के प्रति मालिक का अवि-श्वास बढ जाता था। उस अविश्वास में हृदय को कुचल आत्मा को ठुकराने की भारी शक्ति थी। अपनी असमर्थता में सब सह लेना पड़ता था। जैसे कि मनुष्य और मनुष्यता की लड़ाई का वह गुरु हो। कभी-कभी एक कोमलता दिल को छूती थी। जब छी-छी-छो में साई आत्मा में एक ज्ञेय भूख उठती थी। उठकर उसे घेर लेती। ऐसे ही एक मूड में लतिका का सवाल किसी ने रख दिया। लतिका पास आई। वह गृहस्थ बन गया।

गम्भीर लतिका ने आकर देखा, सारे घर की अजीब व्यवस्था थी। सोचा, वह अपने आप सब सँवार

लेगी। किशोर ने कहा था—तुम्हारी मदद जरूरी थी लतिका !

'मदद'—दिल में बात लतिका के खेली।

'तुम ही न देख लो। भला नौकर पर कब तक मैं चलता।'

लतिका ने कोई जवाब न दिया था। किशोर के जीवन का उत्साह फीका वह महसूस करती रही। वह जानती थी कि किशोर और उसके बीच कई अड़चनें हैं। वहीं वह जगह बनावेगी। लतिका अपने में किशोर को न समेट सकी। ख़ुद उसमें रह गई। किशोर की बातों को दुहराने के अलावा, उसकी अपनी कोई राय न थी। उसकी धारणा, उसकी बातें, उसका तर्क सब किशोर के थे।

गृहस्थ की उस सीमा में ख़ुशी फिर भी न आई। किशोर का फीका पड़ा चेहरा, रोज लतिका पाती। कुछ वह कह न सकता था। न जानती थी कैसे वह उसे सहारा दे। किशोर को पत्नी का उतना ही ख़याल था, जो ज़रूरी लगता। इसके अलावा दुनियाँ भर की सारी परेशानियाँ साथ रहतीं। उस पत्नी ने आकर भी पति के जीवन में कोई रद्दोबदल नहीं किया। वह तो 'मशीन' में एक पुर्ज़ा बनी रही—संचालन से दूर।

एक दिन रात्रि को बड़ी देरी से वह लौटा। आकर देखा, पत्नी इन्तज़ार करते-करते आख़िर रसोई में पटड़े पर ऊँघते-ऊँघते सो गई थी। जग कर आँखें मलते बोली—'बड़ी देर लगाई।'

'देर' जैसे कि वह अब समझ सका हो। इस देरी के प्रति किसी ने सावधान रहने की हिदायत की हो। आज तक इस देरी का ख़याल करने का मौका न मिला था। सहज में उसने कहा—'तुम सो गई थी।'

अपनी असावधानी सुधारने को लतिका ने सफ़ाई दी—'बड़ी देर तक इन्तज़ार किया। मैं तो डर गई थी कि... ।'

'डर'—किशोर ने मलिन हँसते दुहराया—'भला डर से हमें क्या काम। वह हमारे लिए नहीं। इस बात का अभ्यास तुमको डालना चाहिए। न जाने कब बड़ी-बड़ी रात आना पड़े।'

'अभ्यास'—लतिका के दिल को शब्द छू गया। पति के इस हुक्म को वह मान लेगी। फिर जैसे उलझन मन में उठी—अकेले-अकेले वह कैसे रहा करे। पति की बेबसी पर चुप रह बात सँवारते कहा—'अच्छा चलो भी, अब खाना ठण्डा हो गया है।'

'मुझे भूख नहीं है। ज़रा दूध पी लूँगा।'—थका किशोर बोला।

लतिका ने आँख उठाकर पूछा—'तबियत ख़राब है।'

'नहीं तो।'

'तबियत ख़राब थी तो इतनी रात काम क्यों करते रहे ?'

किशोर कैसे समझाता कि मौत के बाद भी उसकी जगह ख़ाली नहीं रहेगी। ज़रा ख़राब होने पर परवाह किसी को नहीं। उसी दिन दो घण्टे छुट्टी माँग लेने को कहकर उसने दुनिया का सबसे बड़ा अपराध किया था। अन्यथा हेड क्लर्क यह न कहता—'किशोर बाबू ! इस तरह के दिन काम चलेगा। साहब ने काम माँगा है। आपकी तरह हम तो बहाना नहीं बना सकते हैं।'

'बहाना'—बिच्छू के लगे डङ्क की तरह उस उसके सारे शरीर में ज़हर फैल गया। इस लाचारी और मजबूरी को वह लतिका के आगे कैसे रखता। वह चुप रहा।

'चलो, कुछ तो... ।'

'तबियत नहीं करता। तुम तो बेकार झगड़ती हो'—झुँझला कर वह बोला।

लतिका चुपचाप ओट में सरक गई। जहाँ अँधियारे में आँखों में फैलता पानी किशोर न भाँप पाया। किशोर कमरे में लौटा। कपड़े उतार चारपायी पर लेटा-लेटा अख़बार पढ़ने लगा। बड़ी देर पढ़ता रहा। जब दूर वाले घण्टाघर ने एक, दो, तीन कर बारह बजाये तो उसने चौंक कर देखा, लतिका कमरे में न थी। वह उठा, बाहर आया। देखा, लतिका रसोई की फ़र्श पर सोई थी। उसने पुकारा—'लतिका ?'

लतिका उठी नहीं ! उसने मन ही मन सोचा, इस लतिका के क्या अरमान नहीं रहे होंगे। आज अपनी सारी दया से वह चाहता था लतिका को ढक लेना। उसके

प्रति किये बर्ताव की वह माफी माँग लेना चाहता था। तब उसने पहली बार भाँपा कि लतिका उतनी खिली नहीं लगती है, जितनी वह पहिले थी। वह मुरझा गई थी। इस लड़की ने उसका क्या बिगाड़ा है, जो वह अपने सारे गुस्से को उसे सौंप, निश्चित अलग रहना चाहता है। पास जाकर उसने अपनी भावुकता से लतिका का सिर हल्के हिलाते कहा—'उठो यह क्या बात है!'

लतिका की नींद टूटी। वह चुपके उठी, एक ओर सिर झुकाए खड़ी हो गई। वह लाज से चुप रही। यह सोना ठीक न था। परिस्थितियों में वह क्या करती। जब वह उसकी बात को अहसान गिनता है तब लतिका अपनी उलझन में लाचार हो गई। वह समझना चाहती थी सब कुछ। थक कर नींद ने सारी बात सुलझा दी। वह व्यवस्था बन गई।

किशोर ने एक बार रसोई में चारों ओर नजर डाली, लतिका अब भी सिर झुकाये थी। कहा उसने—'इतनी बात में गुस्सा हो गईं। खाना भी नहीं खाया!'

लतिका कैसे समझाती कि वह अकेले नहीं खा सकती है। इसका जवाब उसके पास नहीं था।

किशोर फिर बोला—'खाना खालो। बड़ी रात गुज़र गई। बारह बज गया है।'

साहस कर लतिका ने कहा—'और तुम .....'

किशोर बरसों से सीखी आदत में अपनी पिछली बात को ठीक समझता कह बैठा—'कह दिया न, मुझे भूख नहीं है।' चुपचाप कमरे में चला आया।

कुछ देर बाद लतिका कमरे में आई और मेज़ पर दूध का गिलास रख दिया।

किशोर ने पूछा—'खाना खा लिया?'

लतिका मौन खड़ी रही—खाली गिलास को ले लेने, जवाब क्या देती।

किशोर कुछ सोचता रहा। सँभल कर बोला—'खूब, तुम तो ज़रा सी बात पर नाराज़ हो गई।'

लतिका अपनी नाराज़ी को खूब पहचान गई थी। इसमें कुछ अब कह लेने की गुञ्जायश न थी।

किशोर ने फिर कहा—'बड़ी रात हो गई। बरतन कल मेहरी माँज लेगी। नल भी चला गया होगा!'

लतिका ने कुछ नहीं कहा। चुपके बाहर खिसक गई।

किशोर को ज़रा नींद आई थी कि सुना—'घिस, घिस, घिस।'

बाहर जाकर देखा, चुपचाप लतिका बरतन माँज रही थी। 'डिज' की लालटेन का मन्दा प्रकाश उस पर पड़ रहा था। वह निमग्न अपने काम पर मशगूल थी। किशोर कब उसके पास आ खड़ा हुआ, वह जान न सकी, कुछ देर खड़ा का खड़ा वह रह गया। वह समझ लेना चाहता था, लतिका किस तत्व की बनी है। जिसे अपनी ज़रा भी परवाह कर लेने की फुरसत नहीं और वह सँभल कर बोला—'कल क्या मेहरी बरतन नहीं माँज सकती थी?'

तन्द्रा से चौंक, लतिका ने अपना आँचल सरकाया। अपनी इस अस्तव्यस्तता पर उसे भारी लाज लगी। कहा उसने धीमे स्वर में—'मेहरी नहीं आती है। कल ऑफिस को देरी हो जाता। सुबह बड़ी ठण्ड पड़ती है, ' पति के नाराज़ी के बचाव में वह सब कह गई।

आश्चर्य से किशोर ने पूछा—'नहीं आता?'

वह भारी आवाज दालान में खो गई। फिर वही—'घिस-घिस-घिस'

किशोर अब सारी परिस्थितियाँ समझ गया। ऑफिस में सही झिड़कियाँ इस नारी की कोमलता में छुप गईं। उसके दिल का एक भार हट गया। एक कोना सूना हुआ, जहाँ लतिका सस्ती लगी। वह अपनत्व में बोला—'खाना खा लिया?'

'घिस-घिस-घिस'—बन्द, लतिका चुप।

कुछ देर बाद फिर—'घिस-घिस घिस।'

'नहीं खाया, कैसी हो तुम'—लतिका की पीड़ा पीता वह बोला।

'घिस-घिस-घिस' फिर बन्द, कोई जवाब नहीं।

'बुरा मान गई, क्यों?'

'घिस घिस-घिस' धीरे-धीरे बन्द, काफी देर तक बन्द, लतिका चुपचाप हाथ में माँजने का कपड़ा उठाए का उठाये रही। दूसरे हाथ का बरतन ज़मीन पर ठन् से गिर पड़ा। उस सन्नाटे में वह आवाज़ गूँज उठी।

किशोर पास आया। कहा—'चलो पहिले खाना खा लो। यह तो . .'

लतिका के हाथ से मोजने का कपड़ा छूट पड़ा।

किशोर ने लतिका का हाथ पकड़ कहा—'चलो, उठो।' फिर बालटी से लोटे पानी भर बोला—'हाथ धो लो।'

लतिका ने लोटा ले लिया। हाथ धो लिए, आँचल से आँखों में भरे आँसू पोंछ डाले किशोर ने सब देखा। अपने व्यवहार के प्रति वह मन ही मन खिन्न हुआ। लतिका चुपचाप रसोई में सरक गई। किशोर दरवाजे पर खड़ा हो गया, बाहर से बोला—'भला इतनी बात पर कोई भूखा रह सकता है!'

लतिका अँधियारे में खड़ी थी, किशोर ने लालटेन लाकर रखते कहा—'अब क्या देर . ...।'

बात पूरी कह भी नहीं पाया था कि लतिका ने अपनी सूजी लाल आँखें उठा उसे देखा।

'पीछा थोड़े छोड़ोगी। अच्छा क्या साग बना है?' हँसकर किशोर बोला।

'आलू-मटर-टिमाटर का और... .।'

'यों कहो, नये साक की बानगी दिखानी थी।'—वह मुसुकराते कहता रहा—'पहिले कह देती तो इतनी बात न बढ़ती, अच्छा एक रोटी खा लूँगा।'

किशोर बैठ गया। लतिका ने थाली में सब खाना संरोज, थाली आगे सरकाई।

'चार रोटी.. ' किशोर गिन कर बोल बैठा।

लतिका ने किशोर को देखते कह दिया, रोटी गिनने की आदत अभी नहीं छूटी।

किशोर ने ही एक दिन लतिका से कहा था कि बोर्डिङ्ग में रोटियों पर बाजी लगती थी और वह हमेशा हारता था। नौकर भी रोज़ शिकायत करता था कि बाबू पाँच रोटी से ज़्यादह नहीं खाते हैं।

खाकर किशोर चुपचाप चारपाई पर लेट गया। कुछ देर बाद लतिका उससे लगी गहरी नींद सो गई। किशोर को नींद न थी। नींद हड़ताल ठाने थी। पास लतिका की गहरी-गहरी साँस भारी सान्त्वना देती। उसने लतिका के बालों में अपनी उङ्गलियाँ उलझा खेलना शुरू किया। आज भारी उत्साह उसे था। लतिका को जाने फिर भूख कैसे उठी। वह अनजान बना जान लेना चाहता था, अपने अनुभव में नारी कोमलता एक नया जीवन देती लगी।

उसका खोया विद्रोह फिर एक बार उठा। अपनी इस पत्नी को क्या वह कभी सहारा नहीं देगा, जो उसकी गृहस्थी को अकेले थामे है। उसे याद आई उसी दिन दुपहरी को वह साहब के यहाँ जरूरी काग़ज लेकर गया था। बाहर बैठे चपरासी ने रोकते कहा था कि साहब चाय पी रहे हैं। डाइनिंग रूम में उसने बच्चों की चुहल और प्यालों की आवाज़ सुनी थी।

और हाथ बढ़ता-बढ़ता लतिका के माथे पर पहुँचा। माथे से नाक की नुकीली जगह पार कर, कोल पर अटक गया। हलके लौंग उसने छुई।

फिर साहब आफिस के कमरे में आए। मुहँ पर चुरुट था। पास के कमरे में लड़कियाँ सिनेमा जाने पर झगड़ रही थीं। वह चुपचाप खड़ा का खड़ा दस्तख़त करा रहा था।

एकाएक बड़ी लड़की ने कमरे में आ पूछा—'आप सिनेमा नहीं चलगे।'

किशोर ने कागज़ उठा फाइल में रखने दूसरी फाइल आगे सरका दी थी।

साहब बाले थे—मुझे फुर्सत नहीं, तुम लोग चली जाना।

किशोर की उङ्गलियाँ लतिका के गालों पर रुक गई, आगे कान के पास पहुँच, एक ओर पड़े बुन्दे को झुलाने लगीं। अपने में बात उठी, लतिका भी कभी ऐसे ही मुक्त थी और आज... ?

काफी देर बाद वह साहब के घर से लौट रहा था। देखा था उसने, बड़े लड़के को साइकिल पर टैनिस खेलने जाते। फाटक के पास पहुँचा था कि 'मेम साहिबा' मय लड़कियों के 'कार' में उसे बहुत सा धूल सौंप चली गई थीं।

लटकन हाथ से छूट गया। हाथ एक ओर हटा। वह अब लतिका को छूकर क्या पा लेगा। एक गहरी साँस उसने ली। लगा लतिका उसके जीवन में पसरती, निराशा बढ़ा रही हो। मन उचाट हो आया। मनुष्य

की उस सभ्यता से अविश्वास हुआ, जहाँ श्रेणी लोगों ने बनाई है। एक दूसरे का खयाल जहाँ नहीं। झोंपड़ों से महल का सम्बन्ध भी तो नहीं। इस इतनी बड़ी दुनिया में कोई उसकी और लतिका की मखौल आज क्यों उड़ा रहा था। लतिका का खयाली भगवान और भाग्य भी उसका साथ कहाँ देता है। वह उसे ऐसे व्यक्ति को सौंप गया, जो उसे न सम्हाल सका। लतिका उस भाग्य-भगवान को मानती है। रोज घण्टों उस भगवान पर विश्वास रख पूजा करती, थकती नहीं। कहती—तुम नास्तिक हो। हम तो, जो पुराने मानते आए, वही ठीक समझते हैं।

इस तर्क का जवाब किशोर देता—तुम अपने देवता पर विश्वास करो। कब मैंने मना किया है।

'देवता की'—लतिका बात न पकड़, अटक जाती।

उस भगवान ने अब के जाड़े में भी इतने रुपये न जुटाए कि लतिका एक गरम मोटी साड़ी लेकर जनवरी के जाड़े से बचती।

लतिका के भगवान की श्रद्धा के विपरीत वह नास्तिक था। भगवान को मान लेने की उसे फुर्सत नहीं थी। वह सोचता—जिसका भगवान कागजों, पैडों में छुप कर उसे नहीं मिलता! वह जिसका विधाता अफसरों की चापलूसी और ख़ुशामद करने उसे अकेला छोड़ जाता है। वह जिसका भाग्य ऑर्डर और सिलपों पर निर्भर रहता है, वह आखिर क्यों यह सब मान ले।

वह चौंक उठा। लतिका ने करवट बदली। लतिका का हाथ उसकी छाती पर आ पड़ा। उस हाथ को हटाने की सामर्थ्य चूक गई। हल्के उस मुलायम हाथ को उसने अपनी हथेली से ढक लिया।

एकाएक लतिका की नींद टूटी। अपना हाथ उसने हटा लिया। किशोर समझ कर भी चुप रहा।

लतिका ने कहा—अभी सोए नहीं?

'क्या'—किशोर ने पूछा।

लतिका ने अपना हाथ किशोर के माथे पर रख, कहा—तबीयत ज़्यादा ख़राब है। रुक कर बोली—मुझे नींद आ गई थी।

अब भी किशोर को न सूझा कि क्या कहे। हल्के लतिका का हाथ उसने अपने में ले लिया। कुछ देर लतिका सावधान रही। फिर उसे नींद आ गई। किशोर ने हाथ छोड़ दिया। उठ कर लतिका के बालों से 'क्लिप' एक एक कर निकाल फैलाए, अँधियारे में फैले बालों के बीच छुपा मुँह ख़ूब पहचाना। बड़ी देर उस घने अँधियार में मुँह पढ़ता रहा। आखिर हल्के उसने लतिका के ओठों को चूम लिया और निश्चित सो गया।

सुबह उसकी नींद टूटी। देखा, लतिका खड़ी थी। बाल पीछे फले थे। उसको तौलिए से पोंछ रही थी। उसे उठते देख बोली—चाय ले आऊँ।

'नहीं कुछ देर में'—किशोर ने कह दिया। सिगरेट मेज़ पर से उठा कर पूछा,—'दियासलाई कहाँ है।'

लतिका बाल झाड़ते—बोली, कल लाए भी थे। बड़ी मुश्किल से ढूँढ़ कर आग जला पाई हूँ।

और किशोर ने सिगरेट बढ़ाते कहा—इसे सुलगा ला।

लतिका ने सिगरेट ले ली। एक बार सिगरेट को देखा, फिर किशोर को।

किशोर बोला—कच्ची के नोक वाली तरफ जलाई जाती है।

लतिका चुपचाप रसोई से जलता कोयला ले आई। सिगरेट सौंपती बोली—लो अपनी सिगरेट।

'वाह, तुमको जलानी पड़ेगी।'

'लो-लो।'

'हर्जा क्या है।'

'तुम भी।'

'और तू।'

लतिका कोयला और सिगरेट 'ऐशट्रे' पर सवाँरती जाने को थी, कि किशोर ने उठकर उसके बाल पकड़ लिए।

'छोड़िए!'— लतिका शर्मा कर बोली।

'और सिगरेट।'

'छोड़िए तो सही।'

'पहिले सिगरेट।'

हारी लतिका ने सिगरेट उठा ली। उठाकर जलते अङ्गारे पर नोक रख, अङ्गारे को फूँकने लगी।

'यह मदारी का तमाशा नहीं है।' किशोर हँसते बोला—'ख़ूब! इतनी तमीज भी नहीं।'

लतिका ने देखा, धुआँ कुछ आ रहा था। सिगरेट का नोक काला पड़ता, सुलगता लगा।

'इस तरह नहीं। मुँह पर लगाकर, हवा ऊपर को खींचिए।'

लतिका ने सिगरेट 'ऐशट्रे' पर रख दी। जल्दी-जल्दी कहते जाने लगी—'आठ बज गए। ऑफिस भी तो जाना है।'

किशोर ने हाथ पकड़ते कहा—'बहाना ठीक नहीं पहिले ।'

लतिका ने अपना आखिरी शस्त्र छोड़ा—'पूजा नहीं की।'

अब किशोर के पास कोई बात न रह गई। चुपचाप उसने सिगरेट ली और फूँकने लगा। लतिका चली गई।

साइकिल पर ऑफिस जाता किशोर सोच रहा था, कि मनुष्य का दिमाग ही क्या सारे विद्रोह की जड़ है। अन्यथा पशु-पक्षी के लिए इतने नपे-तुले-कसे, कायदे-कानून नहीं। लतिका और वह पैसे पर टिके हैं। इधर-उधर नहीं जा सकते। दुनिया के इतने बड़े-बड़े मकानों के बीच उनकी जगह क्यों नहीं। क्यों वे बैंक एकाउन्ट नहीं रख सकते हैं। यह सब प्राप्त नहीं। तब भी उनको सारी दुनिया के बीच चलना जरूरी है। लगा, सारे उत्साह, ख़ुशी, गमी, प्रेम पर 'पैसे' की ऐसी काई जम गई है जो हटाए नहीं हट सकती है। दुनिया से बाहर वे नहीं, वहीं सब उनपर लागू है और रहेगा।

सन्ध्या को घर वह लौटा। दरवाज़े की ओट में खड़ी लतिका उसे मिली। वह उत्साह से बोली—'आज सिनेमा चलेंगे।'

'सिनेमा .... '—किशोर ने दुहराया—'वहाँ अच्छी फ़िल्म नहीं है।'

'है'—कहकर लतिका ने हैन्डबिल मुट्ठी से खोल किशोर को सौंपा।

किशोर ने हैन्डबिल पढ़, फेंक दिया। चुपचाप अन्दर कपड़े बदलने लगा।

लतिका बोली—'खाना ले आवें' उसने सिर हिलाया।

खा-पी जल्दी कपड़े ठीक कर, वह बाहर जाने को था कि लतिका ने टोका—'सिनेमा '

'मैं भूल गया'—किशोर ने बात सुधारते कहा। दिन को साहब ने कहा था—'लड़कियों को कुछ साड़ी चाहिए। साँझ को ले आना।'

लतिका मन मार कर चुप रही। किशोर सारी बात की अवहेलना कर चला गया था।

लतिका ने अपने को भुलाने, ऊन की पिंडी आलमारी से निकाली। चुपचाप बुनने लगी। वह अपने उत्साह और अपने को भी बुनती सलाइयों को सौंप देना चाहती थी। अकेले रहने का अभ्यास होने पर भी एक कमी महसूस हुई। अपने पति के अलावा कुछ उसे नहीं चाहिए, मन बुझाव किया।

बड़ी रात जब किशोर लौटा तब वह तय कर चुकी थी, कहेगी—मुझसे अकेला नहीं रहा जाता है, तुम कैसे हो, कुछ किसी की परवाह नहीं करते हो। किशोर के आगे वह कुछ न बोल सकी। किशोर ने कागज का लिफ़ाफा उसे सौंपा। लतिका ने देखा, ऊनी साड़ी थी, ख़ुशी से पुलक उठी।

किशोर बोला—पहिन तो लो।

लतिका ने तह कर, लिफ़ाफा सँवारते कहा—कल पहिन लूँगी, जल्दी क्या है?

'अभी पहन लो।'

लतिका ने आलमारी में लिफाफा रख दिया।

'पहिनते शरम लग रही है।'

'कल को।'

किशोर उठा, लिफ़ाफे से साड़ी निकाल, बोला—लो!

लतिका ने साड़ी का एक छोर ले लिया। बा क़ी

लापरवाही से फर्श पर फैला था। फैला ही रहा। लतिका कैसे साड़ी बदले, समझ न पड़ा।

लतिका को खड़े देख किशोर बोला—'जरा देर की।'

'नहीं, कल को।' लतिका साड़ी की तह करने लगी।

'अभी पहननी पड़ेगी। याद है, जिस दिन मेरा सूट आया था, आधी रात तुमने पहिनने को मजबूर किया था।'

निरुत्तर लतिका कैसे समझाती, नारी-हठ क्या है। पुरुष के पास वह ठीक नहीं, अवज्ञा न कर सकी, चुपचाप बाहर दालान में जाकर बदल लाई।

किशोर ने लतिका को सिर से पाँव तक घूरते कहा—हूँ, तुम तो ख़ूब भली लगती हो।

'तुमको और कुछ काम नहीं।' हँस कर कहते लतिका बाहर चली गई। कुछ देर बाद लौट आई। चुपचाप 'पुल ओवर' सलाई से बुनने लगी।

जीवन में टाइप की काली मशीन के आगे टिप-टिप-टिप कर किशोर ने एक लम्बा अरसा गँवाया था। कारबन टाइप किए कागज की फाइलों बीच कभी सोचा न था कि एक दिन लतिका से वास्ता पड़ेगा। ऑफिस में स्टेटमेन्ट, ड्राफ्ट और जरूरी कागजों के बीच कहीं कोई तस्वीर दुबकी न मिलती थी कि ढूँढ़ लेता और ऑफिस के उस जहरीले वातावरण में जहाँ एक दूसरे को धोखा देना सबक है, न जाना था उसने कि एक ईमानदार साथी उसे मिलेगा। ऑफिस के वातावरण की घृणा ने उसे निर्जीव बना दिया था। उस पालतू घृणा को लतिका ने आकर छुटकारा देना चाहा। लतिका को पाकर उसने सोचा कि वह अपने पर विश्वास करेगा।

कुछ सोच एकाएक वह बोला—'लतिका।'

लतिका ने सींकें रोक, उसकी ओर देखा।

'तुम नाराज तो नहीं हो गई थी। हमारी जिन्दगी का इम्तहान क्या किसी सिनेमा तमाशे से कम है।'

लतिका बात न समझी। बोली वह—'हमको एक कुत्ते का पिल्ला ले आना।'

'कुत्ते का'

'अकेले जी नहीं लगता।'

'तब एक अजायब-घर खोलने का इरादा है।'

'नहीं ले आना। कह दिया।'

किशोर दूसरे दिन ले आया था।

× × ×

जानी पहचानी उस लतिका को आज वह क्या समझाता। उसके कितने आँसुओं को बटोर उसने अपने दिल को नहीं धोया था। यह लतिका का आज कैसा विद्रोह था। क्या चाहती है, उससे वह खुद असहाय था। वह निर्बल था। लतिका को क्या सहारा देता। अनमनी बैठी लतिका पहचान से आज दूर न थी। जिस दिन लतिका माँ बनी, उस दिन दोनों ने समझा था। अब किशोर के पिता बनने की ज़िम्मेदारी के साथ, लतिका को भी अकेला रहना नहीं होगा।

गुड्डा सा बच्चा। माँ चाहती, वह उसे प्यार करेगी। पिता कहता—वह भी अधिकारी है। पिता ऑफिस के शोर-गुल के बीच अक्सर सुनता, बच्चे के रोने की आवाज़। लतिका को भी अब कोई शिकायत न थी।

एक दिन किशोर बड़ी रात आकर बोला—'अब तो डर भाग गया।'

'चुप रहो, अभी-अभी वह सोया है।' धीमे लतिका मना करती बोली।

किशोर ने पलङ्ग के पास जाकर बच्चे का मुँह चूम लेना चाहा, कि लतिका ने रोकते कहा—'सोये बच्चे का'

'यह दकियानूसी बात मैं नहीं मानता।'

लतिका हाथ जोड़कर बोली—ज्यादा शोर न मचाओ।

मजाक में किशोर ने लतिका का हाथ पकड़ खींचना चाहा। 'हाँ-हाँ-हाँ' करती लतिका हाथ छुड़ाती पाँच गज पीछे हट गई।

किन्तु अनजान माता-पिता का वह बच्चा उनकी असावधानी से बीमार पड़ गया। दोनों परेशान रहने लगे,

किशोर को आफिस फीका लगता। काम करते-करते भी उसका मन बच्चे के पास रहता। अपने दु ख को वह किससे कहता। इस पर रोज़ कुछ न कुछ भली बुरी बातें वह सुनता था। हेड क्लॉर्क बार-बार उसे धमकी देता, साहब उसके काम से खुश नहीं। एक दिन बच्चे की बीमारी में जब उसने कुछ देर की छुट्टी माँगी तब खरी-खोटी बातें सुन, उसकी आत्मा को बड़ा आघात पहुँचा।

उधर माँ बच्चे की बीमारी में अपने को भी भूल गई। जो, जो कुछ राय देता वही करती। दुनिया भर के राख कवच मन्त्रों से बच्चे की रक्षा करना चाहती थी। बच्चे को लेकर ऐसी वह लीन थी कि पति की परवाह भी उसे न रही। पति की राय का सहारा फिर भी था। बच्चे की हालत न सुधरी। नहीं सुधरी। किशोर का मन उचट गया। ऑफिस में दिल न लगता था। उसकी बेबसी का ख़याल किसी को न था। वह घबरा उठता। कभी कभी वह दार्शनिक बन सोचता जीवन पर। जहाँ एक दूसरे की बात का लिहाज नहीं, हर एक दूसरे को निगलने को तय्यार रहता है। सब अपने को छुपाकर ऐसी बनावटी बातें करते हैं कि डर लगता है। बच्चे की बीमारी की वजह से दो दिन की छुट्टी लेकर तीसरे दिन जब आफिस पहुँचा तो देखा, हेड क्लॉर्क की आँखें उसे निगलने को तय्यार थीं।

हेड क्लॉर्क ने उसे अपनी मेज के पास बुलाकर पूछा—आपका नौकरी करने का इरादा नहीं है।

किशोर चुप।

'यह दफ्तर है, यतीमखाना नहीं।'

किशोर क्या जवाब देता।

'आपको मालूम था कि बजट का जाना जरूरी था। बहाना ठीक था फिर, मनमानी छुट्टी......'

चुपचाप सिर झुका किशोर काम करता रहा। अपने जीवन की निम्नता में इधर-उधर आँखें वह कैसे उठाता। नील का वह दाग़ धुल सकता नहीं था।

बड़ी रात बीत जाने पर किशोर घर पहुँचा। दरवाजा खुला पाया अन्दर पहुँचा। देखा, लतिका फर्श पर एक ओर चुपचाप सोई थी और बच्चा पलङ्ग पर।

उसने पुकारा—'लतिका'

लतिका की नींद टूटी।

फिर उसने पुकारा—'लतिका'

लतिका नहीं उठी।

चुपचाप वह कुछ देर खड़ा का खड़ा ही रह गया। पलङ्ग के नज़दीक आकर देखा, बच्चा ठिठुरा पड़ा था। नज़र गड़ी लतिका पर। आँखों में आँसू भर आए। उनको पोंछ लतिका के पास बैठ गया। लतिका का सिर अपनी गोदी में ले, उसके चेहरे को देखा। कुछ देर बाद लतिका ने आँखें खोलीं, अपने को सँभाला। एक ओर हटी।

किशोर क्या कहता। इस परिस्थिति से वह अनभिज्ञ था। वह अवाक् लतिका की ओर देखता रह गया। वह चुपचाप सिर झुकाये रही।

वह बोला—लतिका, तुम्हारे भगवान ने उसे छीन लिया!

लतिका के दिल का रुका दुःख फूट निकला, वह फूट-फूट कर रोने लगी।

अब किशोर घबड़ा उठा। कब तक लतिका रोती रहेगी। वह क्या समझावे।

लतिका के आँसुओं को क्या फर्श धोना बदा था कि एक भारी तिरस्कार, मनुष्यता के बीच अपनाने वह तुली। दुनिया के इस भारी दु ख की अवहेलना किशोर न सह सका। बोला—'यही था होना।'

गहरी-गहरी सुबकियाँ, फिर और गहरी। एकाएक लतिका ने रोना फिर से शुरू किया। गोदी के घाव से फिर पानी टपकने लगा, कोई शक्ति न थी कि वह रुक जावे।

किशोर ने और पास सरक लतिका को ठोढ़ी उठा, उसके आँचल से आँखों को पोंछते कहा—अब रोकर...

सिसकती लतिका अपने को सौंपे रही, अब ज़्यादा लाज-शरम उसे न लगी!

उस रात्रि जब बच्चे को ज़मीन की मुलायम गदेली पर सुला किशोर घर लौटा, तब आकर उसने देखा, लतिका चिन्ता-मग्न कुरसी पर बैठी, गहरे विचार में डूबी थी। उसकी आहट पाकर भी वह चौंकी नहीं। गिरा आँचल पड़ा का पड़ा रह गया। बच्चा उसके जीवन को छीन ले गया था। जड़वत् थी वह, अब ....

और आज ऑफिस से लौट कर किशोर ने पाया कि लतिका को फिर नारी कमज़ोरियाँ घेरे थीं। उन आँसुओं को वह कैसे सुलझाता, कैसे समझाता कि उसकी पिछली दो दिन की छुट्टी, व हेडक्लार्क की नाराज़ी की वजह से साहब ने उसे डिसमिस कर दिया है। वह अब मुक्त है। वह क्या अब करेगा। अभी तक हेडक्लार्क के शब्द कानों में गूँज रहे थे—मज़दूरी हम देते हैं। आपका दिमाग बहुत चढ़ गया था। पन्द्रह-पन्द्रह रुपये में 'ग्रेजुएट' मिल सकते हैं।

यह बी० ए० पास कर किशोर ने एक भारी अपराध जैसे किया था, कि उसे उस समाज में उपेक्षित होना पड़ा।

लतिका के आँसू थम गए थे, वह थक गई थी। अब उठ खड़ी हुई।

किशोर बोला—लतिका!

लतिका चुप रही, सुनने को तयार।

किशोर ने फिर कहा—तुम कल मायके चली जाओ।

लतिका ने कुछ न समझ कर किशोर की ओर देखा।

'नौकरी छूट गई। वहाँ लोग सही और गलत आदमी की पहचान नहीं जानते। तुमको वहाँ जाना ही होगा।'

लतिका अवाक् खड़ी रही। किशोर फिर बोला—'कभी तुम्हारा भगवान! शायद '

और वह बात पूरी किए बिना ही सिगरेट फूँकने लगा। अब वह कब तक फिक्रों व तवालतों में पड़े।

लतिका ने पास आकर धीमे से कहा—'क्या कहा तुमने ?'

'नौकरी छूट गई।'

'छूट गई '

'तुम मायके चली जाओ'—कह सिगरेट का बहुत सा धुआँ मुँह में भर लिया। फिर धीरे-धीरे बाहर की ओर फूँका। वह साबित कर देना चाहता था कि वह निश्चित है।

लतिका ने पास आ किशोर का हाथ अपने में ले अपनी आखें ज़रा उठाते पूछा—और तुम.. ?

किशोर ने फिर बहुत सा धुआँ मुँह में भर बाहर फूँका।

नाम की

(१)



दयाराम

नाम की [illegible]

(२)



बहादुरसिंह

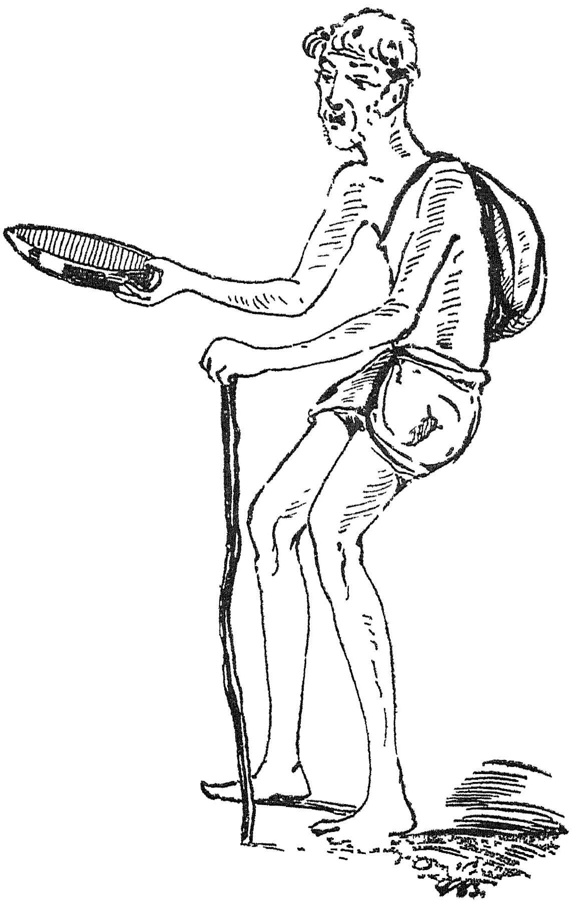
(३)



मनोहरलाल

नाम की विडम्बना

(४)



लखपतिराय

नाम की

(५)



कुसुमलता

नाम की

(६)



रूपकुमारी

नाम की

(७)



लज्जावती

नाम की विडम्बना

(८)



सावित्री


पके शृङ्गार का सुलभ साधन
स कार्यालय की वस्तुएं समस्त भारतवर्ष में अपने अचूक गुणों के कारण प्रसिद्ध हैं।
बर्म्मन

विज्ञानाचार्य सर जगदीश बोस

[श्री० आत्मानन्द मिश्र, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, विशारद]

जगदीशचन्द्र का जन्म सन् १८५८ ई० में ढाका जिला के विख्यात विक्रमपुर गाँव में हुआ था। इनके पिता स्वर्गीय बाबू भगवानदास बोस फरीदपुर में डिप्टी कलक्टर थे। वे बड़े ही विचारवान तथा देश-प्रेमी थे। उन दिनों अङ्गरेजी शिक्षा-प्रणाली का आरम्भ ही था। बहुधा लोग चक्कर में पड़ जाते थे कि वे अपने बालकों को अङ्गरेजी स्कूल में भेजें अथवा देशी पाठ-शालाओं में। परन्तु डिप्टी साहब के लिये ऐसी कोई समस्या न थी। उन्होंने जगदीश को एक पाठशाला में पढ़ने भेजा। उनके नीचे के अफसरों के लड़के अङ्गरेजी स्कूलों में पढ़ते थे, परन्तु उन्होंने अपने पुत्र को कहार, मछुआ तथा किसान के लड़कों के साथ ही पढ़ाना ठीक समझा। इनकी माता बड़ी धर्मात्मा थी। जब जगदीश अपने अछूत साथियों के साथ घर आते तो माता बिना किसी भेद-भाव के उन धूल-धूषित बालकों को गोद में उठा लेती और प्यारपूर्वक उन्हें खाने को देती।

जगदीश की देख-भाल के लिये एक विचित्र नौकर रक्खा गया। एक दिन डिप्टी साहब ने अकेले डाकुओं के एक गिरोह पर आक्रमण किया और उनके एक सरदार को पकड़ लिया। उसको लम्बी सजा मिली। जेल से लौट आने पर वह फिर डिप्टी साहब के पास आया और बोला कि अब मैं पुराना पेशा न करूँगा, मुझे कोई नौकरी दीजिये। डिप्टी साहब ने उसे जगदीश की देख रेख के लिये रख लिया। वह चार वर्ष के बालक को घुड़इयाँ लेकर स्कूल जाता था। बालक इससे प्रसन्न रहता। कारण कि वह उसे किसी प्रकार का कष्ट न होने देता और बहुधा मनोरञ्जक डाके की कहानियाँ सुनाया करता था। एक बार जगदीश बाबू और यह नौकर नाव पर आ रहे थे। अकस्मात् बहुत सी बड़ी-बड़ी नावों ने आकर इनको घर लिया। अब तो जगदीश बाबू की जान बचाना कठिन हो गया। परन्तु डाकू नौकर ने यह देख कर तुरन्त अपने मुँह से एक विचित्र विधि की सीटी बजाई, जिससे देखते देखते सब नावें अदृश्य हो गईं। तब से डाकू होने पर भी जगदीश बाबू उसे बड़ा विश्वास-पात्र समझते थे।

डिप्टी साहब ने कई औद्योगिक पाठशालायें खुलवाई थीं। इनमें जगदीश बहुधा जाया करते थे और नई नई वस्तुएँ बनाने में निमग्न रहा करते थे। आगे चलकर बड़े-बड़े यन्त्र बनाने में आपको इससे बड़ी सहायता मिली। आपने स्वयम् भी लिखा है कि "इन पाठशालाओं से सम्बन्ध रहने के कारण मेरी प्रवृत्ति आविष्कार करने की ओर बढ़ी।" सेण्ट जेवियर कॉलेज कलकत्ता से बी० ए० पास कर लेने पर आपकी प्रबल इच्छा हुई कि आई० सी० एस० परीक्षा पास करने के लिये इङ्गलैण्ड जायँ। परन्तु अपने पुत्र की सफलता का पूर्ण विश्वास होते हुये भी बाबू भगवानदास ने उन्हें वहाँ जाने से रोक दिया। वे अपने पुत्र की शक्तियों को भली-भाँति जानते थे और उन्होंने उसकी प्रवृत्ति का खूब निरीक्षण किया था। डॉक्टर बोस ने स्वयम् ही इस बारे में लिखा है—"मेरे पिता का मुझे पाठशाला भेजने का अभिप्राय यह था कि मैं अपनी मातृभाषा का अध्ययन करूँ, स्वयम् अपनी मनन-शक्ति का विकास करूँ तथा भारतीय संस्कृति से प्रभावित होऊँ। इनकी इच्छा थी कि मैं एक बड़ा विद्या-प्रेमी होऊँ। इसी कारण से जब मैंने फिर यूरोप जाना चाहा तो मुझे आज्ञा हुई कि मैं आई० सी० एस० की परीक्षा में न बैठूँ, वरन् और आगे अध्ययन करूँ।"

अस्तु, डॉक्टर बोस ने इङ्गलैण्ड आकर सन् १८८४ ई० में क्राइस्ट चर्च कॉलेज से बी० ए० और

और लण्डन विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० की परीक्षा पास की। विदेशों में उच्च शिक्षा पाकर आप भारत लौटे और कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में प्रकृति विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हुये। इस समय कालेज में कोई अन्वेषणशाला न थी अतएव प्रोफेसर बोस ने अपनी प्रयोगशाला बनाई और उसी में अन्वेषण कार्य आरम्भ किया। आपने पहले विद्युत शक्ति के ऊपर बहुत से प्रयोग किये और उनके सम्बन्ध में विख्यात् वैज्ञानिक पत्रों में लेख लिखे। आपका Determination of the Indices of Electric Refraction शीर्षक लेख रॉयल सोसायटी की पत्रिका में छपा। इससे आपकी बड़ी ख्याति हुई, कारण कि उन दिनों रॉयल सोसायटी की पत्रिका में बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के लेख छपते थे और उसमें किसी का लेख छप जाना बड़े गौरव की बात थी। अङ्गरेज़ी वैज्ञानिकों ने प्रोफेसर बोस की प्रतिभा देख कर उन्हें पालियामेण्ट द्वारा मिलने वाले रोआयल सोसायटी के चन्दे का कुछ भाग अन्वेषण कार्य के लिये दिया। यह एक बड़ा सम्मान था और इसे देख कर बङ्गाल सरकार ने भी उन्हें कुछ सहायता देने का विचार किया। लण्डन विश्वविद्यालय ने भी प्रोफेसर बोस को आमन्त्रित करके उन्हें डॉक्टर आफ़ साइन्स की उपाधि दी।

बिना तार लगाये ही विद्युत शक्ति द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक खबर भेजने की सम्भावना पर विश्व के तीन बड़े वैज्ञानिकों ने खोज करना आरम्भ किया। इटली में प्रोफेसर मारकोने, भारतवर्ष में डॉक्टर बोस और अमेरिका में एक अन्य वैज्ञानिक। तीनों ही अविरत परिश्रम कर रहे थे। परन्तु सबसे पहिले इसे सफलतापूर्वक प्रदर्शन करने का श्रेय भारतीय वैज्ञानिक को ही है। सन् १८९५ ई० में कलकत्ता टाउन हाल में डॉक्टर बोस ने बङ्गाल के गवर्नर के सामने इलैक्ट्रिक वेवज़ को एक बड़ी दीवार तथा मनुष्यों की भीड़ को पार करता हुआ भेजा। यह बेतार के तार द्वारा भेजी पहली खबर थी। तत्पश्चात् आपने इसी के द्वारा एक बड़ा बोझ उठाया, घण्टी बजाई तथा एक छोटी खदान को उड़ाया। बिना तार के तार द्वारा यह सब बातें देख कर गवर्नर साहब बड़े चकित हुये। इस विषय पर भाषण देने के लिये आप इङ्गलैण्ड बुलाए गये। वहाँ आप ने अङ्गरेजी वैज्ञानिकों की भीड़ को भी अपने बेतार के तार के प्रदर्शन से स्तम्भित कर दिया। इसने समस्त वैज्ञानिक संसार में तहलका मचा दिया और डाक्टर बोस का नाम दूर-दूर देशों में पहुँचा। सन् १९०० ई० में भारत सरकार ने इन्हें पेरिस की वैज्ञानिक काग्रेस में भेजा। वहाँ भी इन्होंने भारत के नाम को उज्ज्वल किया। फ्रान्स में इनका बड़ा सम्मान हुआ और फ्रान्स की श्रेष्ठ वैज्ञानिक सोसायटी ने इनको सदस्य बनाने में अपना बड़ा गौरव समझा।

डाक्टर बोस की सबसे बड़ी खोज वनस्पति विद्या में है। आपने यह सिद्ध किया कि पौधों की नसों में तथा जीवधारियों की नसों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। मिमोसा के वृक्ष में ठीक उसी प्रकार चेतना होती है, जैसी कि मनुष्य में। यदि हम किसी पौधे को चोट पहुँचायें तो उसका असर $\frac{1}{100}$ सेकेण्ड में होगा और इतनी ही देर में वह प्रतिउत्तर भी दे देगा। पौधों की नसों में चाल एक सेकेण्ड में तीस मीटर है, गरमी-सरदी में यह बढ़ा-घटा करती है। जीवों की भाँति पौधों में भी उनकी नसों में उत्तेजित चाल को विद्युत-शक्ति द्वारा रोका जा सकता है। डॉक्टर साहब ने यह भी दिखाया कि पौधों पर मादक द्रव्य का वही प्रभाव होता है, जो मनुष्यों पर। पौधों पर नशीली वस्तु डालने से उनकी नसों की उत्तेजना एक दम कम हो जाती है। आपने यह भी सिद्ध किया कि पौधे जीवधारियों की भाँति बारह बजे रात सो जाते है, और सवेरे आठ बजे सोकर उठते हैं। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में भी आपने अनेक प्रयोग किये हैं। आपने बड़े-बड़े वृक्षों को जड़ से उखाड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगा दिया और वे पूर्ववत् अब भी वैसे ही हरे भरे खड़े हैं। ऐसा करने में पहिले आप सुई द्वारा दवा लगाते हैं, जिससे कि वृक्ष उखाड़े जाने के सदमे को सहन कर सके और फिर

उसे समूल उखाड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगा देते हैं। फरीदपुर में एक विचित्र ताड़ का पेड़ था। यह सन्ध्या समय जब मन्दिर में आरती के घण्टे बजते थे, पृथ्वी पर लेट जाया करता था और सबेरा होते ही फिर उठ खड़ा होता था। डॉक्टर बोस ने अपने यन्त्रों द्वारा इसका निरीक्षण किया और उसका कारण बताया। अपनी 'प्लाण्ट रिस्पान्स' नामक पुस्तक में डॉ० बोस ने ऐसे अनेक नये प्रयोग तथा उनके परिणाम की व्याख्या की है।

डॉक्टर बोस में एक बात बड़े मार्के की थी। वे अन्वेषण कार्य के लिये सुविधानुसार नये-नये यन्त्रों का आविष्कार कर लेते थे। यह यन्त्र वे भारतवर्ष ही में बढ़ई तथा लुहारों द्वारा अपने सामने बनवा लेते थे। आपका रिजोनेन्स रिकार्डर—प्रतिध्वनि लेखबद्ध करने वाला—यन्त्र हृदय-धड़कन के समय के एक हजारवें भाग का ठीक ठीक पता बता देता है। आपका दूसरा यन्त्र हाई मैगनोफिकेशन क्रेसकोग्राफ है जिसके द्वारा पौधों की वृद्धि के एक-एक सेकेण्ड के परिवर्तन का पता चलता है। यह बड़े-बड़े सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों से कहीं अधिक लाभकर सिद्ध हुआ है। ऐसे ही और बहुत से डॉक्टर बोस के बनाये यन्त्र वैज्ञानिकों की अमूल्य निधि हैं।

डॉक्टर बोस की ऐसी क्रान्तिकारी खोजों का हाल सुनकर विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों ने इन्हें अपने यहाँ आमन्त्रित किया। सन् १९१५ के लगभग आप विश्व-भ्रमण के लिये निकले। इटली, फ्रान्स, जर्मनी, इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका आदि देशों में आपका बड़ा सम्मान हुआ और बहुत से मानपत्र भी भेंट किये गये। आप के यन्त्रों को देख कर विदेशी आश्चर्य से पूछते थे कि आपने इन्हें कहाँ बनवाया है। तब डॉक्टर बोस बड़े गर्व से कहते थे—'भारतवर्ष में'। भारतभूमि पर किये गये डॉक्टर बोस के प्रयोगों की इतनी चर्चा फैली कि भारतवर्ष की मिट्टी जहाज़ों में लद-लद कर विदेशों में वैज्ञानिकों की सहायता को भेजी गई।

डॉक्टर बोस की विदेश में इतनी ख्याति देखकर भारत सरकार ने भी उन्हें सम्मानित करना आवश्यक समझा। सन् १९०३ में आपको सी० एस० आई० की उपाधि मिली और राज्याभिषेक के समय आप सी० एस० आई० बनाये गये। सन् १९१७ में आपको 'सर' की उपाधि मिली।

सर जगदीश के एक बड़े वैज्ञानिक होने का बोस अन्वेषणशाला जीता-जागता स्मारक रहेगा। प्रारम्भिक जीवन में वैज्ञानिक खोज में कठिनाइयाँ होने पर आपने एक प्रयोगशाला खोलने का विचार कर लिया था। आपकी बड़ी आकांक्षा थी कि भारतवर्ष में भी ऐसी प्रयोग-शालाएँ स्थापित हो जावें जहाँ विदेशी शिक्षा लेने आया करें। बोस इन्स्टीट्यूट के विषय में आपने लिखा है—"मेरी यह इच्छा है कि विज्ञानशाला में स्थान होने पर विदेशियों को भी बिना किसी भेदभाव के जगह दी जाय। ऐसा लिखने में मैं केवल पच्चीस शताब्दी पूर्व की प्रथा का अनुसरण कर रहा हूँ, जब नालन्द और तक्षशिला विश्वविद्यालयों में संसार के समस्त देशों के विद्यार्थी अध्ययन के लिये एकत्र होते थे।" विज्ञानोन्नति के लिये रचा गया यह विद्यामन्दिर हिन्दुओं की प्राचीन प्रासाद-कला के अनुसार बना है। इसके सामने एक छोटा सा उद्यान है, जिसमें लाजवन्ती सदृश सचेतन पौधे, फव्वारा, धूपघड़ी, विद्युत् शक्ति सचालित घड़ी तथा अन्य यन्त्र लगे हुये हैं, जो धूप, ताप, वायु आदि का वनस्पति-वृद्धि पर जो प्रभाव मिनट-मिनट में होता है, उसको लेख-बद्ध करते हैं। यहाँ तक कि आकाश में भ्रमण करते हुये एक बादल का जो प्रभाव पौधों पर पड़ता है, उसे पौधा अपना विचित्र भाषा में लिख देता है। जड़ कहे जाने वाले इन वृक्षों को सजीव होकर अपनी आत्म-कथा लिखते देखकर बड़ा आश्चर्य होता है और अनायास मुँह से निकल पड़ता है कि 'धन्य जगदीश बोस, जिन्होंने चराचर का एक ही ईश्वरीय नियम में बँधा दिखाया।' इन्स्टाट्यूट में घुसते ही एक बड़ा हाल है, जिसमें शीशे की बड़ी-बड़ी अलमारियों में सर जगदीश के बनाये हुये यन्त्र प्रदर्शन के लिये रक्खे हैं। इसमें वह यन्त्र भी है जिसके द्वारा डॉक्टर बोस ने सर्वप्रथम बेतार का तार भेजा था। फिर लेक्चर-हाल में होकर हम प्रयोग-शालाओं की ओर निकल आते हैं। प्रयोगशालाएँ

उद्यान भूमि में इमारत के मध्य तथा अन्तिम भाग में बनी हैं। विचित्र प्रकार की लताओं और वृक्षों के सुहावने कुञ्ज, रंग विरंगे पुष्प, जलवृक्षों के लिये तालाब, निरीक्षण हेतु बना ऊँचा चौतरा, तथा वृक्षवृद्धि नोट करने के लिये मुस्तैद खड़े यन्त्र बड़े ही रमणीक जान पड़ते है। बहुत सी प्रयोगशालाएँ रंग विरंगे शीशे के घर है, जिनमें विभिन्न रंग की किरणों का वृक्षों पर प्रभाव देखा जाता है। परन्तु इतनी सब जगह भी अन्वेषण कार्य के लिये पर्याप्त नहीं है। अभी और स्थान की आवश्यकता है। इसी में डॉक्टर बोस का निवासस्थान तथा एक छात्रावास भी है। लेक्चर-हाल में लगभग डेढ़ हजार श्रोताओं के बैठने का प्रबन्ध है। यह ऐसी वैज्ञानिक विधि से बनाया गया है कि उसमें न प्रतिध्वनि होती है और न आँखों को चकाचौंध लग सकती है। हाल की छत में अजन्ता गुफाओं के आधार पर एक विस्तृत कमल बना हुआ है, जिसके चारों ओर सजीव वृक्ष और लताओं की बेलें बनी हैं। हाल में केवल एक बड़ा चित्र है, जिसे विख्यात चित्रकार नन्दलाल बोस ने बनवाया था। इसमें प्रात काल सरिता कूले एक विशालकाय पथिक निज पथ प्रशस्त करने हेतु हाथ में खड्ग लिये अपनी पत्नी के मनोहर बाँसुरी गान से प्रोत्साहित होता हुआ एक कण्टका कीर्ण मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। इस चित्र का नाम "खोज" है तथा इसमें चित्रित पथिक "ज्ञान" और उसकी पत्नी "कल्पना" है।

यह लताएँ, वृक्ष यन्त्र, तथा मन्दिर आदि अब भी वहाँ हैं। परन्तु अपने रक्त से पोषित करने वाला उनका स्वामी अब उनपर नित्य प्रात काल उठ अपनी दृष्टि नहीं डालता। उसने उनसे सदा के लिये विदा ले ली है। सर जगदीशचन्द्र बोस संसार के एक बड़े वैज्ञानिक थे। भारतवर्ष में वैज्ञानिक अन्वेषण का श्रीगणेश उन्हीं के हाथों हुआ था। इनमें दो श्रेष्ठ गुण थे—निर्लोभ अविरत परिश्रम करना तथा अपूर्व धैर्य। प्रतिभा के साथ ही साथ इच्छानुसार पन्थ आविष्कार करने का गुण बिरले ही में पाया गया है। डॉक्टर बोस में यह सब पर्याप्त मात्रा में थे। जिन दिनों उन्होंने अपनी अमोल खोज की, भारतवर्ष का संसार नेत्रों में कोई स्थान ही न था। अतएव उनकी प्रतिभा को मन ही मन सराहते हुये भी विदेशियों ने द्वेष-भाव के कारण उन्हें ऊपर उठने से रोका। परन्तु हीरे की स्वाभाविक चमक को कोई दबा नहीं सकता। अन्त में विदेशियों को नतमस्तक होना ही पड़ा और उन्होंने डाक्टर बोस के अन्वेषण कार्य की सराहना करके भारत को सम्मानित किया। सर जगदीश बड़े शान्त स्वभाव, निस्पृही, दम्भ ईर्ष्या-हीन एक महान् पुरुष थे, जिन्होंने अपना तन, मन, धन विज्ञान-वृद्धि के लिये लगा दिया। यदि वे चाहते तो अपने बेतार का तार के यन्त्रों को पेटेण्ट करा कर लाखों रुपया कमाते, परन्तु उन्होंने इसकी कुछ परवाह न की और एक सच्चे वैज्ञानिक की भाँति निर्लोभ अध्ययन तथा अन्वेषण में लगे रहे। आपके दिये हुये प्रोत्साहन तथा उच्च उदाहरण से आपके शिष्य सदा आपके सचालित कार्य में दिन पर दिन उन्नति करते रहेंगे। आचार्य बोस उन ऋषियों की सतान थे, जिन्होंने कि नि स्वार्थ सेवा तथा अध्ययन में ही आनन्द पाया। परमेश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे और उनके लगाये हुये पौधों को सदा उन्नत करे।

लोक-परलोक

सिनेमा-नाटक

[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल-एल० बी०]

दृश्य १

डॉक्टर सिनहा का ऑफिस रूम

(कुछ मरीज इन्तजार में बैठे हैं और डाक्टर सिनहा एक मरीज की नब्ज देख रहे है। टेलीफान की घन्टी घनघनाती है।)

डॉक्टर सिनहा—(मरीज छोड़कर टेलीफोन पर) "हलो! अयँ! क्या मिस्टर कानूनीमल कोर्ट में बहस करते करते यकायक बेहोश हो गए?... .।"

दृश्य २

कचहरी का टेलीफ़ोन रूम

मिस्टर वर्मा वकील—(टेलीफोन पर)—"जी हाँ, और नब्ज़ का पता नहीं है।"

दृश्य ३

पहिला दृश्य दूसरी बार

डॉक्टर सिनहा—(टेलीफ़ोन पर)—"कहाँ हैं? वहीं जज साहब के आराम-कमरे में? अच्छा। मुँह पर पानी के छींटे दीजिये और सीना और हाथ-पैर ख़ूब मलिये, मैं अभी आया।"

दृश्य ४

सड़क

(भगुआ भङ्गी सड़क पर झाड़ू दे रहा है और सामने से ढबढब पाँड़े मत्थे पर चन्दन पोते, सर पर लम्बी चौड़ी पगड़ी बाँधे, बन्ददार लम्बी छकलिया अचकन पहने, बगल में पोथी दबाए, नङ्गे पैर "सीता-राम! सीता-राम" कहते हुए जल्दी- जल्दी चले आ रहे हैं।)

ढबढब पाँड़े—(भगुआ को देखते ही यकायक दूर ही पर रुक कर)—"अरे! ओ चाण्डाल! देखता नहीं कि ढबढब पाँड़े चले आ रहे हैं और सड़क पर से हटा नहीं जाता? यदि तनिक भी परछाहीं मेरे शरीर पर पड़ गई तो मेरा धर्म भ्रष्ट हो जायेगा कि नहीं?"

भगुआ—"हम हट जाई तो एहका बहारी के? तू? जानत हो कि यह सड़क तीन बखत बहारे का हुकुम है। ..अरे! आप होई पाँड़े जी। हम चीन्हा नाहीं।"

(भगुआ हटकर सड़क के किनारे पर चला जाता है। और पाँड़े जी नाक बन्द करके राम-राम कहते और परछाहीं बचाते हुए निकलते हैं। वैसे ही पीछे मोटर का हार्न सुनाई पड़ता है और मिस्टर सिनहा अपनी मोटर पर आते हुए दिखाई देते हैं। पाँड़े जी बौखला कर मोटर के आगे ही बेतहाशा भागते हैं। घबराहट में उनकी बगल की पोथी गिर कर बिखर जाती है और पगड़ी खसक कर मुँह पर लटक पड़ती है। जब वह किसी प्रकार सम्हाले नहीं सम्हलती और खुल जाती है, तब वह उसे अपनी कमर में लपेटते हुए दौड़ते जाते हैं। और जिस तरफ़ से मिस्टर सिनहा अपनी मोटर कतरा कर निकालना चाहते हैं, आप भी ऐन मौक़े पर उसी तरफ भाग कर आ जाते हैं। आजिज़ आकर मिस्टर सिनहा मोटर रोक कर गुस्से में उतरते हैं और उनका पीछा करके दोनों हाथों से उनका एक हाथ पकड़ कर किनारे की ओर खींच लेते हैं।

मिस्टर सिनहा—"बेवक़ूफ़ कहीं के। इधर नहीं हटा जाता। अभी दब जाते तो..."

कानूनीमल की जगह हमेशा खाली रहेगी। उनके टक्कर का वकील होना गैर-मुमकिन है।"

[दूसरे स्थान पर दूसरे दो आदमी एक कुर्ता-धोती गाँधी टोपी पहने और दूसरा लम्बा कोट धोती, और फेल्ट कैप।]

गाँधी टोपी—(सुरती हथेली पर मल कर खाता हुआ)—'कानूनीमल ऐसे वकील भी, जो दुनिया की आँखों में धूल झोंकना जानते थे, दूसरों को फाँसी के तख्ते पर से उतार लेते थे, मगर खुद अपनी गर्दन मौत के पञ्जे से न छुड़ा सके।"

फेल्ट कैप—(तम्बाकू सुरकता हुआ) हाँ भाई। राजा प्रजा, अमीरी ग़रीब, ज्ञानी-नासमझ, चालाक-बौड़म सभी मौत की निगाह में एक हैं।'

[तीसरे स्थान पर तीसरे दो आदमी एक कमीज लुंगी और दुपल्ली टोपी पहने और दूसरा धोती मिर्जई और पगड़ी।]

दुपल्ली टोपी—(हुक़्क़ा पीता हुआ)—"ऐसे अमीर, ऐसे दबङ्ग, ऐसे शौकीन और ऐसे रङ्गीले, जो अपने मतलब शौक और गुलछर्रों के पीछे परवरदिगार तक को भूले हुए थे, आख़िर ऐसे मरे कि उन्हें दवा तक करने की भी मुहलत न मिली।"

पगड़ी—(हुक्के से चिलम उतार कर बीड़ी सुलगाता हुआ)—"ईश्वर की लीला अपरम्पार है। ऐसी ही बातों में तो जाना जाता है कि परमात्मा भी कोई चीज है।"

दृश्य ८

दरिया का एक नुकीला किनारा

[ढबढब पाँडे दरिया के नुकीले किनारे पर कपड़े उतारे बैठे हुए अपने अछूत हाथ को झुक-झुक कर भागे किनारे पर रगड़ रहे है।)

ढबढब पाँडे—(हाथ भीगे किनारे पर रगड़ते हुए) "पवित्र पवित्र पवित्रं मातु पृथ्वी पवित्र कुरू।" (रगड़ने के झटके में उनका दूसरा हाथ इस हाथ की तरफ कभी-कभी झुक पड़ता है। तब झुँझला कर अपने दूसरे हाथ को डाँटते हुए)—"अभी क्यों घुसा पड़ता है मूर्ख! १०८ बार इसे पृथ्वी और जल से शुद्ध कर लेने दे। नहीं छू जायेगा तो तेरी भी यही गति होगी। पवित्र पवित्र अयँ! तू फिर नहीं मानता। अच्छा तो ले। (अपने दूसरे हाथ को अपनी गर्दन पर चढ़ा लेता है) पवित्र अरे! अरे! (वैलेन्स बिगड़ जाने से दरिया में लुढक कर डूबने लगते हैं) हाय! बाप. मरा...मरा"

दृश्य ९

यमपुरी

(यमदूत सरदार और कानूनीमल)

यमदूत सरदार—"अय मृत आत्मा अब आँखें खोल और होश में आ।"

कानूनीमल—(होश में आकर) "धत् तेरे की! आँख खोलते ही यह कम्बख़्त कौन मनहूस दिखाई पड़ा? आज सारा दिन का दिन चौपट हुआ। अबे तू कौन है? सुबह ही सुबह तुझे अपनी सूरत दिखानी थी। बड़े खूबसूरत हैं आप न? वाह री शकल, पता ही नहीं मिलता कि आदमी है कि जानवर और हिम्मत तो देखिये कि आकर झट जगा दिया। चल दूर हो यहाँ से।"

यमदूत सरदार—(ज़रा घबरा कर) "अयँ? यह क्या? क्यों जी, क्या तुम अब भी मृत्यु-लोक ही का स्वप्न देख रहे हो?"

कानूनीमल—"शकल चुड़ैलों की और मिजाज परियों के। अबे जरा अपनी हैसियत देखकर बात कर। जानता है? मैं कौन हूँ। मिस्टर कानूनीमल वकील और एम० एल० ए०। तुझ ऐसों को जहन्नुम की हवा खाने के लिये चुटकियों में भिजवा देता हूँ।"

यमदूत सरदार—"आहाहा हा! मगर अब तो तुम्हें जहन्नुम की हवा खिलाना मेरा काम है। बस बहुत हो चुका। अपनी ऐंठ भूल जाओ। यह मृत्यु लोक नहीं, यह है यमलोक। तुम यहाँ मर कर आए हो।"

कानूनीमल—"तेरी ऐसी तैसी। मर जाए तेरा बाप? ज़बान सम्हाल कर बातें कर, नहीं अभी हतक इज्ज़ती का दावा कर दूँगा। मिज़ाज ठिकाने हो जायेगा।"

यमदूत सरदार—"अच्छा पहिले अपना मिज़ाज तो ठिकाने कर लो। जहाँ तुम मरने के पहिले थे और जहाँ के सभी प्राणी को एक न एक दिन मरना पड़ता है वह मृत्युलोक देखो वह है।"

दृश्य १०

आकाश

[नक्षत्रों से घिरा हुआ पृथ्वी का गोलाकार, जिसके ऊपरी भाग में हिन्दुस्तान का नकशा दिखाई पड़ता है।]

दृश्य ११

फिर नवाँ दृश्य दूसरी बार

[यमदूत सरदार क़ानूनीमल की तरफ देखता हुआ मुस्कराता है।]

कानूनीमल—(सोच में) मामला क्या है? क्या मैं सचमुच मर गया। इधर दिल-धड़कन की शिकायत कुछ शुरू ज़रूर हो चली थी और डॉक्टर ने आराम करने की ताकीद भी की थी। मगर—"

[अपने मरने के समय का खयाल करता है।]

दृश्य १२

जज साहब का इजलास

कानूनीमल—(बहस करते हुए) "My Lord! अब तो यकीन हो गया होगा कि यह होनहार नौजवान किसी तरह भी फाँसी की सज़ा के लिये मुजरिम नहीं करार दिया जा सकता। और मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि साबित होने पर भी किसी भी जुर्म में और खासकर Political जुर्म में फाँसी की सजा देना कानून के मन्शा को खाक में मिलाना है—एकदम खाक में मिला आह! ..अरे! .."

[चकरा कर कुर्सी पर गिर पड़ता है।]

जज साहब—"अरे! यह क्या? क्या हुआ मिस्टर कानूनीमल? कैसी तबियत है?"

कानूनीमल—(कुर्सी पर से धीरे-धीरे उठते हुए) "इन दिनों कुछ चक्कर आने लगा है। उसी का इस वक्त भी शायद ज़रा झोंका आ गया। मगर अब अच्छा हूँ My lord! Many thanks"

जज साहब—'आप फौरन जाकर आराम कीजिये और अपने को किसी डॉक्टर को दिखाइए। हालाँकि आखीर में यह कह कर कि—साबित होने पर भी किसी भी जुर्म में फाँसी की सज़ा देना कानून के मन्शा को खाक में मिलाना है—आपने मुझे ताज्जुब में डाल दिया है और इस पर भी आपकी दलीलें सुनना चाहता हूँ। ख़ैर! किसी और दिन सही।"

कानूनीमल—"My lord! इस बात को सच्चाई तो दो शब्दों में अभी ज़ाहिर किये देता हूँ। कानून ने सज़ाएँ तीन बातों के खयाल से रखी हैं। एक यह कि जुर्म करने वाला सुधर जाए। दूसरी यह कि दूसरों के लिये सबक हो और तीसरी यह कि जुर्म से समाज में जो बदला लेने की आग भड़क उठती है वह बुझ जाए, ताकि हर तरह अमन रहे। अब देखिये, फाँसी की सज़ा इन तीनों बातों पर कैसी उल्टी झाड़ू फेरती है। मुजरिम की मौत से सुधार का मसला एकदम गायब हो जाता है। ज़माने ने दूसरी बात गलत साबित कर दी, यानी लाखों फाँसियाँ होने पर भी इसका जुर्म बन्द न हो सका। अब रहा बदले का सवाल। वह भी बेकार है। उसे वक्त ख़ुद मिटा देता है, क्योंकि दुश्मन की फाँसी पर भी समाज कभी फूला नहीं समाता और न ख़ुशी में ताली पीटता है। बल्कि उल्टे तरस खाकर अफसोस करने लगता है।"

एक दर्शक—"वाह! वाह! बलिहारी है क़ानूनीमल की!"

दूसरा दर्शक—'क्यों नहीं? तभी तो भाई इनके नाम की इतनी धूम है।"

जज साहब—"Thank you Mr. Kanuni Mal. बेशक आपकी दलीलें मार्के की और कानून के लिये गौर करने क़ाबिल हैं।"

कानूनीमल—"अब इसी सिलसिले में—"

जज साहब—"नहीं मिस्टर कानूनीमल, अब बस कीजिये। आपकी तबियत—"

कानूनीमल—"Thank you my lord अब बिल्कुल अच्छो है। इस सिलसिले में सिर्फ थोड़ा ही कहना है। हाँ, अब देखिये Political जुर्मों में फाँसी

की सजा किस कदर गैरमुनासिब है। सलतनत के खिलाफ रय्यत तभी आवाज उठायेगी जब हुकूमत की किसी न किसी बात से तङ्ग हो उठेगी। उस वक्त सलतनत को फौरन अपने उन ऐबों को ढूँढ कर सुधारना चाहिये। तभी इन जुर्मों में कमी हो सकती है। दर्द से चिल्लाने वालों को दुनिया से हटाने में क्या फायदा। दर्द पहुँचाने वाले ऐब तो वैसे ही बने रहे। इसके अलावे यह भी खयाल करना चाहिये कि मुल्क यानी घर की मुहब्बत एक कुदरती मुहब्बत है। जानवरों तक में पाई जाती है और सभी मुल्क और जातियों में इज्जत की निगाह से देखी जाती है। अगर कोई बेचारा नासमझ इस मुहब्बत से अन्धा होकर कोई बेजा काम कर बैठे तो उसके लिये फाँसी उफ! इतनी कड़ी सजा? अरे! अरे?. आह!."

[बेहोश होकर गिर पड़ता है।]

दृश्य १३

फिर नवाँ दृश्य तीसरी बार

यमदूत सरदार—(कानूनीमल से)—"अब भी कुछ शक हो तो वह देखो अपने मकान पर अपने सम्बन्धियों के बीच में अपनी लाश।

दृश्य १४

कानूनीमल के घर का आँगन

[कानूनीमल की लाश जमीन पर पड़ी है। आँगन सम्बन्धियों से भरा है। कोई रो रहा है, कोई अफसोस कर रहा है और पुरोहित जी जल्दी करने के लिये चिल्ला रहे हैं।]

पुरोहित—"अरे भाई! अब रोने-धोने से क्या होगा। अब जल्दी अन्तिम संस्कार का प्रबन्ध करो। देखो, अब समय नहीं रहा—"

एक सम्बन्धी—(पुरोहित जी को एक किनारे ले जाकर चुपके-चुपके) "जल्दी क्यों मचाए हो पुरोहित जी? लाश गङ्गा किनारे ले जाते ले जाते रात हो ही जायगी। उस पर सुसरी आधी रात तक कहाँ जलेगी। इस जाड़े पाले में हम लोगों को वहाँ रात भर नङ्गे बदन खड़ा रख कर मार डालने वाले हो क्या? लगाओ कोई भद्रा का अड़ङ्गा, जिसमें लाश कल दिन में ले जानी पड़े।"

दृश्य १५

फिर नवाँ दृश्य चौथी बार

यमदूत सरदार—"अब तो मेरी बात का विश्वास हुआ? अब क्या सोच रहे हैं? बस अब चलने की तय्यारी कीजिये।"

कानूनीमल—"कहाँ और किस पर? तुम्हारे सर पर? तुम्हारे यहाँ कोई सवारी शिकारी भी है?"

यमदूत सरदार—"वाह! वाह! क्या आप कोई पुण्यात्मा हैं, जो आपके लिये वैकुण्ठ का विमान आवेगा? जाना तो है नर्क को और चलेंगे सवारी पर? वाहरी ऐंठ! अजी बाबू साहब, यही अपना बड़ा सौभाग्य समझो कि तुम्हारे लिये कोई मामूली यमदूत नहीं, वरन् साक्षात् मैं भारत विभाग के यमदूतों का सरदार भेजा गया हूँ।"

कानूनीमल—"अरे! बाबा तू सरदार हो चाहे खानसामा। नर्क में जाना है तो एक बार नहीं सौ बार जा, मुझसे मतलब? मैं वहाँ क्यों जाने लगा?"

यमदूत सरदार—"क्योंकि ईश्वर की अदालत में तुम अव्वल नम्बर के पापी साबित हो चुके हो। तुम्हारे लिये यही हुक्म है।"

कानूनीमल—"बिना मुझसे कुछ पूछ-ताछ किये हुए?"

यमदूत सरदार—"पूछने की क्या जरूरत? यहाँ तुम्हारी हर बात रत्ती-रत्ती मालूम है।"

कानूनीमल—"हुआ करे! मैं कानूनीमल हूँ। मैं ऐसा एकतर्फा फैसला कब मान सकता हूँ? ऐसी धाँधली तो हमारे यहाँ आनरेरी मैजिस्ट्रेटी में भी नहीं होती। ईश्वर के यहाँ कोई कायदा-कानून भी है कि बस अन्धेर ही अन्धेर है। जरा ले तो चल उनके पास। देखूँ, किस कानून से मैं पापी ठहराया गया हूँ।"

यमदूत सरदार—"आहाहा! यह ख्याल छोड़ दो। तुम्हारी वहाँ पहुँच नहीं हो सकती।"

कानूनीमल—"क्यों ?"

यमदूत सरदार—"परमात्मा केवल अपने भक्तों को ही कभी-कभी दर्शन देने की कृपा करते हैं और किसी को नहीं ।"

कानूनीमल—"भक्त ? यह भक्त क्या बला है ?"

यमदूत सरदार—"अरे ! यह क्या कहते हो ? अरे ! ईश्वर के भक्त वह कहलाते हैं, जो रातों-दिन उनका भजन करते और उनके गुण गाते हैं। सोते, उठते, बैठते उन्हीं का नाम जपा करते हैं।"

कानूनीमल—"आहाहाहा ! साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते कि भक्त के मतलब ख़ुशामदी से है। धत् तेरे की ! यहाँ भी ख़ुशामदियों ही का बोल-बाला है। तब यह अन्धेर क्यों न हो। तभी तो जो बात है यहाँ औंधी ! हमारे यहाँ एक सिपाही भी रखा जाता है तो शकल-सूरत देख कर, डॉक्टरी करा कर कि कहीं अन्धा कोढ़ी लँगड़ा लूला न हो। और यहाँ एक यमदूत भी मिला तो अकल-समझ से कोसों दूर। और शक्ल व सूरत में बिल्कुल बेदुम का लगूर।"

यमदूत सरदार—"अरे ! अरे ! अब तुम मुझे गालियाँ भी देने लगे ?"

कानूनीमल—"तो क्या बुरा करता हूँ ? जैसे देवता वैसी पूजा। एक तो तुम्हारी सूरत ही मार खाने काबिल है। कहो हाँ। दूसरे तुम उचक्कों की तरह मुझे ज़बरदस्ती दुनियाँ से उठा लाये। तीसरे तुम्हें बात तक करने की तमीज़ नहीं। मुझे पापी बता कर नर्क में जाने को कहते हो। चौथे तुम ईश्वर के पास भी मुझे नहीं ले चलते। अब इन बातों पर तुम्हीं बताओ कौन ऐसा भला मानुस है, जो तुम्हें बिना मारे छोड़ सकता है।"

यमदूत सरदार—(घबड़ा कर) "यह तो अजब बेढब से पाला पड़ा। मर कर भी इसकी ऐंठ न गई। कैसा टर्राता है। तनिक भी उसे अपने पापों का पश्चाताप नहीं। और मुर्दे बेचारे इस वक़्त—"

दृश्य १६

मृतात्माओं का पड़ाव

[कई यमदूतों के पहरे में सैकड़ों मृतात्माएँ रस्सियों से बँधे हुए अपने पापों पर रोते, सर धुनते और अफ़सोस कर रहे हैं।]

मृतात्माएँ—'हे जगरक्षक ! हे परम पिता ! हे कृपानिधान ! सुधि लो, उद्धार करो, मैं घोर पापी हूँ, बहुत पाप किया, मेरे पापों की गिनती नहीं "

एक यमदूत—'अभी से आफ़त मचाने लगे पापियो, अभी तो नर्क तक पहुँचे भी नहीं।

मृतात्माएँ—"दोहाई है, मैं कान पकड़ता हूँ, मैं नाक रगड़ता हूँ, अब नहीं, हाय ! मैंने क्यों इतना पाप..."

[एक यमदूत सरदार का ग़ुस्से में आना।]

यमदूत सरदार नम्बर २—क्यों यमदूतो, इतना शोर ?

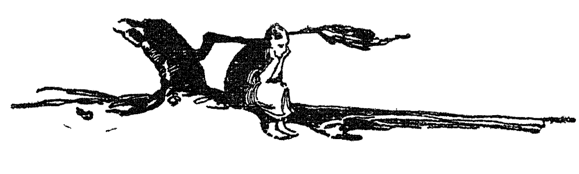
एक यमदूत—सरदार जी, ये पापी मानते ही नहीं।

यमदूत सरदार नम्बर २—हन्टरों से चुप करो। फिर भी न मानें तो फिर बेहोश कर दो।

[हन्टरों की मार, चिल्लाहट और अन्त में यमदूत सरदार नम्बर २ के एक इशारे पर सबकी बेहोशी]

(क्रमशः)

नोट—आगामी अङ्क में कानूनीमल का पाप-पुण्य पर अपनी अनोखी बहस से यमदूत सरदार को हराना देखिए।



आधुनिक शिक्षा और स्त्रियों का स्वास्थ्य

[श्री० नन्दगोपालसिंह सहगल]

वर्तमान काल समाज की कायापलट का युग है। समाज की जो रीति-नीति अब तक चली आई थी, अब उसका प्रायः सर्वांश में लोप होकर बिल्कुल नये नियमों की रचना हो रही है। इस तरह का परिवर्तन भला है या बुरा, कल्याणजनक है या अकल्याणकारी, इस सम्बन्ध में सदैव लोगों में मतभेद देखने में आता है। कुछ लोग ऐसे परिवर्तन को एकदम हानिकारक और कुछ सब प्रकार से वाञ्छनीय बतलाया करते हैं। पर सचाई प्राय इन दोनों के बीच में रहती है। प्रत्येक परिवर्तन जहाँ अनेक दोषों को दूर करता है, वहाँ कुछ नई त्रुटियाँ भी उत्पन्न कर देता है। सच पूछा जाय तो जैसा हमारे पुराने कविगण कह गये हैं, यह विश्व गुण-दोषमय है। इसमें सर्वथा दूषित या पूर्णतः निर्दोष पदार्थ ढूँढ़ना एक निष्फल प्रयास ही है। तो भी मनुष्य को यह शक्ति दी गई है और उसका यह कर्तव्य भी है कि वह सदैव भले और बुरे का विवेक करता रहे और यथाशक्ति हानिकारक बातों को त्याग कर उपयोगी बातों को अपनाता रहे।

इस निगाह से जब हम आधुनिक स्त्री-शिक्षा-प्रणाली पर विचार करते हैं तो उसमें भी हमको दोनों ही बातें दृष्टिगोचर होती हैं। पश्चिमी देशों में इस शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों में स्वावलम्बन का भाव उत्पन्न करना समझा जाता है, जिससे आवश्यकता या इच्छा होने पर वे कोई कार्य करके धनोपार्जन कर सकें। कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हो सकती हैं जो ज्ञान-वृद्धि के उद्देश से शिक्षा प्राप्त करती हों, पर अधिकांश का उद्देश्य जीवन-निर्वाह का कोई साधन प्राप्त करना ही होता है। कारण यह है, कि योरोप और अमरीका के नई रोशनी वाले देशों में अब जीवन-निर्वाह का स्टैण्डर्ड बहुत ऊँचा हो गया है और साधारण हैसियत के लोगों के लिये यह सम्भव नहीं होता कि वे विवाह करके सुखपूर्वक गृहस्थी का संचालन कर सकें। ऐसी परिस्थिति में बहुसंख्यक पुरुषों और उनसे भी अधिक संख्या में स्त्रियों को इच्छा न रहते हुये भी अविवाहित रहना पड़ता है। ऐसी अवस्था में वहाँ की नारियाँ स्वभावत इस बात की योग्यता प्राप्त कर लेना चाहती हैं, जिससे आवश्यकता होने पर वे स्वावलम्बी बन सकें और बिना किसी पुरुष की सहायता के भी जीवन-निर्वाह कर सकने में समर्थ हो सकें। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप ही वहाँ की स्त्रियों और पुरुषों में अनेक अवसरों पर प्रतियोगिता का भाव देखने में आता है और स्त्रियाँ निरन्तर इस बात की चेष्टा करती रहती हैं कि ऐसा कोई भी कार्य या पेशा न बचे जिसे वे मर्दों के समान ही करने में समर्थ न हो सकें।

यदि केवल कानूनी निगाह से विचार किया जाय तो स्त्रियों का उपर्युक्त दावा अनुचित नहीं बतलाया जा सकता। समाज के एक सदस्य की हैसियत से उनको वे अधिकार क्यों न प्राप्त हों, जो उसके अन्य सदस्यों को प्राप्त है। पर यह समस्या केवल कानूनी नहीं है, वरन् इसका सम्बन्ध समाज का सुविधापूर्वक संचालन होने से है। अगर कल्पना के लिये हम यह मान लें कि समस्त स्त्रियाँ अविवाहित रह कर नौकरी या उद्योग-धन्धे द्वारा जीवन-निर्वाह करने लगेंगी, तो उस अवस्था में समाज की क्या गति होगी? क्या फिर वर्तमान समय की गृहस्थी, नाते-रिश्ते, आत्मीयता, सबका अन्त न हो जायगा? और क्या इसके साथ ही समाज के समस्त कारबारों की कायापलट न हो जायगी। वास्तव में यदि किसी प्रकार उपर्युक्त परिवर्तन हो जाय तो संसार में एक ऐसी सामाजिक क्रान्ति हो, जिसकी कल्पना आज तक बड़े से बड़ा क्रान्तिकारी भी नहीं कर सका है।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न सन्तानोत्पत्ति और उसके पालन पोषण का है। थोड़ी देर के लिये हम यह मान भी सकते हैं कि गृहस्थी के सब कार्य यन्त्रों द्वारा सम्पन्न हो सकते हैं और समाज को आज कल जिन कामों में स्त्रियों पर आश्रित रहना पड़ता है, उनकी भी कुछ व्यवस्था हो सकती है, पर सन्तान उत्पन्न करने का कार्य तो प्राकृतिक रूप से स्त्रियों के ही जिम्मे रहेगा और उसका उचित रूप से लालन-पालन करने के निमित्त भी माता को कम से कम कुछ समय तक उसमें लगा रहना पड़ेगा। इसलिये यदि हम स्त्री-शिक्षा में और सब बातों का ध्यान छोड़ भी दें तो कम से कम इस बात को तो नहीं भुलाना चाहिए कि जिन बातों का प्रभाव स्त्रियों के इस प्रकृति-दत्त कर्तव्य पर हानिकारक पड़ता है, उनको दूर रखा जाय ?

स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में इस प्रकार की समस्या वास्तव में अभी हमारे यहाँ उपस्थित नहीं हुई है। हमारे यहाँ तो इस समय सौ में से दो भी स्त्रियाँ साधारण पढ़ी-लिखी नहीं कही जा सकतीं। उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियों की सख्या तो सभी जगह अँगुलियों पर गिनने लायक है। इसलिये उपर्युक्त प्रश्न दरअसल अभी हमारे यहाँ दूर की बात है। पर योरोप और अमरीका में यह अवस्था अनेक अंशों में सम्मुख आ चुकी है और वहाँ के विचारक तथा विद्वान लोग इस पर बड़ी गम्भीरता के साथ विचार कर रहे हैं। वहाँ बड़े-बड़े डॉक्टरों और शरीर-तत्ववेत्ताओं ने इस बात की विशेष रूप से जाँच की है कि आधुनिक शिक्षा का प्रभाव स्त्रियों के स्वास्थ्य पर कैसा पड़ता है और आगे चलकर उसका कैसा परिणाम समाज के लिये होता है। हमको भी इन खोजों और उनके परिणामों से जानकारी प्राप्त करना आवश्यक और लाभदायक है, क्योंकि स्त्री-शिक्षा का अभी श्रीगणेश होने पर भी स्त्री-शिक्षा प्रणाली की प्रवृत्ति उसी ओर है और आज नहीं तो कल हमको भी इन समस्याओं का व्यावहारिक रूप से सामना करना पड़ेगा।

आधुनिक स्त्री-शिक्षा-प्रणाली की जाँच करके शरीर-तत्ववेत्तागण जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, उसमें सबसे मुख्य बात यह है कि लड़कियों को लड़कों के समान शिक्षा देना उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत हानिकारक है। विशेषत कॉलेज और यूनीवर्सिटी की शिक्षा का उन पर घातक प्रभाव पड़ता है। इसका कारण स्त्री और पुरुष के शारीरिक सङ्गठन का अन्तर है। इन शरीर तत्ववेत्ताओं के कथन का साराश इस प्रकार है —

स्त्री और पुरुष के स्वास्थ्य तथा शारीरिक अवस्था के इस अन्तर का मुख्य आधार स्त्रियों का मासिक धर्म है। इसके फल से आरम्भिक तीन दिनों में स्त्रियों की कार्य-शक्ति बहुत क्षीण हो जाती है और उस अवस्था में किसी तरह का परिश्रम करने से उसके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। पर जो बड़ी उम्र की लड़कियाँ स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा पाती हैं, उनको प्राय. परीक्षाओं में सम्मिलित होना पड़ता है और वे उपर्युक्त नियम का पालन बहुत कम अंशों में कर सकती हैं। उनको दूसरे विद्यार्थियों के समान ही अपना नियमित काम खत्म करना पड़ता है और अक्सर रात में बड़ी देर तक जाग कर पढ़ना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि आरम्भिक अवस्था में ही लड़कियों को मासिक-धर्म सम्बन्धी खराबियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, और वे कब्ज, सिर-दर्द, नींद न लगना, भूख की कमी, थकावट और तरह-तरह की शिकायतें अनुभव करने लगती हैं। शरीर-तत्ववेत्ताओं का यह भी मत है कि रजोदर्शन के एक साल पहले और दो साल बाद में कन्याओं के शरीर में विशेष महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं और उस अवस्था में वे किसी कठिन कार्य के योग्य नहीं होतीं, पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इसी अवस्था में अधिकाश लड़कियों को स्कूल में पढना और परीक्षा पास करने के लिए विशेष रूप से परिश्रम करना पड़ता है।

इन बातों को पढ़ कर कुछ लोग प्रश्न करेंगे कि तब क्या लड़कियों को किसी दशा में उच्च शिक्षा दी ही न जाय ? इस बारे में शरीर-तत्ववेत्ताओं का मत है कि लड़कियों की उपर्युक्त परिवर्तन की अवस्था प्रायः उन्नीस वर्ष तक रहती है। उस समय तक यदि उनको ऐसी शिक्षा दी जायगी, जिसमें कि

लड़कों से प्रतियोगिता करने की आवश्यकता पड़े, तो उसका प्रभाव निस्सन्देह हानिकारक होगा। पर उन्नीस वर्ष के बाद लड़कियों की शारीरिक अवस्था में स्थायित्व आ जाता है और उसके पश्चात् अगर वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने का उद्योग करें तो उससे विशेष हानि की सम्भावना नहीं रहती।

आधुनिक स्त्री-शिक्षा-प्रणाली का एक प्रभाव यह भी देखने में आता है कि कॉलेज और यूनीवर्सिटी की शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ अधिकांश में विवाह नहीं करतीं और जो करती भी है उनके जीवन में प्राय स्वाभाविकता का अंश बहुत कम रहता है। इसका प्रधान कारण यह होता है कि ऐसी स्त्रियाँ प्राय २०, २५ वर्ष की उम्र तक तो पढती ही रहती हैं। इस समय तक उनकी विवाह की इच्छा अनेक अंशों में कम हो जाती है। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली और कॉलेज के जीवन के परिणाम-स्वरूप वे शान-शौकत से रहने की आदी हो जाती हैं, और साधारण श्रेणी के पुरुष से विवाह करना उनके लिये किसी प्रकार सम्भव नहीं होता। वे प्राय उच्च श्रेणी के व्यक्ति को विवाहार्थ ढूँढती हैं, जिसका समाज में सम्मान हो और आर्थिक स्थिति भी ऐसी हो जिससे उनका बढ़ा हुआ खर्च सुविधापूर्वक चल सके। ऐसे व्यक्तियों की संख्या समाज में सदैव कम हो हुआ करती है। इसलिये इन शिक्षिता स्त्रियों को प्राय अविवाहित ही रह जाना पड़ता है अथवा बहुत बड़ी उम्र में विवाह करने को वाध्य होना पड़ता है।

इस अप्राकृतिक शिक्षा का परिणाम स्त्री के जननअङ्गों के लिये विशेष हानिकारक सिद्ध हुआ है, और इसलिये वे प्राय सन्तानोत्पत्ति से बचने की ही चेष्टा करती हैं। एक विद्वान् ने इस दृष्टि से अमरीका की ७०५ ग्रेजुएट महिलाओं के सम्बन्ध में जाँच की थी। उसके परिणाम-स्वरूप विदित हुआ कि इनमें से सिर्फ १९६ ने विवाह किया था, उनमें से ६६ के एक भी सन्तान न थी, १३० के २३२ सन्तानें थीं। इसी प्रकार की अन्य जाँचों के परिणाम-स्वरूप विदित हुआ है कि कॉलेज की शिक्षा प्राप्त महिलाओं में से दो तिहाई सन्तानोत्पत्ति के प्राय अयोग्य हो जाती हैं। इतना ही नहीं, इन स्त्रियों के अगर सन्तान उत्पन्न भी होती है तो उनको अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ता है और सन्तान भी स्वास्थ्य की दृष्टि से हीन होती हैं। वे अपने बच्चों को स्तन का दूध पिलाने में असमर्थ रहती हैं, जोकि नवजात शिशु की रक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है।

वर्तमान समय में जो लोग सन्तान-निग्रह के पक्षपाती हैं, वे शायद इस अवस्था में कुछ भी बुराई न समझें। उनके मत से अगर स्त्रियों के सन्तान कम उत्पन्न होती है अथवा वे अविवाहित जीवन व्यतीत करती हैं तो यह ठीक ही है, क्योंकि संसार में मनुष्यों की संख्या पहले ही बहुत अधिक है और उनके खाने-पीने और रहने की भी ठीक व्यवस्था नहीं है। पर एक तो सोच-समझ कर सन्तान-निग्रह करने तथा इस तरह स्वास्थ्य नष्ट होकर स्त्री के वन्ध्या होने में अन्तर है, और दूसरे अब ससार में फिर ऐसा जमाना आता जान पड़ता है जब कि विभिन्न राष्ट्रों को अपनी आबादी बढ़ाने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। यह भी कह सकना कठिन है कि किसी समय ससार में से पारस्परिक सङ्घर्ष का बिल्कुल अन्त हो जायगा और स्वदेश की रक्षा के लिये शक्तिशाली व्यक्तियों की जरूरत जाती रहेगी। अभी तो यही दिखलाई पड़ रहा है कि जिस देश के व्यक्ति जितने अधिक शक्तिशाली, स्वस्थ और साहसी होंगे, वह उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है। इस उद्देश्य को सामने रख कर यूरोप के जो देश अभी तक जन-संख्या की तरफ से बिल्कुल उदासीन थे और जहाँ के बहुसख्यक लोग सन्तान-निग्रह के सिद्धान्त पर अमल करते थे, वे भी अब अपनी पूरी ताकत लगाकर और अनगिनती धन खर्च करके आबादी को बढाने की चेष्टा कर रहे हैं। पर यदि आधुनिक स्त्री-शिक्षा-प्रणाली का अधिक परिमाण में प्रचार हो जाय और अधिकांश नवयुवतियाँ कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करने के साथ ही अपने स्वास्थ्य को चौपट कर लें तथा अपनी जनन-शक्ति को खो बैठें तो राष्ट्र-रक्षा का कार्य किस तरह सम्पन्न हो सकता है?

सन्तानोत्पत्ति के सिवा व्यक्तिगत रूप से विचार करने

पर भी आधुनिक शिक्षा द्वारा स्त्रियों के स्वास्थ्य का नष्ट होना कम शोचनीय नहीं है। सोचने की बात है कि जिन स्त्रियों को पन्द्रह-बीस वर्ष की अवस्था में ही प्रदर, कब्ज, सिर-दर्द आदि जैसी व्याधियाँ लग जायँगी, जिनकी दृष्टि निर्बल हो कर चश्मा लगाने की आदत लग जायगी, जिनके दाँत पच्चीस तीस वर्ष की आयु में ही हिलने अथवा उखड़ने लगेंगे, वे जीवन का सुख क्या प्राप्त कर सकती है। और उनके द्वारा दूसरों को भी क्या सुख प्राप्त हो सकता है? निश्चय ही ऐसी स्त्रियों का जीवन निरानन्द-मय होता है और वे कदाचित् ही सुखी पत्नी या माता बन सकती हैं। हम यहाँ पर फिर इस बात को दुहराना चाहते हैं कि स्त्रियों को शिक्षा देना, उन्हें आत्म-निर्भर बनाना, उनमें अन्याय और अविचार के प्रतिकार की शक्ति उत्पन्न करना आदि सब बातों को ठीक मानते हुये भी इसमे कोई इनकार नहीं कर सकता कि समाज और राष्ट्र की सब से बड़ी सेवा, जिसका भार अनिवार्य रूप से स्त्रियों के ऊपर है सन्तानोत्पत्ति और उसका उचित रूप से पालन ही है। इस बात को दृष्टिगोचर रखते हुए एक भारतीय विद्वान् ने आधुनिक शिक्षा प्रणाली की आलोचना करते हुए ठीक ही कहा है —

"प्रत्येक स्त्री जन्म से ही माता, शिक्षिका और परिवार की मुखिया होती है। उसको ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जो इन महत्वपूर्ण कार्यों के उपयुक्त हो। भारतीय माताओं की यह शिकायत है कि यहाँ के स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती है उससे उनकी पुत्रियों को गृह जीवन की दृष्टि से कुछ भी लाभ नहीं पहुँचता। भारतीय समाज में अनुभवी पत्नियों और माताओं का महत्व बहुत अधिक माना जाता है, पर स्कूल और कॉलेजों में विवाह को गौण विषय समझा जाता है। लड़कियों को इस ख्याल से कि अगर इनका विवाह न हो तो वे किसी प्रकार अपना भरण-पोषण कर सकें, नौकरी करने अथवा कोई दूसरा कार्य करने योग्य शिक्षा दी जाती है। पर समय आने पर इनमें से अधिकाश लड़कियों का विवाह होता ही है। जब ऐसा होता है तो वे घर और पारिवारिक जीवन की समस्याओं के सम्बन्ध में सर्वथा ज्ञानहीन सिद्ध होती हैं। यह सच है कि लड़कियों के स्कूलों और कालेजों में कार्य की स्वतन्त्रता और आर्थिक स्वतंत्रता को उचित महत्व दिया जाना चाहिये। इसी प्रकार उनको शारीरिक शक्ति बढाने की भी शिक्षा मिलनी चाहिये, पर यह आदर्श एक नियत सीमा के भीतर ही रहना चाहिये, आजकल लड़कियों के स्कूलों में स्त्री-जीवन की शिक्षा पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता, यह एक बड़ी त्रुटि है। इस दृष्टि से भारत की स्त्री-शिक्षा-प्रणाली का आमूल पुनः संस्कार होना चाहिये और उसका निर्माण स्त्रीत्व के आधार पर किया जाना चाहिये। स्त्री-शिक्षा की वही प्रणाली राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उचित समझी जा सकती है, जिसका आधार भारतीय समाज में भारतीय स्त्रियों की महत्ता, स्थिति और कर्तव्य हो। जो प्रणाली इस प्रकार वैज्ञानिक और बुद्धि-सङ्गत आधार पर न होगी वह कभी सफल नहीं हो सकती। भारतवर्ष का राष्ट्रीय हित स्त्रियों पर ही निर्भर है और वर्तमान प्रणाली स्त्रियों को उनके वास्तविक जीवन-कर्तव्य के लिये तैयार नहीं करती।"

वास्तव में स्त्री शिक्षा का प्रश्न बड़ा गम्भीर और महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में बिना पूर्णतया सोचे-विचारे निर्णय कर लेना बहुत हानिकारक सिद्ध हो सकता है। एक तरफ जहाँ समाज-सुधार की दृष्टि से और स्त्रियों के उद्धार की दृष्टि से उनमें शिक्षा का प्रचार होना अत्यावश्यक है, वहाँ दूसरी तरफ उनको गलत तरीके से शिक्षा देने से भी भयङ्कर परिणाम हो सकते है। इसलिये देश-हितैषियों का कर्तव्य है कि वे स्त्री-शिक्षा की वर्तमान प्रणाली का संशोधन कर ऐसे मार्ग का अवलम्बन करें जिससे महिलायें आवश्यक ज्ञान से वंचित न रहें और साथ ही स्वस्थ तथा सबल रह कर देश और समाज के प्रति अपने वास्तविक कर्तव्य का पालन कर सकें।

पतझड़

[श्री० उपेन्द्रनाथ 'अश्क']

[श्री० उपेन्द्रनाथ 'अश्क']

उजड़ गई उपवन की दुनिया विदा हुए ऋतुराज !
छाई व्यथा विश्व की मानो बन कर पतझड़ आज !

निश्वासें है और समीरण,
आज कहाँ भ्रमरो का गुञ्जन ?
धूल हुआ कलियो का यौवन,

लतिकाओ को भी लगती है लहराने मे लाज !
उजड़ गई उपवन की दुनिया विदा हुए ऋतुराज !

पीले पल्लव काँप रहे हैं लेकर जजर प्राण,
आज कहाँ फूलो के ओठो पर पहली मुस्कान ?

आज कहाँ गालो की लाली ?
वे आँखें मद सी मतवाली ?
जिनका दीवाना था माली !

खोई खोई डाल डाल पर उड़ती बुलबुल आज !
उजड़ गई उपवन की दुनिया विदा हुए ऋतुराज !

सुरभित करता कुञ्ज मलय मे मिलकर जहाँ पराग,
और जहाँ मद के मतवाले गाते मधुमय राग,

दौर जहाँ मदिरा के चलते,
सागर पर सागर थे ढलते,
जी के सब अरमान निकलते,

आज वहाँ कुछ टूटे प्यालो का है लगा समाज !
उजड़ गई उपवन की दुनिया विदा हुए ऋतुराज !

सूखे विटप खडे है मानो जीवन का उपहास,
ठूँठ डालियो पर कुछ पक्षी नीरव और उदास,

वे नग़मे वे गान कहाँ अब ?
जीवन के सामान कहाँ अब ?
इन ढाँचो मे प्राण कहाँ अब ?

सहसा टूट गई हो जैसे, सब पर दुख की गाज !
उजड़ गई उपवन की दुनिया विदा हुए ऋतुराज !

श्रान्त पथिक—मैं आ बैठा हूँ लेकर अमित थकान,
धुँधली तस्वीर यौवन की खिच आई अनजान;

जब पुलकित मुकुलित था उपवन,
जब विकसित सरसित था जीवन,
तुम आई थी, जब मधु ऋतु बन,

अब तो मेरे भी प्राणो पर है पतझड़ का राज !
उजड़ गई उपवन की दुनिया, विदा हुए ऋतुराज !

बिखरे फूल

शान्ति

ढाई अक्षर का यह छोटा सा शब्द कितना शक्तिशाली है, इसमें कितना आकर्षण है, कितना रस है। संसार के सभी स्त्री-पुरुष आदि काल से इसकी खोज में रहते हैं, इसको चाहते हैं और इसको पाने के इच्छुक हैं। रात-दिन इसको साधने के प्रयत्न में लगे रहते हैं। परन्तु शान्ति! यह तो कवि की कल्पित नाजनीनों से भी अधिक दुःसाध्य है। इसे अपने वश में करना किसी विरले ही का काम है। तपस्वी इसी की खोज में तपस्या करते हैं। बन, जङ्गल, गुफा और पर्वतों में घूम-घूम कर सहस्रों और हज़ारों आदमियों ने इसी के विरह में दिन बिताए हैं। शरीर को भाँति-भाँति के कष्ट पहुँचा कर उसे कृश और क्षीण बनाया है, इसी आशा में कि शायद इसे प्राप्त कर लें। परन्तु इसके प्रेमियों का अधिकतर अनुभव तो यही रहा है कि कुछ भी कर डालो, यह रुष्ट ही रहती है।

बात यह है कि इससे प्रेम करते हुए भी, इसकी असीम चाह हृदय में रखते हुए भी साधारण मनुष्य इसके स्वभाव से, इसकी रुचि-अरुचि से अपरिचित है। वे यह जानते ही नहीं कि क्या उपाय करने से यह देवी प्रसन्न होगी। इसी से वे अन्त में निराशा ही को प्राप्त करते हैं। बहुत लोगों का विचार है कि शान्ति को बालकों से बहुत प्रेम है। वह सदा उनके साथ समय बिताना पसन्द करती है। परन्तु मैंने देखा है कि बालकों के साथ भी वह वफ़ादारी नहीं करती। क्षण भर के लिये यदि बालक का साथ भी दिया तो ज़रा से में उससे रुष्ट हो, उसे छोड़ कर चल देने में इसे सङ्कोच नहीं। किसी बालिका को मनमानी गुड़िया नहीं मिली, बालक के हाथ चमकता हुआ दीपक नहीं लगा, खेल में साथियों ने हरा दिया, भाई बहिन ने, साथ के मित्रों ने थप्पड़ लगा धक्का देकर गिरा दिया, बस शान्ति ने संग छोड़ा और बालक बेचैन हुआ। दिन भर बालक रोते हैं, चिल्लाते हैं, हठ करते हैं, क्रोध करते हैं। यदि शान्ति निरन्तर इनके साथ रहती तो यह सब क्यों होता? तब तो बालकों का रोना-धोना, झगड़ा-टण्टा कहीं सुनाई न देता।

युवा होने पर संसार के चक्र में पड़कर, इच्छाओं को पाल-पोस कर स्त्री-पुरुष समझते हैं कि उनके पूरा करने से शान्ति मिलेगी। धन-दौलत इकट्ठी की, माल-असबाब किया, बाल बच्चे उत्पन्न किये, गृहस्थी का जञ्जाल फैलाया, एक-एक कर इच्छाओं की पूर्ति की, जीवन-पथ पर पग-पग कर आगे बढ़े, परन्तु फिर भी देखा कि मृग तृष्णा की भाँति शान्ति अभी और आगे है, अभी उसको पाने के लिये थोड़ा और परिश्रम करना शेष रह गया है।

बहुतों ने सासारिक जीवन में उससे मिलन की आशा छोड़ संन्यासी बन एकान्त-वास ग्रहण किया। हिमालय के पर्वतों में, बर्फ़ीली चोटियों पर, खाई-खन्दकों में, काँटों और जन्तुओं से भरे बन-जंगलों में वास कर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। बौद्ध मतावलम्बियों ने पहाड़ों की गुफाओं और जङ्गलों में बड़े-बड़े विहार बनाए और वहाँ अपने सङ्घ के भिक्षुओं के साथ मनुष्य

मात्र से दूर, सांसारिक सुखों से अलग रह कर उसकी बाट जोहने लगे। अनेक स्त्रियों ने भी घर गृहस्थी छोड़, बाल-बच्चों को तिलाञ्जलि दे, सङ्घ में भरती हो, त्यागी और विरक्त जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। ईसाइयों ने इसी प्रकार संन्यासी और सन्यासिनों के सङ्घ बना देह के जीवन से मुख मोड़ आत्मा का जीवन ग्रहण किया। परन्तु इतना परिश्रम करने पर इन असंख्य स्त्री-पुरुषों में से थोड़ों को ही अखण्ड शान्ति मिली है। बहुतेरों की खोज तो इस क्षेत्र में भी असफल ही रही। शान्ति देवी का तो मिलन वही पुराने ढङ्ग पर, क्षणभंगुर ही रहा। थोड़ो देर के लिये यदि साथ दिया, तो फिर हाथ से निकल भागीं।

व्यक्तियों की तरह देश और जातियाँ भी शान्तिदेवी की उपासक हैं। सब यही चाहते है कि हम शान्ति के साथ रह सकें, परन्तु किसी को भी सदा के लिए शान्ति के साथ रहना नसीब नहीं होता। आजकल संसार की दशा क्या है? किसी ओर भी चैन नहीं। सभी ओर घोर युद्ध छिड़ रहा है। सच तो यह है कि आजकल के संसार से शान्ति देवी जितनी रुष्ट हैं, उतनी शायद पहले कभी न रही हों। ऐसा जान पड़ता है कि आजकल का वातावरण, आजकल की सभ्यता, आजकल का आचार-विचार, आजकल का चाल-चलन और ढङ्ग उन्हें बिलकुल ही पसन्द नहीं है। इसलिये वह सदा के लिए ही रुष्ट होकर इस संसार से बिदा हो रही हैं।

परन्तु मनुष्य मात्र तो शान्ति के बिना रह ही नहीं सकता। जीवन इसके बिना न केवल नीरस है, वरन् असम्भव है। इसीलिये इसकी खोज निरन्तर जारी है। संसार में किस भाँति शान्ति स्थापित की जावे, इसके लिये संसार के बड़े से बड़े मनुष्य हर जाति और हर देश से आकर सभाएँ करते हैं, वाद-विवाद करते है। भाँति-भाँति के उपाय सोचते हैं। परन्तु शान्ति के इच्छुक होते हुये भी, शान्ति-शान्ति पुकारते हुए भी वे युद्ध की तैयारियों में रात-दिन लीन है। ऐसो दशा में शान्ति को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। शान्ति प्राप्त करने के पथ पर अग्रसर होना तलवार की धार पर चलने के समान दुःसाध्य है, परन्तु उसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय शान्ति पाने का नहीं है। घर-गृहस्थी मे रह कर, संसार के प्रति दिन के धन्धों में फँसे रहकर भो हम इसको पा सकते हैं। श्रीकृष्ण भगवान् के उपदेश से अर्जुन ने युद्ध-भूमि में इसे पाया था। इसलिये इसको खोज में, अपने कर्म-क्षेत्र को छोड़कर, कहीं जाना मूर्खता है। अपने हृदय के मन्दिर में हम इसको सदा के लिये स्थापित कर सकते हैं, परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि लाभ हानि के विचार को त्याग कर, निर्भय होकर हम सदैव अपना कर्तव्य पालन करने में लगे रहें, और इसकी लग्न में अपने आपको बिलकुल बिसार दें।

—रामेश्वरी नेहरू

* * *

उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी

भाषा ही मनुष्य जाति की एक ऐसी विशेषता है जिससे मनुष्य और पशु-जगत् की भिन्नता स्पष्ट होती है। मनुष्य के निवास-स्थान के जलवायु के अनुसार जिस प्रकार उसके रङ्ग-रूप, आकृति-प्रकृति में भिन्नता पायी जाती है, उसी प्रकार उसकी भाषा में भी भिन्नता होती है। यह भिन्नता महादेशों में अधिक और देशों में कम होती है। हमारा हिन्दुस्तान प्राकृतिक रूप से एक महादेश के समान है, इसलिये उसमें यह भिन्नता भी अन्य देशों से अधिक, महादेशों के समान है।

जब एक मनुष्य-जाति किसी और मनुष्य-जाति से मिलती है, तब उन दोनों के संयोग से एक नयी जाति और नयी भाषा की उत्पत्ति होती है। यहाँ (हिन्दुस्तान में) भी यही हुआ है। अरबी, तुर्की एवं फारसी जातियों के मुसलमान लोग जब हिन्दुस्तान में आकर आबाद हुए, तब उनके संयोग से हिन्दुस्तानी मुसलमान-जाति बनी और उनकी भाषा एवं हिन्दी भाषा के संयोग से उर्दू भाषा का जन्म हुआ। उत्तर हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दी थी और उत्तर-पश्चिम ही की ओर से मुसलमानों

का इस देश में आगमन हुआ, इसलिये हिन्दी क्रियापदों को लेकर अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों के सयोग से उर्दू भाषा का जन्म हुआ। यद्यपि भाषा की कसौटी उसके क्रियापद ही हैं। जिस भाषा की क्रिया होती है वही भाषा मानी जाती है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि शब्द चाहे जिस भाषा के हों। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इसीलिये उर्दू हिन्दी से भिन्न कोई भाषा नहीं, पर उसमें यही तो विचित्रता है कि अपनी क्रियाओं के न होने पर भी वह एक स्वतन्त्र भाषा है। इसका कारण है, उसका अपना निज का साहित्य। वह साहित्य न अरबी, फारसी का और न हिन्दी का हो सकता है।

इधर हिन्दी भाषा भी संसार की एक प्राचीन जाति की जीती-जागती भाषा है। उसका भी विशाल साहित्य है। कहा जाता है कि हिन्दुस्थान में योंही सैकड़ों बोलियाँ हैं। राष्ट्रीयता के विचार से एक राष्ट्र भाषा बनाने का कार्य जारी है। तब नयी भाषा और बढ़ाकर कुछ जातियों को अलग क्यों रक्खा जाय? जब उर्दू और हिन्दी में शब्द प्रयोग मात्र का अन्तर है तब दोनों का शब्द-प्रयोग शिथिल करके, दोनों को एक ही भाषा हिन्दुस्थानी के नाम से क्यों न पुकारा जाय? जिसमें न तो संस्कृत के कठिन शब्द आवें और न अरबी-फारसी के।

विचार बहुत अच्छा है, किन्तु देखना यह चाहिये कि उसमें सफलता कहाँ तक मिल सकती है। मनुष्य के कार्यों में सफलता वहीं तक मिलती है, जहाँ तक उसमें प्राकृतिकता होती है। जिन दो भाषाओं का विशाल-साहित्य है, उनके बोलने वाले हजारों-लाखों मनुष्य हैं, उनका अपनी अपनी धार्मिक भाषाओं से घनिष्ट सम्बन्ध है और वे अपनी-अपनी धार्मिक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग स्वभावत. चाहते हैं। उन दो प्रधान जातियों की भाषाओं का प्रचार अथवा परिवर्धन रोक कर एक भाषा बनाने का प्रयत्न, कम से कम, हमें तो असम्भव समझ पड़ता है।

भाषाओं के एक करने का प्रश्न ठीक धार्मिक एकता के समान है। प्रायः सब धर्म के प्रचारकों ने अपने पिछले धर्मों में त्रुटियाँ देख कर ही उनके स्थान पर अपने 'उत्तम' धर्म का प्रचार-कार्य प्रारम्भ किया, पर हुई बात प्रतिकूल ही। पहले के धर्मों से लोगों की आस्था तो गयी नहीं, एक और नये धर्म का जन्म हो गया। (हाँ, रूस और टर्की की भाँति, राष्ट्रीय सरकारों की भाँति सरकारी तरह से कार्य होने की बात दूसरी है।) बौद्ध, आर्य, ब्राह्म, थियासोफिकल इत्यादि धर्म इसके उदाहरण हो सकते हैं। यही बात भाषा के विषय में प्रयुक्त भी हो सकती है। जो भाषा बन गयी, जिसका साहित्य निर्माण हो गया, उसका विकास उसके बोलने वालों के रहते रुकना असम्भव होता है।

कहा जाता है कि वर्तमान हिन्दी-गद्य का जन्म शासकों के शिक्षा-विभाग से लल्लूलाल जी द्वारा कराया गया है। तब प्रश्न यह होता है कि उसके पहले क्या सब हिन्दी जनता वही उर्दू भाषा बोलती थी? या उर्दू भाषा बनने के प्रथम क्या भारत-वासियों की कोई भाषा ही न थी? उर्दू-गद्य के जन्म के प्रथम और बाद में भी यहाँ की वही भाषा थी, जिसकी सम्पत्ति के मत्थे उर्दू भी भाषा बन गयी और जो निर्विवाद रूप से हिन्दी भाषा की क्रियायें कही जाती हैं। वे क्रियाये वैदिक, संस्कृत, पाली एव प्राकृत भाषाओं की क्रियाओं के विकास की फल हैं, अर्थात् वे सर्वथा इसी देश की भाषाओं की हैं। और प्राय समस्त भारतीय आर्य-भाषाओं में उन्हीं क्रियापदों के रूपान्तर प्रचलित हैं। वह भाषा खड़ी बोली ही क्यों न कही जाय, है तो हिन्दी ही। इसी से खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा आदि बोलियाँ हिन्दी के अन्तर्गत मानी जाती है। इन्हीं बोलियों के शब्दों को लेकर हिन्दी भाषा बनी है। अतएव दिल्ली-मेरठ की खड़ी बोली का गद्य ही उस समय हिन्दी का गद्य था। अमीर ख़ुसरो ने अपने सरल पद्यों में प्राय उसी हिन्दी-गद्य का प्रयोग किया है। उस समय सर्वसाधारण से बात करने के लिये मुसलमानों की भी वही भाषा थी। पीछे जब मुसलमान लोग अपनी धार्मिक-भाषा के शब्दों की भरमार करके उससे एक नयी भाषा बनाने लगे, तब हिन्दुओं के भी

कान खड़े हुए और किसी की प्रेरणा से हो या स्वाभाविक रूप से, हिन्दू भी उसी खड़ी बोली में अपनी धार्मिक भाषा के शब्दों का प्रयोग बढ़ाने लगे। साम्प्रदायिकता में जैसे हिन्दू मुसलमानों से पीछे रहे हैं, वैसे ही इस बात में भी। अब, यही हिन्दी-गद्य का जन्म मान लिया जाय तो दूसरी बात है। अस्तु।

चाहे जो हो, वर्तमान हिन्दी का भी गद्य-पद्य, दोनों उर्दू से कम नहीं है। उसके पीछे विशाल जन-मत है। उर्दू का भी अपना साहित्य है, उसके पीछे भी विशाल जन-मत है। दोनों का अपना अस्तित्व खोकर एक नया रूप धारण करना सर्वथा असम्भव है। हाँ, ये दोनों भाषाएँ अपने साहित्य-निर्माण के साथ ही साहित्यिक भाषा बनती जा रही है, इसलिये बोल-चाल की एक अन्य भाषा बनेगी अवश्य, चाहे वह हिन्दुस्तानी ही हो। पर आजकल हिन्दुस्तानी तो उर्दू का ही एक सरल रूप है, क्योंकि आवश्यकता होने पर उसमें अरबी-फ़ारसी के नये शब्द ले लिये जाते हैं, पर संस्कृत का एक प्रचलित शब्द भी लेने के लिये शपथ सी रहती है। यही देखकर तो हिन्दुस्तानी के हिमायतियों पर हिन्दी वालों को सन्देह होता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी राष्ट्र-भाषा होने जा रही है। अनेक प्रान्तों में उसके बोले जाने से उसके अनेक रूप होंगे। उन्हीं की तरह नागरी लिपि में लिखा हुआ उसका एक उर्दू वाला रूप भी होगा।

बोल-चाल की भाषा और साहित्य की भाषा में अन्तर होना स्वाभाविक है, प्रत्युत यह कहना चाहिये कि बोल-चाल की भाषा में साहित्य-निर्माण असम्भव सा है। उर्दू बोल-चाल की ही भाषा थी। जैसे ही उसमें निर्माण होने लगा वह बोल-चाल से दूर भागती गयी। उसके स्थान में हिन्दुस्तानी बनी। यही हाल हिन्दी का भी है। महाकवि अयोध्यासिंह जी उपाध्याय जैसा सिद्ध-हस्त लेखक भी बोल-चाल की भाषा (हिन्दुस्तानी) में ठेठ हिन्दी का ठाट लिखकर उसके साहित्य-निर्माण में सफल नहीं हो सका है।

—लाल भानुसिंह बाघेल

* * *

कान्यकुब्ज समाज की वैवाहिक समस्या

—•—

कहना न होगा कि भारत आज विदेशियों से बिगड़ कर विशेष कष्ट सहन कर रहा है, किन्तु इससे भी ज्यादा कष्ट तो उस समय प्रतीत होता है जब अत्याचार का ताण्डव नृत्य अपने ही परिवार अथवा समाज में आये-दिन देखने को मिलता है।

कान्यकुब्ज ब्राह्मण समाज, जो कुछ ही समय पूर्व भारतवर्ष के अन्य ब्राह्मण-समाजों में सिरमौर था, जिसकी ईश्वर-प्रदत्त दैविक शक्ति के आगे संसार की सारी भौतिक शक्तियाँ नतमस्तक हो गई थी, वही समाज आज अधोगति को प्राप्त हो रहा है। शक्तिहीन और छिन्न-भिन्न होने के साथ ही औरों की दृष्टि में नीच, निस्तेज और निकम्मा समझा जाने लगा है। सारी परिमार्जित शक्ति, जो कुछ समय पूर्व इनकी आदि सहचरी थी, आज अपने कर्त्तव्यों से विमुख होने के कारण बिदा ले चुकी है। सारा आत्मबल आज न जाने किस भूत के गर्भ में विलीन हो गया है।

ऐसे तो यह समाज वर्तमान समय में कुरीतियों का केन्द्र बन रहा है, किन्तु ज्यादा शोचनीय अथवा विचारणीय प्रश्न इस समाज में प्रचलित वैवाहिक समस्या ही है। इस प्रश्न पर करोड़ों व्यक्तियों का वैयक्तिक सुख-दुख एवं सफलता-विफलता ही नहीं, बल्कि राष्ट्र तक का उत्थान-पतन निर्भर करता है। यद्यपि यह समस्या इन दिनों सभी जातियों के सामने जटिल रूप में है, तथापि यह अवश्य कहा जा सकता है कि कान्यकुब्ज और कायस्थादि समाजों में तो यह बहुत ही भयङ्कर रूप धारण किये हुये है। ये जातियाँ प्रचलित वैवाहिक कुप्रथाओं के कारण बड़ी बुरी तरह तबाह हो रही हैं। यहाँ तक कि अब समाज में लड़की का पैदा होना, वज्रपात होने से कम नहीं समझा जाता। परिवार में एक लड़की का पैदा होना किसी तरह क्षम्य भी हो सकता है, पर कहीं दुर्भाग्य के कारण चार-पाँच लड़कियाँ पैदा हो गईं, तब

तो उनके पीछे परिवार की सारी कमाई स्वाहा करने पर भी लड़की के योग्य वर प्राप्त करना दुर्लभ ही नहीं, असम्भव प्राय हो जाता है । निर्धन परिवारों की कन्याएँ तो प्राय जीवन-पर्यन्त अपने भाग्य अथवा समाज को कोसती रह जाती हैं ! कुछ तो समाज के माथे कलङ्क का टीका मढ़ कलुषित भी बन जाती हैं । इस समाज में तो लड़कियों के गुण की परख है न रूप की, सिर्फ रुपयों की ही प्रधानता है । लड़की चाहे कितना भी सर्व गुण सम्पन्न हो, किन्तु विवाह के शुभ अवसर पर लड़के के पिता या अभिभावक की दृष्टि अगर किसी चीज़ पर पड़ती है, तो वह लड़की के पिता की थैली पर । शादी क्या ठहरी, मानो खरीद-बिक्री की सामग्री हो ।

दुर्भाग्य या सौभाग्य से कहीं लड़का पढा-लिखा, सुन्दर और कुलीन कुल का हुआ तब तो मानों पाँचों अँगुलियाँ घी में हैं । फिर ता आपके दहेज़ को पूरा करने में आपकी बराबर हैसियत तक वालों को, घर को पैत्रिक संपत्ति बेच देने पर भी अपनी लड़की को आपके लडके के साथ ब्याहना दुर्लभ हो जाता है। कितने लड़के को बी० ए० तक पढाने में जो खर्च हुआ है, उसके लिए लालायित हैं, तो कितने लड़के को आगे पढाने का ही खर्च गळवाना चाहते हैं। लड़का क्या है, मानो आमदनी का ज़रिया है !

शादी ठीक होने के ढङ्ग भी निराले हैं । किसी निश्चित समय पर समाज के दस पाँच बड़े-बूढे इकट्ठे हो जाते हैं । इसी समय लड़की का पिता भी सम्मिलित कर लिया जाता है । ठीक ऐसे ही अवसर पर एकत्रित सज्जनों में से कोई लड़के के पिता की ओर संकेत कर कह उठता है—"यहिमा कहै सुनै के काउन बात आय । पारसाल लखनऊ के दीच्छितन और यही साल प्रभाकर के अवस्थी वालन की जो चार हजार की चिट्ठी आई है, वो काहे नाहीं देखाय देतवे ।"

पाठको ! यह उनकी बोली है, जिनको खाने तक का घर में सिलसिला नहीं है । लड़का आजीवन अविवाहित ही क्यों न रह जाय, किन्तु शादी ठीक करने के समय तो आप शेखों की शेखी और पठानों की टर्र के सदृश अन्त तक एक ही लक्ष्य पर डटे रह जायेंगे ।—लड़की का पिता ? उस बेचारे के लिए तो सभ्यता के लिहाज़ से उक्त समय पर यह कह पिण्ड छुड़ाना पड़ता है कि घर जाकर विचार विमर्श कर पुन. सूचित करूँगा । फल यह होता है कि लड़की के पिता को बाध्य होकर, समाज के उँगली उठाने के भय से, अपनी लड़की के गले पर छुरी चलानी पड़ती है ।

शादी ठीक हो जाने के बाद की दशा भी कम चिन्ताजनक नहीं है । बारात दूर की रही तब तो कुशल है, अन्यथा समीप से आने वाली बारात तो देखने से मालूम होता है, जैसे विवाहार्थी पुरुष सेना लेकर कन्या को जबर्दस्ती लूट लाने जाते हों । वर पक्ष के बारातियों का दिमाग तो इस समय सातवें आसमान पर चढ़ा रहता है । बारात में कन्या-पक्ष की साधारण सी त्रुटि भी लड़के के पिता अथवा बारातियों के लिए असह्य है । वर-पक्ष का उस समय पग-पग पर तुनुकना तो एक प्रकार का धर्म सा हो गया है । बारात में तीस व्यक्ति हों तो बरतौनी (नकद बिदाई) पाने के लिए चिट्ठा में साठ आदमियों का नाम भेज देना, लड़के के कलेवा (जलपान) करने में रकम पाने के लिए टट्टू की तरह अड़ना और तब कन्या-पक्ष का अत्यन्त आग्रह इत्यादि करना समाज के लिए शोभाजनक समझा जाता है । लड़की पक्ष के लिए इस बरतौनी रसम को सकुशल पार कर जाना, बैतरणी पार करने से कम दुसह नहीं है ।

एक तो यह वैवाहिक कुरीति अपना भयङ्कर रूप धारण करके समाज का संहार कर रही है, और दूसरी ओर विस्वा (मर्यादा) प्रथा से भी समाज को कम हानि नहीं हुई है । विशेषत शादी सम्बन्धी कार्यों में तो यह विनाशकारी प्रथा अपना अड़ङ्गा लगाये बिना नहीं रहती । कहीं लड़का मनोनुकूल मिला तो यह विस्वा नहीं, और कहीं विस्वा मिला तो लड़का नहीं । यदि दोनों मिला भी तो माँग बहुत ऊँची हो जाती है । इस विस्वा में जीरो प्वाइन्ट से २० विस्वा तक के कुलीन कान्यकुब्ज हैं । बीस विस्वा तक हद है । कुछ महानुभाव तो इस

विस्वा प्रथा के कायल होने के कारण अपनी लड़की की शादी अयोग्य वर के साथ ही करना श्रेष्ठ समझते हैं, अपेक्षाकृत उस किसी शिक्षित धन-सम्पन्न किन्तु धाकर अथवा पञ्चादर नवयुवक से, अर्थात् पाँच या दस विस्वा के खानदान से अपने को बीस विस्वा का घोषित करने पर बीस विस्वा के अधिकारियों की आत्मगरिमा बाँसों ऊपर उछल पड़ती है। वे यह जान कर भी लज्जित नहीं होते कि यह विस्वा प्रथा मुसलमानी राज्य में अपने कर्त्तव्यों से फिसलने पर यवनों द्वारा वितरण की गई थी। इस विस्वा-प्रथा की मर्यादा से मुगल सम्राट अकबर ने उन कान्यकुब्ज भाइयों को विभूषित किया था, जो दक्षिणा के लिये उसके वास-स्थान देहली में जाकर, उसकी आज्ञानुसार उसके दरवाज़े पर यज्ञादि करने में अपना बड़ा मान समझते थे। साथ ही उस समय कुछ ऐसे भी कान्यकुब्ज थे, जो धन की लालसा को ठुकरा कर, यवन की आज्ञानुसार उसके दरवाज़े पर यज्ञादि करने में अपना महान अपमान समझते थे। किन्तु सख्त अफसोस है कि वे ही भाई आज समाज में धाकर कहे जाने लगे हैं।

अत: आज इन दो बलवती कुरीतियों के कारण समाज द्रुत गति से रसातल को चला जा रहा है। मर्दुमशुमारियों के रेकॉर्ड से स्पष्ट पता लगता है कि इस जाति का कितना जबर्दस्त पतन हुआ है। और इसके सुधारक और कर्णधार युवक न जाने कब तक और चुप्पी साधे बैठे रहेंगे। समाज के वर्त्तमान सुधारकों और नवयुवकों की भी बड़ी विचित्र दशा है। आजकल के सुधारक भाई भी सुधारक का चोंगा पहन, सुधार के रङ्गमंच से सुधार की बड़ी लम्बी-चौड़ी स्पीचें तो अवश्य झाड़ देते हैं, किन्तु लेन-देन की समस्या जब स्वयं उनके सामने उपस्थित होती है, तो उन्हें फिसलते ज़रा भी देर नहीं लगती। सच तो यह है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण समाज के नवयुवकों में अभी काफी जोश का संचार हुआ ही नहीं। यद्यपि कुछ नवयुवक इस रूढ़िवाद के जबरदस्त पञ्जे में फँसे रहने पर भी उससे मुक्त होने के लिये लालायित हैं, किन्तु वे अपनी शक्ति और साहस को इतना भूल गये है कि उनके लिए इस तरह समाज से उद्धार पाना दुर्लभ ही नहीं, असम्भव प्राय है।

—मोहनप्रसाद अवस्थी

* * *

स्त्री जाति और उन्नति

आज भारतवर्ष महान अधोगति को प्राप्त हो चुका है। यहाँ के निवासियों की दशा देखकर रोना आता है। जो भारतवर्ष कभी सोने की चिड़िया कहलाता था, वह आज भूख से तिलमिला रहा है। इसके बच्चे आज रोटी बिना बुरी दशा को प्राप्त हो चुके है। कोई भूख से तङ्ग आकर आत्म-हत्या कर रहा है, तो कोई साधुवेष धारण कर घर से निकल भागता है। कोई अपना धर्म छोड़ अन्य धर्म की ओर अग्रसर है, तो कोई इसी पापी पेट के लिए कौम से गद्दारी करने पर तुला हुआ है। कोई चोरी से अपना पेट पालता है, तो कोई जुए से ही गुज़र कर रहा है। अर्थात् इसी पापी पेट के लिए सब प्रकार के कुकर्म हो रहे हैं। परन्तु शान्ति फिर भी नहीं। शान्ति हो किस तरह? उनकी आवश्यकताएँ तो पूरी होतीं ही नहीं। भूख के मारे भारतीय बच्चों के शरीर पर गोश्त तो नज़र आता ही नहीं। केवल हाड़ ही हाड़ नजर आते है। न इन्हें रोटी मिले और न कपड़ा। जिसका फल यह है कि लाखों भारतीय बच्चे हर वर्ष असमय ही काल के ग्रास होते है।

इतना ही क्यों? जहाँ पर कभी अर्जुन, भीम, कृष्ण और राम के समान बलवान हुए, वहाँ पर आज ऐसे-ऐसे वीर पैदा हो रहे हैं जो मुर्दों से डरें, बिल्लो से डरें, चूहे से डरें, यहाँ तक कि ईंटों-पत्थरों और पेड़ों से डरें। जहाँ पर कभी भीष्म-समान दृढ़प्रतिज्ञ हुए, वहाँ आज छोटी-छोटी बातों पर जबान बदलने वाले पैदा हो रहे हैं। जहाँ पर बड़े-बड़े ऋषि और मुनि हुए, वहाँ आज बड़े-बड़े लुच्चे और गुण्डे हो रहे हैं। जहाँ पर कभी बड़े-बड़े विद्वान हुए, जहाँ पर कभी कुम्हार और घसियारे भी शुद्ध संस्कृत उच्चारण करते थे, वहाँ आज विद्या

दृष्टिगोचर नहीं होती। आज वही भारत विद्या के क्षेत्र में तमाम संसार से पीछे है।

परन्तु देखना यह है कि इन सब बातों का कारण क्या है? भारत ऐसी अधोगति को प्राप्त क्यों हुआ है? आज यहाँ पर वैसे ही बलवान्, विद्वान्, दृढ़प्रतिज्ञ तथा तपस्वी क्यों पैदा नहीं होते? इसका कारण? इसका कारण यह है कि हमने अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मार ली है। हमने स्वय उस शक्ति को गिरा दिया है, जो हमें उस दशा तक पहुँचाती थी, और पहुँचा सकती है। अर्थात् हमने जननी-शक्ति की महत्ता को समझा नहीं। आज जननी-शक्ति की दशा वह नहीं है, जो कि पहले थी। आज जननी-शक्ति बहुत ही हीनावस्था को प्राप्त हो चुकी है। क्या आज हमारे अन्दर ऐसी देवियाँ है, जो सीता के समान वीराङ्गना हों? जो बहनें रामायण पढ़ती हैं, उनको भली प्रकार मालूम होगा कि वह शिव जी का धनुष, जिस पर रावण जैसे योधा चिल्ला न चढ़ा सके, सीता झाड़ू देते समय बाएँ हाथ से परे रख देती थीं। आज क्या कोई देवी उनकी समता कर सकती हैं? क्या आज गार्गी के समान विदुषी स्त्रियाँ भारतवर्ष में दृष्टिगोचर होती है? नहीं, हरगिज़ नहीं। परन्तु इसका कारण पुरुष समाज की वक्र गति ही है। पुरुष-समाज ने ही इनको इस दशा तक गिराया। वेदों का पढ़ना इनसे छीना गया। तत्पश्चात् इनको हर प्रकार की विद्या से अनजान रखा गया। इनको अबला का पद मिला। यही तक नहीं, बल्कि घर में बन्द कर दिया गया! अब जब विद्या और बल न रहा तो मान घटना शुरू हुआ। ऐसी पतित जननी-शक्ति से आप ऊँचे दरजे की सन्तान की इच्छा करें तो कितनी मूर्खतापूर्ण बात है। फिर यदि अपमान होता है तो क्यों रोते हो? यह तो होना ही था। पिटने वाली जननी की सन्तान क्या पीटने वाली होगी? नहीं, हरगिज़ नहीं। वह भी पिटने वाली ही होगी। फिर पिटने से क्यों डरते हो, पिटो और ख़ूब पिटो। यदि जननी शूद्र और गँवार है, तो क्या उसकी सन्तान शूद्र और गँवार से कुछ ऊँचे दर्जे की होगी! नहीं, यही कारण है, जो आज विदेशों में भारतीय शूद्रों के समान समझे जाते हैं। यदि जननी-शक्ति विदुषी न होगी तो उसकी सन्तान विद्वान क्योंकर हो सकती है? यदि जननी वेदों की ज्ञाता न होगी तो सन्तान वेदों की ज्ञाता क्योंकर हो सकती है? जब जननी शक्ति ही अबला होगी तो उसकी सन्तान किस प्रकार भीम और अर्जुन के समान होंगी? यही है हमारी आज की अधोगति का कारण।

जो रास्ता अवनति का है, उसी मार्ग से उन्नति भी हो सकती है। यदि जननी शक्ति की दशा बिगड़ने से अवनति हो सकती है, तो सुधरने से उन्नति भी हो सकती है। इसलिये यदि हमें उन्नति करनी है, तो सर्वप्रथम हमें जननी-शक्ति की दशा सुधारनी होगी। जिस दशा को स्वयं पहुँचना चाहते हैं, उसी दशा तक पहले जननी-शक्ति को पहुँचाना होगा। यदि स्वयं विद्वान होना चाहते हो, तो जननी-शक्ति को पहले विद्वान बनाना होगा। सन्तान का सबसे बड़ा गुरु जननी ही है। यदि जननी विद्वान् होगी तो वह सन्तान को गर्भावस्था से ही विद्वान् बनाने लगेगी। इसी प्रकार वीर बनने के लिए जननी को भी वीर बनाना पड़ेगा। उन्हें अबला का पद नहीं, बल्कि महाशक्ति का पद देना पड़ेगा। वीर माता का पुत्र ही वीर हो सकता है। सीता जैसी वीर माता के ही पुत्र लव और कुश थे, जिन्होंने अकेले ही रामचन्द्र की महान् सेना का सामना किया था। हाँ, तो यदि स्वयं सम्मान पाना चाहते हो, तो जननी-शक्ति का भी सम्मान करना होगा। उनको पैर की जूती, शूद्र तथा गँवार आदि न कह कर, माथे का सिरताज बनाना होगा। अर्थात् उनको अपने से ऊँचा पद देना होगा। तभी आप भी संसार में सम्मानित हो सकेंगे।

जब नारी जाति वीर, विदुषी, तपस्विनी, तथा वेदों की ज्ञाता हो जायगी, तब उसकी सन्तान भी अर्जुन, कृष्ण, भीष्म तथा अन्य प्राचीन महात्माओं के समान होगी। यहाँ पर फिर बड़े-बड़े विद्वान्, वीर, दृढ़-प्रतिज्ञ तथा वेदों के ज्ञाता दृष्टिगोचर होंगे। फिर भारत के दिन फिरने में एक पल का समय भी न लगेगा। भारत फिर पहले के समान स्वतन्त्र होगा! चारों ओर भारत की

धूम होगी। भारत के विद्वान तमाम संसार में ज्ञान-प्रसार करते फिरेंगे। तमाम संसार पर वैदिक ध्वजा फहरायेगी। भारत फिर संसार का गुरु होगा, और धन-धान्य से भरपूर होगा।

—प्रेमकुसुम कपूर

* * *

हमारा गोस्वामी समाज

मैंने 'चाँद' के दिसम्बर सन् ३७ के अङ्क में 'हमारा गोस्वामी समाज' शीर्षक लेख पढ़ा है। मैं भी इसी गोस्वामी समाज में पैदा हुआ हूँ और यह भली प्रकार जानता हूँ कि हमारा समाज किस प्रकार टट्टी की आड़ में शिकार खेलते हुये भी, अपने को बगुला-भगत समझे हुये है। मैंने इस समाज की कुरीतियों का अध्ययन किया है, और इस बात की भरसक चेष्टा भी करता रहा कि जिस प्रकार इस देश की अन्य जातियाँ सुधार की तरफ अग्रसर होती जा रही हैं, उसी प्रकार हमारा समाज भी इस सुधार के युग में अपने पूर्वजों के समान अब भी बना रहे और दूसरों के पद-चिन्हों पर न चल कर, स्वयं और जातियों का मार्ग प्रदर्शक बने।

रूढ़िवाद का जो अन्ध-विश्वास हमारे समाज में फैला हुआ है वैसा किसी और जाति में नहीं मिलेगा। यही हमारे अधःपतन का मुख्य कारण है। समयानुकूल धर्म की मर्य्यादा बाँधना हमारे पूर्वजों का ही कार्य था, और उनकी कुशाग्र बुद्धि तथा दूरदर्शिता के कारण ही अन्य जातियों ने हमें गुरु जैसी उच्च पदवी दी थी।

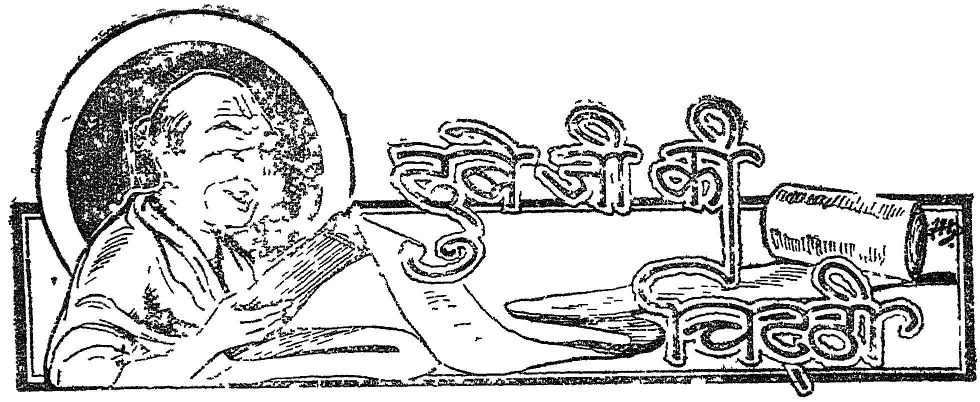
आज हम अपने आपको भूले हुये हैं। हममें जो धार्मिक शक्ति है, उसका सदुपयोग न कर केवल मिथ्या आडम्बरों में ही लगे हुये हैं।

आज वैष्णव धर्म के अनुयायी हमारी ओर टक-टकी लगाये देख रहे हैं और यह प्रतीक्षा कर रहे हैं कि हम वर्तमान युग के अनुकूल फिर से धर्म की मर्यादा स्थापित करें।

किसी भी सुधार के लिये त्याग की सब से पहले आवश्यकता है, और इसके लिये हमें व्यवहार में भी कार्य करना पड़ेगा। तभी समाज में जागृति हो सकेगी। केवल एकाध लेख लिख देने मात्र से ही हमारा कार्य पूरा नहीं होता।

क्या ही अच्छा हो, यदि हम पहले विधवा-विवाह का ही कार्य व्यवहार रूप में प्रारम्भ कर दें, जिसकी हमारे समाज में नितान्त आवश्यकता है।

—बृजवल्लभ गोस्वामी



अजी सम्पादिका जी,

जयराम जी की !

उस दिन कुछ मित्रों से वार्त्तालाप हो रहा था। सहसा एक मित्र महोदय बोल उठे—'आप आनरेरी मेजिस्ट्रेटी के लिए दरख्वास्त क्यों नहीं देते। आपके लिए तो अच्छा 'चान्स' है।'

अपनेराम बोले—'क्यों साहब, आपको मैं क्या अखर रहा हूँ, जो आप मुझे आनरेरी मेजिस्ट्रेट बनाना चाहते हैं ?'

'क्यों, इसमें अखरने की बात क्या है ?'

'क्यों, है क्यों नहीं ? अभी मैं अपने घर में आराम से बैठा हूँ। मेरा अपना समय केवल अपना ही है। कोई चिन्ता नहीं—कोई भार नहीं। मेजिस्ट्रेट बन कर खामखवाह एक बला मोल लूँ। समय पर कचहरी दौड़ा जाऊँ, समय पर आऊँ। मुकदमों की चिन्ता, अफसरों की धौंस। एक बात हो तो बताऊँ।'

'इस सबके बदले में अधिकार तथा सम्मान कितना मिलेगा।'

'इतना मँहगा सम्मान मुझे नहीं चाहिए। रही अधिकार की बात, सो वह उसी समय तक रहेगा जब तक कि मेजिस्ट्रेटी की कुर्सी पर बैठे रहेंगे। जहाँ उससे नीचे उतरे, फिर वही मोची के मोची।'

'इज्जत बढ़ जायगी, हाकिम कहलाइयेगा, पुलीस-वाले राह चलते सलाम करेंगे।'

'अभी अपनेराम की कौन बेइज्जती है, और पुलिसवाले सलाम नहीं करते तो स्वर्गीय पिता राम की आत्मा को कौन सा कष्ट पहुँचता है ? एक तरफ हाकिम बनेंगे तो दूसरी तरफ गले में पट्टा भी तो पड़ जायगा। आज कलक्टर साहब की हाजिरी बजाओ, कल कमिश्नर साहब का स्वागत करो, परसों यह करो, नरसों वह करो। ऊँ हूँ ! बिल्ली बख्शे चूहा लूँडरा ही भला है।'

दूसरे महोदय बोले—'अरे यह महा आलसी आदमी हैं। इनसे कुछ नहीं होगा। इनसे कहना व्यर्थ है।'

अपनेराम बोले—'जी हाँ, दुनिया भर की बेगार करते फिरें तो आलसी न रहें।'

'अरे भले आदमी, पहले लोग हजारों रुपये खर्च करते थे और हाकिमों की ख़ुशामद करते थे, तब कहीं आनरेरी मेजिस्ट्रेटी नसीब होती थी। तुम्हें सहल में मिल रही है, एक पैसे का खर्च नहीं—तब भी तुमसे लेते नहीं बनती। महा भाग्यहीन हो। और क्या कहें।'

'सभी भाग्यवान हो जाँय तो संसार का क्रम ही बिगड़ जाय !'

'क्या कहने हैं ! आप तो बड़े तत्त्वज्ञानी हैं।'

'ख़ैर हम बेवकूफ़ सही—आपकी बला से।'

* * *

लेकिन आनरेरी मेजिस्ट्रेटी से इतनी विरक्ति होने पर भी अपनेराम आनरेरी मेजिस्ट्रेट बना ही दिये गये। रोज़ कचहरी की दौड़ होने लगी। लज्जा की मद-

तारी बोली—'यह तुमने बैठे-बिठाये अच्छी व्याधि मोल ले ली।'

अपनेराम बोले—'इसे व्याधि न कहना। यह मेजिस्ट्रेटी है।'

'खामखाह परेशानी सहते हो, मिलना-मिलाना कुछ नहीं।'

'यह परोपकार है—परोपकार में मिलने-मिलाने का क्या प्रश्न ? ख़बरदार, अब ऐसी बात न कहना।'

इसी समय चपरासी ने आकर कहा—'हुज़ूर, कुछ मुक़दमे वाले आये हैं।

'अच्छा उन्हें बिठाओ, पानी पिलाओ, पान खिलाओ। हम अभी आते हैं।'

'अब तो घर पर भी आने लगे।'—लल्ला की महतारी बोली।

'देखती जाओ, कुछ दिनों में साथ-साथ रहने लगेंगे।'

अपनेराम बाहर निकले। नौकर उन्हें पानी पिला रहा था। अपनेराम उनसे बोले—'शाम को आते तो ठण्ढाई छनवा देते।'

'किसी दिन शाम को भी आ जाँयगे। अच्छा हमारा मुक़दमा तो कर दीजिए।'

'मुक़दमा सब ठीक है। जैसा कहो वैसा कर दूँ।'

'हमारे मुवाफ़िक कर दीजिए।'

'अच्छी बात है, कर दूँगा।'

इतना कहकर अपनेराम अन्दर जाने को उद्यत हुए। मुक़दमेवाले बोले—'मुक़दमा तो सुन लीजिए।'

'भाई, ख़ूब याद दिलाया। मुक़दमा तो अपनेराम को मालूम ही नहीं। क्या मामला है।'

'मामला यह है कि एक आदमी ने हमें लात-जूतों से पीटा है।'

'तुम्हारे चोट तो नहीं लगी ?'

'चोट लगी है, परन्तु भीतरी।'

'भीतरी चोट लगी है तो गम खाओ। अन्दरूनी बातों को ज़ाहिर करना अक्लमंदी नहीं है।'

'वह फिर मारने कहता है।'

'अफ़वाह पर एतबार करना बेवक़ूफ़ी है।'

'वाह साहब ! यह आप अच्छी कहते हैं। एक दफ़ा पीट चुका है, दोबारा पीटने कहता है—आप कहते हैं कि गम खाओ।'

'तो चाहते क्या हो ?'

'उसे जेल भेज दीजिए।'

'जेल ! क्यों अक्ल मारी गई है। जेल में आजकल बड़ा आराम है। अतएव जेल का चस्का पड़ गया तो तुम्हारी ख़ैर नहीं। जब जेल से निकलेगा, तब तुम्हें ढूँढ़ कर पीटेगा।'

'अच्छा तो जुर्माना कर दीजिए।'

'जुर्माना सरकार के खजाने में जायगा—तुम्हें क्या फ़ायदा होगा ?'

'तो क्या करें ?' गम तो हम नहीं खायँगे।'

'अच्छा मिठाई खाओगे ? मँगाऊँ।'

'अच्छी बात है, मिठाई खिला दीजिए तो इस दफ़ा आपकी बात मान जाँय।'

अपनेराम ने मिठाई मँगाकर उन्हें खिलाई। वे चले गये। लल्ला की महतारी बोली—'तब तो तुम ख़ूब मजिस्ट्रेटी करोगे। मिलना-मिलाना कुछ नहीं, ऊपर से मिठाइयाँ खिलाई जाँयगी।'

'तुम समझती नहीं हो। थोड़ी सी मिठाई खिलाने से प्राण बच गये। नहीं तो न जाने कितने दिनों मुक़दमा करना पड़ता। इस तरह सस्ते छूट गये।'

एक मुक़दमा और आया। एक व्यक्ति बोला—'मेरी स्त्री मेरे पास नहीं रहती—अपनी माँ के पास भाग-भाग जाती है। मुझे शक है कि वह बदचलन है।'

अपनेराम बोले—'तुम्हारे पास नहीं रहती तो और भी अच्छा है। एक खानेवाला कम हुआ। अकेले रहो, मौज करो।'

'वाह साहब ! ब्याह क्या अकेले रहने के लिए किया ?'

'तुम बड़े अज्ञानी हो। प्राणी अकेला आता है, अकेला जाता है। इसलिए उसे अकेला ही रहना भी चाहिए।'

'तो आप अकेले क्यों नहीं रहते ?'

'अच्छा तो तुम चाहते क्या हो ?'

'मैं यह चाहता हूँ कि कोई ऐसी तदबीर कर दीजिए जिससे वह फिर न भागे।'

'वह बदचलन भी तो है—तुमने अभी-अभी कहा था।'

'मुझे शक है।'

'तुम शक्की आदमी मालूम होते हो—तुम्हारी बात का एतबार नहीं।'

'ख़ैर, बदचलन न होगी, लेकिन भाग तो जाती है। इसमें तो कोई शक ही नहीं।'

'वाकई भाग भाग तो जाती है! अच्छा ठहरो!' इतना कह कर अपनेराम अन्दर गये और लल्ला की महतारी से पूछा—'एक औरत अपने पति के पास नहीं रहती, मायके भाग भाग जाती है—कोई ऐसी तदबीर बताओ जिससे वह न भागे।' लल्ला की महतारी बोली—'उसका आदमी निखट्टू होगा या मारता-पीटता होगा। ऐसी दशा में तो वह जरूर भागेगी।'

अपनेराम बाहर आकर उस व्यक्ति से बोले—'तुम निखट्टू हो या उसे मारते-पीटते होगे—इसलिए वह जरूर भागेगी।'

'यह बिलकुल गलत है! मैं पचीस रुपये महीना पैदा करता हूँ, उसे कभी कुछ नहीं कहता!'

'कभी कुछ नहीं कहते ?'

'जी नहीं! कभी डाँटता तक नहीं!'

अपनेराम फिर अन्दर पहुँचे और लल्ला की महतारी से बोले—'तुम क्या अन्ट-सन्ट बक देती हो। वह बेचारा तो उसे कभी डाँटता तक नहीं और कमाऊ भी है!'

'डाँटता भी नहीं! तब भला वह क्यों दबने लगी ?'—लल्ला की महतारी बोली।

अपनेराम को यह बात जँच गई! बाहर आकर उससे बोले—'तुम जब डाँटते तक नहीं तब वह तुमसे कैसे दब सकती है। जाओ तुम्हारा मुकदमा खारिज!'

वह बड़बड़ाता हुआ चला गया!

तीसरा मुकदमा आया! एक औरत ने आकर फरियाद की—'हुज़ूर, मेरे आदमी ने मेरी नाक काट ली!'

अपनेराम ने देखा—वाकई नाक कटी हुई थी! उसके पति से अपनेराम ने पूछा—'तुमने इसकी नाक क्यों काटी ?'

'हुज़ूर, पहले तो इसने ही मेरी नाक काटी। एक आदमी के साथ भाग गई थी। तब मैंने इसकी नाक काट ली।'

अपनेराम स्त्री से बोले—'पहले तुमने इसकी नाक काटी।'

स्त्री बोली—'इसकी नाक तो साबित है—कटी कहाँ है ?'

अपनेराम बोले—'वाकई नाक तो कहीं से भी नहीं कटी ?'

आदमी बोला—'अरे साहब, ऐसी नाक से बेनाक अच्छे! जब औरत दूसरे के साथ भाग गई तो हमारी नाक कहाँ रही।'

'यह भी तुम ठीक कहते हो!'

औरत से अपनेराम बोले—'इस बेचारे की तो तुमसे ज्यादा ख़राब हालत है—नाक रहते हुए भी नकटा है।'

औरत ने वकील भी किया था। वकील साहब बोले—'कानूनन तो नाक औरत ही की कटी है—मर्द की नाक नहीं कटी।'

वकील साहब से अपनेराम बोले—'आपकी औरत दूसरे के साथ भाग जाती तो आपकी नाक कटती या नहीं ?'

'उस तरह से नाक कटने को कानून नाक कटना नहीं मानता।'

'कानून को छोड़िये—आप मानते हैं या नहीं ?'

'आप फैसला कानून के अनुसार करते हैं या जो मैं मानता हूँ उसके अनुसार ?'

'फिलहाल तो जो आप कहें वह करूँ।'

'इसे सज़ा दीजिए।'

'क्या सज़ा दूँ?'

'जेल भेजिए!'

'क्या बातें करते हो यार! हर एक आदमी को जेल भेजने में क्या फायदा?'

'तो कहाँ भेजियेगा?'

'अपनेराम की राय में इसे सुन्दरबन में छुड़वा दिया जाय।'

'लेकिन कानून में तो ऐसी कोई सज़ा नहीं है।'

'फिर वही कानून! अरे भाई हम आनरेरी मेजिस्ट्रेट हैं, इसलिए हमारा कानून भी आनरेरी है। हम 'आनरेरी पिनेल कोड' और 'आनरेरी क्रिमिनेल प्रोसीड्योर' के अनुसार फैसला करते है।'

'ऐसा तो कोई कानून नहीं है।'

'अब पैदा हो रहा है।'

'ख़ैर, आप जो चाहिए कीजिए—अपनी अदालत का आपको अख्तियार है—हम अपील करेंगे।'

'आप अपील करेंगे। अच्छा, मैं इस औरत पर पचीस रुपये जुर्माना करता हूँ।'

'वाह साहब! यह तो पूरा अन्धेर है। इसकी नाक कटी और इसी पर जुर्माना।'

'जी हाँ, चूँकि इसने ऐसा काम किया जिससे इसके शौहर को इसकी नाक काटने पर मजबूर होना पड़ा। इस तरह एक तरफ तो इसने एक अच्छे-भले आदमी को जुर्म करने के लिए मजबूर किया और दूसरी तरफ इसने अपनी नाक कटवा कर नकटों की तादाद बढ़ाई—इसलिए सजा इसी को मिलनी चाहिए। जाइये अपील कीजिए!'

वकील साहब बोले—'वाह! क्या अदालत है और क्या क़ानून है!'

'आप अदालत की तौहीन करते हैं? वजह बताइये कि आपको इसके लिए सज़ा क्यों न दी जाय?'

'दे दीजिए! मुझे भी सज़ा दे दीजिए।'

'बोलिये, क्या सज़ा दूँ!'

'जो आपका मिज़ाज चाहे।'

'नहीं, आप ही बताइये!'

'मै क्या बताऊँ।'

'अच्छा नहीं बता सकते तो दस रुपये इस औरत के शौहर को दीजिए।'

'इसके शौहर को! एक तो आपने इसे साफ छोड़ दिया, दूसरे औरत को सजा दी, तीसरे अब मुझसे इसे रुपये दिलवा रहे हैं।'

'जी हाँ! या तो रुपये दीजिए या जेल जाइये।'

'अच्छा दे दूँगा।'

चौथा केस एक पुलीस केस था। एक चोरी का चालान था। दारोगा साहब की गवाही थी। अपनेराम ने दारोगा जी से पूछा—चोरी कैसे हुई?'

'मकान का दरवाज़ा खुला था, यह मकान में घुस कर ऊपर कमरा खुला था उसमें घुस गया। और अल्मारी खुली थी, उसमें से चाँदी के चार बर्तन लेकर चम्पत हो गया।'

'इसके पास माल बरामद हुआ है?'

'जी हाँ! चारों चीज़ें इसके घर से बरामद हुईं।'

'तो अब आप चाहते क्या हैं, माल तो मिल ही गया।'

'इसे सजा होनी चाहिए—माल बरामद होने से इस पर चोरी का जुर्म साबित हो गया।'

'जब माल मिल गया तो चोरी कैसे हुई।'

'पहले इसने चोरी तो की। माल तो बाद को मिला।'

'इसने मकान खुला पाया, कमरा खुला पाया, अल्मारी खुली पाई—इससे इसकी नीयत खराब हो गई। इसलिए इसने क्षणिक कमज़ोरी से चोरी की। लेकिन माल को इसने न गलवाया न बेचा। इससे साबित है कि इसकी नीयत यह न थी कि उस माल से फायदा उठावे।'

'यह तो इसने इसलिए किया कि कहीं गलवाने से या बेचने से पकड़ न जावे।'

'इसका आपके पास क्या सबूत है?'

'इसके सिवा और कोई वजह हो ही नहीं सकती।'

'यह कोई दलील नहीं है। मैं इस आदमी को छोड़ता हूँ और जिसका माल था उसपर पचास रुपये जुर्माना करता हूँ।'

'यह—यह—क्यों ?'

'उसकी लापरवाही पर! ऐसे लापरवाह आदमी, जो अपने मकान को खुला रख कर दूसरों की नीयत खराब होने की वजह पैदा करते हैं, सजा के काबिल हैं।'

'वाह! क्या उल्टी गङ्गा बहाई।'

'आपने भी अदालत की तौहीन की, लिहाजा आपको भी सज़ा दूँगा।'

'क्या सजा दीजिएगा!'

'आप कभी काश्मीर गये हैं ?'

'जी नहीं।'

'क्यों ?'

'इतना रुपया कहाँ से लाऊँ। बाल-बच्चेदार आदमी ठहरा, इसलिए खाने-कपड़े और लड़कों की तालीम वगैरह से रुपया नहीं बचता—काश्मीर कैसे जाऊँ।'

'ठीक है। तो आपकी सज़ा यह है कि आप घर भर के साथ पहले यहाँ से कलकत्ता जायँ और वहां एक हफ्ता रह कर वहाँ से सीधे काश्मीर जायँ। वहाँ एक महीना रहें और वहाँ से लौटें तो बम्बई होते हुए यहाँ आवें। बम्बई में भी एक हफ्ता रहें।'

दारोगा साहब घबराकर बोले—'अजी हुजूर, मैं तो मर मिटूँगा। मेरे पास इतना रुपया नहीं जो इतना लम्बा खर्च बरदाश्त कर सकूँ।'

'तो कर्ज ले लीजिएगा।'

'वैसे भी मर जाऊँगा।'

'ज्यादा मत बोलिये, वरना स्वीटज़रलैण्ड भेजूँगा।'

दारोगा साहब चुपचाप चल दिये। थोड़ी दूर जाकर बोले—'अच्छी बात है, सजा तो आपने दे ही दी। मैं भी लौटकर आऊँगा तो आपके यहाँ कोकेन न बरामद करा दूँ तो मेरा नाम नहीं।'

इतना सुनते ही अपनेराम को ताव आगया। झपट कर दारोगा जी की ओर चले तो ठोकर लगी और मुँह के बल.. ...

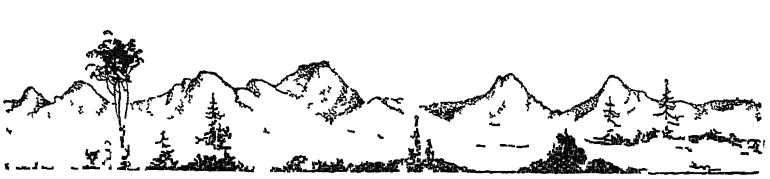
आँख जो खुली तो देखा, सवेरा हो चुका है। अब पता चला कि यह सब स्वप्न था। लल्ला की महतारी जाग रही थी, उससे अपनेराम बोले—'आज रात भर मैजिस्ट्रेटी की।'

लल्ला की महतारी बोली—'ऐसी मैजिस्ट्रेटी करो तो कोई हर्ज नहीं है।'

अपनेराम बोले—'चलो जन्मपत्र की विधि मिल गई। कोई बड़ा ही दुर्बल योग था, जिसका फल स्वप्न में मिल गया।'

सम्पादिका जी! यह तो स्वप्न था। यदि जाग्रतावस्था में भी अपनेराम मेजिस्ट्रेटी करें तो इसी शान के साथ करें।

भवदीय,
विजयानन्द (दुबे जी)



छाया पथ

रजत-पट पर कवि विद्यापति

[श्री० ज्योतीन्द्रनाथ]

हिन्दी के प्राचीनतम कवि चौरासी सिद्ध (७५०—११७५ ईस्वी) के सरहपा, शवरपा आदि के रचनाकाल से लेकर चन्द के बाद, और सूर तुलसी और कबीर आदि लोकप्रिय कवियों के रचना-काल के पहले की अवधि में उत्पन्न जितने कवियों के विषय में मालूम हुआ, उनमें मिथिला-कोकिल विद्यापति ठाकुर भी एक हैं। यद्यपि विद्यापति को हुये छ सौ वर्ष से ज्यादा समय व्यतीत हो चुका है, फिर भी उनकी जन्म-भूमि उत्तर बिहार में आज अनगिनती कंठों से नित्य उनकी वाणी प्रतिध्वनित होती रहती है। बिहार को विद्यापति की जन्मभूमि होने का उचित गर्व है। विद्यापति केवल एक प्रतिभाशाली कवि ही नहीं, वरन एक आदर्श भक्त थे और उत्तर बिहार में अब भी उनके विषय में अनेकों कहानियाँ प्रचलित हैं।

न्यू थियेटर्स का नवीनतम फिल्म विद्यापति, इन्हीं महान कवि विद्यापति का रजत्-पट पर चित्रित रूप है। फ़िल्म के कथानक का आधार विद्यापति कवि की जीवनी है।

राष्ट्र भाषा के एक महान कवि की जीवनी की फिल्म बनी देख आरम्भ में स्वाभाविक प्रसन्नता हुई, किन्तु फिल्म देख लेने के बाद वे भाव न रह गये। जहाँ तक अभिनय आदि का सम्बन्ध है, विद्यापति को आशातीत सफलता मिली, किन्तु कथानक की अप्रामाणिकता और कृत्रिमता अन्य सभी गुणों पर पानी फेर देती है।

विद्यापति के निर्माण करने में बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की गई थीं। क्या ही अच्छा होता, यदि विद्यापति की जीवनी का पूरा अध्ययन कर मनोरञ्जक ढङ्ग से इसकी कहानी भी लिखी जाती। फिल्म देखने से तो यह मालूम होता है कि कथानक-लेखक को विद्यापति के विषय में तनिक भी ज्ञान नहीं, उनकी कविताओं और जीवनी का अध्ययन करना तो दूर रहा। विद्यापति का कोई भक्त यदि फिल्म देखने जायगा तो कथानक देख उसे केवल आश्चर्य, दुख और क्षोभ ही नहीं होगा, वरन् कथानक-लेखक की अनभिज्ञता, अनुचित साहस पर तरस भी आयेगा। कथानक में इधर-उधर मामूली गलतियाँ हों, सो बात नहीं, समूची कहानी ही पूर्णत मिथ्या है और कोई भी मनुष्य जिसने विद्यापति की अत्यन्त संक्षिप्त जीवनी भी पढ़ी है, सन्देह में पड़ जायगा कि वास्तव में ये वही विद्यापति हैं या कोई दूसरे।

इस गलती का कारण मेरी समझ में निर्देशकों का लेखक बनने का व्यर्थ प्रयास करने की दोषपूर्ण प्रवृत्ति है। लेखक का उत्तरदायित्व महान है। उसे सँभालने में असमर्थ रहते हुये भी निर्देशक पद की महत्ता को देखते हुये अपना लेते हैं, यद्यपि अधिकतर उन्हे असफलता ही हाथ लगती है, इसके अनेकों उदाहरण है।

पहली बात तो कवि और रानी लखिमा में उस प्रकार का पार्थिव प्रेम था ही नहीं, जैसा फिल्म में दिखाया गया है। फिल्म में चित्रित रानी लखिमा के

चरित्र में सत्य का लेश नहीं है। इसकी पुष्टि नीचे दी गई कवि विद्यापति की संक्षिप्त जीवनी से हो जायगी।

विद्यापति का जन्म बिहार प्रान्त के दरभङ्गा जिले के बेनीपट्टी थाने के अन्तर्गत बिसपी गाँव में हुआ था। आपने मैथिली हिन्दी में कवितायें कीं। मिथिला के ओमनवार वंश के राजा शिवसिंह इनके आश्रयदाता थे। राजा शिवसिंह, महाराज देवसिंह के पुत्र थे और अपने पिता की जीवितावस्था में भी राज की देख-रेख करते थे। मिथिला दिल्ली के सम्राट के अधिकार में था। शिवसिंह को यह पसन्द न था। उसने कर भेजना बन्द कर दिया। उस समय दिल्ली का बादशाह गयासुद्दीन था।

रानी लखिमा शिवसिंह की पत्नी थी। बिहार की शिक्षित और पतिव्रता स्त्रियों में उसका स्थान बहुत ऊँचा है। उसकी विद्वत्ता के विषय में मिथिला में अनेकों दन्तकथायें हैं। संस्कृत के महाकाव्य रघुवंश के विषय में उसकी सम्मति थी 'किं रघुवंशमपि काव्यम्? तस्मपि टीका? साऽपि संस्कृत मयी?' क्या रघुवंश भी काव्य है? उसकी भी टीका की ज़रूरत है? वह भी संस्कृत में?'

मिथिला से कर आना बन्द हो जाने पर सुल्तान ने चढ़ाई की। शिवसिंह पकड़े गये और उन्हें दिल्ली ले जाया गया। मिथिला भर में हलचल मच गयी। वृद्ध पिता पुत्रशोक में पागल हो गया। पतिव्रता लखिमा पति-वियोग से विक्षिप्त हो उठी। कवि विद्यापति से यह न देखा गया। वे दिल्ली गये। दरबार में जा अपना परिचय दिया और अपनी इच्छा प्रगट की। दरबार से प्रतिभा प्रदर्शित करने की फरमाइश हुई। कवि ने कहा—जो चीज़ उनकी दृष्टि के सामने न हो उस पर वह कविता कर सकते हैं। परीक्षा हुई। उन्हें सन्दूक में बन्द कर कुएँ में लटका दिया गया। ऊपर एक स्त्री आग फूँकती हुई खड़ी हो गई। विद्यापति गाने लगे—

सजनि निहुरि फुकु आगि।
लोहर कमल भमर मोर देखल
मदन उठल जागि।
जो तोंहे भामिनि भवन गए वहं
एबह को नह बेला।
जौ ऐ संकट सौं जी बाँचत
होमत लोचन मेला॥

बादशाह खुश हुये। शिवसिंह छूटा। मिथिला खुश हुई और विद्यापति खुश हुये।

भन विद्यपति चाह कि जे बिधि
करथि से से लीला।
राजा सिवसिंह बँधन मोंचल
तख न सकति लीला।

विद्यापति जो चाहे सो कर सकते है। कैसी मीठी गर्वोक्ति है।

पिता की मृत्यु के बाद सिवसिंह सिंहासनासीन हुये। श्राद्ध की तैयारी हो रही थी, उसी समय दिल्ली की चढ़ाई हुई। सिवसिंह की वीरता ने मिथिला को बचा लिया। विजय का डङ्का बजा। रानी फूली न समाई। विद्यापति का तो पूछना क्या—

अनल रन्ध्र कर लक्खन नरवइ,
सक समुद्द कर अगिनि ससी।
चैत कारि छठि जेठा मिलिओ,
बार बेदप्पय जाहु लसी॥
एक दिस सकल जवन बल चलिओ,
ओकादिस से जमराए चरु।
दुअओ दलहि मनोरथ पुरओ,
गरुअ दाय सिवसिंघ करु॥

अन्त में—

बिज्जावइ कविवर यह गावए,
मानव मन आनन्द भओ।
सिंहासन सिवसिंघ बइट्ठो,
उच्छेले बैरस बिसरि गओ॥

गद्दी पर बैठते ही राजा ने कवि की जन्मभूमि बिसपी उन्हें दे दी। दिन आनन्द से कटने लगे। पर बादशाह तीन वर्ष बाद फिर चढ़ आया, पूरी तैयारी के साथ। राजा ने अपनी स्त्रियों को विद्यापति के साथ हिमालय की तराई में भेज दिया। राजा फिर न लौटे। शायद युद्ध में मारे गये।

राजा की मृत्यु के बाद विद्यापति रानी लखिमा के साथ रजाबनौली में रहे। कोई-कोई कहते हैं कि पति

की मृत्यु के बाद नौ वर्षों तक वह राज्य करती रही। पर विद्यापति की कविताओं में इसका कोई जिक्र नहीं। विद्यापति राजा की मृत्यु के बाद बत्तीस वर्ष से अधिक जीते रहे। उनकी एक कविता है—

सिपन देखल हम सिवसिंघ भूप।
बतिस बरिस पर सामर रूप॥

यह है विद्यापति की प्रामाणिक जीवनी। अब देखना यह है कि फिल्म के विद्यापति, फिल्म की लखिमा, फिल्म के सिवसिंह यथार्थ विद्यापति, लखिमा और सिवसिंह से कितने दूर चले गये हैं।

कवि की तान पर विक्षिप्ता सी लज्जाहीन सी घूमती हुई लखिमा और पति को सर्वस्व समझने वाली विदुषी लखिमा दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। ये बातें छोड़िये। पति के जीवन काल में ही विष खा आत्म-हत्या करने वाली लखिमा, पति की मृत्यु के बाद नौ वर्ष तक राज्य चलाने वाली लखिमा से कितनी भिन्न है, इसकी विवेचना करने की जरूरत नहीं।

फिल्म का कथानक, यथार्थ कथानक से कितना भिन्न है, यह पाठक भली भाँति समझ जायेंगे। मालूम होता है कि लेखक ने कोई अपना अलग विद्यापति बना लिया है।

मिथिला के हमारे एक मित्र ने तो यहाँ तक कह डाला कि—'यह तो विद्यापति का अपमान है। राष्ट्र भाषा के एक श्रेष्ठ कवि का उन्हीं के प्रान्त की राजधानी पटना में ऐसी दुर्दशा दिखाई जाये और लोग देखते रहें, यह लज्जा की बात है।'

बात भी यथार्थ है। पटने के साइन्स कॉलेज के एक विद्वान प्रोफेसर ने जिन्हें हिन्दी कवियों के विषय में अधिक ज्ञान नहीं है, फिल्म देख कर कहा था—'अभिनय आदि का तो सुन्दर प्रदर्शन है ही, पर कथानक मुझे न जँचा। मुझे विश्वास नहीं कि विद्यापति ऐसे होंगे।' ऐसे ही कितने ही लोगों को, जिन्हें विद्यापति के विषय में अधिक न मालूम हो, फिल्म को देख कर कितनी बुरी धारणा हुई होगी। खास कर आदर्श रमणी लखिमा का जैसा चित्रण किया गया है, उसे देख कर हार्दिक क्षोभ होता है।

यदि सच पूछा जाय तो विद्यापति में प्रेम की लीलाएँ जबर्दस्ती घुसा दी गई हैं। जनता की रुचि के अनुकूल बनाने के लिये शायद यह आवश्यक जान पड़ा। पर इसके फलस्वरूप फिल्म की महत्ता उतनी न रही जितनी रहती। एक बात और। विद्यापति की फिल्म में यह आवश्यक था कि गाने स्वयं कवि की पदावली से चुन कर लिये जाते। निकृष्ट लेखकों की निम्न कोटि की कविताओं की अपेक्षा विद्यापति की पदावली अधिक जँचती। यह एक ऐसी कमी है, जिसे सभी महसूस करते हैं। उत्तर बिहार में आज भी बाल-युवा-वृद्ध और सभी उम्र की स्त्रियाँ उनकी पदावली सदा गाती रहती हैं। उनकी पदावली गाने के योग्य नहीं है, यह थोथी दलील है। जिन पदावलियों को गाते-गाते चैतन्य प्रभु बेसुध हो जाते थे, और अब भी उनके अनुगामी चाव से गाते हैं, वह कर्ण-मधुर नहीं है, इस बात पर विश्वास नहीं होता।

दीप से

[श्री० 'एकाकी']

तू बुझ जा—
मेरी समाधि के टिमटिमाते हुए दीपक
मेरा प्रियतम मुझसे मिलने आता है, यह अभिसार की रात है !
जब तक प्रकाश का परदा बीच मे रहेगा, मिलना कैसे होगा ?
मेरे चुप हृदय को अँधियारी मे ही मिलना भला लगता है।
तू बुझने से मत डर,
मेरी राख मे एक आग छिपी है जो तुझे फिर जला सकती है
और एक आह भी है जो तुझे बुझा सकती है।
तू जीने मरने की रीत सीख
इसकी निष्ठुरता, उसकी शीतलता से न डर,
ससार जलने-बुझने का ताना बाना है।
तू बुझ जा और मेरे हृदय की चिनगारी को पथ-प्रदर्शक बनने दे,
तेरे आलोक की चकाचौंध मे वह राह न भूल जाएँ !
किसी को प्रकाश पसन्द है, मुझको अँधेरी रात क्योकि
वह असख्य स्मृतियाँ अपने साथ लाती है !
मुझको प्रकाश नही चाहिए,
चन्द्रमा घूँघट की ओट मे सुन्दर लगता है,
नदी चाँदनी की चादर ओढ़ कर और बिजली बादल मे छिप कर।
नग्नता को प्रकाश कहते है, परन्तु उसमे कुरूपता है।
और फिर तुझे मै कैसे जलने दूँगी
अपनी ठण्ढी आहो से अवश्य बुझा दूँगी,
क्यो ? तुझे प्रीति की रीत नही आती
अपने जलने का मोल अपने प्रिय से ले लेता है।
मै जलूँगी प्रेम को उपहार देने के लिये जिसमे
उनका मन्दिर कही खो न जावे
और उसके पुजारी राह भूल जाएँ !

१

श्रीमती सम्पादिका जी,

नमस्ते !

जब कभी किसी समाज में अज्ञान और उसके फलस्वरूप भौतिकता बढ़ जाती है, तो मनुष्य जीवन के सच्चे आदर्श को भूल जाते हैं। सामाजिक, आध्यात्मिक तथा अन्य ऐसे ही पुण्य कर्म भी मनुष्य की पाप-वृत्ति की पूर्ति के साधन मात्र हो जाते हैं और उस समय उस समाज में पैशाचिकता का प्रादुर्भाव होता है। समाज के निर्बल अथवा निर्धन अङ्ग पर अत्याचारों की मात्रा दिन प्रतिदिन बढती जाती है। यदि ऐसे समय इन समाज पीड़ितों की मुक्ति के अर्थ कुछ महान आत्माएँ जन्म न लें तब उनको दो ही चारे रह जाते हैं—या तो उस समाज से मुक्ति अथवा बिलकुल जीवन से ही मुक्ति।

इसी फैली हुई पैशाचिक-वृत्ति का आखेट हो आज मैं भी इस पत्र द्वारा आपकी शरण आया हूँ। बात यह है कि मेरे एक बहिन है, जिसके लिये एक सुपात्र वर की खोज में आज ३ वर्ष व्यतीत हो चले – पिता जी और मैं दोनों ही तङ्ग आ गए हैं, परन्तु आशा की एक क्षीण किरण मात्र भी उदय होती प्रतीत नहीं होती। अब लड़की १७ वर्ष की हो चुकी – गृहस्थी के काम-काज में खूब चतुर है, सीने पिरोने में भी काफी योग्यता रखती है—हिन्दी भी भली प्रकार पढी है। बस उसमें यदि कोई दोष कहे जा सकते हैं और यदि समाज उनको दोष समझता है, तब वे दो ही हैं। एक तो यह कि इतना धन नहीं कि अधिक रुपया देकर कोई उचित वर खरीदा जा सके। दूसरा दोष यह कि हमारी माँ का पुनर्विवाह हुआ था। एक जगह तो बस यही कह कर बहुत दिनों की मेहनत और काफी रुपया पर पानी फेर कर सम्बन्ध करने से इनकार कर दिया। वास्तव में हमारी माता के पहिले विवाह के कुछ ही दिनों बाद वर की अचानक मृत्यु हो गई थी और गौना भी न हो पाया था। इसके बाद तुरन्त ही उनकी दूसरी शादी कर दी गई थी। यदि इसको एक बड़ा भारी कलङ्क बतला कर दूषित ठहराया जाये तो मेरी समझ में नहीं आता कि इन लोगों की पुण्य की व्याख्या क्या है। सम्पादिका जी, ऐसी बातें देख देख कर तो मेरे हृदय में हिन्दू समाज के प्रति एक रोष सा जाग्रत हो उठता है। बहुत से निर्लज्ज तो खुले तौर पर रुपयों का प्रश्न रखते हैं। यदि देने को काफी रुपया होता तो यह बातें इनकी दृष्टि में कदापि दोष न रहतीं।

सम्पादिका जी, यह पत्र मैंने आपको इसी कारण से लिखा है कि कदाचित् आप ही हमको हिन्दू समाज को इस अन्धकारमय गुफा में कुछ राह दिखाने की कृपा करेंगी अथवा कोई ऐसी संस्था हमको बतला देंगी जो हम जैसे समाज-पीड़ित मनुष्यों को सहायता करने का पुण्य कार्य करती हो। लड़का वैश्य अग्रवाल घराने का होना चाहिए—सुशील और शिक्षित हो, बस यह दो ही बातें हम देखना चाहते हैं। आर्य समाजी विचारों का अनुगामी हो।

—एक समाज-पीड़ित

२

श्रीमती सम्पादिका जी,

अगरचे हमारी कायस्थ जाति सब प्रकार से सुशिक्षित और समाज में आदरणीय समझी जाती है, तो भी इसमें कभी-कभी ऐसे अनर्थ हो जाते हैं, जिनका हाल जान कर हृदय को बड़ा कष्ट होता है। नीचे मैं ऐसी ही दो घटनाओं का भेद प्रकट करना चाहता हूँ।

बिहार प्रान्त के एक छोटे कस्बे में एक मिडिल स्कूल के शिक्षक हैं, जिनकी आयु इस समय करीब ५० वर्ष है। इनकी धर्मपत्नी का देहान्त हाल ही में हुआ है। अब ये शिक्षक महाशय अपनी बारह वर्ष की अवस्था की साली से पुनर्विवाह की तैयारी कर रहे हैं। मैंने इनको ऐसा अयोग्य कार्य न करने के लिये बहुत समझाया, पर उनके सिर पर स्वार्थ का ऐसा भूत सवार है कि किसी की बातों पर ध्यान देते ही नहीं।

इसी तरह की घटना एक दूसरे स्थान में हो रही है। वहाँ के एक महाफ़िज़ दफ्तर करीब ४६ वर्ष की आयु के हैं। उनके स्त्री भी मौजूद है। पर बाल-बच्चा न होने से १६ वर्ष की एक बालिका से, जो हमारे ही कस्बे की रहने वाली है, विवाह करने का निश्चय कर चुके हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि इन लोगों को यह क्या सूझा है और इस उम्र में छोटी-छोटी बालिकाओं से विवाह करके यह क्या लाभ उठा सकेंगे। इससे तो दोनों की ख़राबी होना ही अधिक सम्भव है। पर लोग तुच्छ स्वार्थ के सामने समझदारी की बातों पर ध्यान ही नहीं देते। लड़कियों के माता-पिता के लिये क्या कहा जाय, जो केवल धन देख कर अपनी सन्तान को भाड़ में झोंक रहे हैं। हम समाज-सुधारक सज्जनों से विनय करते हैं कि वे ऐसे अन्याय को रोकने का प्रयत्न अवश्य करें, अन्यथा दो निर्दोष तथा निरीह बालाओं का जीवन सदा के लिये नष्ट कर दिया जायगा।

—एक कायस्थ कुमार



स्वरकार— श्री० एस० डी० आपटे सङ्गीत-प्रवीण	**पूर्वी** तीनताल	शब्दकार— श्री सूरदास

इस राग मे दो मध्यम, रिषभ धैवत कोमल लगते हैं।

वादी - गंधार, संवादी—निषाद। जाति—सम्पूर्ण, समय—श्याम का।

आरोह-अवरोह

सा री॒ ग म॑ प ध॒ नी सां। सां नी ध॒ प म॑ ग री॒ ग म ग री सा।

पकड़

नीं, सा री ग, री ग री॒ म ग री॒ सा।

गीत

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पछी, फिरि जहाज पर आवै॥
कमल नैन को छाँड़ि महातम, और देव को धावै।
परम गङ्ग को छाँड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यो करील फल खावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥

स्थायी

			ध॒ | प (म) म॑ग म॑ ग
			मे | ऽ रोऽ म न
			२

म ग री सा | नी री ग रीग प ऽ प ध | प मग म ग
अ न त क | हा ऽ सु खऽ पा ऽ वे मे | ऽ रोऽ म न
\+ ३ १ २

ग ऽ ग ऽ | म म ग री | ग री सा ऽ | सानी री सा ऽ
जै ऽ से ऽ | उ ड़ि ज हा | ऽ ज को ऽ | पऽ ऽ छी ऽ
\+ ३ १ २

नीं नीं री ग | ऽ म ध नी | सा नी धप ध |
फि रि ज हा | ऽ ज प र | आ ऽ वेऽ मे |
\+ २ १

अन्तरा

ग ग ग म | ऽ म ध ऽ | सा ऽ सा सा | नी री सा सा
क म ल नै | ऽ न को ऽ | छां ऽ डि म | हा ऽ त म
\+ ३ १ २

नी री ग री | ग री सा ऽ | धनी सा नी ध | नी ध प ऽ
औ ऽ र दे | ऽ व को ऽ | धाऽ ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ वै ऽ
\+ ३ १ २

म ध नी ध | नी ध प म | म ग री ग | री म ग ऽ
प र म ग | ऽ ग को ऽ | छां ऽ डि पि | या ऽ सो ऽ
\+ ३ १ २

नीं नीं री री | ग ऽ म ध | धनी सा नीध नी | धप मग म ग
दु र म ती | कू ऽ प ख | नाऽ ऽ वेऽ मे | ऽऽ रोऽ म न
\+ ३ १ २

फल-संरक्षण—लेखक, डॉ० गोरखप्रसाद, प्रकाशक, विज्ञान परिषद, इलाहाबाद।

हाल ही में वैज्ञानिकों का ध्यान मनुष्य के सर्वोचित आहार की ओर आकर्षित हुआ है और नाना प्रकार के विटेमिनों आदि की खोज कर उन्होंने फलों को ही सर्वोत्तम आहार ठहराया है। नियम से प्रतिदिन फल खाने से बहुत से रोग तो दूर हो जाते हैं। किसी-किसी रोग में तो फलाहार ही अचूक औषधि है। अतएव फलों का प्रचार आजकल ख़ूब बढ़ रहा है। स्वभावत फिर फलों को सुरक्षित रखने का प्रश्न भी बड़े महत्त्व का है। इस पुस्तिका में फल संरक्षण का वैज्ञानिक रहस्य बड़ी छान-बीन के साथ समझाया गया है। पुस्तिका को फल-संरक्षण के इतिहास से आरम्भ कर जैली, मारमलेड जैसे नवीनतम स्वादिष्ट पदार्थों का वर्णन देकर विषय विवेचन के सर्वाङ्गपूर्ण होने में कुछ रह नहीं जाता। कीटाणु-विद्या का भी प्रसङ्गोचित भोजन सम्बन्धी आवश्यक विवेचन है। फल-संरक्षण की एक-एक क्रिया का सविस्तार वर्णन है। कैसे फलों को चुना जाय—किस-किस सामान की आवश्यकता होगी, किस प्रकार और किन किन रासायनिक क्रियाओं द्वारा फलों को फफूँद और बेक्टीरिया आदि के आक्रमणों से सुरक्षित रक्खा जा सकता है—उन्हें किस वैज्ञानिक रीति से डिब्बे या शीशे में बन्द किया जाता है, आदि सभी बातों का आद्योपान्त विवरण है। यही नहीं, प्रत्येक फल की विशेषताएँ भी साथ-साथ दी गई हैं और उन पर यदि किसी विशेष क्रिया की आवश्यकता हो उसका भी उल्लेख है। जेली आदि जैसे नवीन विषयों को पद-पद पर चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। पकाने की क्रिया में उसकी क्या-क्या दशा होगी—यह सब चित्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है। विषय इतना सरल कर दिया गया है कि साधारण जन विज्ञान का विशेष ज्ञान न होते हुए भी इसे आसानी से समझ सकते हैं। केवल १७६ पृष्ठ की इस छोटी सी पुस्तिका में फल-संरक्षण के विस्तृत विवरण के अतिरिक्त मुरब्बा, चटनी, आचार, जेली मारमलेड, खोवा, बरफी आदि बनाने की भी अनुभूत सर्वोत्तम रीतियाँ दी गई हैं। तरकारियों को सुखाने की विधि का भी उल्लेख है। इसे पढ़कर मनुष्य थोड़े ही पैसे में अच्छा खासा कारबार चला सकता है और गृहदेवियाँ तथा स्कूलों में पढ़ने वाली बालिकाएँ तो इसमें लिखी हुई विधियों से आचार, मुरब्बे आदि डालकर बहुत कुछ लाभ उठा सकती हैं और तरह-तरह के जेलियों और चटनियों से भोजन को स्वादिष्ट और पौष्टिक बना सकती हैं। इससे पुस्तिका का प्रत्येक घर में होना आवश्यक प्रतीत होता है। पुस्तिका बढ़िया कागज़ पर छपी है और जिल्द मज़बूत तथा चित्ताकर्षक है।

—डॉ० सत्यप्रकाश

चिता की चिंगारियाँ—लेखक, श्री मोहनसिंह सेंगर, प्रकाशक नवयुग पुस्तक भण्डार, बहादुरगञ्ज इलाहाबाद, पृ० सं० १५८, मू० १)

लेखक का परिचय सचमुच उसकी रचनाओं से मिलता है। उसकी रचनाओं ही में हम उसके हृदय की परख कर पाते हैं। 'चिता की चिंगारियाँ' नामक पुस्तक जब मेरे हाथ पड़ी, उसके प्रथम पृष्ठ को पढ़ जाने के

बाद ही मुझे उसके लेखक श्री मोहनसिंह सेंगर के हृदय का आभास मिलने लगा और मैं कह सकता हूँ कि किसी न किसी दिन इनकी लेखनी साहित्य और समाज का यथेष्ट कल्याण कर सकेगी।

अपनी भूमिका में श्री सेंगर जी लिखते हैं—"आज भारत को ऐसे साहित्य की आवश्यकता है, जो हमें समाज की प्रचलित प्रणाली के प्रति जागरूक बनाये, उसकी अमानुषिकता के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस हममें पैदा करे।"

हम इस विचार से पूर्णतः सहानुभूति रखते हैं। सच तो यह है कि हमारा साहित्य हमारे उत्थान का साधन होना चाहिए। इस समय हम उससे अधिक साहित्य के किसी अन्य उपयोग की कल्पना नहीं कर सकते। हमें प्रसन्नता है कि नवयुवकों का ध्यान उस ओर जा रहा है।

सेंगर जी की कहानियों का यह संग्रह श्री प्रेमचन्द जी ने पसन्द किया था। और कोई भी सहृदय पाठक का आलोचक यह मानने को तैयार होगा कि सेंगर जी की लेखनी सजीव है, उनके भाव स्वस्थ, सुन्दर और अनुभव से परे नहीं। इस पुस्तक में उनकी नौ कहानियाँ संगृहीत हैं। प्रत्येक कहानी में नवीनता है, रोचकता है, चमत्कार है। और फिर लिखने का ढङ्ग, भाषा का तो कुछ कहना ही नहीं। सजीव, बाचाल। सभी कहानियों की कथावस्तु रोचक और भावोत्पादक है। 'पत्रकार' नामक कहानी बड़ी ही करुण और प्रभावोत्पादक है। ऐसा जान पड़ता है, मानों लेखक की तल्लीनता का यह परिणाम है। मातृत्व की भूख, सन्तान की चाह, कुल की मर्य्यादा, माँ—सभी कहानियाँ अपने ढङ्ग की अनूठी हैं। मेरा विश्वास है कि उन्हें पढ़कर पाठकों के हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

हम लेखक को उसकी इस कृति पर बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि वे अपने मार्ग की ओर अग्रसर रहेंगे।

—भारतीय, एम० ए०

'शक्ति' का वैशाखी अङ्क—लाहोर की दैनिक पत्रिका शक्ति ने थोड़े समय में ही अच्छी उन्नति की है। यह अक्सर हिन्दू त्योहारों के उपलक्ष में विशेपाङ्क प्रकाशित करती रहती है, जिनकी सख्या साल में काफी बड़ी हो जाती है। प्रस्तुत वैशाखी अङ्क पूरे सौ पृष्ठों का है, जिसमें सुप्रसिद्ध विद्वानों के महत्वपूर्ण लेखों का समावेश किया गया है। मुख पृष्ठ पर जालियाँवाला बाग में शहीद होने वाले बालक मदन और भारत माता का सुन्दर तिरङ्गा चित्र है। लेखों में श्री० रामनाथ सुमन का 'युवा भारत के अध्यापक प० जवाहरलाल नेहरू', प्रोफेसर छबीलदास जी का 'सोशलिज्म का चमत्कार', श्रीमान डॉक्टर लक्ष्मणस्वरूप जी का 'सिन्धु सभ्यता आर्य थी या द्राविड़ी' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इतनी सामग्री-युक्त अङ्क का मूल्य दो आना बहुत सस्ता है। पत्र की सफलता के लिए सम्पादिका श्रीमती शची-देवी और संयुक्त सम्पादक श्री० मोहनसिंह सेंगर प्रशंसा के पात्र है।

जन्मभूमि-यह नवीन मासिक पत्रिका गत मार्च से पटने से प्रकाशित होने लगी है। पत्र-पत्रिकाओं के लिये बिहार अब तक अनुवर प्रदेश समझा जाता था, अब उसी से आधे दर्जन सुन्दर पत्रों तथा जन्मभूमि के समान पत्रिका को प्रकाशित होते देख किस हिन्दी-प्रेमी को प्रसन्नता न होगी। पत्रिका वाह्य आवरण, रचनाओं का संग्रह और सजावट सब तरह से सतोषजनक है। आरम्भ में सुकवि पंत जी की एक सुन्दर रचना है। बौद्धवाद और उपनिषद, जर्मन जीवन पर एक दृष्टि, भारतीय जीवन में बुद्धिवाद, चार्वाक दर्शन आदि लेख पठनीय हैं। राजा राधिकारमणसिंह की कहानी 'गरीब की बेटी' मनोरञ्जक होने के साथ ही भाषा की दृष्टि से निराली है। आशा है कि इस परिवर्तन-युग में 'जन्मभूमि' भली प्रकार फले-फूलेगी और बिहार प्रान्त की अन्य पत्रिकाओं के लिये मार्ग-प्रदर्शक बनेगी। पत्रिका का वार्षिक मूल्य ६।।) और एक अङ्क का ।।=) है।



[संग्रहकर्ता—कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

छुप के बैठे हो मेरे दिल में यह परदा क्या है।
देखने वाले से पूछे कोई देखा क्या है॥

*   *   *

हम तेरे सिवा और हों किस चीज के तालिब[1]।
क्या छोड़ दिया माँगने वालों ने खुदा से॥

*   *   *

सौ देखने वाले हों तो यह नाज कहाँ है।
तस्वीर तेरी क्यों न करे नाज हमीं से॥

*   *   *

खिजलत[2] तो कह रही है निहायत बुरा किया।
रहमत[3] यह कह रही है गुनहगार क्यों हुए॥

*   *   *

तू अगर सुन ले तो क्या जाने करे कैसा गुरूर,
देख कर समझा है जो तेरा तमाशाई तुझे॥
तू मेरे सर पर खड़ी रहती है हरदम ए अजल।
और फिर सारा जहाँ कहता है हरजाई तुझे॥
—'दाग़' देहलवी

*   *   *

जिधर देखो उधर सोता है कोइ पाँव फैलाए।
ज़माने से अलग गारे ग़रीबाँ[4] की भी महफ़िल है॥
बुलावा अरसऐ महशर[5] में है सारी खुदाई का।
बड़ी ही धूम का जलसा, कयामत की यह महफिल है

जहाँ ले जाती है किस्मत पहुँचता है वहीं इनसाँ।
भटक सकता नहीं कोई कि खिज़रे[6] राहे कामिल है

*   *   *

पास आते ही जला फूँक के रख देती है।
शमआ[7] की आग का क्या लाग है परवाने से॥

*   *   *

गम में गुज़रे तो बुरा, ऐश में गुजरे तो भला।
न बुरा है कोइ दुनिया में, न साल अच्छा है॥
फूल फल हों कि न हों, छाँव घनी हो जिसमें।
हम मुसाफिर की नज़र में वह निहाल[8] अच्छा है॥
आगया उसका तसव्वर[9] तो पुकारा यह शौक।
दिल में जम जाय इलाही यह ख़याल अच्छा है॥
जिसका अनजाम[10] मुसीबत वह खुशी भी है बुरी।
जिसका अनजाम खुशी हो वह मलाल[11] अच्छा है॥
—'अमीर' लखनवी

*   *   *

हर घर में फिर रहा हूँ उसे ढूँढ़ता हुवा।
किस परदे में वह परदानशीं है छुपा हुवा॥

*   *   *

क्यों इनमें नज़र बन के समाया नहीं जाता।
तुम नूर हो और आँखों में आया नहीं जाता॥

*   *   *

की नजर अपनी हकीकत पे तो साबित यह हुवा।
यह वही कतरा है एक रोज जो दरिया होगा॥

*   *   *

१—गाहक, २—लज्जा, ३—ईश्वर की कृपा, ४—कबरिस्तान, ५—कयामत,

६—पथ-प्रदर्शक, ७—दीपक, ८—पेड़, ९—ध्यान, १०—अन्त, ११—दुख,

तुझ सा जमाने में नजर आता नहीं कोई ।
देखें किसी को क्या तुझे ऐ यार देख कर ॥

* * *

खेमा डाले हुए रह रौ[१२] हा पड़ा एक से एक ।
किस तकल्लुफ़ की है दुनिया में सारा एक से एक ॥
बागे आलम में किसी को न शिगुफ़ता[१३] देखा ।
कभी दिल खोल के गुनचा[१४] न हँसा एक से एक ॥
किसी महजूर[१५] का क्या खूब है 'अकबर' यह कलाम ।
दिल के दो हर्फ़ हैं वह भी हैं जुदा एक से एक ॥

—'अकबर' दानापुरी

* * *

शुक्रेखुदा[१६] कि उनके कदमों पे सर है अपना ।
इस वक्त कुछ न पूछो हम आसमान पर हैं ॥
दुनिया बदल गई है वह हैं हमीं कि अब तक ।
अपने मुकाम पर हैं अपने मकान पर है ॥
अब तक है याद हमको अपनी बल्दनामी ।
अब भी मिटे हुए हम मिटते निशान पर हैं ॥
दुनिया की गफलतों की तस्वीर है बगूले ।
बुनियाद है हवा पर सर आस्मान पर हैं ॥

* * *

है दलीलों से नहीं पैदा यकीं क्योंकर करें ।
सारा आलम कह रहा है हाँ नहीं क्योंकर करे ॥

* * *

साँस की तरह चले मंजिले[१७] हस्ती में बशर[१८] ।
मुद्दआ[१९] यह है कि दम भर को भी बेकार न हो ॥
क्या वह मस्ती कि दमेबन्द[२०] में तकलीफ खुमार ।
मस्त वह है कि कयामत में भी हुशियार न हो ॥

—'अकबर' इलाहाबादी

* * *

१२—पथ-प्रदर्शक, १३—खिला हुवा, १४—कली, १५—बिरही, १६—ईश्वर की कृपा, १७—जीवन राह, १८—इनसान, १९—मतलब, २०—थोड़ी देर के लिए,

तेरे रहने के लिए और मकां कौन सा था ।
मेरे दिल में, अगर इतनी न समाई होती ॥

* * *

क्योंकर न दुआवों में हो तासीर कुछ ऐसी ।
तदबीर कुछ ऐसी, मेरी तक़दीर कुछ ऐसी ॥

* * *

जब तक हमारे दिल में रही पुरअसर रही ।
जाकर फलक[२१] के पास दुआ और हो गई ॥

* * *

हो गए ख़ुश कोई मजमा जब नजर आया हमें ।
रो लिए जी खोल कर जिस वक्त तनहाई[२२]हुए ॥

* * *

लोग कहते हैं किसी से नहीं मिलता कोई ।
हम मिला लेते जो हमको कहीं मिलता कोई ॥
ख़ाक में मिल गए लेकिन न पता ख़ाक मिला ।
कहीं होता तो किसी को कहीं मिलता कोई ॥

—'नूह' नारवी

* * *

रहा जो दोस्त बरसों दोस्ती का हक नहीं समझा ।
उसे दुशमन समझ कर मैं तो मारे आस्तीं समझा ॥
हजारों लफज़ एक-एक लफज में भी सैकड़ों मानी ।
तुम्हारी बात सब समझ मगर मैं तो नहीं समझा ॥
उसे हसरत न बाकी रह गई फिर दूसरे घर की ।
कि जिसने तुमको अपने खानए दिल में मकीं समझा ॥
किसी का डर नहीं यह बरमला कहता हूँ ऐ 'बिस्मिल' ।
जो मुझको कुछ नहीं समझा, उसे मैं कुछ नहीं समझा ॥

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

* * *

२१—आकाश, २२—अकेले में ।

आँसू

[श्री० पृथ्वीनाथ 'कमल']

जल हूँ, पर ज्वाला लिए हुए,
मेरा बस इतना ही परिचय !

पल भर पहले ही इस घर मे
थी शांति घनी था तम छाया,
वेदना हृदय मे सोती थी
था मातम छाया गम छाया,

सहसा पगध्वनि सुन आँगन मे
वेदना जगी मलकर पलकें,

दुख जाग उठा, तो देखा क्या—
स्मृतियो को था आते पाया !

फिर मिलन हुआ दो प्रेमी का
आरम्भ हुआ मेरा अभिनय !
जल हूँ, पर ज्वाला लिए हुए
मेरा बस इतना ही परिचय !

मैं रंगमंच की ओर, पथिक,
धीरे-धीरे बढ़ता जाता,
दुःख-भार मिला है कधो पर
उसको हल्का करने आता,

लो आया तेरी पलको मे,
पर यह किसका प्रारम्भ हुआ ?

सिसकी आती हर कोने से !
हर मानव को रोते पाता !

मेरे आते ही सब रोए
यह होता है मुझको विस्मय !
जल हूँ पर ज्वाला लिए हुए
मेरा बस इतना ही परिचय !

संकेत हुआ था चलने का
दुख औ स्मृतियो का मिल जाना,
गृह-निर्वासन पश्चात् मिला
जग जिसमे रोना ही गाना !

विधि है प्रतिकूल पथिक मेरे
फिर मुझको सुख विश्राम कहाँ ?

वे बूँदें आती लिए देख
मेरे चलने का परवाना !

ऐसे ही चलता जगत् सदा
तू क्यो करता मुझपर संशय
जल हूँ पर ज्वाला लिए हुए
मेरा बस इतना ही परिचय !

पल मे मै रक्त कपोलो से
गिरकर मरुथल पर आऊँगा !
ज्वाला से मैं उत्पन्न हुआ,
जलती मरु मे मिल जाऊँगा !

मै जीवन की रे, एक बूँद
पर जीवन किसको दे पाया !

गिर जाऊँगा जिस मरुथल मे
क्या उसकी प्यास बुझाऊँगा !

ज्वाला से मेरा जन्म हुआ,
ज्वाला-जीवन, ज्वाला मे लय !
जल हूँ पर ज्वाला लिए हुए
मेरा बस इतना ही परिचय !

वातायन

पिता की काली करतूत

गाज़ियाबाद की पुलिस की तहकीकात से एक कलियुगी बाप के काले कारनामों पर प्रकाश पड़ा है। एक कान्स्टेबल को समाचार मिला कि छिजारसी का एक जोगी गाजियाबाद में आ बसा है और उसका अपनी लड़की से अनुचित सम्बन्ध है। फलस्वरूप लड़की गर्भवती हो गई है। कान्स्टेबिल ने इस विचार से कि कहीं अनुचित गर्भ न गिरा दिया जाय, मामले की थाने में सूचना दे दी। सब-इन्स्पेक्टर ने बाप और बेटी के बयान लिये। उसने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा कि मेरा अपनी लड़की से तीन वर्ष से अनुचित सम्बन्ध है और गर्भ भी मेरा ही है। लड़की कई मास हुए तभी विधवा हो गई है। लड़की ने भी अपने बाप के बयान का समर्थन करते हुए गर्भ बाप का ही बतलाया। पुलिस ने बयान लेने के बाद पिता को हिदायत की कि वह गर्भ को सुरक्षित रखे, अगर उसे गिराया गया तो उसे कानून के शिकंजे में कस दिया जायगा।

* * *

स्त्री की करुण-कथा

काँगड़ा का समाचार है एक १८ वर्षीय राजपूत लड़की का अपहरण करने के अपराध में पुलिस के एक हेड तथा दो साधारण कान्स्टेबलों और पाँच अन्य व्यक्तियों पर, जिनमें एक स्त्री भी है, धरमशाला में जिला मजिस्टेट श्री० बी० आर० टराडन की अदालत में मामला चल रहा है। मुसम्मात दुर्गी ने जिसका कि अपहरण किया गया, अपने अपहरण का किस्सा बयान करते हुए कहा है कि अप्रैल १९३७ में ताजदीन नाम के एक पुलिस कांस्टेबल ने मेरी ससुराल आकर मेरे ससुर से कहा कि तुम्हें और तुम्हारी पुत्रवधू को हमीरपुर के सब-इन्स्पेक्टर ने बुलाया है। इस पर ताजदीन के साथ हम दोनों गाँव से रवाना हुए। जब हम लोग मसानदा घाट पहुँचे, तो ताजदीन ने मेरे ससुर से कहा कि कुछ कागज़ात तो तुम घर पर ही छोड़ आये हो, वापस जाकर उन्हें ले आओ। इस पर वह तो कागज़ात लेने चले गये और मैं कांस्टेबल के साथ आगे रवाना हुई। हमीरपुर पहुँचने पर ताजदीन मुझे अपने घर ले गया। मैंने इसपर एतराज़ किया और चिल्लाने की कोशिश की, लेकिन ताजदीन ने जान से मार डालने की धमकी दी। इसके बाद ताजदीन और हमीरपुर थाने के अब्दुलरहमान नामक कांस्टेबल तथा लालसिंह नामक हेड कांस्टेबल ने मुझ पर अत्याचार किये। मुझे बार-बार यहाँ से वहाँ ले जाया गया और मुझको बेचने की कोशिश की गयी। अन्त में एक पटवारी ने मुझे उससे बचाकर मेरे पति के सुपुर्द किया।

* * *

बालक का स्तुत्य साहस

बीकानेर में बालक-बालिकाओं के विवाह थोड़ी ही उमर में कर दिये जाते हैं। हाल ही की बात है कि यहाँ एक बालक को, जो उच्च जाति में पैदा हुआ है और जिसकी आयु ९ या १० साल के करीब है, शादी के लिये बाध्य किया गया। बालक ने अपने माता-पिता से इन्कार किया, परन्तु उन्होंने उसे पहिले तो लालच दिया और जब वह न माना तो उसे डराया-धमकाया गया। साहसी बालक ने फिर कह दिया कि यदि आप मेरी शादी कर देंगे तो मैं आत्म-हत्या कर लूँगा। इस प्रकार उस बालक ने अपने भविष्य को बचा लिया। नगर में बालक की सराहना हो रही है।

* * *

निकल के अधन्ने

कौन्सिल ऑफ स्टेट में एक सवाल का जवाब देते हुए फ़ाइनेंस सेक्रेटरी मि० निक्सन ने बताया कि सरकार दो पैसे का एक नया सिक्का (निकल का) बनाने पर विचार कर रही है, पर अभी तक निश्चय नहीं किया जा सका। १८८० के बाद से ताम्बे के टके बनने बन्द हो गये हैं। वे अब तक भी लीगल टैण्डर है, यद्यपि उनका प्रचलन बहुत कम हो गया है। निकल के अधन्ने का परिमाण वगैरह ज्यादा आकर्षक होगा। वह स्वास्थ्यप्रद भी ज्यादा होगा। यदि यह सिक्का प्रचलित हो गया और ताम्बे के सिक्कों की माँग कम हो गई, तो टकसाल का ख़र्च कम हो जायगा।

* * *

हिमालय सुप्त ज्वालामुखी है

हिमालय की तराई में १२ मील लम्बी ज्वालामुखी पर्वत की चट्टानों की और उसमें से निकलने वाले लावा, तथा अन्य चीज़ों की तथा चूने पत्थर की पट्टी जो अस्टर के दक्षिण से ब्राजिल होती हुई लद्दाख तक फैली हुई है, मिली है। इसकी खोज भूगर्भ शास्त्र के विद्वान डा० डी० एन० वाडिया ने की है। इस खोज का विस्तृत वर्णन जियोलोजिकल सर्वे-रिकार्ड की ७२ वीं जिल्द के दूसरे भाग में मिल सकता है। इससे मालूम होता है कि हिमालय पहले कोई ज्वालामुखी था, जो अब शान्त हो गया है।

* ❀ *

पत्थर से ख़ून निकला

मऊरानीपुर (झाँसी) की खबर है कि यहाँ पर एक किसान को हल चलाते हुए खेत में ख़ून से लथपथ एक पत्थर दिखाई दिया। उसने उसे गौर से देखा तो पता चला कि पत्थर से ख़ून निकल रहा है। तत्काल उसने इस बात की खबर दूसरे गाँव वालों को दी और सैकड़ों की तादाद में लोग वहाँ दौड़ दौड़ कर पहुँचने लगे। इस पत्थर में से एक प्रकार की सुगन्ध भी आती है। अब इस बारे में एक कहानी देहातियों में प्रचलित है, कि पिछले ज़माने में इस जगह एक भगत योगसाधन किया करता था, वही पत्थर के रूप में हो गया है।

* * *

धमकी की चिट्ठी

आसाम असेम्बली के सदस्य मौलवी अब्दुर्रहमान को, जिन्होंने मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव तैयार किया है, धमकी की चिट्ठी मिली है। उन्होंने असेम्बली के अध्यक्ष से अपनी रक्षा के लिये सहायता माँगी, इससे वहाँ सनसनी फैली। चिट्ठी में कहा गया है कि 'आपको दौकी से (सिलहट और शिलौंग के बीच में दौकी है) जाने न देंगे, अगर आप कॉङ्ग्रेस दल से मिल जायँगे तो अब्दुर्रशीद ने जैसी स्वामी श्रद्धानन्द की गति की थी वैसी ही आपकी भी होगी, सिलहट में अब्दुर्रशीद कम नहीं हैं।'

* * *

आगामी कॉङ्ग्रेस का स्थान

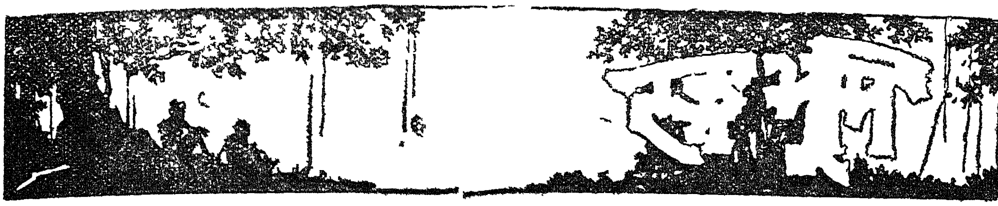
अगले कॉङ्ग्रेस अधिवेशन के लिए जबलपुर ज़िले का त्रिपुरी गाँव चुना गया है। यह गाँव ऐतिहासिक महत्व का है। ६ ठीं और ७ वीं सदी में राज्य करने वाले करचुली राजाओं की यह राजधानी थी। इस गाँव के चारों ओर विस्तृत मैदान है। नज़दीक ही भेड़ाघाट स्टेशन है।

* * *

यूनीवर्सिटी मे ग्रामसुधार की शिक्षा

इलाहाबाद का समाचार है कि, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी एकेडैमिक कौंसिल की ओर से सामाजिक सेवा और ग्रामसुधार की शिक्षा पर विचार करने के लिये नियुक्त समिति ने युनिवर्सिटी से शिक्षा की गम्भीर योजना तैयार करने की सिफारिश की है। इस समिति के सयोजक डा० बेनीप्रसाद तथा सदस्य डा० आर० एन० बनर्जी, डा० धीरेन्द्रनाथ वर्मा, डा० विशेश्वरप्रसाद, डा० एस० हिगिनबाटम और डा० ए० एस० सिद्दीकी हैं।

समिति ने हर साल फरवरी में होने वाली इस विषय की परीक्षा से उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र देने की बात मान ली है। यह विषय यूनीवर्सिटी के हर विद्यार्थी के लिये खुला होगा। वे अपनी इच्छानुसार अध्ययन कर सकेंगे।



[सम्पादकीय]

राष्ट्र-निर्माता नारियाँ

नारियाँ ही राष्ट्र-निर्माण-कर्त्री होती हैं, यह हम बहुत समय से सुनते आ रहे हैं। अनुदार विचारों के पुराण-पंथी और कट्टर लोग भी यह अस्वीकार नहीं करते कि स्त्रियाँ ही जाति की जननी हैं और भावी संतान को योग्य अथवा अयोग्य बनाना अधिकांश में उन्हीं के ऊपर निर्भर है। पर इस सिद्धान्त को कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न हमारे देश में बहुत कम किया जा रहा है। जो लोग स्त्रियों को राष्ट्र-निर्माण कर्त्री कहते नहीं थकते वे ही उनको समाज द्वारा बन्धनों से छूटते और वर्तमान सीमाओं से आगे बढ़ते देख कर विचलित हो उठते हैं। इसका कारण यही है कि स्त्रियों के प्रति उनका उपरोक्त मनोभाव अधिकांश में कृत्रिम अथवा बिना विचारे एक उमंग की भाँति उत्पन्न होता है। स्त्रियों की प्रगति और उनके वास्तव में राष्ट्र-निर्माता होने के लिये आवश्यक है कि उनकी वर्तमान स्थिति और आगे बढ़ने के मार्ग पर निष्पक्ष होकर तथा रूढ़ियों के भय को त्याग कर विचार किया जाय और तदनुसार आचरण किया जाय। इस सम्बन्ध में हाल ही में संयुक्त-प्रान्त के मन्त्रिमण्डल की सदस्या श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने एक लेख में इस प्रश्न के विभिन्न पहलुओं पर बड़े अच्छे ढंग से प्रकाश डाला है। वे लिखती हैं :—

"भारतीय कन्या अपने घर की चहारदीवारियों के बाहर की बातें बिलकुल नहीं जानती। वह अपने बाप की सम्पत्ति होती है, जिसे वह ब्याह में दे देता है। फिर वह अपने पति की सम्पत्ति हो जाती है। और उसकी तमाम जिन्दगी तुच्छ सेवा में संलग्न रहते-रहते खत्म हो जाती है। अगर कहीं दुर्भाग्य से वह विधवा हो गई तो फिर वह अपने पुत्रों की गुलाम हो जाती है। धर्म, जाति और समाज ने कुछ ऐसे नियम बना रखे हैं जिनका पालन करना जरूरी है। इससे उसकी रक्षा होती और उसके पति के परिवार को प्रसन्नता मिलती है, उसकी उन्नति होती है। अगर वह पथ से विचलित हुई तो उसे बहिष्कृत कर दिया जाता है। प्रायः हर एक अवसर पर यह कर्त्तव्य मर्दों के द्वारा ही बतलाया गया और बूढ़ी औरतों ने जबर्दस्ती उसे कार्यरूप में परिणत कराया। ये बूढ़ी औरतें अपनी जिन्दगी परावलम्बन और दासता में बिता चुकी होती हैं। वे अपनी नतनियों को वह आज़ादी नहीं देना चाहतीं जो उन्हें खुद न मिली। इसलिये, जैसा कि हमेशा गुलाम किया करते हैं, परिवार की बूढ़ी औरतें और सम्प्रदाय ही अनुशासन के लिये ज़ोर देते हैं। पुश्त दर पुश्त तक अन्ध-दासता में रहने के कारण स्त्रियों पर इसकी छाप पड़ गई है। उनकी बुद्धि नष्ट हो गई और दूसरों पर इसकी जिम्मेदारी मढ़ कर वे सन्तुष्ट हो रहीं।"

पर जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, आजकल जो स्त्रियाँ किसी प्रकार इस बाधा विघ्न पूर्ण स्थिति का अतिक्रमण करके आगे बढ़ी हैं, उनपर लोग प्रायः तरह-तरह के आक्षेप करते हैं। इनमें सबसे मुख्य यह है कि आधुनिक स्त्रियों से पुरुषों को पहले की तरह आराम नहीं मिलता, वरन् वे कुछ अंशों में उनको तङ्ग करने वाली होती हैं। इस सम्बन्ध में श्रीमती पण्डित कहती हैं :—

"लेकिन दुनिया आगे बढ़ती रहती है। एक पुश्त पहले की स्त्रियों की जगह अब बिलकुल दूसरे प्रकार की स्त्रियाँ ले रही हैं। लोग मुझसे कहते हैं कि आधुनिक स्त्रियाँ उत्पीड़क होती हैं। मुझे आश्चर्य है, यह सच हो। अगर बात सच है तो इसके लिये वे दोषी नहीं। उनके द्वारा होने वाला उत्पीड़न कई पुश्तों से होने वाले अत्याचार का स्वाभाविक परिणाम है। आज़ादी का पहला स्वाद मतवालापन होता है। और मानव-इतिहास में प्रथम-प्रथम स्त्रियाँ इस मतवालापन का आनन्द ले रही हैं। अगर एक क्षण के लिये वह असंयत हो उठे, तो वह एक ही क्षण में फिर सम्हल जायगी, और अपने पाँवों को पहले से भी अधिक दृढ़ता से ज़मीन पर जमा लेगी।"

अपने लेख के अन्त में श्रीमती जी ने वर्तमान महिला-आन्दोलन के वास्तविक उद्देश पर प्रकाश डाला है। हमारे विचारानुसार किसी भी न्यायप्रेमी व्यक्ति को उससे मतभेद नहीं हो सकता, क्योंकि जब तक हमारी सामाजिक अवस्था में मौलिक परिवर्तन न होगा, तब तक वास्तविक उन्नति असम्भव है। इस सम्बन्ध में लेख का निम्न अंश विशेष महत्वपूर्ण है :—

"इतिहास के वर्तमान समय में सभ्यता अधिकांश में मर्दानी है और नारियाँ रसोई-घर को छोड़ कर सिर्फ़ समाज की शोभा बन रही हैं। केवल शोभाप्रद समझ कर ही उसे समाज में नहीं रखा जा सकता। सभ्यता के लिये वह भी पुरुष के समान ही आवश्यक है। वह आज मर्दों की तरह सिर्फ़ जीविका के लिये ही नहीं लड़ रही। वह मर्दों की तरह सभ्यता के लिये भी लड़ रही है, क्योंकि स्त्री-पुरुष का हिस्सा बराबर न हो, तब तक कोई सभ्यता हो ही नहीं सकती। बिना सङ्गठित संयुक्त प्रयत्न के कोई राष्ट्र हो ही नहीं सकता। जब तक स्त्री-पुरुष साथ-साथ न सोचें और न करें, तब तक एकता हो ही नहीं सकती। जब तक स्त्री-पुरुष एक साथ न चलें, तब तक स्वतंत्रता मिल ही नहीं सकती।"

* * *

बालिकाओं के लिये नवीन शिक्षा-क्रम

हमारे देश के बालक बालिकाओं की शिक्षा-प्रणाली को किस प्रकार परिवर्तित किया जाय जिससे वह वास्तव में उपयोगी बन सके, यह प्रश्न इस समय प्रत्येक देशप्रेमी के सम्मुख उपस्थित है। क्योंकि अभी तक यहाँ जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है वह इस देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर निश्चित नहीं की गई है, वरन् उसका उद्देश्य अधिकांश में एक विदेशी सरकार के छोटे-मोटे कार्यों का सम्पादन करना रहा है। इसके सिवा यह शिक्षा-प्रणाली है भी बहुत पुरानी। नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों और मनोविज्ञान सम्बन्धी खोजों का उसमें बहुत कम अंशों में समावेश किया जा सका है। इस त्रुटि को दूर करने के लिये पिछले कई वर्षों से कितनी ही सरकारी कमेटियाँ समय-समय पर जाँच-पड़ताल करती रही हैं। हाल ही में लड़कियों के प्रायमरी स्कूलों के शिक्षा क्रम की जाँच करने के लिये एक कमेटी बैठाई गई थी, जिसमें कई स्कूल इन्सपेक्ट्रेसें और बालिकाओं की शिक्षा से अनुराग रखने वाले अनेक व्यक्ति सम्मिलित थे। इस कमेटी की रिपोर्ट में इस बात पर विशेष रूप से ज़ोर दिया गया है कि बालिकाओं के प्रायमरी स्कूलों की शिक्षिकायें अनिवार्य रूप से ट्रैण्ड होनी चाहिये। इस सम्बन्ध में रिपोर्ट के ये शब्द विशेष महत्त्व र्ण हैं :—

"पाठ्य ग्रन्थों की अपेक्षा शिक्षिका कहीं अधिक महत्व पूर्ण है। जब तक वह अपनी शिक्षा-प्रणाली के आधारभूत सिद्धान्तों को भली प्रकार न समझेगी और यह न जानेगी कि इन सिद्धान्तों को किस प्रकार बच्चे की प्रकृति के अनुसार क्रियात्मक रूप देना चाहिए, किसी भी पाठावली की संतोषपूर्वक शिक्षा नहीं दी जा सकती और न स्कूल को आकर्षक बनाया जा सकता है।"

कमेटी ने वर्तमान शिक्षाक्रम में कुछ सुधारों की भी सिफारिश की है। धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में उसका मत है कि जब तक इस प्रकार की शिक्षा में समस्त धर्मों के आधारभूत सिद्धान्तों का समावेश न होगा, तब तक वह अपूर्ण रहेगी। इसके सिवा कमेटी ने साधारण भाषा-ज्ञान, सरल अङ्कगणित, स्वास्थ्य-रक्षा और हस्तशिल्प की शिक्षा देने की सिफारिश की है। पर यह अध्ययन इस प्रकार होना चाहिए जिससे वास्तव में बालिकाओं के ज्ञान की वृद्धि हो और वह व्यावहारिक दृष्टि में कार्य-क्षम हो सके। इस सम्बन्ध में रिपोर्ट में एक जगह कहा गया है :—

"अध्ययन के नियमित विषयों के रूप में नहीं, बल्कि जानकारी व दिलचस्पी पैदा करने के लिए और लड़कियों को गम्भीर अध्ययन के लिये तैयार करने के उद्देश्य से इतिहास, भूगोल और विज्ञान की शिक्षा, ग्राम्य कथाओं और प्राचीन उपाख्यानों को भी सम्मिलित कर लेना चाहिए। लड़की को न केवल अपने देश के बल्कि दूसरे देशों के चरित-नायक और नायिकाओं के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञान होना चाहिए और यह जानना चाहिए कि स्वदेश तथा संसार के इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं में उनका क्या स्थान है। यह भी वाञ्छनीय है कि उसे अन्य देशों के बच्चों के जीवन के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञान हो, उसे स्वास्थ्य के सरल और साधारण नियमों, प्रचलित रोगों के कारणों, पौधों और पशु-जीवन की महत्वपूर्ण बातों की शिक्षा देनी चाहिये और जहाँ सम्भव हो, पालतू जानवर रखने, नाना प्रकार की प्राकृतिक वस्तुएँ इकट्ठा करने और स्कूल के बागीचे से दिलचस्पी रखने को प्रोत्साहित करना चाहिए।"

कमेटी ने छोटे बालक-बालिकाओं के लिये सहशिक्षा की भी सिफारिश की है। इससे खर्च में बहुत कुछ बचत हो सकेगी। बालिकाओं की शिक्षा का स्टैण्डर्ड ऊँचा हो सकेगा और मौजूदा खर्च से ही शिक्षा का अधिक प्रचार किया जा सकेगा।

* * *

दहेज प्रथा का बहिष्कार

कुछ समय हुआ बिहार प्रान्त में और विशेषकर पटना में दहेज़ के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ है, जिसमें वहाँ के कॉङ्ग्रेस मन्त्रीगण भी भाग ले रहे है। इस बात की चेष्टा की जा रही है कि तिलक और दहेज में दी जाने वाली बड़ी-बड़ी रकमों के विरुद्ध कानून बना कर इन हानिकारक प्रथाओं का अन्त करने की चेष्टा की जाय। यह भी विचार किया जाय कि सार्वजनिक सेवा से प्रेम रखने वाले उत्साही व्यक्तियों की कमेटियाँ बना दी जायँ, जो कि ज़बर्दस्ती दबाव डाल कर दहेज लेने वालों का पता लगाएँ और उनके विरुद्ध रिपोर्ट करें। इन दहेज़ लेने वालों में से कितने ही तो ऐसे धूर्त होते हैं, जो प्रकट में बड़े समाज-सुधारक और अग्रसर विचारों के बनते है, पर तरह तरह के बहाने करके लड़की के पिता से गहरी रकम वसूल कर लेते हैं। उदाहरणार्थ कितने ही दहेज में नकद रुपये न माँग कर मोटर-गाड़ी या विलायत-यात्रा के रूप में लम्बी रकम वसूल कर लेते हैं। इस तरह के लोगों की जितनी निन्दा की जाय कम है। पर हम यह भी समझते हैं कि इस तरह के स्वार्थी व्यक्तियों का प्रतिकार क़ानून द्वारा बहुत कम अंशों में हो सकता है। वे कानून की धारा से बच कर अपना मतलब पूरा करने का कोई न कोई उपाय निकाल ही लेंगे। इसलिए इसका उपाय मुख्यत: उन युवक युवतियों के हाथ में है, जिनका विवाह होने वाला है। इस सम्बन्ध में एक लेखक का कथन है :—

"वास्तव में इस समस्या का समाधान विवाहार्थी युवकों के संरक्षकों के हाथ में नहीं, वरन् स्वयं युवकों के हाथ में है। शिक्षित युवकों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि अगर विवाह वास्तव में एक पवित्र संस्कार है तो उसे अर्थ-प्राप्ति के लिये एक प्रकार का व्यापार नहीं बनाना चाहिए। जो लोग इन विवाहों में दलालों का काम करके अपना मतलब सिद्ध करते हैं, उनको एक बार अच्छी तरह शिक्षा मिलनी चाहिये।

'तिलक-प्रथा का नाश हो'—इस तरह के नारे लगाना बहुत सहज है, पर तिलक का नाश उस समय तक नहीं किया जा सकता जब तक कि आप अपने संरक्षकों या माता पिता के प्रभाव से मुक्त न हों, जो विवाह को अपनी अर्थ-पिपासा की पूर्ति का साधन बना लेते हैं।

अगर पश्चिमी देशों को विवाह में पवित्रता का भाव लाने की आवश्यकता हो तो पूर्वीय देशों को—विशेषकर भारत को विवाह में स्वयम्बर का भाव लाने की आवश्यकता है। जिन विवाहों में निर्णय का अधिकार लड़के-लड़की के हाथ में रहता है, उनमें संरक्षकों या माता-पिता को किसी भी चाल से धन वसूल करने का कोई उपाय नहीं रहता।"

वास्तव में हमारे समाज में इस समय विवाह-संस्था का रूप जितना दूषित हो गया है और उससे जितनी अधिक त्रुटियाँ घुस गई हैं, उन्हें देखते हुये एक जबदस्त सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है। हम प्राय. सामाजिक विषयों में कुछ भी उच्छृङ्खलता दिखलाने वाले अथवा स्वाधीनता के वर्तमान समय में उचित समझी जाने वाली सीमा को उल्लङ्घन करने वाले नये युवक-युवतियों की तो जी खोल कर निन्दा करते हैं, पर यह नहीं देखते कि पुराने लोग हानिकारक प्रथाओं को भी कैसी कट्टरता से अपनाये हुये हैं और इस सम्बन्ध में कैसा दुराग्रह का भाव प्रकट करते हैं। ऐसी परिस्थिति में परिवर्तन का कार्य सहज उपायों से पूरा हो सकना कठिन होता है और उसके लिये सामाजिक क्रान्ति जैसे कठोर उपायों का ही अवलम्बन करना पड़ता है। हमारा विश्वास है कि ऐसा समय बहुत जल्दी पास आता जा रहा है। और जिन रूढ़ियों या प्रथाओं को लोग अमिट समझते है, उनको हम बहुत ही शीघ्र विस्मृति के गर्भ में विलीन होते देखेंगे।

* * *

लेखकों से प्रार्थना और पुरस्कार के नियम में परिवर्तन

कुछ समय से हमारा ध्यान 'चाँद' के लेखों के आकार की तरफ विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। हमारे कितने ही शुभेच्छुकों और कृपालु मित्रों ने समय-समय पर हमको यह सलाह दी है कि 'चाँद' के लेखों का आकार यथासम्भव बड़ा न हुआ करे, जिससे पाठकों का मन उनके पढ़ने से ऊबे नहीं और विभिन्न विषयों के लेख अधिक संख्या में दिये जा सकें। हम अपने मित्रों की इस सम्मति की युक्तियुक्तता का अनुभव करते हैं और कुछ समय से इस सम्बन्ध में चेष्टा भी कर रहे हैं। इसके परिणाम-स्वरूप हमको अनेक सुलेखकों की रचनाओं का आकार इतना घटा देना पड़ा है, जो शायद उनमें से कुछ को नापसन्द भी हुआ हो। अतएव हम अपने समस्त लेखक महोदयों से प्रार्थना करते हैं कि वे यथाशक्ति अपना आशय संक्षेप में ही प्रकट करने की चेष्टा किया करें।

इसके साथ ही हम पुरस्कार के नियमों में भी कुछ परिवर्तन करना आवश्यक समझते हैं। अब तक लेखों का पुरस्कार प्रति पृष्ठ के हिसाब से देते रहे हैं। अब हम पुरस्कार योग्य लेखों के आकार और महत्व के अनुसार उन्हें दो श्रेणियों में बाँट देंगे और उन पर क्रमश. ५ और १० रुपए के हिसाब से पुरस्कार देंगे। अपनी आवश्यकतानुसार विशेष रूप से लिखाये कुछ लेखों पर १५) तक दिया जा सकेगा, पर ऐसा कभी-कभी ही होगा।

हमारा विश्वास है कि यह नया नियम लेखकों और पत्र दोनों को सुविधाजनक सिद्ध होगा और इसके द्वारा लेखों की उपयोगिता वृद्धि के साथ ही हम कदाचित् अधिक संख्या में लेखकों को पुरस्कार देने में भी समर्थ हो सकेंगे।

चाँद

सम्पादिका—

[illegible]

मैनेजिङ्ग एडीटर तथा जनरल मैनेजर—

[illegible]

डाइरेक्टर—

१—[illegible]

२—[illegible]

वर्ष १६	वार्षिक मूल्य ६॥)
खण्ड २	छःमाही मू० ३॥)
संख्या २	विदेश के लिए—
पू० सं० १८८	१ वर्ष का मू० ८॥)

प्रकाशक :—चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक

महात्माजी का अद्भुत चमत्कार !

कल्लार्ती पहाड़ के रत्नागिरि साधू ने एक ग्वाला को कुछ मात्रा महाशक्तिदाता दवा खाने को दी, जिसे वह भूल से सब एक बार खा गया जिससे उसमे इतना बल बढ़ा कि बुढ़ापे मे ३ विवाह किए थे। महात्माजी के इस चमत्कार को सुन नवाब बहावलपुर के ससुर हाजी हयात-मोहम्मद खॉ ने सेवा कर साधू से यह योग पाकर प० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य को दिया। शर्मा जी ने परीक्षा कर देशोपकारक मे छापा था तथा उसी प्रति में इस योग के ऊपर स्तम्भक, बाजीकरण, शीघ्रपतन नाशक ऐसे आशु फलदायक अपने ९ योगों के लिए १०००) रुपए का इनाम पदक सहित देने को भी लिखा था जिसे ७ वर्ष हो चुके हैं अब तक किसी ने न पाया है। खैर, अब हम नीचे उपरोक्त महात्माजी वाला महाशक्तिदाता योग लिख रहे हैं। इसके ७ दिन सेवन से रक्त दौड़ने लगता है। २१ दिन मे चेहरा लाल हो जाता तथा ४० दिन में हर प्रकार की निर्बलता, नपुसकता, प्रमेह, स्वप्नदोष, बवासीर, खॉसी, दमा, नजला, जिगर, तिल्ली के दोष, स्त्रियों का प्रदर, मूत्र में शकर जाना, (डायबटीज) आदि अनेक रोग दूर होकर बल-वीर्य बढ़कर देह लाल हो जाती है। यह कब्ज नही करती बल्कि मेदा बलवान बन जाता है। हर ऋतु मे उचित अनुपान से खाने योग्य बड़ी ही उत्तम दवा है, जो स्त्री-पुरुष, युवा, वृद्ध सबको एक सा लाभ पहुँचाती है। इसके लिए एक ने यह भी छापा है कि अवध के आखिरी ताजदार नवाब वाजिदअली शाह भी शक्ति बढ़ाने के लिए इसका सेवन करते थे। लाहौर के प० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य ने इस योग की प्रशंसा मे लिखा है कि कोई २ मास तक इसे सेवन कर डाले तो शरीर को गॉठ देगा, गुणकारी दवा है। भूपाल के वैद्य बालकृष्ण शर्मा ने लिखा है कि १०० लोगो पर इसे बर्ता और पूर्ण गुणकारी पाया, मथुरा के बाबू हरिदास वैद्य ने छापा है कि इसी योग से एक का वजन एक सप्ताह में ३ पौंड बढ़ा तथा दूसरे का चेहरा लाल सुर्ख हो गया। गोतोना के मशहूर डॉ० रामेश्वरप्रसाद वैद्य लिखते हैं, यह दवा कभी व्यर्थ जाने वाली नहीं, मैंने ३०० रोगी इससे आराम किए है। श्री हृदयनारायण रंगून से लिखते हैं कि महाशक्तिदाता के १० दिन सेवन से ही ६ पौंड वजन बढ़ गया है। बनारस के श्री उ नागरमल ने लिखा है कि इस दवा से मेरे शरीर का १२ पौंड वजन बढ़ गया तथा पूर्ण बल भी उत्पन्न हुआ है। बालाकोका टन्डेल स्टीमर कुरन्जा अलेकजेंड्रिया गोदी बॉम्बे से लिखता है कि इस दवा के गुणो को देखकर मैं यह कह सकता हूँ कि हिन्दोस्तान क्या दुनिया में इस दवा की बराबरी कोई दूसरी दवा नही कर सकती, मैंने खुद सेवन कर देखी है। इसी प्रकार के हजारो प्रसशा-पत्र भरे पड़े हैं। पाठको, आप ४० दिन अवश्य सेवन कर देखो, योग यह है:—

शुद्ध बुरादा फौलाद २० तो० को प्रथम १ तो० शुद्ध श्वेत मल्ल १॥ माशा भीमसेनी कपूर के साथ कुमारी रस से घोट कुज्जे मे बन्द कर ५ सेर कण्डो मे फूंकें, दुबारा शु० हरतालबर्की १ तो० शुद्ध कपूर १॥ माशा के साथ, तीसरी बार शुद्ध आमलासार गन्धक १ तो० शुद्ध कपूर १॥ माशा के साथ, चौथी बार शुद्ध सस्कारित पारद १ तो० शुद्ध कपूर १॥ माशा के साथ ऊपर की भॉति फूँकें, इसी क्रम से १६ ऑचे दें, फिर दवा जमीन मे गाड़ दें और ४ मास बाद चार चावल प्रातः-साय मक्खन-मलाई से खावे, आप मे इतना बल बढ़ेगा कि आप हैरान हो जावेंगे। अगर कुछ पूछना हो तो जवाबी पत्र भेजकर उत्तर मंगा सकते हैं। यह दवा हमारे ही यहाँ बनी मिलती है, चाहे तो ४० दिन के लिए ८० मात्रा महाशक्तिदाता दवा डाक खर्च सहित ५॥।) मे मंगा लें। (Copyright)

सेवक—श्यामबिहारीलाल वैद्यभूषण, श्यामचक्र कार्यालय, रजिस्टर्ड नं० ५१० बी०



झरा हुआ फूल

माली ! सबसे कह देना, सौरभ देने में हूँ असमर्थ ! सब दुर्गुण कहना, पर इतना भी कह देना दयानिधान !
सबके सम्मुख दोष गिना, मेरा जीवन बतलाना व्यर्थ ! मेरे ही समान होता है, भारत में विधवा का मान !

—'कमार'

ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD



साँझ

कब से जाने मैं क्या गाती !

उषा की वह प्रथम किरण
नव-शिशु की सी मुस्कान अरुण
सूने उर को कर आलोकित
　　मेरी आँखों में बस जाती !

पश्चिम नभ का पहला प्रदीप
सोना निकला ज्यों फूट रूप
मुझको तो अपने जीवन में
　　गो-धूलि की बेला भाती !

मेरे दुख के साथी प्यारे
नीले नभ के उज्ज्वल तारे
इनकी आकुल अस्फुट झिलमिल
　　दुखिया प्राणों की प्रिय थाती !

दुख से मानव का चिर-नाता
पर जग में सबको सुख-भाता
दुख सुख दोनों ही मिथ्या हैं
　　शाश्वत संदेश यह पहुँचाती !

तुम सो जाओ

तुम अलसित पुष्प शय्या पर सो जाओ, और मुझे एक बार नयन भर कर तुम्हारी सुप्त माधुरी को निरख लेने दो, अपने मे भर लेने दो ! इस नैसर्गिक सुधा-पान के बिना मेरा अन्तर सूख जायगा, तुम्हे रिझाने वाले, तुम्हे सजाने वाले, तुममे सुरभि भरने वाले ताजा मन्दार मुरझा कर धूरि-धूसरित हो जायेंगे, तितलियाँ उड़ जायेंगी, मधुकर अतृप्त रहेंगे, और रङ्गीन पक्षी घबडा कर गाना छोड़ देंगे !

मेरे जीवन को सुरक्षित रखने के लिए ही नहीं, किन्तु वसुधा के चैतन्य को अमर रखने के लिए मुझे, जीवन-धन, एक बार अपनी माधुरी पीने दो !!

❀ ❀ ❀

तुम क्यों करते हो ?

आज तक जब किसो ने मुझसे प्रेम नही किया तो फिर तुम क्यो नाहक अपने उर से उद्भासित होने वाली गङ्गा की स्नेहधारा को मेरी ओर माड़ रहे हो ? कदाचित् मेरे अन्तरतम को नही पहचानने से ही तुमने यह भूल की है !

प्रकाश के परे, घने अन्धकार के पार कही मेरा अन्तर छिपा है, और जुगनू ने भूल कर भी अपना क्षणिक आलोक वहाँ कभी नहीं बिखेरा है। मेरी आत्मा को लील लेने वाली कालिमा को भेद कर अपने नयनो के दीप-द्वय तुमने मेरे मानस पर सहसा क्यो जला दिये ? प्रकाश से हडबड़ाकर मै अपना सच्चा स्वरूप भूल गई। आलोक दिखाने वाले ! मणिदीपो को मात करने वाले ज्योति-पुञ्ज को सिमेट लो, और अपने स्नेहकणो को शीघ्र चुन लो नही तो झञ्झावात के झोके स्वतः सब कर देंगे, और तुम्हारी अमूल्य निधि खो जाने का क्षोभ तुम्हे सदा बना रहेगा !!

—दिनेशनन्दिनी

मिलन

[श्रीमती विद्यावती 'कोकिल']

मिलन मे सुख होता है क्यो ?

अनबुध सोते बाँह खोल क्यो
प्रतिपल दौड़े जाते है
अनगिन जलद विन्दु गाते ही
गाते, लय हो जाते है
मलय-पवन के अतिक्रम मे
फिर यह अतृप्त सिहरन होता क्यों ?

दिन भर गाते-गाते जब
कोयल तरु पर थक जाती है
पथ निहार कर साय तक
जब कलि बेसुध हो जाती है
शून्य-निशा मे तब उन्मत्-दल
पागल नर्तन होता क्यो ?

रातो-रातो द्वार खोल
शशि-बधु जगती रह जाती है
किसका स्वप्निल-कर धर रजनी
दृष्टि हीन हो जाती है
मेघों को निज रीतेपन पर ही
यह नन्दन होता क्यो ?

अंबुधि तट से वह एकाकिन
क्यो अपीत फिर जाती है
घन मेघो मे विद्युत अविदित
क्यो जलती रह जाती है
चातक को चिर प्यासे-पन पर ही
अति रञ्जन होता क्यो ?

सावन घन की बोझिल पलके
जब अविचल सी हो जाती
निश्चेतनता मे कुछ धुंधले
ससलिल स्वर से रट जाती
तब तरु पर प्रतिध्वनि कलरव,
कलरव मे स्पन्दन होता क्यो ?

मत कह देना पीड़ा की ये
स्वर्णिम घड़ियाँ रीती है
नन्ही बूँदे अविदित जग मे
मधु पी-पी कर जीती है
बस कुछ बूँदे पी उर-सागर
प्रतिपल चढ़ता बढ़ता क्यों ?

देर की शादी

[श्री० प्रेमनारायण अग्रवाल, एम० ए०]

भारतवर्ष ऐसे देश में, खास कर हिन्दू-समाज में, जिसमें कम उम्र में जल्दी होने वाली शादियों का बाहुल्य हो, जिसमें इसे रोकने के लिए भारी आन्दोलन किया जा रहा हो, कानून तक की शरण ली जा रही हो, देर की शादियों जैसे नियम पर कुछ लिखने का प्रयत्न करना कुछ अजीब सा मालूम पड़ता है।

देर में होने वाली शादियों से हमारा मतलब उनसे नहीं है, जो प्राय: बुड्ढे लोग करते हैं और जिनकी अवस्था ६०-५० के क़रीब होती है। वह जब शादी करते हैं, तब छोटी-छोटी उम्र की लड़कियों से। बड़ी उम्र की लड़कियों से शादी वह प्रायः नहीं करते। जब कभी ऐसे मामले होते हैं तो उनके कारण भी अलग से कुछ और ही होते हैं, जैसे लड़की बुड्ढे मियाँ के मरने के बाद धन की मालिक बनना चाहती हो या इसी प्रकार और कुछ। विदेशों में बुड्ढे आदमी अपनी समान उम्र की औरतों से शादी करते हैं और उनकी शादी करने का प्रमुख मतलब एक साथी का ढूँढ़ना होता है। पर भारतवर्ष में इस भावना से वृद्ध-पुरुष विवाह-सूत्र में आबद्ध नहीं होते, वरन् उनका मतलब वैवाहिक-जीवन के आनन्द उठाने का होता है। सन्तान प्राप्त करना, जो भारत में एक अत्यन्त आवश्यक चीज समझी जाती है और जिसके बिना पति-पत्नी को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती, अपना पितृ-ऋण नहीं चुका पाते। इनके लिए विधवा विवाह कुछ ठीक हो सकता है। उन लड़कियों से, जिनकी अवस्था काफ़ी हो और इस मामले में औरत पुरुष के लिए उपयुक्त हो। परन्तु वह तो इनके बजाय अबोध बालिकाओं से शादी करना पसन्द करते हैं और इनके कारण प्राय अपने जीते जी झञ्झट में फँस जाते हैं या के बाद उनको दूसरों के आश्रित छोड़ जाते हैं। जब की पत्नियाँ जवानी पर आती हैं, जब वह पा आवश्यकता महसूस करती हैं, तब तक तो उनके उनको विधवा छोड़ कर इस संसार से कूच कर चु या स्वय इस योग्य हो जाते हैं। इसका फल हमारे भली-भाँति जानते हैं। इन स्त्रियों को अत्यन्त जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर होना पड़ और तिस पर भी किसी प्रकार से उन्हें शान्ति मिलती। उनको नरक-जीवन इसी संसार में पड़ता है। न हमारा मतलब देर की शादी से उ जो किन्हीं कारणों से शादी करना पसन्द ही नहीं जो जीवन भर अविवाहित रहने के लिए तय क होते हैं और जो अपने जीवन को बड़े संयमपूर्वक देते हैं। इसमें हम उन्हें शामिल करना चाहते हैं अपनी शादी को आगे के लिए स्थगित करते चले हैं, जिसका बुरा प्रभाव उन पर तथा समाज पर भी है। यह लोग शादी करना चाहते हैं (इनमें युवक युवतियाँ दोनों ही शामिल हैं), शादी इनके लिए श्यक है और यह आगे चल कर शादी करते भी परन्तु किन्हीं कारणों से यह जल्दी शादी (मेरा म है उचित अवस्था में) नहीं करते। उन्हें बहुत समय अविवाहित रहना पड़ता है या शादी के प्रश्न को वह तक के लिए टालते जाते हैं जब तक कि वह कारण नहीं हो जाते या उनके लिए ठीक समय नहीं आ जा

हमारे पूर्वजों ने विवाह करने की एक अ क़ायम की थी, जिसमें विवाह के लिए इच्छुक यु युवतियों को शादी कर लेना होता था। जहाँ उ

उससे कम समय की अवस्था में की गई शादियों को, जिन्हें हम अनमेल-विवाह के नाम से पुकारते हैं और दुर्भाग्य से जिनकी सख्या भारत में, इधर कानून बनने के बाद भी बढ़ती ही जा रही है, देश, समाज तथा उन दम्पतियों के लिए हानिकर बतलाया था, वहाँ उन्होंने विवाह का एक सर्वोत्तम समय भी बताया था, जिसमें शादी करने से सभी का लाभ था। उसमें शादी करने से दम्पति को सब तरह से सांसारिक सुख मिलता और वह अपने कर्तव्य को पूरा कर सकते। उनकी राय में शादी करने वाले युवक-युवतियों के लिए यह बहुत उपयुक्त समय था। हमारी वर्तमान परिस्थितियों में भी यह बात ठीक है कि उनको एक निश्चित अवस्था के अन्दर एक निश्चित अवस्था के बाद विवाह-सूत्र में बँध जाना चाहिए। जिस प्रकार कम उम्र की शादियों से दम्पति की तथा देश, समाज की हानि है, ठीक उसी प्रकार बाद में देर से शादी करने से भी। दोनों परिस्थितियों से बच कर चलने में उनका, दूसरों का और सबका कल्याण है।

उस समय की हालत के अनुसार विवाह को यह दोनों उमरें कोई भी रही हों, हम अपनी आजकल की बदली हुई परिस्थिति तथा आवश्यकताओं के अनुसार विवाह के लिए दोनों उम्रें कायम कर सकते है। एक वह, जिससे पहले शादी करना किसी भी दृष्टि से किसी के लिए भी लाभदायक न होकर ज़रूर हानिकारक है। और दूसरी वह, जिसके बाद करना भी इसी प्रकार हानिकारक तथा खतरनाक है। दोनों के अपने-अपने नुकसान हैं। बाल-विवाह की दिक्कतों से हमारे सभी पाठक भलीभाँति परिचित होंगे, क्योंकि यह एक पुराना मर्ज है, इसके विरोध में ख़ूब आन्दोलन किया जा चुका है। पर यह दूसरी 'देर की शादी' एक नवीन चीज़ सी जँचती है। इधर थोड़े से दिनों से ही इसका रूप अधिक निश्चित बन गया है और इसकी संख्या में वृद्धि हो रही है। अपढ़ और गरीब जातियों में शादी जल्दी होती है और ऐसे केस कम होते हैं जिन्हें हम अपने इस द्वितीय वर्ग में लें। इस प्रकार के मामले तो आमतौर से पढ़े-लिखे मध्यम वर्ग के आदमियों में ही पाये जाते हैं और इनमें ही इनकी सख्या तीव्र-गति से बढ़ रही है।

जो युवक-युवती विवाह की उचित उम्र को पार कर अपना शादी का प्रश्न टालते जाते है, देर में शादी करने के लिये, और जिनको एक न एक दिन शादी करना ही है, समाज के लिये खतरनाक साबित हो सकते हैं, हुये भी हैं और होते हैं। जिन्हें शादी करना ही नहीं होता वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये अपने को वैसे ही ढङ्ग से चलाते हैं। पर वह युवक-युवतियाँ उस ढङ्ग पर नहीं चलते, क्योंकि वह तो शादी करेंगे—केवल कुछ समय बाद। इन पर उम्र का तकाज़ा होता है, उनकी काम-वृत्ति समय-समय पर उग्र रूप धारण कर लेती है। और ज़्यादातर यह लोग उसके कब्जे में चले जाते हैं और रहते है। अपने ऊपर नियन्त्रण करना अत्यन्त कठिन है। सभी ऐसा नहीं कर सकते, सभी जितेन्द्रिय नहीं होते और न हो सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में समाज पर उनका कितने ही प्रकार से असर पड़े बिना नहीं रह सकता। अविवाहित युवक-युवतियों के चरित्र में वह निर्मलता, शुद्धता नहीं रह सकती, जिसे हम पत्नीव्रत और सतीत्व में पाते है और जो भारत की विशेषता रही है। यह उन तक ही परिमित रहे, सो बात नहीं, समाज के विवाहित स्त्री-पुरुषों पर भी इसका प्रभाव पड़ेगा और पड़ेगा उन पर भी, जो शादी की अवस्था तक पहुँचने वाले है। सच बात तो यह है कि जब से इस प्रवृत्ति का समाज में समावेश हुआ है, उस पर इसका प्रभाव पड़ना शुरू भी हो गया है। इस समय हमारे सामाजिक जीवन में भारी उथल-पुथल है, उसमें न तो उतनी पवित्रता रही है और न प्राचीन आदर्श के प्रति वह भावना ही। वास्तव में इस प्रवृत्ति का जन्म बहुत पहिले ही हमारे समाज में हो चुका है, पर अभी तक यह भयानक रूप में प्रकट नहीं हुआ है। अभी समाज की प्रगति को बारीकी से देखने-समझने वाले ही इसे समझ सके हैं, पर आगामी वर्षों में हमारे युवक युवतियों की वह रीति-नीति, रङ्ग-ढङ्ग समाज पर ख़ूब प्रकट हो जायगा, क्योंकि इस प्रकार के काम में दिलचस्पी लेने वालों की सख्या ज़ोरों से बढ़ रही है।

अभी तक यह प्रश्न अधिक गम्भीर रूप धारण न कर सका, इसके कई कारण है। नई परिस्थि-

तियों के कारण समाज में क्रान्ति हो रही है। इसके फलस्वरूप परदा प्रथा का अन्त हो रहा है। युवतियों को युवकों के साथ घूमने-फिरने, खेलने-कूदने, पढ़ने-लिखने में अधिक स्वतन्त्रता मिल रही है। अतएव उनको अवैध रूप से ही अपनी पशु-प्रवृत्ति को मिटाने का मौका मिल सकता है या मिल जाता है। दूसरी बात यह है कि युवतियों में भी 'देर की शादी' करने की बात धीरे-धीरे पैदा हो रही है। अभी तक युवकों को देर में शादी करने की अधिक स्वतन्त्रता है, सम्भवत अपनी स्वाभाविक अधिक स्वतन्त्रता के कारण। युवतियों को इतनी स्वतन्त्रता अभी नहीं मिली है, वह एक भारी तादाद में अब तक अपने माता-पिता पर आश्रित है, उनकी आज्ञाओं को उन्हें पालन करना पड़ता है। विवाह-शादी के मामले में उनकी अब भी अन्तिम राय है, युवतियाँ उसमें सफलतापूर्वक दखल बहुत कम दे सकती हैं। वह उनकी शादी ठीक उम्र के समय कर देते हैं। परन्तु अब अधिक आगे बढ़े हुए परिवारों में लड़कियों को भी स्वतन्त्रता मिल रही है। विवाह-शादी के मामले में वह युवकों के समान ही स्वतन्त्र हैं। उनको राय की उनके माता-पिता का कदर करनी पड़ेगी। यही नहीं, वह जब चाहे शादी करें। इसका फल यही है कि वह भी देर की शादियाँ पसन्द करने लगी हैं। उनको भी अब अपनी पशु-प्रवृत्ति पर नियन्त्रण करने में दिक्कतें मालूम पड़ीं, जिन पर अपना काबू बनाये रखना अत्यन्त कठिन है, फिर आजकल की परिस्थिति में, जब कि चारों ओर का वातावरण इसे उकसाने वाला ही होता है। उनके जीवन में, रहन-सहन के ढङ्ग में वह सात्विकता नहीं होती, जिसके बल पर वह अपनी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति पर कब्ज़ा रख सकें। उनके वर्तमान ढङ्ग के रहन-सहन तथा वातावरण से यह बजाय कम होने के अधिक वेग से प्रज्वलित होती है। स्त्री-पुरुषों के बढ़ते हुए मेल-जोल तथा व्यवहार में उन्हें इन प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करने के लिए और भी कम मौका मिलता है। आग के निकट पहुँच कर उसकी गर्मी से बचना मुश्किल होता है। इसी प्रकार स्त्री-पुरुषों के अधिक संसर्ग में आने से उनको अपनी इन प्रवृत्तियों को दबाने में अधिक कठिनता का होना स्वाभाविक है। इसके साथ ही उनको पूरा होने देना भी अधिक कठिन नहीं। इसका फल यह हो रहा है कि हमारे समाज का नैतिक-क्षितिज बहुत नीचा हो गया है और दिन पर दिन नीचे की ओर खिसका जा रहा है। इसका हाल हम नित्य होने वाली भ्रूण हत्याओं से अनुमान कर सकते हैं। सन्तान-निग्रह के साधनों का बेरोक टोक उपयोग किया जाता है। जिन मामलों में यह साधन अचूक साबित नहीं होते वहाँ अन्य उपाय इस्तेमाल करके पाप को छिपाने का प्रयत्न किया जाता है। विवाहित स्त्रियों को किसी बात का डर नहीं होता। उनका विवाह इन सब पापों को छिपा लेता है। केवल कुमारियों पर ही इसका प्रभाव पड़ता हो, सो बात नहीं। विवाहित स्त्रियों में भी इस प्रकार की अनीतिपूर्ण बातें अनेक अवसरों पर देखने में और सुनने में आती हैं जो भारतीय आदर्श की दृष्टि से सर्वथा गर्हित हैं।

सभ्य कहलाने वाले इस आगे बढ़े हुए समाज में नैतिकता नाम की कोई चीज़ ही नहीं मानी जाती। जिस प्रकार पश्चिम के देशों में स्त्री-पुरुषों का संसर्ग सभा-सोसाइटियों में और भी हर जगह बिना किसी रुकावट के मिलना जुलना होता है, उसी ढङ्ग पर भारत का यह समाज आगे बढ़ा है। वहाँ किसी की स्त्री का किसी भी पुरुष के साथ टहलना, सिनेमा देखने जाना इसके (पुरुष) पति को बुरा नहीं लगता और न पत्नी का उसके पति का दूसरे की स्त्रियों के साथ रास-रङ्ग करना। वहाँ की सभ्यता का यह एक आवश्यक अङ्ग बन रहा है। पर भारत की प्राचीन सभ्यता के यह ख़िलाफ़ है और शायद भारत में यह प्रथा व्यापी रूप धारण न कर सकेगी। स्त्रियों तथा पुरुषों की इस स्वतन्त्रता ने उन्हें 'देर में शादी' करने के लिए मौका दिया है। अगर उनको अपनी काम-वासनाओं को शान्त करने का अवैध रूप से मौका न मिले तो उन्हें मजबूरन अपने को विवाह-सूत्र के पवित्र बन्धन में आबद्ध होना पड़े। वास्तव में समाज की यह परिस्थिति उन्हें अपने आपको अधिक दिनों तक न विवाहित रखने को प्रोत्साहित करती है। इससे वह वैवाहिक ज़िम्मेदारियों से बचे रहते हैं। कुछ लोग तो खुल्लम-

खुल्ला कहते सुने गए हैं कि जब कि "उनको रोज ताज़ा दूध मिल सकता है तो एक गाय को पालने की क्या आवश्यकता है ।" अगर समाज में यह परिस्थिति न हो तो 'देर की शादियाँ' बहुत अंशों में रुक जायँ। वेश्याओं के घर जाना ज़रा साहस का कार्य होता है, प्रत्येक व्यक्ति इसे पसन्द नहीं कर सकता । इसके अतिरिक्त फँस जाने से उनको अनेक प्रकार की बीमारियों में फँस जाने का भी डर होता है, मानसिक परेशानियाँ होता है और धन खर्च होता है ।

युवकों को आगे देख और सामाजिक बन्धनों के ढीला होने के कारण युवतियाँ भी आगे आने लगी। उन्होंने भी 'देर की शादियाँ' करना पसन्द किया। इस अवस्था में वे भी प्राय विपथ-गामिनी हो जाती हैं। सदा से समाज युवकों को उनकी अनियन्त्रित आदतों के कारण बुरा-भला कहता आया है । उसकी निगाह में युवतियाँ सदा सीधी-सादा निष्कलकता की साक्षात् मूर्ति रही है । यदि किसी प्रकार वह पथ-भ्रष्ट हुई तो यही कहा जाता रहा है कि पुरुषों के कारण। परन्तु इस ज़माने में समाज को अपनी इस राय को दुहरा कर ठीक करने की आवश्यकता है। वह तो अब पुरुषों के कान काटने लगी है। आये दिन जो किस्से सुनने में आते हैं, उनसे स्पष्ट ज़ाहिर होता है कि स्त्रियाँ भी अब अपनी स्वाभाविक पवित्रता से वञ्चित हो रही है । वह इस सामाजिक जीवन की विच्छृङ्खलता में खूब दिलचस्पी के साथ हाथ बटाती हैं । उनके हाव-भाव, बनाव-शृंगार युवकों का अपने चङ्गुल में फाँसने के लिए अधिक सरल तथा अचूक सिद्ध होते हैं। संक्षेप में कहने का मतलब यह है कि दोनों ओर से इस प्रकार के सामाजिक जीवन को प्रोत्साहन मिल रहा है। जिस समाज में यह फैल गया है, वह है आधुनिक शिक्षा-दीक्षा से दीक्षित और आगे बढा हुआ समाज । बड़े-बड़े शहरों में इसका खूब प्रचार है, क्योंकि वहाँ पढे-लिखे, आगे बढे हुये आदमियों की संख्या काफी होती है। छोटे-छोटे शहरों में ऐसी बातें सरकारी नौकरों में और मालदार घर के समाज में प्रचलित हैं और इसी समाज के लोग प्रायः देर की शादी पसन्द करते है ।

लोग 'देर की शादी' को क्यों पसन्द करते हैं—इसका प्रमुख कारण आर्थिक है । एक ओर तो आजकल की भयानक भारत की आर्थिक परिस्थिति, जिसमें बेकारी के कारण नौकरी का मिलना मुश्किल और व्यापारिक दिक्क़तों के कारण ऐसे व्यापार का भी, जिससे कुछ आय हो सके । रुपये की कमी तथा कमाने के साधनों के अभाव में युवकों का सारा प्रोग्राम तथा जीवन अनिश्चित होता है। दूसरी ओर उनकी खर्चे की आदतें बढ़ी होती हैं । अङ्गरेजी शिक्षा पाकर उनकी आदतें खर्चीली बन जाती हैं। उनका कायम रखने के लिये वह सब प्रकार के प्रयत्न करते हैं। जिन लोगों की आय बढ जाती है या नौकरी मिल कर अच्छी तनख्वाह मिलती है, वह भी विवाहित होकर भी सामाजिक जीवन की उच्छृङ्खलता के मज़े उड़ाना पसन्द करते हैं। बाकी जो बेकार है या जिनकी आमदनी कम है, वह शादी कैसे करें ? पत्नी को कहाँ से खिलाएँ तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति वह कहाँ से करें । यदि कुछ मिलता है तो उससे वह अपने जीवन को मुश्किल से कायम रख पाते हैं। ऐसी हालत में शादी करना, उसकी ज़िम्मेदारियों को अपने कमजोर कन्धों पर सँभालना, अपनी आवश्यकताओं को कम करना तथा अपने standard of living को नीचा करना ही है। समाज की यह परिस्थिति उन्हें ऐसा करने को प्रोत्साहन देती है। इसमें वह अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को शान्त कर सकते हैं । यदि इसमें उनको ऐसा मौका न मिले तो उन्हे शादी करना आवश्यक हो जाय ।

यह सत्य है कि कुछ युवक अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिये अनुचित मार्ग अवलम्बन करते हैं, पर इसमें उन्हें आगे चलकर विशेष हानि उठानी पड़ती है । इससे वह अपने को काफी नुकसान पहुँचाते है और आगे चल कर वैवाहिक-जीवन के अयोग्य बन जाते हैं। पर ऐसे युवकों की संख्या में अधिक लोग विवाह-सम्बन्ध में आ जाते हैं। थोड़े से ही देर में शादी करने को तैयार होते हैं ।

वर्तमान सामाजिक परिस्थिति की सुविधाओं के कारण वह युवक भी शादी देर में करना पसन्द करते हैं,

जिन्हे कोई खास आर्थिक कठिनाई नहीं होती और जो एक पत्नी का भार आसानी से सम्हाल सकते है। पर वह कुछ दिनों तक इसी परिस्थिति में रहना पसन्द करते हैं। अनेक कारणों से वह यही ठीक समझते है कि शादी-विवाह की जल्दी फिक्र करके उसकी ज़िम्मेदारियों को अपने ऊपर न लें। वह जब तक टलें तभी तक अच्छा। वह तभी शादी करने को तैयार होते है, जब उन्हें पत्नी का अभाव कितने ही अन्य कारणों से भी अनुभव होता है। जब वह चाहते हैं कि वह एक पत्नी की देख-भाल, देख रेख में रहे। यह काम पत्नी के अतिरिक्त और कोई भी व्यक्ति इतना कुशलतापूर्वक नहीं कर सकता।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे युवक भी होते हैं, जो आर्थिक दिक्कतों से अधिक परेशान नहीं होते, पर शादी को वे भी टालते हैं। उनका कारण यह होता है कि वह महत्वाकांक्षी होते है। शादी से प्राय उनके कार्यों में बाधा पड़ती है। यदि नहीं भी पड़ती है तो वह इस झञ्झट को लेना ऐसी परिस्थिति में ठीक नहीं समझते। समाज के लिये उनसे कोई खास खतरा नहीं होता, क्योंकि उनको अपने सिवाय अन्य किसी बात को चिन्ता ही नहीं होती, न समय न शक्ति और न कोई रुचि। उनका सारा समय, शक्ति, धन अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में ही चला जाता है।

जब पढ़े-लिखे और आगे बढ़े हुए व्यक्तियों का यह हाल है तब कम पढ़े-लिखे या इतने ही पढ़े लिखे, पर कम आगे बढ़े हुये, विवाहित-सम्बन्ध में बँधकर अपना जीवन बड़ी सयमता से व्यतीत करते हैं। वह शादी करते है, क्योंकि वह मनुष्य के लिये आवश्यक है, न केवल काम-वासना के कारण, वरन् अन्य कारणों से भी। बिना पत्नी के मनुष्य पूर्ण नहीं बन सकता। उसके आवश्यक गुणों का विकास नहीं होता। आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह इस आवश्यक सम्बन्ध में बँधने से नहीं चूकते। उनकी दृष्टि से यह बात शादी के परे है। यदि आर्थिक स्थिति अच्छी है तो दोनों मजे में रहेंगे, और यदि खराब है तो दोनों ही जैसे बनेगा वैसे रहेंगे। जो कुछ परिस्थिति होगी, होगी दोनों के लिए। वह इसमें एक दूसरे से कन्धे से कन्धा मिला कर हँसी खुशी अपने जीवन-रथ को आगे खींचगे। रुपये के अभाव में वह मनुष्यता के इस सम्बन्ध को क्यों छोड़ दें। हमारा ख्याल है कि बहुत से शादी को देर में करने के लिए तैयार मनुष्यों की आर्थिक परिस्थिति इतनी खराब नहीं होती कि वह पत्नी का भार न उठा सकें। वह उठा सकते है, पर इसे टाल देते हैं कि जब तक कि उनकी आर्थिक परिस्थिति और भी अच्छी न बन जाय। यदि वह अपनी इच्छाओं पर थोड़ी सी लगाम लगावे, इसलिए कि उससे समाज का लाभ है, तो वह अपनी शादी को उचित आयु में करके पूर्णता प्राप्त करें और फिर जीवन की सफलता के लिए आगे बढ़ सकते है। उनको समझना चाहिए कि व्यक्तिगत लाभ के सामने सामाजिक लाभ अधिक आवश्यक है। उनके देर की शादी करने से उनका अपना लाभ अवश्य है कि उनको वैवाहिक ज़िम्मेदारियाँ उस समय उठानी होंगी जब वह आर्थिक दृष्टि से इसे ख़ूब आसानी से उठा सकते हैं। आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होकर शादी करने से उन्हें जीवन की अनेक दिक्कतों से छुटकारा मिल जाता है, जिनके कारण कितने ही दम्पतियों के जीवन नष्ट हो जाते हैं। तब शादी करने से उनकी महत्वाकांक्षाओं की प्राप्ति में रुकावट नहीं होती। परन्तु उनकी इस कार्य-प्रणाली का प्रभाव समाज के नैतिक जीवन पर बुरा पड़ता है। अपनी वासना को तृप्त करने के लिए वह इस समय जो कुछ करते है, उसका प्रभाव समाज पर पड़ता है। उनको देख कर उनके अनुगामी कितने ही अन्य युवक बनते हैं। उनके आचरणों का प्रभाव भी दूसरों पर पड़ता है। उनसे सीख कर, उनका हाल देख कर न मालूम कितने और आदमी वैसा ही करते हैं। धीरे-धीरे वह बातें, जो एक व्यक्ति तक सीमित थीं, काफी व्यापक बन जाती हैं। समय पाकर वह समस्त समाज पर अपना असर डालती हैं। शादी की अवस्था को पार किए हुए अविवाहित युवक युवतियाँ कुछ ऐसे कार्यों में लगे होते हैं, जिनका सम्बन्ध देश के बालक-बालिकाओं से होता है। ऐसे पेशे में अध्यापन कार्य है। तब उन पर उनका कितना बुरा

प्रभाव पड़ता है, इसकी पाठक कल्पना कर सकते हैं ? जब उनके प्राइवेट जीवन की बातें उन पर प्रकट होती हैं, जो बिना प्रकट हुए रह नहीं सकतीं, तब वह भी वैसी ही बनने लगती है ।

समाज के ज़िम्मेदार व्यक्तियों को इस प्रवृत्ति की वास्तविक रूप रेखा को शीघ्र समझने की आवश्यकता है, ताकि वह इसकी रोक-थाम करना प्रारम्भ करें, अन्यथा इससे भारत के सामाजिक जीवन को भीषण धक्का लगेगा । ख़ासतौर से इसलिए कि भारत की अपनी सभ्यता है और पश्चिम से बिलकुल भिन्न है । इसे भारत कभी अपना नहीं सकता । थोड़े से व्यक्तियों तक यह सीमित रह कर अधिक व्यक्तियों के सम्पर्क में आने से दोनों में मनमुटाव तथा विद्रोह की भावना का जन्म होगा । उनमें इसके फल-स्वरूप एक खाई खुद जायगी, जो देश के उत्तम लाभ के लिए हानिकारक होगी ।

इस समय का सामाजिक गठन तथा अनेक क्रान्तिकारी बातों के होने के कारण सारा समाज गड़बड़ी की हालत में है, शीघ्र ही वह एक निश्चित रूप धारण करेगा । इस रूप में आने से पहले इस प्रवृत्ति को समूल नष्ट कर देने की आवश्यकता है । परिवर्तन का समय होने से भारत में कितनी ही गड़बड़ी है और इसके कारण कितने ही व्यक्ति अपने अपने लाभ के कामों में जुटे हुए हैं और यह परवाह नहीं करते हैं कि उनके कार्य-कलापों का समाज पर क्या, कैसा प्रभाव पड़ता है । इस समय ऐसे अनुचित का बहुत हो रहे है, उन्हें शीघ्र रोकना होगा, नहीं तो जीवन के अन्य पहलुओं में भी वह कटता ला देंगे ।

सबसे पहले हमें शादी की एक उचित आयु कायम कर लेनी चाहिये, जिसके बाद या बीच में युवक-युवतियों की शादी हो जाना चाहिए । हमारी राय में युवतियों के लिए १५ से लगा कर १६-२० वर्ष तक की आयु में उनकी शादी अवश्य कर देनी चाहिए । युवकों के लिए यह २४-२५ से लगा कर अधिक से अधिक २६-३० वर्ष तक की होनी चाहिए । इस बीच में उनकी शादी होने से समाज 'देर में शादी' करने की बुराइयों से बच सकता है । इससे पहले शादी करना बाल-विवाह की हानियों को निमन्त्रण देने के बराबर है और बाद में करना 'देर की शादी' के कुत्सित प्रभाव को, जिससे हमें अपने समाज की रक्षा अवश्य ही करनी चाहिए ।

युवक-युवतियों को इस बीच अवस्था में शादी करने में जो दिक्कतें हों, समाज को उन्हें हटाने के लिए भर-सक प्रयत्न करना चाहिए । इन्हें हटा कर ही हम अधिक बड़ी और विनाशकारी हानियों से इसे बचा सकेंगे। हमारी राय में यह वह प्रश्न है, जिस पर अब अधिक गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है और जो अभी आसानी से नेस्त-नाबूद सदा के लिए किया जा सकता है, क्योंकि इसका अभी शुरुआत है ।

समाज पर इसका जो प्रभाव पड़ता है, वह हमने ऊपर दिखाने का प्रयत्न किया है । युवक तथा युवतियाँ इस उम्र को पार कर, काफी बड़ी उम्र में शादी करती हैं, वे 'देर की शादी' के बुरे प्रभाव से बच नहीं सकती । जब वह विवाह करके गार्हस्थ्य-जीवन में शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं, तब उन पर उनकी इस प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ता है । तब वह प्राय- इस प्रभाव को पसन्द नहीं करते । ये दम्पति अपने वैवाहिक-जीवन में वही शान्ति, आनन्द और एकता चाहते हैं, जो अन्य लोगों को उचित अवस्था में शादी करके फल-स्वरूप प्रायः प्राप्त होती है । इन पर सबसे पहला प्रभाव यह होता है कि वह अपनी प्रवृत्तियों पर एकाएक क़ब्ज़ा नहीं कर पाते हैं और अपनी शादी होने से पहले वाली कार्यवाहियों को जारी रखते हैं । पति की इन बातों से पत्नी प्रसन्न तथा सन्तुष्ट नहीं होती और न पत्नियों के इन कार्यों से पति महाशय ही । इसका कारण यह है कि वह एक दूसरे को इतनी स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते हैं, जितनी वह अभी तक स्वयं लेते रहे है या जो यूरोपियन या अमेरिकन समाज में प्रचलित हैं । उनके संस्कार एकदम इस परि-स्थिति को सहन नहीं होने देते । कई पीढ़ियों तक इसी प्रकार के जीवन व्यतीत करने वाले परिवारों की सन्तान अवश्य इसमें कुछ अपने स्वभाव के विरोधी बातों का अनुभव नहीं करती । परन्तु भारत के प्राचीन संस्कारों

में पले युवक-युवतियाँ एकदम अपने को इसके अनुकूल नहीं बना सकतीं! स्वयं तो स्वतन्त्रतापूर्वक सब कुछ पसन्द कर लेती है, पर दूसरे को उतनी स्वतन्त्रता न देकर, उसी प्राचीन आदर्श में बंधा रखना चाहती है।

वह युवक-युवतियाँ भी देर की शादी की दिक्कतों से नहीं बच पातीं, जो इस प्रकार की बातों से दूर रह कर शादी होने तक संयत और पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। उनको इस प्रकार की कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़तीं और न इस कारण से उनका पारिवारिक जीवन का आनन्द नष्ट होता है। उनके कारण अलग और दूसरे होते हैं। इनका कारण प्रायः यह होता है कि युवक-युवतियों के काफी अवस्था तक अलग-अलग रहने से, उनमें एक दूसरे के प्रति वह सद्भाव नहीं रह पाते। अक्सर इस मामले में पति पत्नी एक दूसरे पर सन्देह आदि किया करते हैं। इससे भी अधिक कठिनाई उपस्थित करने वाला कारण होता है दोनों का अपना-अपना निजी अस्तित्व तथा विचार। अलग-अलग रहने से उन दोनों में अपने-अपने को समझने की आदत पड़ जाती हैं, दोनों में अपनापन आ जाता है। उनके विचारों में उनकी परिस्थिति के अनुसार दृढ़ता, परिपक्वता आती है, और वह इनमें अधिक मज़बूत हो जाते हैं। विवाहित जीवन के लिये आवश्यक है कि पति-पत्नी एक दूसरे के विचारों का आदर करें, दोनों अपनापन भूल जायँ या छोड़ दें, और अपने भिन्न भिन्न विचारों को सदा के लिये भूल कर एक निश्चय कार्य की पूर्ति के लिये एक से बना लें। विचारों में भिन्नता रहते हुये, उस भिन्नता का प्रभाव उनके जीवन पर न पड़े। सफल वैवाहिक-जीवन में पति-पत्नी एक दूसरे से बहुत नज़दीक आ जाते हैं और बिना उसके उन्हें अपने इस जीवन का वास्तविक सुख नहीं मिल सकता। काफी उम्र तक अविवाहित रहने वाले युवक-युवतियाँ जब शादी करते हैं, तब उनकी भिन्नता और उनका अपनापन काफी गहराई तक पहुँच चुकता है। इसके कारण वह प्रायः एक तरीके से एक चीज़ पर विचार नहीं कर सकते। अपने-अपने दृष्टिकोण से एक ही चीज़ को दोनों देखेंगे, उनको करने के उपाय भी अलग-अलग होंगे। इस विभिन्नता के कारण उनके विवाहित-जीवन में एकता नहीं हो सकती, जो इसको सफल बनाने के लिये नितान्त आवश्यक है। दोनों अपनी बात को समझते हैं। उन पर कायम रहना चाहते हैं, जो प्रायः सम्भव नहीं होता। जो लोग उचित अवस्था में शादी करते हैं, वे प्रायः इस आदत से बच जाते हैं और उन्हें गृहस्थ-जीवन का सब सुख मिल जाता है। उस समय (अवस्था में) दोनों में वह परिपक्वता नहीं आती, वह अपनापन तथा अलहदगी नहीं होती, जो आगे चल कर उनमें मनुमुटाव उत्पन्न कर दे या बात-बात में लड़ाई-झगड़ा की सृष्टि कर दे। इसके ठीक विपरीत उनमें इस समय एक-दूसरे को समझने की प्रवृत्ति होती है। वह एक दूसरे की बातें, विचार जानने को उत्सुक होते हैं और बाद में जो उनके विचार वगैरह बनते है, उनमें दोनों पति पत्नियों के विचारों आदि का समन्वय होता है। इस समय पति-पत्नी एक दूसरे से ख़ूब परिचित होकर अपने को एक-दूसरे के अनुकूल बना लेते है, या स्वभावतः उनमें यह बातें आ जाती हैं। आगे के उनके जीवन में इसीलिये एकता का भाव होता है। पति के विचारों में पत्नी के विचार छिपे रहते हैं और पत्नी के विचारों में पति के। दोनों के कामों में समानता आ जाती है। इनमें आपस में तब ख़ूब बनती है, वह दिक्कतें इन्हें महसूस नहीं होतीं जो 'देर में शादी' करने वालों को ज्यादातर हुआ करती है। यदि इनमें से एक भी परिपक्व या मज़बूत विचार वाला हुआ तो वह दूसरे के विचारों पर आसानी से प्रभाव डाल लेता है। वह दूसरे को अपने विचार का बना लेता है और दूसरा बिना किसी दिक़्क़त के उसके अनुकूल बन जाता है। 'देर में हुई' शादियों में यह बात नहीं होती, दोनों अपने व्यक्तित्व को एक दूसरे से अलग रखने में समर्थ होते है, एक दूसरे को अपने-अपने विचारों आदि के अनुकूल नहीं बनाया जा सकता। देर में शादी करने वाले युवक-युवतियों के सामने यह बात अवश्य ही किसी न किसी रूप में आती है। परन्तु यह बातें उचित अवस्था में हुई शादी में देखने में बहुत ही कम आती हैं। इनका जीवन प्रायः घुल-मिल जाता है।

देर में शादी करने वालों के लिये दो-एक ही उपाय

होते हैं। एक तो यह कि वह किसी बिना पढ़ी-लिखी लड़की से शादी कर ले, जिसने दुनिया का रङ्ग ढङ्ग न देखा हो, जिसमें अपनेपन की मात्रा का प्रादुर्भाव न हो सका हो या उचित अवस्था की लड़की से। दोनों हालत में एक चतुर युवक इनको अपने अनुकूल बनाने में सफल हो सकते हैं। अथवा शादी करते समय, जब वह पढ़ी लिखी अपने समान ही लड़की से शादी करें, इस बात की पूरी जानकारी प्राप्त कर लें कि उसके विचार, ढङ्ग आदि कैसे हैं। उनके तर्ज-ढङ्ग से मिलते हैं। जब दोनों में अधिकाधिक बातों में समानता हो, तब शादी कर लें। इस समय शायद उनके जीवन में वह कटुता, जो देर में शादी करने से प्राय: आ जाती है, न आ सके। जब उनकी शादी हो जाय और उनमें न बने तब एक दूसरे से भिन्न होते हुये भी साथ साथ रहने की आदत डालनी चाहिए, जिससे अन्दरूनी नहीं तो कम से कम बाहर से तो उनका विवाहित-जीवन सफल मालूम पड़े। दुनियाँ के लोग उनके विवाहित जीवन से अपरिचित ही रह सकें। कुछ दम्पति तो इतना भी नहीं कर पाते। उनकी बातें जनता पर प्रकट हो जायँ, यही नहीं होता, पर वह साथ अलग-अलग भी रहने लग कर अपना जीवन का स्वतन्त्रतापूर्वक व्यतीत करने लगते हैं। बिना बाकायदे तलाक़ दिये वहाँ तलाक़ हो जाता है। अन्तर इतना रह जाता है कि वह दोबारा शादी का दिखावा नहीं कर सकते या करते हैं। अलग-अलग कमाई करके स्वतन्त्रतापूर्वक रहते हैं।

युवक तो इससे कुछ बच सकते हैं, कम पढ़ी-लिखी या कम उम्र की लड़की से शादी करके। पर स्त्रियाँ ऐसा कैसे करें। उन्हें ऐसा पति ढूँढ़ने में प्राय: दिक्कत होती है। पतियों में पत्नियों का रुआब-दुआब मानने की आदत नहीं होती और न वह पत्नियों के हुक्म में रहना पसन्द ही कर सकते हैं। ऐसी हालत में उन्हें या तो किसी युवक से शादी करके आदत से भरा पर विवाहित जीवन व्यतीत करने को मजबूर होना पड़ता है या बिल्कुल स्वतन्त्र रह कर एकाकी जीवन व्यतीत करना बिना शादी किये। जो अपने को कुछ झुका सकती है, वह शादी कर लेती है, बाक़ी अविवाहित रहती है।

हमारा ख़याल है कि जिन लाभों का विचार करके युवक युवती ठीक आयु में शादी न करके, आगे के लिये टाल देते हैं और देर में शादी करते हैं, वैवाहिक-जीवन में प्रवेश करने पर, उनको वह स्वप्नवत् प्रतीत होने लगते हैं और गलत साबित होते हैं। यदि उन्हें कोई लाभ मिला भी तो उससे उनको उतना लाभ नहीं होता जितने की वह आशा लगाये होते हैं। प्राय: देर की शादी करके उनको इतने कष्ट होते हैं, उनका विवाहित-जीवन इतना असफल होता है कि वह अपने उस लाभ को कुछ महत्व नहीं देते। हमारा ख्याल है कि देर में शादी करने से मिलने वाला लाभ, उसकी आगामी दिक्कतों से तुलना करने पर अधिक हानिकारक सिद्ध होता है। उचित तो यही जान पड़ता है कि उचित समय पर शादी करने से ही उनका अधिक लाभ होता है। देर में शादी करने से वह थोड़ी सी आफ़त से बच जाते हैं, बच्चों का उत्तर-दायित्व कम रहता है, आदि, पर बाद की आफ़त इससे अधिक सामना पड़ता है। पत्नी के सहयोग से जो लाभ होता है उससे भी तो वह वञ्चित रह जाते हैं। युवक-युवतियों को उचित अवस्था में शादी करने में जो ख़तरा मालूम पड़ता है, वह उतना नहीं होता। जो लाभ वह सोचते हैं, वह लाभ भी नहीं होते। कभी-कभी तो पत्नियाँ पति की भारी सहायता भी करती हैं, और उनकी सफलता का प्रमुख कारण बनती हैं।

अतएव यह एक प्रश्न ऐसा है, जिससे समाज का तथा युवक-युवतियों का घना सम्बन्ध है। इस प्रश्न पर अधिक विचार करने की आवश्यकता है, ताकि दोनों को इसकी वास्तविकता का परिचय हो जावे और दोनों का लाभ हो। वर्तमान परिस्थिति में जहाँ तक हमारा ख्याल है, दोनों का अनहित है। 'देर में शादी' करने के लिये निश्चय करने से पूर्व हम युवकों को इसके सभी पहलुओं पर ख़ूब विचार लेने की राय अवश्य देंगे।

शिक्षा का पुनर्निर्माण

[श्री० गौरीशङ्कर अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०]

सार्वभौम उन्नति के इस युग में जब कि राजनैतिक, सामाजिक और अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं, कदाचित ही किसी विषय पर सभ्य और उत्तरदायी समाज का ध्यान इतना आकृष्ट हो जितना शिक्षा-सुधार और उसके पुनः संगठन पर है। शिक्षा न केवल आत्म-विकास ही के लिए आवश्यक है, वरन् यह आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और सार्वजनिक सभी क्षेत्रों में उन्नति के लिए अनिवार्य है। अशिक्षित और निरक्षर जन-समूह को शिक्षा देना समय की प्रमुख पुकार है और इस विषय में साहसपूर्वक कार्य करने की बड़ी आवश्यकता है। हमारे देश और विशेषकर प्रान्त में शिक्षा की कैसी असन्तोष-जनक और असहनीय दशा है, गत १००-१५० वर्षों के वृहद् काल में इसमें कितनी नगण्य उन्नति हुई है, इस क्षेत्र में हमारा क्या स्थान है और अभी हमें इस ओर समस्त बच्चों को साक्षर बनाने के लिए कितना अधिक मार्ग और तै करना है, इस बारे में हमने गत फ़रवरी के 'चाँद' में उल्लेख किया था और वहाँ केवल बीमारी का निदान ही करके उसके निवारणार्थ प्रयोगों पर अन्यत्र प्रकाश डालने को लिखा था। उन अनेक उपयोगी सुधार, सूचनाएँ और सिफारिशों में प्रथम शिक्षा-क्षेत्र में दोहरा-स्कूल अथवा शिफ्ट-प्रणाली का प्रयोग और दूसरा प्राथमिक शिक्षा का कोर्स बजाय पाँच वर्ष के चार वर्ष कर देना है। प्रथम प्रयोग से गणित के हिसाब से ५० प्रतिशत और द्वितीय से २० प्रतिशत किन्तु व्यवहार में दोनों से आधुनिक शिक्षा-व्यय में जो लगभग ५५ या ६० प्रतिशत बचत होगी उससे कम से कम उतने ही बच्चे बिना अतिरिक्त व्यय के शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। इनके अलावा और भी कई उपाय व प्रयोग हैं, जिनपर यथावकाश प्रकाश डाला जायेगा।

धनाभाव में शिफ्ट प्रणाली के संयोग से केवल चार वर्ष का संक्षिप्त और संशोधित कोर्स ही भारत में भीषण निरक्षरता की समस्या को हल कर सकता है। हमारे देश में कम से कम कुछ प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा में इन्फैन्ट कक्षा नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य कक्षाओं की अपेक्षा इसकी शिक्षा भिन्न और स्पष्ट रखने के लिए यह दर्जा जारी किया गया था। इसका उद्देश्य और ध्येय भले ही प्रशसनीय हो, मगर स्थिति की वास्तविकता और धन के अभाव के कारण यह आवश्यक है कि हमारे जैसे निर्धन देश में और विशेषकर हमारे प्रान्त में जहाँ पर शिक्षा पाने वाले बच्चो की अपेक्षा जिन्हें शिक्षा नहीं मिलती, उनकी संख्या लगभग साढ़े तीन-चार गुनी है, शिक्षा का कोर्स यथासम्भव जितने कम वर्ष का हो उतना ही श्रेयस्कर है। इन्फैन्ट अथवा बाल-कक्षा खत्म होकर उसका नाम कक्षा एक होना चाहिये और शेष चार कक्षाओं का कार्य, कोर्स और कैरीक्यूलम आवश्यकतानुसार संशोधित, परिवर्तित, संक्षिप्त और सरल कर देने के बाद तीन कक्षाओं में विभक्त कर देना चाहिये और प्रत्येक कक्षा में एक वर्ष शिक्षा मिलनी चाहिये। कोर्स में से अनावश्यक विषय निकाल कर सरल कर देने पर योग्यता में किसी प्रकार हानि हुए बिना चार ही वर्ष में प्राथमिक शिक्षा का कोर्स पूर्ण और समाप्त कर देना और स्थायी साक्षरता और शिक्षा दे देना पूर्णतया सम्भव है।

अपने कथन के समर्थन में कुछ विख्यात कमेटियों,

कमीशनों और शिक्षा-विशारदों की, जिन्होंने हाल ही में अपने महत्वपूर्ण और बहुमूल्य निर्णय दिये हैं, सिफारिशें, सूचनाएँ और सम्मतियाँ देना उपयुक्त प्रतीत होता है। भारत के कृषी-सम्बन्धी रायल कमीशन ने हमारे वर्तमान वाइसराय महोदय की अध्यक्षता में अपनी रिपोर्ट (पृष्ठ ५२१) में लिखा है कि ' चिरस्थायी साक्षरता प्राप्ति के लिए कम से कम चार वर्ष आवश्यकीय है।' हारटौग कमेटी (पृष्ठ ४५) ने भी यह उल्लेख किया है कि '...हमारा विचार है कि यह कयास करना मुनासिब है कि कोई बच्चा जिसने औसतन चार वर्ष तक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नहीं की हो, स्थायी रूप से साक्षर नहीं हो सकता।' भारतवर्ष में शिक्षा के नवे पञ्चम-वर्षीय रिव्यू (जिल्द १ पृष्ठ १२३) में इसी विचार की पुष्टि करते हुए लिखा है कि ' यह साधारणतया स्वीकृत है कि जिसने इतनी शिक्षा न पाई हो, जो निरन्तर चार वर्ष पढ़ने से प्राप्त हो, वह बालक चिरस्थाई रूप से शिक्षित नहीं हो सकता।' पुन. प्रयाग-विश्वविद्यालय की विद्वान कमेटी ने भी, जो इस प्रान्त की बेकारी जाँच कमेटी (अर्थात् सप्रू कमेटी) की सिफारिशों पर विचार करने के लिए नियुक्त की गई थी, यही सिफारिश की है। उसने लिखा है कि ' . भारतवर्ष की वर्तमान विषम सामाजिक और आर्थिक दशा में बालक पर स्थायी साक्षरता की मोहर लगाने के लिए चार वर्ष का कोर्स भी पर्याप्त समझा जाता है।' इसी प्रान्त की माध्यमिक शिक्षा की त्रयोदश कॉन्फरेंस ने भी यह सुझाया है कि कक्षा 'अ' और 'ब' तोड़ कर प्राथमिक शिक्षा का काल एक व ' कम करके कोर्स चार कक्षाओं में विभक्त कर दिया जाय। हाल ही में कई स्थानों में अध्यापकों ने इस आशय के प्रस्ताव पास किये है और उन्होंने शिक्षा विभाग से यह निवेदन किया है कि स्कूल-शिक्षा की अवधि एक वर्ष कम करने के लिए यह वर्ष लोअर प्राइमरी भाग में से ले लिया जावे। प्रयाग-विश्वविद्यालय के सुयोग्य प्रोफेसर, लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान और सुविख्यात शिक्षा-विशारद श्री डॉक्टर ताराचन्द जी ने प्राथमिक शिक्षा के पुन. सगठन के विषय में जो अपनी योजना उपस्थित की है, उसमें उन्होंने भी इसी पक्ष का समर्थन किया है कि प्राथमिक शिक्षा की अवधि चार वर्ष होनी चाहिये। कोर्स में कक्षा एक से चार तक होने चाहिये, वर्तमान कक्षा 'अ' और 'ब' खत्म हो जाने चाहिये और कोर्स पुनर्विभक्त कर देना चाहिये। बाबू देवीप्रसाद खत्री ने भी इस प्रान्त की माध्यमिक शिक्षा की पन्द्रहवीं कॉन्फरेंस के, जो अक्टूबर सन् १९३६ ई० में मथुरा में हुई थी, अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए यही कहा है कि 'यदि यह आवश्यक ही है कि उच्च माध्यमिक शिक्षा का कोर्स तीन वर्ष का हो तो यह एक वर्ष प्राथमिक शिक्षा में, जहाँ काफी बरबादी होती है, कम कर दिया जाय और इस क्षति की प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के रूप में सरलता से पूर्ति हो सकती है।' हमारे प्रान्त की सरकार और शिक्षा विभाग भी स्कूलों के मुख्याध्यापकों को प्राथमिक कक्षा तक विद्यार्थियों को वर्ष के मध्य में तरक्की देने का अधिकार तमीज़ो देने से (देखो, एज्यूकेशन कोड आफ यू० पी० अध्याय ४ पैरा १२६) यह स्वीकार करते हैं कि प्राथमिक शिक्षा का कोर्स चार वर्ष में ही नहीं, वरन् तीन वर्ष में भी समाप्त हो सकता है। इसमें वे कक्षा एक से चार तक का चार वर्ष का कोर्स दो वर्ष में समाप्त हो सकने की सम्भावना स्वीकार करते हैं।

केवल यही नहीं, हमारे प्रान्त ही में प्रयाग महिला विद्यापीठ ने अपने सेवा सदन में बड़ी आयु की स्त्रियों को थोड़े से थोड़े समय में शिक्षा देने का जो प्रयोग किया है, वह बहुत ही सफल सिद्ध हुआ है। वहाँ पर साधारण बुद्धि की स्त्रियाँ कक्षा 'अ' से लेकर कक्षा छ तक की सात वर्ष की शिक्षा केवल तीन वर्ष में प्राप्त कर लेती हैं। इसी प्रणाली के अनुसार महिला विद्यापीठ कालिज में भी कम समय में शिक्षा देने का प्रयोग हो रहा है और वहाँ भी कन्याएँ तीसरी कक्षा से दसवीं कक्षा तक का आठ वर्ष का कोर्स पाँच वर्ष में सुगमता से समाप्त कर लेती है।

अन्य देशों के शिक्षा सम्बन्धी इतिहास का अवलोकन करने से पता चलता है कि अनेक देशों में, जो इस समय शिक्षा, सभ्यता और समृद्धि की दृष्टि से उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए हैं, शिक्षा-प्रचार के प्रारम्भिक युग

में अनिवार्य शिक्षा का कोर्स तीन या चार ही वर्ष का रहा है। फिलापाइन द्वीप समूह में, जहाँ की कृषि और बहुत से ग्रामों में विभक्त और छितरी जन-सख्या आदि सम्बन्धी अनेक समस्याएँ हमारी समस्याओं से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं, जब सन् १६०१ ई० में शिक्षा के प्रचार का कार्य समुचित रूप से आरम्भ हुआ उस समय वहाँ पर भी प्राथमिक शिक्षा का कोर्स तीन वर्ष का रखा गया। छः वर्ष बाद जबकि स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ कर दुगनी से भी अधिक हो गई, तब सन् १६०७ ई० में यह कोर्स बढा कर चार वर्ष का कर दिया गया और यह चौथा वर्ष आजीविका उपार्जनार्थ उपयोगी उद्योग-धन्धों की शिक्षा के लिए प्रयुक्त किया गया। जापान में सन् १८६८ ई० में नवीन युग के प्रादुर्भाव होने पर जनता की शिक्षा का कार्य सच्चे तौर से सन् १८७२ ई० से प्रारम्भ हुआ। वहाँ पर भी प्राथमिक शिक्षा की अवधि प्रारम्भ में तीन वर्ष रक्खी गई। चौदह वर्ष में विद्यार्थियों की सख्या में आशातीत वृद्धि होने और उसके कई गुनी बढ जाने पर यह अनिवार्य कोर्स तीन वर्ष से बढ़ा कर सन् १८८६ ई० में चार वर्ष का कर दिया गया। इङ्गलैण्ड में भी द्वितीय सुधार एक्ट पास होने से मताधिकार विस्तृत होकर श्रमजीवी-वर्ग को मिल जाने पर जब सन् १८७२ ई० में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रचलित हुई तब वहाँ पर भी सर्वप्रथम शिक्षा का कोर्स चार वर्ष ही नियत हुआ और कुछ वर्ष तक, जब तक कि शिक्षा-प्राप्ति आयु के कुल बच्चे स्कूलों में शिक्षा न पाने लगे, इस शिक्षा-अवधि में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

उपरोक्त कमीशनों, कमेटियों, रिपोर्टों, प्रस्तावों, सम्मतियों और स्वदेश के अथवा विदेशी प्रयोगों की महत्वपूर्ण और विश्वस्त साक्ष्य के अतिरिक्त भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों और प्रगतिशील रियासतों के शिक्षा-प्रयोगों में भी हमारे सुधार के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। पञ्जाब, मध्य प्रान्त, उत्तर-पश्चिम प्रदेश और छोटा किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली देहली प्रान्त, मय देशभर की राजधानी देहली नगर और मैसूर, कोचीन और ट्रावनकोर की सर्वोन्नत और सम्पन्न रियासतों में भी इस समय प्राथमिक शिक्षा का कोर्स चार वर्ष का है। यहाँ यह कहना भी अयुक्त न होगा कि कोचीन और ट्रावनकोर रियासतों में छात्रों की प्रतिशत सख्या देश भर में सबसे अधिक है और यह देश भर के औसत से लगभग तिगुनी है।

भारत के अन्य प्रान्तों में यद्यपि प्राथमिक शिक्षा की अवधि अभी तक पाँच वर्ष है, परन्तु कुछ में अपनी आवश्यकता के अनुसार स्कूल कोर्स के पुन सङ्गठन पर विचार हो रहा है। बङ्गाल सरकार ने हाल ही में शिक्षा सम्बन्धी कुछ विषयों में जनता की सम्मति और लोकमत आमन्त्रित किया था और उन विषयों में प्राथमिक शिक्षा का कोर्स पाँच वर्ष से घटाकर चार वर्ष कर देना भी सम्मिलित था। हमारे प्रान्त में भी सरकारी अथवा गैर सरकारी हल्कों में इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार हो रहा है। बम्बई सरकार ने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर एक कमेटी नियुक्त की थी, जिसने सन् १६२६ में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी। उसमें उन्होंने इस प्रश्न पर विचार करते हुए लिखा था कि प्राथमिक शिक्षा का कोर्स चार वर्ष में समाप्त कर लेना सम्भव है और सिफारिश की थी कि स्कूलों को इस विषय में प्रयोग करने की आज्ञा दे देनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त इस विषय में उपलब्ध अङ्कों से पता चलता है कि प्राथमिक शिक्षा का कोर्स पाँच वर्ष से घटा कर चार वर्ष कर देने का प्रभाव वहाँ की छात्रों की संख्या पर सदैव बहुत अच्छा रहा है। सन् १६२१ से १६३१ तक दस वर्ष में मद्रास प्रान्त और मैसूर रियासत के छात्रों की सख्या में वृद्धि के आँकड़ों की तुलना करने पर मालूम होता है कि जबकि दस वर्षों में मद्रास में जहाँ कि प्राथमिक शिक्षा का कोर्स पाँच वर्ष है, छात्रों की संख्या में १० प्रतिशत वृद्धि हुई है, यही वृद्धि रियासत मैसूर में, जहाँ इस काल में यह कोर्स पाँच वर्ष से घटा कर चार वर्ष कर दिया गया, २६ प्रतिशत हुई। इसी प्रकार मद्रास और बम्बई की, जहाँ पर कोर्स पाँच वर्ष का है, पञ्जाब और मध्य प्रान्त से जहाँ इस दस वर्ष में (सन् १६२१-३१ में) पाँच वर्ष का कोर्स घटा कर चार वर्ष का कर दिया गया है, तुलना करने से हम इसी प्रज्वलन्त निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इससे ज्ञात होता है कि जब

कि इस समय में बम्बई और मद्रास में साक्षरों की सख्या में क्रम से १४ और १० प्रतिशत वृद्धि हुई, पञ्जाब और मध्य प्रान्त में यही वृद्धि क्रमश: ३७ और ३५ प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि केवल कमेटियों और कमीशनों आदि की रिपोर्ट ही हमारे मत का समर्थन करती हैं, किन्तु यह कई प्रान्तों और रियासतों में प्रचलित है और अन्य इस पर गम्भीरता से विचार कर रहे हैं। स्वयम् उपलब्ध संख्या सामग्री से भी इसका औचित्य और उपयोगिता प्रमाणित होते हैं।

सुविख्यात यू० पी० बेकारी की जाँच कमेटी की विद्वत्तापूर्ण, वजनदार और पूर्ण रूपेण व्यवहारिक सिफारिशों का यथोचित सत्कार करते हुए देश की और मुख्यत अपने प्रान्त की वर्तमान शोचनीय सामाजिक और आर्थिक स्थिति में हम खेद के साथ उक्त कमेटी की इस सिफ़ारिश से सहमत नहीं हैं कि—"प्रत्येक बालक को कम से कम छ: वर्ष तक शिक्षा दी जावे।" उसकी सिफ़ारिश निश्चय हितकर और आदर्शनीय है, परन्तु दुर्भाग्यवश इस असाधारण समय में यह व्यावहारिक और कार्यक्षम नहीं है। इस समय भी जब कि अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की अवधि पाँच वर्ष है, शिक्षा-प्राप्ति आयु वाले बालकों की संख्या कुल जन-सख्या का १४ प्रतिशत मानी जाती है। हमारे शिक्षा-सङ्गठन की वर्तमान अत्यन्त पिछड़ी हुई दशा में यदि कोर्स क़ानून द्वारा एक वर्ष बढ़ा दिया जाय तो हमारे प्रान्त में उन शिक्षा वयस्क बालक और बालिकाओं की संख्या जिनकी शिक्षा का कोई साधन अथवा प्रबन्ध नहीं है, केवल ४८ लाख न रह कर सम्भव है, ६० लाख या इससे भी अधिक हो जाय। शिक्षा-साधन और मैशीन जो इस समय भी अत्यन्त अपर्याप्त और बिगड़ी हुई दशा में हैं, सम्भव है, बिल्कुल टूट जावे और शिक्षा का वेगरूप से विस्तार करने का प्रयत्न असफल रहे और परिणाम-स्वरूप अयोग्यता, साक्षरता में त्रुटि, उन्नति में बाधा, व्यर्थ व्यय और बरबादी आद दूषण और अधिक बढ़ जायँ। इसके अतिरिक्त इसके लिए बहुत अधिक व्यय की आवश्यकता होगी, जो कि सम्भव है कि प्रान्तीय सरकार और स्थानीय सस्थाओं के साधारण साधन इस समय में न जुटा सकें। सर्वोपरि आवश्यकता इस बात की है कि श्रेष्ठतर प्रबन्ध सङ्गठित करके इसके लिए घोर आन्दोलन और लोकमत सञ्चित और शिक्षित किया जाय कि बालकों को स्कूलों में भेजा जाय, उनकी उपस्थिति निरन्तर अच्छी रहे और वे चार वर्ष के कोर्स से पूर्ण लाभ उठावें।

इस सिफारिश के बारे में यह आपत्ति की जा सकती है कि अर्द्ध दिवस और चार वर्ष के अल्पकाल में प्राप्त शिक्षा-ज्ञान के शीघ्र भूल पर पुनः निरक्षर हो जाने का बड़ा भय है। इसके उत्तर में यह कह सकते हैं कि यह विद्यार्थियों की स्कूल छोड़ने के बाद की जीवन-यात्रा की परिस्थिति पर निर्भर है। यदि स्कूल छोड़ने के पश्चात् का वातावरण शिक्षा-ज्ञान को स्थिर रखने के लिए अनुकूल नहीं है तो किसी बालक ने छोटे घण्टों में सरल कैरीक्यूलम और संक्षिप्त कोर्स की चार वर्ष शिक्षा प्राप्त की है या लम्बे घण्टों में कठिन और विस्तृत कोर्स की शिक्षा पाँच वर्ष तक प्राप्त की है, यह प्रत्यक्ष है कि उसके शिक्षा-ज्ञान भूल जाने की सम्भावना एक सी ही रहेगी। अत: इस दुस्सम्भावना को कम या दूर करने का उपाय अथवा साधन वर्तमान कोर्स, घण्टे और पाठ्य क्रम स्थिर रखना नहीं है, किन्तु उसकी वास्तविक औषधि उपयुक्त, सुगम और मन्दा साहित्य और सरल और रोचक पुस्तकों की प्राप्ति और छोटे-छोटे नगरों अथवा ग्रामों में पुस्तकालयों और वाचनालयों आदि साक्षरता कायम रखने वाले साधनों की सहूलियत और सुव्यवस्था है।

प्राथमिक शिक्षा का कोर्स पाँच वर्ष का हो या चार वर्ष का, इस प्रश्न को हमें सिद्धान्त रूप या आदर्शवाद के दृष्टिकोण से नहीं देखना है, वरन् इस पर हमें व्यवहारिक दृष्टि से विचार करना चाहिये। लेखक तो क्या कोई भी इसमें सन्देह नहीं करेगा कि पाँच वर्ष का कोर्स और उसकी भी अपेक्षा छ वर्ष का कोर्स अधिक उत्तम है। वास्तव में साक्षरता-प्राप्त और जीवनोपयोगी पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान और इस प्रकार समाज अथवा जाति के लिए उपयोगी और उत्तम अङ्ग होने के लिए कम से कम छ या सात वर्ष का कोर्स आवश्यक है, यह निर्विवाद है। आदर्श राज्य के विषय में अङ्गरेज़ी

विद्वान और विचारक श्री बरट्रेन रसैल ने लिखा है कि 'प्रत्येक बालक को २१ वर्ष की आयु तक अनिवार्य शिक्षा मिलनी चाहिये।' हमारी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, शास्त्रों और आश्रमों की व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक बालक को २५ वर्ष तक की आयु तक शिक्षा मिलती थी। परन्तु हमारी वर्तमान परिस्थिति में हमारे देश में छ या सात वर्ष का कोर्स भी वर्तमान प्रणाली से शिक्षा देने पर बहुत समय तक केवल एक अव्यावहारिक आदर्श-मात्र रहेगा। अतएव आवश्यकता इस बात का पता लगाने की है कि साक्षरता के विस्तार के लिए साधारण जनता की भलाई की दृष्टि से उनकी कम से कम जरूरतें क्या हैं। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए जो व्यवहारिक और आवश्यक हो वह करना चाहिये। हमें जनता को प्राथमिक शिक्षा देने के क्षेत्र में कितना मार्ग तै करना है और उसके लिए हमारे पास जो थोड़े से और परिमित साधन मौजूद है, उनपर ध्यान देते हुए हमारा विचार है कि आरम्भ में तीन वर्ष शिक्षा देना भी जैसा कि फिलीपाइन्स और जापान आदि द्वीपों में किया गया था और जैसा कि हमारे देश में इस समय भी, कुछ शिक्षा-प्रेमी सज्जन कहीं-कहीं प्राइवेट नागरिक और ग्राम्य स्कूलों में प्रयोग-स्वरूप कर रहे हैं, पर्याप्त है। परन्तु क्योंकि पाँच और तीन वर्ष में बड़ा अन्तर है, यह देश भर में बड़े पैमाने पर कहीं प्रयुक्त भी नहीं हुआ है और यह बहुत विवाद-ग्रस्त विषय है, इसलिए शिक्षा-विस्तार की हित-दृष्टि से कोर्स शीघ्र चार साल का हो जाना उपयुक्त प्रतीत होता है। निरक्षरता निवारण के उद्देश्य की पूर्ति हो जाने पर हम पुनः पाँच वर्ष या इससे भी बेहतर और अधिक छ या सात वर्ष का कोर्स कर सकते हैं, परन्तु इस समय कोर्स चार वर्ष का कर देना आवश्यक है।

गान

[श्री० सुबोध अग्रवाल]

पीड़ा जीवन बन्धन मे !
इतनी असीम इच्छाएँ भी
क्या रह सकती मन मे ?

नित-नित अभाव का क्रन्दन
मानव को कितना गुरुतर,
पाकर खोने के दुख की
तो माप नही जीवन मे !

स्वच्छन्द सरल चेतन का
वसुधा पर घोर पतन ही,
उसका ऐश्वर्य मिटाता
लाकर इस सूनेपन मे।

पापो की ज्वाला प्रतिपल
जग के अभिशाप बढ़ाते,
आशा दिखती बस केवल
तेरे ही अभिनन्दन मे।
पीड़ा जीवन-बन्धन मे।

सह-शिक्षा का विरोध क्यों ?

[श्री० रामस्वरूप व्यास]

जब से भारत में स्त्री-शिक्षा का प्रश्न उठा, उसी समय से हमारे यहाँ सह-शिक्षा का भी प्रश्न किसी न किसी रूप में उपस्थित हो गया था। सबसे प्रथम इस प्रश्न का एक व्यावहारिक पहलू था, वह यह कि यदि लड़के-लड़कियों के लिए अलग स्कूल खोले जायँगे तो शिक्षा का खर्च इतना बढ़ जायगा कि सँभाले न सँभल सकेगा, और इसी कारण शिक्षा-शास्त्रियों ने कहीं-कहीं सह शिक्षा को स्वीकार किया।

परन्तु अब सह-शिक्षा का प्रश्न जिस दृष्टिकोण से देखा जाता है, वह यह है कि क्या स्त्री-पुरुषों का सामाजिक जीवन में स्वतन्त्रतापूर्वक मिलना ठीक होगा? क्या उनके विकास के लिए इसके द्वारा ठीक मार्ग मिल सकेगा? परन्तु इस प्रश्न को भी देखने के अनेक दृष्टिकोण हैं। कोई तो उन्हें व्यावहारिक दृष्टि से देखता है और कोई धर्म और नैतिकता की दृष्टि से।

कुछ बातें जो सह-शिक्षा के विरुद्ध कही जाती हैं, वह हमारी परम्परा की धर्म-नीति के कारण कही जाती हैं। लोग कहते हैं कि भारत धर्मप्रधान देश है और हमारी संस्कृति में स्त्री की पवित्रता का भारी स्थान है। इसलिए स्वतन्त्र रूप से स्त्री-पुरुष के सम्पर्क में आने लगी तो धम और नीति रसातल को चली जायगी। दूसरे कुछ लोगों का विरोध व्यावहारिक बातों पर स्थित है, वह कहते हैं कि लड़कियाँ इस प्रकार पढ़-लिख कर अपनी पाश्चात्य बहिनों के समान हो जायँगी। वह मौज-शौक में लिप्त रहेंगी और घर के काम काज की कुछ परवाह न करेंगी। इस प्रकार सह-शिक्षा के तीन विरोधी हुये—धर्म, नीति, घर का काम।

अब देखें कि इस विरोध में कितनी सचाई है। परन्तु इसके लिये आवश्यकता है कि हम निष्पक्ष होकर इन प्रश्नों को समझें। साधारणत: सब ही जगह धर्म एक ऐसा विषय है, जिसके सम्बन्ध में तर्क करने को लोग बुरा समझते है। वह कहते हैं कि धर्म की नींव विश्वास पर है। इसे तर्क से कोई सम्बन्ध नहीं और धर्म के मूल सिद्धान्त ईश्वर, पाप आदि केवल विश्वास पर कायम हैं। इनका कोई स्वतन्त्र तथा वाह्य रूप नहीं है। जब तक मनुष्य ईश्वर व पाप में विश्वास रखता है, तब तक ही यह दोनों वस्तुएँ उसके लिये रहती हैं और जिस क्षण भी उसने इन पर विश्वास करना छोड़ दिया, इन दोनों का कोई अस्तित्व नहीं रहता। अब से पहले जो 'नास्तिक' हुआ करते थे, उनको समाज का प्रभाव या जन-बल कुछ न करने देता था, परन्तु अब तो पृथ्वी के एक बड़े भूखण्ड ने 'नास्तिक' होना स्वीकार कर ईश्वर व धर्म को देश-निकाला दे दिया है। यदि ईश्वर वास्तव में कुछ वस्तु होता तो इतनी भारी जन-संख्या उसे मानने से कैसे इनकार करती। इतनी भारी जनसंख्या किसी भी दूसरी वाह्य वस्तु से इनकार नहीं करती। इसलिये प्रश्न होता है कि ईश्वर मनुष्य के बाहर की कोई वस्तु नहीं और इस प्रकार जिन धर्मों ने व्यक्ति रूप ईश्वर की रचना की है, उनकी सत्ता निराधार है। इसीलिये ऐसे धर्म के निर्देश सर्वमान्य नहीं हो सकते। अधिक से अधिक धर्म के विषय में जो कहा जा सकता है, वह यही कि यह मनुष्य की व्यक्तिगत अनुभूति हो सकता है, परन्तु इस व्यक्तिगत अनुभव की सचाई दूसरों के लिए मान्य नहीं हो सकती। जिन लोगों ने धर्म का इतिहास पढ़ा होगा, उन्हें पता होगा कि किस प्रकार जादू-टोने से आरम्भ होकर धर्म का प्रचार हुआ और उसमें इसके कुछ अवशेष बाकी हैं। और किस प्रकार मूर्ति-पूजा से शुरू होकर व्यक्तिगत

ईश्वर का भाव पैदा हुआ और अब व्यक्तिगत ईश्वर के भाव का भी लोप होता जा रहा है। अब जो लोग ईश्वर को मानते भी हैं, वह उसे शक्ति के रूप में देखते हैं, परन्तु इस शक्ति का हमारे जीवन के व्यवहारों के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं। लेखक यहाँ दर्शन-शास्त्र या तत्वज्ञान को नहीं ले रहा है, क्योंकि यह ज्ञान साधारण जनता के लिए नहीं है और न व्यावहारिक दृष्टि से इस ज्ञान का हमारे जीवन पर अधिक प्रभाव पड़ा है। साधारणत धर्म वही है, जिसे ६० प्रति सैकड़ा जनता केवल ऊपर से मानती है। ऐसा धर्म तो ईश्वर, पाप, प्रायश्चित्त तथा पूजा-पाठ का धर्म है। इस प्रकार के धर्म का सुशिक्षित व समझदार जनता के जीवन में कोई स्थान नहीं।

तब धर्म के नाम पर कही गई अनेक प्रकार की बातें सर्वमान्य नहीं हो सकतीं और अनेक बार तो वह जीवन की प्रगति के मार्ग में रोड़े बन जाती हैं। और इसी धर्म का एक स्वरूप हमें नैतिकता में मिलता है। इसी प्रकार जितनी बाते धर्म के विषय में कही जा चुकी हैं, वही हमारी नैतिकता पर लागू होती हैं। केवल अन्तर इतना ही है कि नैतिकता का व्यावहारिक जीवन के साथ घना सम्बन्ध है, और जिस प्रकार धर्म में ब्राह्मण और पुजारियों के स्वार्थ घुस आए हैं, उसी प्रकार नैतिक जीवन में पुरुषों के।

अब जहाँ तक नीति या धर्म का सह-शिक्षा के साथ सम्बन्ध है, वह इतना ही कि उन लोगों का विचार है कि यदि स्त्री-पुरुष स्वतन्त्रता से सम्पर्क में आये तो दुराचार बढ़ेगा। परन्तु लेखक पाठकों से पूछना चाहता है कि दुराचार की व्याख्या क्या है? क्या केवल विवाह के थोड़े से मन्त्र एक पाप को पुण्य में परिवर्तित कर देने की शक्ति रखते हैं। और या यह धर्म और नीति के नाम पर कोरा ढोंग है और विवाह का अर्थ केवल इतना ही है कि वह एक स्त्री पर एक पुरुष का एकाधिपत्य कायम कर दे। यह व्याख्या शायद पाठकों को कड़ी लगे, परन्तु यदि वह गहनता के साथ विचारेंगे तो इसके सत्य को वह कभी अस्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए हमारी आजकल की नीति प्रबल वर्ग की साम्पत्याधिकार की नीति हुई।

तब सह-शिक्षा का प्रश्न धर्म और नीति के विरुद्ध न होकर केवल पुरुष के स्वार्थों के विरुद्ध है। तब ही तो कुछ लोग कहते हैं कि सह-शिक्षा समाज के लिये विष का घूँट होगी। स्त्री शिक्षा पाकर आसानी से पुरुष के इस एकाधिपत्य को न मान लेगी और इसी कारण हम भुलावा देने के लिये धर्म और नीति की दुहाई देते हैं। यह कहना कि शिक्षा पाकर और पुरुषों के साथ स्वतन्त्र रूप से सम्पर्क में आकर स्त्री का पतन हो जायगा, यह तो केवल मन की भावना है, तथ्य नहो।

हमारे अन्दर ही एक समय विधवा-विवाह धर्म और नीति के विरुद्ध समझा जाता था, परन्तु अब तो ऐसा नहीं है। इसलिये स्त्री के आचरण नापने का यह मापदण्ड नहीं हो सकता कि वह एक पुरुष की ताबेदारी बिना किसी आनाकानी के कबूल करले तो ठीक है, नहीं तो उससे कहा जाय कि तू भ्रष्टा है, कलङ्किनी है, पापिनी है। आजकल का सम्बन्ध कोई स्वय-सिद्ध सत्य नहीं है, केवल व्यवहार के कारण ही हम उसे ऐसा मानने लगे हैं।

अक्सर हम लोग इस प्रकार की बातों में पाश्चात्य देशों की स्त्रियों का उदाहरण देकर कहा करते हैं कि वहाँ स्वतन्त्र सम्पर्क के कारण अनियमितता बहुत बढ़ गई है। वहाँ की स्त्रियाँ आये-दिन अपने पति को ज़रा सी बात पर तलाक दे देती हैं। परन्तु जहाँ हम स्त्रियों की तो ज़रा सी स्वतन्त्रता देख कर बिदक पड़ते है, दूसरी ओर अपने देश में नहीं देखते कि पुरुष किस प्रकार की स्वेच्छाचारिता का उपभोग कर रहा है। और जिस बात की छूट हम पुरुषों को देने को तैयार हो जाते हैं उसी प्रकार की छूट हम स्त्रियों को नहीं देना चाहते। परन्तु इस बात का अर्थ क्या? यही कि यदि स्त्री पुरुषों को स्वाभाविक छूट दी जाय तो वह एक दूसरे के साथ अधिक नहीं रहेंगे। और यदि यही स्त्री पुरुष का स्वभाव है तो इसके लिये तो उसके बनाने वाले की निन्दा (यदि यह करनी चाहिये तो) करनी चाहिये कि उसने मनुष्य का स्वभाव ऐसा क्यों बनाया। और यह भी कहाँ अधिक

सम्भव है कि हमारा मापदण्ड ही बिलकुल गलत हो। और यदि मनुष्य का स्वभाव सदियों के बन्धन के बाद भी वैसा ही रहा तब इस ओर प्रयत्न कर मनुष्य के स्वभाव को बदलने का प्रयास भी व्यर्थ है। इस पर सम्भवतः कुछ लोग कहें कि तो क्या फिर मनुष्य पशुओं के समान हो जाय? परन्तु शायद उन्हें पता नहीं कि अब भी मनुष्य पशुओं से गिरा (?) हुआ ही है। पशुओं के लिए समय होता है, परन्तु विवाहित जीवन में तो निरीह स्त्री की अवस्था पशु से भी गई बीती है।

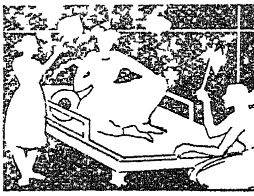
वास्तव में उपरोक्त दृष्टि से तो सह-शिक्षा का विवेचन करना आवश्यक भी न था, क्योंकि इसका सह-शिक्षा के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह तो केवल इसलिए ही करना पड़ा कि अनेक नासमझ लोग धर्म और नीति की दुहाई देकर अपने और दूसरे को धोखे में डालते हैं। सह-शिक्षा का सबसे भारी लाभ तो यह होगा कि इसके द्वारा भारी से भारी संख्या में स्त्रियाँ शिक्षा से लाभ उठा सकेंगी और पुरुषों के अधिक निकट आकर उन्हें अच्छी तरह समझने में समर्थ हो सकेंगी। आजकल सामाजिक जीवन में स्त्री-पुरुष एक दूसरे के लिए अनजाने प्रदेश के समान है। उन्हे एक दूसरे को समझने का मौका ही नहीं मिलता और इस कारण वह एक दूसरे के प्रति अनेक भूलें करते हैं। यदि वह एक दूसरे को समझ सकें, मानसिक आदान-प्रदान हो सके, तो हमारा सामाजिक जीवन अधिक स्वास्थ्यकर बन सकेगा।

हमारा एक दृष्टिकोण कि स्त्री 'भोग्य-वस्तु' है, वह भी सह-शिक्षा के कारण जा सकेगा। यदि वास्तव में कोई नैतिक पतन हो सकता है तो वह पुरुष का स्त्री को भोग्य-वस्तु की दृष्टि से देखना है और यह दृष्टिकोण आजकल हमारे ९५ प्रतिशत पुरुषों का होगा। हमें इसे मिटाना होगा। परन्तु यह तब तक नहीं मिट सकता जब तक स्त्री-पुरुषों में सहचर्य की भावना जागृत न होगी, मानसिक आदान-प्रदान न होगा। इसके लिए स्त्री-पुरुष की शिक्षा एक दूसरे के सम्पर्क में आकर होनी चाहिए, जिससे वह एक दूसरे के स्वभाव को भली प्रकार समझ सकें। अभी तक पुरुषों का स्त्रियों के साथ मुख्यत शारीरिक सम्बन्ध ही रहा, इसलिए हम उन्हें भोग्य-वस्तु के रूप में देखने के आदी हो गए है, परन्तु जब उनका भी मानसिक विकास होगा, तब पुरुष उनसे मानसिक सम्बन्ध भी स्थापित कर सकेगा। कम से कम शिक्षित पुरुषों में तो स्त्रियों के साथ मानसिक आदान-प्रदान की इच्छा उतनी भारी होती है जितनी कि साधारण पुरुषों में शरीर के सम्बन्ध की इच्छा। परन्तु हम अपने परम्परा के विचारों के कारण इच्छा का गला घोंट रहे हैं।

अब प्रश्न केवल व्यावहारिक रह गया। लोग कहते हैं कि स्त्री के मातृत्व का क्या होगा, बच्चों का क्या होगा, घर-गृहस्थी का क्या होगा। परन्तु इस विषय में इतना ही कहना बस होगा कि मनुष्य सदा से ही इसी प्रकार रहना नहीं आया। पहले वह जङ्गलों में रहता, फिर चरवाहा बना, फिर उसने खेती की, नगर बसाए, सभ्यता को जन्म दिया। सदा अपनी आवश्यकतानुसार नई-नई संस्थाओं को जन्म दिया। जिस मनुष्य ने इतनी अवस्थाओं में अपने अनुकूल साधन पैदा कर लिए वह क्या आगे न कर सकेगा? और न हमारी आधुनिक अवस्था ही मनुष्य के विकास की अन्तिम सीढ़ी है। ज्यों-ज्यों मनुष्य के विचार बदलेंगे, उसका वातावरण और सामाजिक व्यवस्था भी बदलती जायगी। यह कहना कि एक पतन है, दूसरा प्रगति है, कठिन होगा। परन्तु मनुष्य सदा एक स्थान पर तो नहीं रह सकता, उसे आगे तो बढ़ना ही होगा।

इसलिए सह शिक्षा के विरोध में जो आवाज उठाते हैं, वह मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षाओं के तथा प्रगति के विरोधी है और धर्म तथा नीति की दुहाई देकर केवल अपने स्वार्थों की रक्षा करना चाहते हैं। परन्तु उन्हें पता नहीं कि मनुष्य सदा एकसा नहीं रहा और न रहेगा ही। उसे आगे बढ़ना ही होगा, क्योंकि आगे बढ़ना ही मनुष्य-जीवन का ध्येय है।

"Let us act that each to-morrow,
Finds us farther than to day."



एक अध्याय

कहानी

[श्री० 'पहाड़ी']

वह साँवली थी। लावण्य से भरी आँखों में मस्ती थी, जवानी थी खूब, गजब थीं वह आँखे—कागज़ी बादाम सी, उम्र होगी उन्नीस-बीस, नाक पर नथ थी, पतली बारीक नकली मोती लगी। वह माँ थी, बच्चा साथ था। काली डोरियों वाली धोती, गुलाबी कमीज़, हाथ पाँव के नाखून चिट्टे लाल और थी हथेलियों पर लाल लाल मेंहदी की डोरियाँ। रङ्ग में जीवन भीगा लगता, वहाँ एक कोमलता छुपी मुसुकराती थी—बार-बार। उस सजीवता के बीच भारी थका, उचाट दिल ज़रा ठहर टिका रहना चाहता था। किन्तु वह परे थी, निकट और समीपता से अलग, हटी-हटी—दूर।

रेल का सफर, तीसरा दर्जा, कोने की बेंच पर बैठा था। चुपचाप उस पुस्तक को बार-बार पढ़ता, जो खाली वक्त काट लेने को साध्य मान साथ ले आया था। लेकिन वास्तव बात न लगी। पुस्तक की लाइनों में अपने को नहीं सौंप सका। सफर से मन झगड़-झगड़ रहा था। एक छी-छी-छी मन में उठती, 'कम्पार्टमेण्ट' में फैले बिखरे केले के छिलके, मूँगफली का कूड़ा कोई लापरवाह मुसाफिर फैला कर छोड़ गया था। यह सब मैल बन दिल में जम जाता। भारी थकान के बाद अपनी इस बेबसी पर बार-बार झुँझलाहट उठती। तरस आता। कहीं कोई मनबुझाव पास न था! बात मन में घूम-फिर घोंसला बना रह जाती। वहीं मिट जाती। कहीं कोई गुन-गुन बाकी न थी। कहीं जिन्दगी में एक अड़चन पड़ी लगती, वह किताब के पन्नों में रह नहीं जाती, तब किताब एक ओर रख दी, मन ही मन अपनी किसी अज्ञात भावना में समाने लगा। और कहीं पसरने भला कुछ जगह थी।

तब ही वह आई। चुपचाप सामने बैठ गई। भक-भक-भक इञ्जन इधर-उधर दौड़-दौड़ रहे थे। एक गम्भीर अनभूति में डूबी रेल की सीटी मिलती। धूप से तपे डिब्बे की गरमी दिमाग में पैठ करती—भिन-भिन-भिन। 'प्लेटफार्म' कुछ धुँधला लगता। बिलकुल सामने बर्थ पर बैठी थी वह। उसने मुझे देखा, मैंने भी उसे। दोनों की आँखें टकराईं। उसकी आँखें मुसुकराती लगी। फिर ओठों पर हँसी आई। और आँखें उसने अपने स्वामी की ओर फैला दी। देखा मैंने उसके स्वामी को। उस बच्चे को—सुन्दर खिलौना सा। पिता की गोदी में था। माँ ने सजाया था। बच्चा मचल मचल रहा था। स्वामी और बच्चे के बीच जगह थी, वह कितनी प्यारी लगती थी—मूक ही। हँसी मात्र प्राप्त थी। वहीं तक वह 'देन' लगी। आगे का सवाल.. .. ..।

गाड़ी ने सीटी दी, चली, हलका धक्का लगा। वह एक ओर झुकी, फिर अपने को पकड़ लिया। गाड़ी से बाहर चौड़ी-चौड़ी लाइनों के जाल के अलावा और कुछ नहीं दीखता। खटर-खटर रेल की आवाज़ होती। इधर-उधर दूर सब वस्तुएँ पीछे-पीछे छूट जातीं। कुछ कोई अन्त न मिलता। आँखें मूँदे दिल के सुनसान में कोई तत्व दुबका मिलता। उसकी सुलझन फिक्र के परे थी।

अब बच्चा नज़दीक आया, आँखें उसके स्पर्श से खुल गईं। उसने किताबों की आड़ में पड़ा नारङ्गी का दाना उठाया। खड़े रह, कुछ देर उस दाने को हाथ में लेकर अपनी सम्मति जाहिर की। फिर मेरी ओर देखा और कुछ देर बाद माँ के पास पहुँच गया। माँ को दाना सौंपते बोला—अम्मी।

युवती ने दाना ले लिया। चुपचाप कुछ देर लिये रही। आँखें उठा, मेरी ओर कुतूहल से देखा। दाना एक ओर रख दिया। फिर बच्चे ने दाना उठाया, नोचना चाहा। हार कर देता बोला—अम्मी।

वह मुझे एक बार देख, कृतज्ञता भरी आँखों को झुका चुपके मुसकराई। दाना छील डाला। छिलके फेंक दिये। बच्चे को गोदी में लिया। फाँकों का बीज निकाल-निकाल बच्चे को खिलाती रही। बच्चा—नारङ्गी, वह और मैं। एक दूसरे के नज़दीक आ लगे। माँ का बच्चा, बच्चा नारङ्गी लाया, वह नारङ्गी की मार्फ़त.. ?

फिर बच्चा मचल उठा। अम्मी के हाथ से फाँकें छीन लीं! मीन-मीन कर खाने लगा। खाता-खाता मेरे पास आया। नज़दीक, समीप.. । 'पाइन्ट' के घुटनों पर हथेलियाँ टिका मुझ 'जन्तु' को घूरने लगा। उँगलियों ने निशान बनाए, जो धब्बे रह गए।

वह चौंकती उठी, बोली—हैं ? हैं ?? ज़रा सोचती आगे बढ़ी। फिर रुकी। हड़बड़ी में उसके पाँव से मेरे पाँव दब गए। मेरी आँखें ऊपर उठीं। वह तो एकटक देखती, कहती लगी—माफ़ी देना। बच्चे को ले जाकर शरमाई, सकुचाई रही। फिर आँखें ऊपर उठाईं। एक हँसी चेहरे पर दौड़ी। गम्भीर परिस्थितियाँ कुछ, कहीं न थीं। बच्चा चुपचाप उस गोदी में जगह पाए बैठा था।

बच्चा कुछ सोच उठा, बोला—बाजा।

वह उठी, बाजा दे दिया।

बाजा लेकर बच्चे ने बजाना चाहा, न बजा सका। अम्मी को सौंप दिया।

अम्मी ने बाजा लिया, मुँह से लगाया। बजाने लगी।

बच्चे ने बाजा लिया, फिर कोशिश की, बेकार। अम्मी को दिया। अम्मी ने एक ओर रख दिया। बजाया नहीं।

बच्चे ने फिर कोशिश की—लाचार, बाजा न बजा, नहीं बजा!

बच्चे ने अम्मी की ओर देखा। समझाने की कोशिश की, बजा दो। मेरे पास आया, कुछ देर खड़ा रहा। फिर बाजा मुझे दे दिया। मैंने बाजा लिया। अनजान बना चुपचाप बजाने लगा। सामने देखा, वह खूब मुसकरा रही थी। कोई क्यों सुझाता लगा—ओ 'जूठा' किसका। नहीं.. ? बच्चे का बाजा। वही बाजा बजाया! खूब बजाया। बड़ी देर तक। बच्चा ख़ुश हो सीट पर खड़ा हुआ था।

कोई स्टेशन था। ट्रेन खड़ी हुई। खिलौने वाला पास आया। बच्चे ने उसे देख हाथ पसारा—हम लेंगे। एक खिलौना अच्छा सा ले लिया। नीचे उतर कर ख़ुशी-ख़ुशी अम्मी के पास वह पहुँचा।

अम्मी बोली—नहीं, लौटाल दे।

बच्चा चुपचाप खिलौने को ख़ूब पकड़े हिफ़ाज़त करता रहा।

"दे दे ।"

गाड़ी चल दी। अठन्नी मैं दे चुका था। उसने अब अपने आँचल की गाँठ खोली। पैसे गिने। बच्चे को दे बोली—दे आ।

मैंने बच्चे को इशारे से मना किया।

बच्चा लौट पड़ा।

वह फिर बोली—जा।

मैंने फिर 'ना' बच्चे को समझाया। उलझन में बच्चे ने सब के सब पैसे अम्मी के आँचल में फेंक दिए। कुछ पैसे फ़र्श पर गिर पड़े। कुछ मैंने उठाए, कुछ उसने और कुछ बच्चे ने। सब बच्चे को मैंने दिए। 'उसने' गिने, इधर-उधर देखा। एक कोने में इकन्नी एक पड़ी रही, मैंने पाई। अब उसने आँचल की गाँठ में फिर पैसे बाँध लिये।

और गाड़ी के भीतर कई मुसाफ़िर अलग-अलग, दूर-दूर, जीवन के खिसकते दिनों में किसी से कोई मतलब नहीं। और यह युवती, वह बच्चा। वह आँखें मूँदे थी। लाज-शरम हटती जा रही थी। परायापन छूट रहा था। बच्चा किताब की तस्वीर देखता-देखता पन्ना पलटता रहा। एक तस्वीर पर रुक बोला—अम्मी। उतर कर अम्मी के पास पहुँचा। अम्मी को जगाया। तस्वीर दिखा बोला—अम्मी। वह हँसी। विलायती मेम—घाँघरा पहिने। अम्मी ऐसा कपड़ा न पहनी हो,

न सही। अम्मी सी सूरत थी। बच्चा फिर बोला—अम्मी।

वह हँसी बोली—चुप।

बच्चे ने मुझे देखा। पहचान कर वह कैसे हार मान ले। वह मेम ही है अम्मी जैसी! गलत साबित बात न थी। गवाह मुझे बनाना चाहता था। उङ्गली रख ज़ोर से बोला—अम्मी।

वह बोली—चुप। कान में मन्त्र फूँक दिया। बच्चा उत्साह से अब बोला—चाची? चाची??

यह इतनी भावुकता बिसारी जा सकती, तब। चाची—कुड़कुड़ाहट दिल में हुई, 'कौन' सुनेगी यह शब्द। एक रेखा मेरे जीवन के चारों ओर खींच, पकड़, बाँध—यह ठिकाना है, रहने को। इतना ज्ञान, यह अक्ल और समझ। कुछ भी जब दुरूह नहीं। और चाची? उत्साह में तस्वीर मेरे आगे ला बच्चा बोला—चाची। कितनी प्यारी आवाज़। सुन्दर शब्द दिल में पसरता लगा। जी करता, बच्चे को चूम लूँ। यह सिखलाने वाला गुरू। उसके प्रति कहीं कोई मोह नहीं था। लेकिन·· ··मैंने बच्चे को मना करते समझाया, यह सब झूठ है। अवाक् बच्चे ने अम्मी की ओर देखा। अम्मी ने अपनी बात ठीक बतलाने सिर हिलाया। बच्चा उलझन में बोला—चाची? अम्मी??

अब उसने बच्चे को गोदी में लिया। कान में कुछ कहा। बच्चा चुप। फिर कुछ कहा। बच्चे ने एक बार मुझे देखा, फिर चुप। अबके बच्चे ने कहा हो—चाचा · अम्मी।

'धुत्' कह उसने बच्चे के मुसकुराते हल्की चपत मारी।

स्वामी सो गए थे। अम्मी बच्चे को आगे कर परदेशी से झगड़ रही थी। इतनी कृतज्ञता, सरलता, यह व्यवहार। क्या······। नहीं घर में गृहस्थी के बीच बच्चे के कई चाचा होंगे। इस अजनबी के लिए वहाँ कोई जगह थोड़े ही होगी।

गाड़ी चलती, चलती, चलती। उसे रुकना नहीं था। किन्तु मैं जीवन में क्यों ठहर जाना चाहता। वह बच्चा, अम्मी और सब अनजान लोग। कोई जान-पहचान नहीं। कभी मिलें या न मिलें। एक दूसरे से बिलकुल अनभिज्ञ। वह क्यों उनके नज़दीक पहुँच रहा था। नहीं, किताब खोल ली। एक चेप्टर पढ़ा। फीका, कहीं तथ्य न मिला। अब पहचान 'एक' लगी। अपना विश्वास सही था। बच्चा पाया, उसके पीछे अम्मी और अम्मी के पीछे दुबली छुपी एक धुँधली रूप-रेखा—चाची। वह अपना मन और मान रख लेने बच्चा आगे कर देता है। सिर्फ आँखों में जीवन है। उसी के मार्फत कुछ कहती है। और ज्यादह कहीं खुल कर आना उसे उचित नहीं। अपना कर्तव्य वह जानती निभा लेगी। कितनी सहज और सरल वह लगती, लेकिन गूढ़। अपना सगा बना डाला। ज्यादह अब उलझाना उसे न था। ज़रूरत के बाहर न आना था। वह मामूली नारी, उसके प्रति कोई अहसान उठता, उसकी अवहेलना नहीं करता। उसका वह सुलझा, सीधा सौन्दर्य, कहीं भी मैला न लगता। कुछ उससे द्वेषी न थी। उससे कह लेने दिल करता था—तुम इसी तरह चलना। दिनों को सिसकना ही है। तुम स्वामी के पास रहना। कैसी अच्छी जगह है! और यह प्यारा बच्चा, जी करता है खूब प्यार इसे कर लूँ। लेकिन . । प्यार कर लेने का फिलहाल मौका नहीं। उसकी अवज्ञा, ठीक और सही लगती है। मैं निरस हूँ। उत्साह की चाहना मुझे नहीं है। तुम्हारी यह सरसता, प्रकृति से तुमने यह सब पाया। जीवन-गति के बीच बच्चा खेल रहा है। खेल लेने दो उसे। बाधा ठीक न होगी।

बच्चा का नया शब्द। वह पुकारता—चाचा, चाचा।

जीवन में एक गुदगुदी महसूस हुई। उसी में डूबने लगा। अपने में सिमट-सिमट, फिर भी कहीं खाली जगह अपने को सँवार लेने नहीं मिली। डर की सम्भावना? कोई कल्पना अपने में डरी-डरी छुपती लगी। उस डर को कोई पिरो लेने वाला साथी न था। भय और शङ्का में वह गुदगुदी कुदकती-कुदकती विलीन हो गई। एक चिट्टी नारी-रेखा, उदय हो, छुप जाती थी। भारी फर्क फिर मिलता। सन्तोष प्राप्त न था। हल्ला दिल में होता—यह कौन?



मुग्धा

मुग्धा के ही रहो पास अब, उपवन का तज ध्यान !
तितली कोमल कर को ही अब, समझ मञ्ज उद्यान !!—'मँस्त'

अपने में सगा 'कोई' होता। अपने में वह रहता। अकेला रहना ठीक नहीं लगता है।

"ओ　।"—बच्चा झकोरते बोला।

उसकी अम्मी ने कभी न जाने, यह खाना पत्तों में क्यों बिछा दिया था। इतना खाना, अभी-अभी खाकर फिर क्या खाना पड़ेगा? मैंने आश्चर्य में उस ओर देखा। वह आँखें उठीं, उठी रहीं—खा लो। फिर झुक गईं, नम्रता से—खा ही लो, परहेज का सवाल न उठाओ। पहचान के भीतर हमें मान लो। लेकिन यह खाना, सफ़र, खाना　। यह घर का बनाया खाना। कब 'कहीं' मिलता था। आज खाकर अब कोई भूख मिट जावेगी। यह जो परोस गई, कहती—खा तू।

बच्चा पानी का गिलास थामे था। पानी लिया। अपनी ही उपेक्षा कर लेने सामर्थ्य न थी।

यह साक आलू का

छोटी-छोटी कचौड़ियाँ . .

गाजर का अचार .　.

वह अनमनी बैठी थी। बार-बार देखती, कुछ चूक तो नहीं गया। कुछ कम हुआ, अपने इस मोह से छुटकारा छुटकारा। और—नहीं-नहीं-नहीं। आवाज़ से नहीं, हाथ का इशारा, हाथ ठहर गया, कुछ ज़रा। नहीं-नहीं, हाथ ने फिर सुझाया। हाथ कचौड़ी लिए का लिए ही रहा। आँखों से आँखों को छू सुझाया—एक और।

बात ठुकरा दो। लेकिन .　। मना नहीं फिर किया। चुपचाप कचौड़ी खाने लगा। यह अनोखा व्यवहार . .

बच्चा पास आ कहता—चाचा।

बच्चे को गोदी में लिया। उसकी आँखों का भोलापन—एक अज्ञानता। कहने का ढङ्ग। बच्चा पास लगा। उसे नज़दीक पाया। अपने से चिपटता वह लगा। वह देख-देख मुसुकराती थी। बच्चा खड़ा बाहर देख रहा था। दूर-दूर गड़रिए अपने ढोरों का चरा रहे थे। कहीं-कहीं झाड़ियाँ, ढाँक का जङ्गल। आगे पेड़ों की कतार, खेतों में गेहूँ की फसल खड़ी तयार। गाँव की रमणियाँ सिर पर गट्ठे ले जातीं। जीवन का चल चित्र। सारी विभिन्नता बिखरी-बिखरी, फैली-फैली...　। इधर हम—मैं चुप, बच्चा कुतूहल में डूबा, वह जड़वत् अपने में ही। बाहर एक भारी हल्ला। भीतर एक पीड़ा। पीड़ा और हल्ले के बीच एक धीमी आहट। नारी का आँचल उस पीड़ा को सहलाता। वह पसरती-पसरती। धीमी एक और आवाज—चाची। चुप चुप-चुप। गुम-सुम वह चाची कहीं परोक्ष में छुपी। बाहर गाँव के पास तालाब के किनारे बच्चे खेलते, पानी में बतख तैरते। वह एक ओर हटे भैंसें—सारा शरीर छुपा, सिर बाहर निकाले। बढ़-कर एक बगुला अपनी अकेली टाँग पर खड़ा सिखलाता दुनिया को—धोखा-वाखा-धोखा। गुमटी के आगे खड़ा पहरे वाला फाटक बन्द करते सुझाता—ठहरा, खतरा है। गाड़ी मुड़ती आगे बढ़ती। झोपड़ियों के कई गाँव। बीच में सिमट की बनी ऊँची इमारतें। झोपड़ी वालों के ऊपर इमारत वाला एक दम्भ एक घमण्ड, उसे कुचल अपने सुख का स्वप्न देखना। अपने लिए किसी और की परवाह नहीं। वह झड़बेरी के नीचे—एक कब्र। बिलकुल एकान्त, सूना कोना। मनुष्यता की श्रेणियाँ। श्रेणी के ऊपर कुछ का व्यक्तित्व। व्यक्तित्व को दबाए ..?

बच्चा पास आकर बोला—अम्मी, चाची—चाचा।

मैंने अपने को सँभाला, बच्चे को गोदी में ले लिया। उसका मुँह चूम लिया। वह स्तब्ध रह गई—अवाक्। घबराहट में मुझे कुछ नहीं सूझा। बच्चे को गोदी से उतारा। वह चुपचाप अपनी अम्मी के पास चला गया। पास कोने में पड़ी सिगरेट की डिबिया उठा ली। एक बत्ती निकाल ना ून पर एक कोना हल्के-हल्के मारा। सुलगा के और धुएँ में अपने को सौंप दिया। उधर उसे देख लेने का साहस नहीं हुआ। बच्चे को चूम कर भारी अपराध किया, महसूस अब यह हुआ, जिसकी माफ़ी न थी। गण्डेल जिस तरह आहट पा अपने को छुपा लेता है, उसी तरह मन सिकुड़ता जा रहा था। बाहर सामने खेतों में खड़ी फसलें थीं। उनके बीच एक जगह दो किसान झगड़ रहे थे। एक भीड़ खड़ी थी, उनको घेरे। यहाँ अपना और धुएँ का रिश्ता अब बाकी था। पिछला सब रिश्ता एक भूल और अवज्ञा अब लगता। चूम कर अपनी ख़ुदगर्ज़ी ज़ाहिर कर डाली। अब तक सब बातें 'मूक' होने पर भी 'हँसी' की प्राप्त, और? अब

तक का वह सनातन निहारना। मन ने फिर दुःख मोल ले लिया। यह कौतुक, यह हार का दाँव। मिथ्या कुछ कहीं न था। वह सिगरेट का धुआँ, चारों ओर अपने फैलता लगा। उसमें दम घुट रहा था। सारे कमरे में अपने ऊपर, इधर-उधर, काला-सुफ़ेद धुआँ छाने लगा। कुछ अनहोनी बात अब होती—जैसे, मन करता गाड़ी रुक जाती। भाग जाता मैं।

वह बच्चा, उसे अपने से चिपकाए रखने को मन तड़प रहा था। उसी सा अनजान बना जा सकता। बच्चे को छाती से लगाना, गलत क्यों वह माना जावे। यह एक कैसा कानून लागू था।

सिगरेट का टुकड़ा फेंक दिया। वह हवा में दूर पीछे गिर पड़ा। गिर कर भी एक तड़पन, एक जलन साथ नहीं ले गया। किताब उठा ली। वह तस्वीर आगे आई। फौन्टेनपेन से उसपर लिखा—'अम्मी-चाची।' गहरी अनुभूति इसमें पाई। छुपकर बात रह गई।

वह बच्चा फिर क्यों पुकार बैठा—चाचा।

सारी उलझन लुट गई। व्यापार कहीं खो गया। पान बच्चे के हाथ में था। ले लिया। कुछ देर हाथ में लिए ही सोचा—यह अधिकार? छुपी, डरी एक नज़र उधर डाली। वही मुस्कान। पान दाँतों के नीचे दबाया। चबाया। ज़रा-ज़रा चबाता रहा।

बच्चा अब पास आगया। फिर वही पहली सी सहूलियत। माँ को अब कोई फिक्र न थी। बच्चा किताब के पन्ने पलटते कहने लगा—चाची।

किताब लेकर मैंने पूछा एक सवाल—चाची जब लाऊँगा, तब तू आवेगा।

कैसा सवाल। अम्मी भी कैसी है। इतने बड़े सवाल का जवाब अब तक नहीं समझाया। वह उधर देखने लगा।

अम्मी चुप रही—गम्भीर।

'तेरा नाम'—फिर मैंने पूछा।

'हम मुन्ना।'—वह माँ की ओर देख गवाही दिलाना चाहता था कि बात सच ही है।

कहा फिर मैंने—'मुन्ना, चाची लेने जब जाऊँगा, तू साथ में आवेगा।'

हाथ की चूड़ी खन-खन-खन बज उठी। आवाज़ खो गई। जवाब था—कौन बुलाता है किसी को।

बात ठीक लगी। अपना कौन, जिसे हम कह दें—आना। कुछ मिनट की जान-पहचान में कभी कोई रिश्ता बना। और जीवन के निपट जाने पर कोई भी रिश्ता सही थोड़े ही निकलता है। अम्मी क्या कभी चाची देखने आवेगी। दो लिखे अक्षर स्याही के कल किताब पर बाकी रहेंगे। बच्चा जिनको तुतलाया था। यह अम्मी चाची के परोक्ष में छुपी क्या कभी मजाक करेगी। बच्चे के बाद यह अम्मी बनी चाहती है—एक बच्चे की चाची।

चाची कभी कब पुकारेगी—अम्मी? कभी घूरते उसे कहेगी—तू आ गई। ले मुन्ना।

सौंप कर निश्चित होगी। बच्चा खुशी में पुलक नाचता कहेगा—अम्मी—चाचा—चाची।

बच्चा अब उसकी गोदी में था। अम्मी ने कुछ कान में कहा। बच्चा चिल्लाया—चाचा-चाचा।

अम्मी ने बच्चा चूम लिया।

बच्चे को नींद आ रही थी। अम्मी की गोदी में वह सो गया। अम्मी ने सीट पर हाथ टिका अपना सिर हाथ पर रख, आँखें मूँद लीं।

फ़ुरसत पा नारङ्गी उठाई। छील ली। फाँकें अलग-अलग मुँह में दीं। खाता ही रहा। फिर सिगरेट उठाई। फूँक भी डाली। किताब खोली। कई पन्ने इधर-उधर पलटे, बन्द कर दी। बाहर खिड़की से देखा, मन नहीं लगा। किताब फिर उठाई। कुछ लाइनें पढ़ीं। सिगरेट भी दूसरी सुलगाई—लेकिन।

अगले स्टेशन आने से पहले देखा, उसका स्वामी सामान ठीक कर रहा था। गाड़ी स्टेशन पर ठहरी। अम्मी ने बच्चा गोदी में लिया। एक बार मुसकराते मुझे देखा। बाहर निकल गई। कुली ने सामान उतारा। वे आगे बढ़ गए।

गाड़ी जब चल दी, तब याद आया—उसका नाम, पता। बच्चा क्या चाची की याद। और अम्मी······

किन्तु ····

सन्तरा छील लिया। एक फाँक—दूसरी—तीसरी—

कुछ वैवाहिक समस्याएँ

[श्री० अरिन्दमसिंह]

आज हमारा समाज वैवाहिक समस्याओं को लेकर जिस उलझन में पड़ा हुआ है, कदाचित् ही कभी, किसी युग में, ऐसी विकट उलझनों का सामना करने का दुर्भाग्य हुआ होगा—शायद कभी नहीं। समाज के इतिहास के पन्ने उलट जाइए। इसका अतीत सुन्दर दिव्य आदर्शों से ओत-प्रोत मिलेगा। इतना भव्य, इतना सुश्रृङ्खलित जिसे हम कल्पना की परिधि के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं कर सकते। इतना सुव्यवस्थित था हमारा वह अतीत समाज! यहाँ 'अतीत' से मेरा अभिप्राय निकट अतीत, केवल दो-तीन शताब्दियों पूर्व से नहीं है। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों में तो यहाँ मुगलों का साम्राज्य था। उस समय हमारा यह समाज जिस अवस्था को प्राप्त था, वह इतिहास के पाठकों से छिपी नहीं है। बल्कि वह उनके सम्मुख चित्रपट सी स्पष्ट है। यवनों ने हमारे साथ कैसा व्यवहार किया? हम उनके समक्ष किस रूप में उपस्थित हुए—आदि बातें इतिहास से सम्बन्ध रखती हैं, और इसका विशद वर्णन उसके पृष्ठों के समीक्षण से ही विशेष प्राप्त होगा। वस्तुत हमारे समाज के पतन का श्रीगणेश मुगल काल से ही होता है। यों तो भारत पर मुसलमानों के पहले आक्रमण से ही हिन्दू सस्कृति पर एक जबर्दस्त आघात पहुँचता है, पर जिस समय से यह समाज अवनति के गर्त्त में फिसलना आरम्भ करता है, वह समय विशेष कर मुगल-काल ही है। हमारी सामाजिक शृङ्खलाएँ किस प्रकार ढीली हुईं, कौन-कौन सी कुरीतियाँ परिस्थिति के अनुसार इसमें प्रवेश कीं, इसके खोखला करने में—एकदम मूलोच्छेद करने में—कौन-कौन सी वाह्य परिस्थितियाँ तत्कालीन दिल्लीश्वरों की ओर से उपस्थित की गईं, वैवाहिक पद्धति में किस प्रकार परिवर्तन हुए, परदे की प्रथा तथा बाल-विवाह का किस प्रकार आविर्भाव हुआ आदि बातें विशेषकर मुगल-काल से ही सम्बद्ध हैं।

हाँ, तो यह निर्विवाद है कि हमारा सामाजिक पतन यवन-काल से ही आरम्भ होता है। और आज यह पतन मार्ग को काफी फासले तक तय कर चुका, बल्कि यह कहना अत्युक्ति न होगा कि यह अपनी अभीष्ट मञ्जिल के बहुत निकट पहुँच गया है। बहुत सम्भव है, निकट भविष्य में यह अपने यथाकथित अभीष्ट की की चोटी तक पूर्णतया पहुँच कर फिर चूँकि इसके आगे केवल महाशून्यता है, नीचे की ओर लुढ़क पड़े जो और कुछ नहीं, बल्कि प्रत्येक लुढ़कान उन्नति-गर्त की ओर की लुढ़कान है। और हम दृष्टि गड़ाए उसी विपरीत लुढ़कान की प्रतीक्षा कर रहे है, जो एक न एक दिन अवश्य चरितार्थ होगी। अस्तु—

इस समय हमारे समाज को जिन कुरीतियों ने मुख्यत घेर रखा है वे हैं बाल विवाह, अनमेल-विवाह, वृद्ध विवाह और कन्या-विक्रय प्रथा। अब मैं एक-एक को लेकर अलग-अलग लिखता हूँ।

बाल विवाह

आज यह नाशकारी प्रथा—दुष्ट राक्षसिनी—विवाह का रूप रख जिस प्रगति से हमारे समाज को लील रही है उसे दृष्टि में रखते हुए, भविष्य में, यही जान पड़ता है कि चन्द थोड़े ही दिनों में ही यह उसे पूर्णरूपेण उदरस्थ कर लेगी। फिर स्मृति-मात्र को भी कुछ अवशेष न बचेगा। जिधर दृष्टि फेरिए, बाल-विवाह का ही जोर नजर आता है। अब इसकी उत्पत्ति के कारणों की ओर झुकता हूँ।

यह मानते हुए कि हमारे समाज में जितनी नामधारी

पर क्या वे ज़बर्दस्ती मुगलों सा हमारी कन्याओं को छीन सकते हैं ? कदापि नहीं। फिर मेरी समझ में यह नहीं आता कि कौन सी आवश्यकता आज लोगों को बाल-विवाह करने के लिए बाध्य कर रही है ?

अत गम्भीर समीक्षणोपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह प्रथा समाज के लिए घातक है। लेकिन बड़े दु ख के साथ कहना पड़ता है कि इसकी हानि को भलीभाँति समझते हुए भी हम इसका निदान नहीं ढूँढ़ पाते। नहीं-नहीं, निदान को जानते हुए हम उसकी ओर से आँखें बन्द किए बैठे हैं। परम्परागत रूढ़ियों को पालना ही तो हमने सीखा है। परिवर्तन लाना, रूढ़ियों के प्रति क्रान्ति करना तो हमने सीखा ही नहीं। उसके लिए हम अपने पूर्वजों को क्यों दोष दें। उन्होंने तो समयानुकूल इस प्रथा को चलाया, पर हम भी तो, जब इसकी आवश्यकता जाती रहती है, इसे निर्मूल कर सकते हैं। यह हमारी क्षमता की बात है। यदि हमने ऐसा नहीं किया तो निश्चय ही हमारे हाथों पूर्वजों की उज्ज्वल कीर्ति धूलिसात् हो जायगी। आज जब मैं पालकियों में बैठे हुए विवाहेच्छुक, पर विवाह की परिभाषा से अनभिज्ञ बालकों को पाता हूँ, तो मर्मस्थल में एक ज़बर्दस्त ठेस लगती है। दिल में एक हूक-सी उठती है, जो शब्द के रूप में मुँह से निकल पड़ती है—'आह! अजान भोले बालक! समाज के पतन की पराकाष्ठा! पतन-नाटक का रोमाचकारी दृश्य! इसके उपरान्त सदा के लिये यवनिका पतन! पतन!!'

उच्च कहलाने वाली जातियाँ तो अब धीरे-धीरे इस दिशा में सुधर रही हैं। क्योंकि जब तक लड़का काफी पढ़ नहीं लेता, उतना दहेज़ नहीं मिलता। पर इसके सुधार के साथ-साथ हम देखते हैं कि दूसरी कुरीति मज़बूत होती जा रही है। ख़ैर, इस पर भी कभी लिखूँगा। निम्न जातियों, जैसे दुसाध, चमार, पासी आदि हिन्दू समाज की पिछड़ी हुई कौमों में उसका अभी भी वही वीभत्स रूप देखने को मिलता है। सुधार के बजाय दिन पर दिन बालविवाह जड़ पकड़ता जा रहा है। बालविवाह की जड़ में एक और भ्रमात्मक धारणा काम कर रही है। लोगों का यह ख्याल हो गया है कि यदि लड़के की शादी निश्चित अवस्था तक नहीं हो जायगी तो फिर कोई शादी करेगा ही नहीं। लोग लड़के के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार के सन्देह करने लगेंगे कि क्या कारण है कि उसकी अभी तक शादी नहीं हुई है। जरूर कोई न कोई ऐब होगा। इसीलिये लोग बाल्यावस्था में ही शादी कर देते हैं। और यह बात है भी सत्य। लोग वास्तव में इस प्रकार के सन्देह करते हैं। लेकिन ज़रा गम्भीरता-पूर्वक यदि इस विषय पर सोचा जाय तो यह कहाँ तक युक्तिसङ्गत ठहरेगा। भोले-भाले बच्चे, जिसकी अभी तुतलाहट भी नहीं गयी है, तुतलाहट की बात तो दूर, जिसने अभी माता का दूध भी मुश्किल से छोड़ा है, किसी अपने ही समान अभागी बच्ची का, 'शास्त्र' के नियमानुकूल पतिदेव बन बैठता है। जिसे वयस्क होने पर यह भी ख्याल नहीं रहता कि कब उसकी शादी हो गई है, और किसके साथ। दूसरों की बारातें जाती देख, दूसरों को दुल्हा रूप में देख उसे भी किसी बारात का दुल्हा बनने की अभिलाषा होती है, विवाह मुकुट (मौर) पहनने की उसकी भी इच्छा रहती है। पर उसे क्या मालूम कि वह भी कभी दुल्हा बन चुका है, जब कि वह उसके बिल्कुल ही अयोग्य था, और योग्य होने पर पश्चाताप के सिवा कुछ न रहा। उसने भी कभी मौर पहने हैं—उस समय, जब कि उसके भार से वह स्वय मण्डप में ही मूर्च्छित हो गिर पड़ा था। ये घटनाएँ उसके जीवन-इतिहास के प्रारम्भिक पृष्ठों में ही अङ्कित हो चुकी हैं, जिसकी उसे एक धुँधली सी याद के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गया है। बहुत सम्भव है, वह भी जाती रही हो।

बाल-विवाह पर गम्भीर विवेचना करने के पश्चात् इसके जो कारण आजकल देखने में आते हैं, उनमें लोगों का गरीब होना भी एक है। जैसे किसी आदमी को एक युवा लड़की तथा एक बच्चा लड़का हो। वह लड़की के वयस्क हो जाने के कारण अधिक दिन तक अविवाहित नहीं रख सकता। विवाह उसे करना ही पड़ेगा। लेकिन साथ ही साथ अपने छोटे लड़के की शादी की भी चिन्ता है। प्रायः ऐसा सभी जातियों के गरीब मनुष्यों में होता

है कि यदि दो मनुष्यों में से प्रत्येक यहाँ एक लड़का तथा एक लड़की हो तो वे आपस में अपनी लड़की को एक दूसरे के लड़के से ब्याह देते हैं। इस प्रथा को 'गोलथ' कहते हैं। अत उपर्युक्त मनुष्य को लड़की के साथ ही छोटे लड़के की भी शादी करनी पड़ेगी, अन्यथा उसका लड़का गरीब होने के कारण आजीवन क्वाँरा रह जायगा। इन्हीं परिस्थितियों से घिर जाने के फलस्वरूप बाल विवाह तथा अनमेल-विवाह का जन्म होता है। भारत की अधिक आबादी गरीबों की है, अत यदि इनमें बाल तथा अनमेल विवाह प्रचलित हैं तो कुछ गरीबी का भी दोष है। पर सभी के सभी तो गरीब नहीं है। उनमें यदि यह बात पायी जाती है तो इसका दोष हम किसे दें? उनकी अमीरी का? हमें तो ऐसी दशा में यही कहना पड़ेगा कि परम्परागत रूढ़ियों के अन्धभक्त होने के कारण ही उनमें इस प्रथा का समावेश है और इसके नाश के लिये आवश्यकता है सामाजिक कुरीतियों को समझने की बुद्धि की।

लेखों द्वारा इस दिशा में सन्तोषजनक सुधार नहीं होते देख असेम्बली के सदस्यों ने उसके विरुद्ध 'शारदा एक्ट' पास कराया, जिसके अनुसार चौदह वर्ष की लड़की तथा अठारह वर्ष के लड़के से कम उम्र में विवाह गैर-कानूनी क़रार दिया गया। कानून की प्रारम्भिक अवस्था में तो उस नियम का कुछ पालन किया गया। पर समय के प्रवाह से इसमें भी शिथिलता आ गयी। अब फिर उसका कुछ सुधार किया गया है।

अनमेल विवाह

इसके बाद अनमेल विवाह की बारी आती है। इसके चलते भी आज समाज में भीषण हाहाकार मचा हुआ है। दुखपूर्ण दाम्पत्य जीवन की चीत्कारें चारों ओर से सुनायी पड़ रही हैं। सारा वातावरण विषाक्त हो उठा है। कहीं चौबीस पच्चीस वर्ष के युवक के गले सात-आठ वर्ष की अबोध बालिका मढ़ दी गई है। दूसरी ओर बाईस-तेईस वर्ष की युवती के साथ बारह-तेरह वर्ष के लड़के का गाँठ जोड़ दिया गया है। यह क्या है, मानो ऊँट के गले में चुहिया बाँध दी गयी हो—दोनों हालत में। यह तो होता है बहुधा अशिक्षित लोगों में तथा साथ-साथ जो गरीब भी हैं। अब शिक्षितों की बात लीजिये। जो शिक्षित हैं उनकी पत्नी को अक्षरों का भी ज्ञान नहीं तथा इसके विपरीत कुछ शिक्षिताओं को अपढ, उजड्ड, गँवार पति मिलते हैं। जो सादे वेश के हिमायती हैं उन्हें आभूषणों को अधिक चाहने वाली स्त्री से संयोग हुआ है तथा जो महिलाएँ सुशील, गृह-कार्यदक्ष हैं उन्हें नशेबाज़-जुआरी पति मिले हैं। भला इन दशाओं में दाम्पत्य-जीवन कैसे सुखमय बन सकता है। जिधर दृष्टि फेरिये, उधर ही असन्तोष, ग्लानि, क्षोभ का दूषित वातावरण उपस्थित मिलेगा। कोई कुरूपा पत्नी पाकर असन्तुष्ट है तो कोई निरक्षरा पाकर। कितने को आभूषण बनवाने से अवकाश नहीं है तो कितने बहके दिल-दिमाग़ पति अपनी पत्नी की सदा वेशप्रियता पर चिन्तित हैं। कितने आधी-आधी रात यदि वर्णमाला के पहाड़े रटा रहे हैं तो साथ ही साथ कितने निरक्षर भट्टाचार्य पति, बदकिस्मतीवश, शिक्षित पत्नी के सम्मुख खड़े होने में थर्रा रहे हैं। उसकी परछाहीं से डरते हैं, जैसे वह कोई लड़कों को पकड़ने वाला 'हौआ' हो।

इसके क्या कारण हैं, हमें अब ढूँढ़ना चाहिये। वर्तमान परिस्थितियों के गहन अध्ययन करने के उपरान्त इसके मूल में यही कारण दीख पड़ता है कि आजकल के अभिभावकों के हृदय में एक अज्ञात, परन्तु प्रेरक वस्तु लोभ समा गया है, जिसके कुचक्र में पड़ कर इनकी उचितानुचित निर्णय करने की शक्ति जाती रही है तथा परिणामस्वरूप अनमेल विवाह की उत्पत्ति होती है। यह लोभ भी भिन्न-भिन्न अभिभावकों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। उदाहरण के लिये—जैसे कोई मनुष्य अपनी पुत्री को किसी बड़े अमीर के घर की स्वामिनी के रूप में देखना चाहता है। उसकी पुत्री युवा है, इसलिये वर का भी समवयस्क होना अत्यावश्यक है। पर उस मूढ़ अभिभावक को उम्र की कोई चिन्ता नहीं। धन के सम्मुख उम्र, रूप-रङ्ग ये सब गौण हैं। मुख्य धन है। भले ही लड़के की अवस्था लड़की से दुगुनी-तिगुनी हो अथवा उससे आधी ही हो। दोनों हालत में वह धन के

पीछे मतवाला हो विवाह रचायेगा ही। आजकल के अभिभावकों के हृदयमें यह भावना घर कर गयी है कि हमारी लड़की धनी घर में ही ब्याही जाकर सुखी रह सकेगी। उसे खाने के लिये बढ़िया भोज्य वस्तुएँ मिलेंगी। पहनने के लिये पतली-पतली रङ्गीन साड़ियाँ मिलेंगी। रहने के लिये दोमञ्जिले, तिमञ्जिले हवादार कमरे मिलेंगे, दासियाँ सदैव उनके सम्मुख हाथ बाँधे खडी रहेंगी। और ऐसा घर दैवयोग से, पाकर वे समझ लेते है कि हमने लड़की के विवाह का दायित्व पूर्ण-रूपेण सम्हाला। पर कोई भी सहृदय व्यक्ति उनसे पूछ सकता है कि आपने वाह्य-सुख-साधनों को तो ख़ूब ढूँढा, पर ज़रा अपने वक्षस्थल पर हाथ रख कर अपनी अन्तरात्मा से पूछिये कि हमने उसके मन की क्षुधाओं की परितुष्टि के लिये कौन सा साधन ढूँढ़ा। क्या उक्त वर में उसकी आकाक्षाओं की, उसकी मनोभिलाषाओं की पूर्त्ति की कोई सामग्री है? मुझे विश्वास है, आपको नकारात्मक उत्तर मिलेगा। अपनी आत्मा के सम्मुख आप दोषी ठहरेंगे। उसकी ओर से आपको धिक्कार मिलेगा, प्रताड़ना मिलेगी। आपने सुख का केन्द्र केवल धन को मान एक युवती की आत्मा की अवहेलना की, हनन किया। और इस जघन्य, परन्तु अप्रकट, पाप के भागी आप बनेंगे, क्योंकि आपने धन के प्रमादवश यह सोचा ही नहीं कि उक्त धनी वर को मिर्गी भी आती है या नहीं? उसकी कौन-कौन सी अन्यान्य गुप्त व्याधियाँ हैं? केवल बाहरी तड़क-भडक पर रीझ गये। और उसका जो परिणाम होता है वह पाठकों की अन्तर्दृष्टि से ओझल नहीं है। बेचारी जन्म भर असहनीय मानसिक वेदनायें चुपचाप सहती रहती हैं। जीवन की घड़ियाँ भार-सी मालूम पड़ने लगती है। असन्तोष की भयङ्कर अग्नि उसके हृदय के भीतर ही भीतर सुलगती रहती है, जो अन्त में एक न एक दिन उसके सारे अरमानों को खाक कर ही छोड़ती है। यही तो अनमेल विवाह के परिणाम का एक नमूना है। पाठक उस पर गम्भीरतापूर्वक गौर करें।



स्वराज्य और स्त्रियाँ

[श्रीमती सुमित्रा भार्गव, बी० ए०, डी० टी०]

फरवरी के 'चाँद' में आगर जी का "स्वराज्य और स्त्रियाँ" शीर्षक पर पुनर्विचार पढ़ा। अनवकाश के कारण, इच्छा होते हुए भी मैं इसके लिये समय न दे सकी। इस उत्तर को पढ़कर मुझे यह आभास हुआ कि भाई गौड़ जी ने लेख में केवल कैकेयी-विषयक आलोचना लिखकर "स्वराज्य और स्त्रियाँ" शीर्षक का अपादान ही बदल दिया। नाम तथा आवरण होते हुए भी शरीर वह न रहा। इससे मैं तथा अन्य 'चाँद' के पाठक निश्चय ही समझ गये होंगे कि आगर जी ने जो पहले समस्या हल करने की चेष्टा की थी अर्थात् स्त्रियों का स्वराज्यान्दोलन में भाग लेना उचित है अथवा अनुचित तथा इतिहास को दृष्टि में रखते हुए जब स्त्रियों ने स्वराज्यान्दोलनों में भाग लिये हैं, उन्हें, देश तथा जाति को कब-कब अवनति के पङ्क में फँसना पड़ा है, वह इसमें कहाँ तक सफल रहे। अस्तु, उनके विचार जो कुछ भी रहे हों, परन्तु कदाचित् मेरे उत्तर से उनके कुछ भ्रम का निराकरण अवश्य हुआ है, जिसके कारण आपने और सब विषय छोड़कर केवल कैकेयी को ही लिया। मुझे इसमें अत्यन्त सन्तोष है कि वह मेरी बातों से पूर्ण सहमत हो गये। और मुझे पूर्ण आशा है कि अन्य बहनों को भी, जिन्हें गौड़ जी के शब्दों में "संभव है, कुछ भ्रम पैदा हो गया हो" विचार-साम्य देखकर सन्तोष होगा।

मुझे गौड़ जी के इन शब्दों को पढ़कर कि "मैं स्त्री जाति को किस सम्मान से देखता हूँ और राजनैतिक क्षेत्र में उन्हें कहाँ पर प्रतिष्ठित देखने का उत्सुक हूँ, इसे मैं ही जानता हूँ और कुछ-कुछ वे भी जान सकते हैं, जिन्होंने मेरे लेख को ध्यानपूर्वक पढ़ा हो" हार्दिक हर्ष हुआ। कारण, मेरे विचार में संसार अथवा मनुष्य जाति का कल्याण इसी में है कि इसके दोनों अङ्ग एक दूसरे को सम्मान और आदर की दृष्टि से देखें। यदि यह सदा सर्वदा होता रहे तो सम्भव है, जो इतनी घटनाएँ नित्यप्रति हुआ करती हैं, वह बहुत अंशों में कम हो जावें।

इसमें क्या सन्देह है कि अधिकतर ग्रन्थकर्त्ता और विशेषकर धार्मिक ग्रन्थ-निर्माता, प्राय पुरुष ही हुए हैं, और उन्होंने स्त्रियों को निम्न रखने के लिये क्या नहीं उठा रक्खा; उनको उनके स्वत्वों और अधिकारों से वञ्चित रक्खा; उन्हें जीवित ही मृत के समान बना रखने का प्रबन्ध किया, उन्हें कुचल डाला। जिसका परिणाम आज यह हुआ कि भारतीय स्त्रियाँ अपने पैरों पर खड़े होने की चेष्टा करती हैं और एक बालक की भाँति खड़ी होतीं और फिर लड़खड़ा कर गिर पड़ती हैं। अब भी ऐसे पुरुष सुलभ हैं जो स्वयं उनको पकड़ कर गिरा देने के गुनाहगार कहे जा सकते हैं। पाठक स्वयं समझ कर देखें कि यह कहना कि मैं स्त्रियों को राजनैतिक क्षेत्र में सम्मानित देखना चाहता हूँ और साथ ही साथ यह भी समझता हूँ कि उनके राजनीति में भाग लेने से सदा अघटित घटनाएँ हुई हैं, क्या यह दो विचार एक ही विचार-धारा में प्रवाहित हो सकते हैं। कदाचित् केवल एक दृष्टि-कोण से जब कि स्त्रियों को सजी सजाई गुड़ियों की तरह एक सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित कर दिया जावे, परन्तु उन्हें किसी कार्य में भाग लेने का अधिकार न हो, जैसे एक राजयक्ष्मा का रोगी, क्योंकि उसके छूने मात्र से ही वस्तु के कलुषित होने का भय रहता है।

कैकेयी के विषय में भाई जी लिखते हैं—"मैंने कैकेयी के विषय में कटु वाक्यों का प्रयोग किया हो सो नहीं"—इस प्रकार आप वाल्मीकि तथा तुलसीदास के

द्वारा कैकेयी को बुरा-भला कहे गये शब्द उद्धृत करते हैं। ठीक भी है। मेरा विचार यह बिल्कुल न था कि मैं कैकेयी को अच्छा या बुरा कहूँ अथवा उसके कार्य की समालोचना करूँ। वरन् वह तो स्त्रियों को राजनीति में भाग लेने का एक उदाहरण मात्र था, जिसके द्वारा गौड़ जी ने अपने विचार की पुष्टि करने की चेष्टा की थी। कैकेयी की बुराई अथवा भलाई अनेक लेखक तथा कवि कर गये हैं, कर रहे हैं और करेंगे। राम को भगवान् का अवतार नहीं तो, एक महा पुरुष तो सभी मानते है, उनको निरपराध निष्कारण वन भेज देने पर भला कैकेयी किसी के भी द्वारा प्रशसनीय हो सकती है? नहीं। वरन् उसके दोषों को कवि-प्रकृत्यानुसार और भी बढाकर कहा जता है, जैसे हमारे आगर जी ने उसको पति की हत्यारिनी तक कहने में सङ्कोच न किया। सत्य है, एक आदमी पर जब एक-विषयक कलङ्क का टीका लग जाता है, तब उस पर सभी ओर से बौछार होने लगती है।

आपने कैकेयी के लिए जो 'कुशब्द' कहे हैं उसके लिए वाल्मीकि रामायण और तुलसीकृत रामायण से प्रमाण भी दिये हैं। एक स्थान पर आप लिखते हैं —

"नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनी येन धीमता
उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या सम्प्रसाधते।

वह स्त्री ही नहीं, जिससे पति क्षमा माँगे। अभी तक हमने ऐसे प्रमाण दिये जिनमें पुरुषों ने कैकेयी को धिक्कारा है। यह बात शायद कुमारी जी के लिये फिर कुछ लिखने का मौका दे, अतएव कौशल्या जैसी सती साध्वी के मुख से निकले बचन सुनिये, इत्यादि।" इस विषय पर मैं अधिक न कहकर स्पर्श मात्र कर देना चाहती हूँ कि क्या यदि वालमीक ने कुछ शब्द स्वय कहे और अन्य कौशल्या से कहलवाये तो उसमें विभिन्नता आगई? आज यदि गौड़ जी स्वयं एक राम-काव्य लिखें तो क्या वह कौशल्या अथवा किसी अन्य पात्र के द्वारा जो वाक्य कहलावेंगे वह उनकी अपनी भावनाएँ न होंगी? क्या देवी कौशल्या स्वय उनके कण्ठस्थित होकर बोलेंगी? या उनकी धारणायें भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न रूप धारण कर लेंगी? क्या यह सम्भव हो सकता है?

एक साधारण बात ही सोचिये। गौड़ जी ने यह धारणा करके कि स्त्रियों के राजनीति में भाग लेने से अनर्थ होते है, कहाँ तक खींचातानी की है, विशेषकर कैकेयी को राजा दशरथ की हत्यारिणी कहना। अपनी पुष्टि के लिये सम्भव और असम्भव सभी को ले डाला है। यदि वाल्मीकि की यह धारणा थी कि कैकेयी ने कुकर्म किया तो उन्हे जहाँ भी अवसर मिला अपने हृदयोद्गार को निकालने की चेष्टा की। क्या भरत और क्या कौशल्या, जो भी पात्र उनके सम्मुख आया उसी के द्वारा अपनी विचार-धारा को बहाया। आज यदि हम एक उपन्यास पढते हैं तो हम सदैव उसके मुख्य पात्र—नायक से सहानुभूति करने लगते हैं, क्योंकि उसका लेखक उससे सहानुभूति रखता है और चाहता है कि उसके पात्र तथा पाठक सब उसी की तरफ हों। एक सिद्धहस्त महा-काव्यकार की प्रशसा ही इसमें है कि वह सर्व प्रकारेण पाठकों की सहानुभूति आकर्षित करे। रामायण में जहाँ कौशल्या बोलती हैं, अथवा कौशल्या आदि, मैं तो और मेरे विचार में सभी विचारशील पाठक उसे ऐसा न समझकर वाल्मीकि के ही वाक्य समझेंगे। हिन्दी, संस्कृत तथा अन्य भाषाओं में भी अनेक पुस्तकें प्राप्य हैं जिनमें उदाहरण प्रत्यक्ष हैं जहाँ पर स्त्रियों के राजनीति में भाग लेने से देश तथा जाति को अत्यधिक लाभ हुआ है। परन्तु गौड़ जी ने अपने विचारों के समर्थन के लिये खोज-खोज कर तदनुकूल स्थल चुने है। मैं तो यहाँ तक कहने को तत्पर हूँ कि इस लेख में कौशल्या, सुमन्त्र, भरत अथवा वाल्मीकि नहीं, वरन् भाई गौड़ जी की कण्ठस्थित सरस्वती स्वयं वीणा वादन कर रही है, क्योंकि यदि उनके विचार विभिन्न होते तो उन्हें दूसरे ही स्थल सूझते। कहा भी है —

जाकी रही भावना जैसी,
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

हमारा तो विषय है "स्वराज्य और स्त्रियाँ।" कैकेयी ने यदि विमातापन दिखाया और बुरा-भला कहलवाया, और निश्चय ही उसने बुरा कार्य किया, तो

कवि को दोष क्यों दिया जावे और कैकेयी के विषय को दूर तक क्यों घसीटा जाय। इन कवियों ने कैकेयी को राजनीति में भाग लेने के कारण बुरा-भला कहा हो सो नहीं। तुलसीदास जी ने ही कैकेयी को यदि बुरा कार्य करने के लिये बुरा कहा है तो यथास्थान कौशल्या की अत्यन्त श्लाघा भी की है, यथा—

तुम गुरु विप्र धेनु धन सेवी, तस पुनीत कौशल्या देवी।
सुकृती तुम समान जग माहीं, भयहु न कतहु होनेहुँ नाहीं॥

धन्य है वह कौशल्या, जिसके समान पुण्यात्मा न हुआ और न होगा!

फिर इसके विपरीत क्या भारतवर्ष के इतिहास में रामायण अथवा महाभारत या अन्य प्राचीन ग्रन्थों में कोई ऐसा उदाहरण नहीं, जहाँ किसी पुरुष के द्वारा राजनैतिक क्षेत्र में गलती हुई हो और जिसके कार्यरूप में परिणत करने से अनर्थ हुआ या हो जाता। जिस समय कैकेयी ने राम वनवास की आज्ञा सुनाई, लक्ष्मण कहते हैं —

भरतस्य पक्ष्ये वा यो वास्य हितमिच्छति।
सर्वांस्तान् वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते॥

अर्थात्—भरत के पक्ष वालों और उसके सब हितेच्छुकों को मैं मार डालूँगा। भरत-मिलाप के समय भी लक्ष्मण भरत-सेना को देख कर उसका समूल नाश करने को उद्यत होते हैं। यदि ऐसे स्थानों पर वह अपने गुरुजनों द्वारा शान्त न किये गए होते तो क्या होता, यह विचार सीमा के परे है।

दुर्योधन ने जो राजनैतिक क्षेत्र में कार्य किये वह सब क्या प्रशंसनीय ही थे? इत्यादि। तो क्या, इन उदाहरणों को दृष्टि में रखते हुए यह कह देना चाहिये कि पुरुषों के राजनीति में भाग लेने से अनेक अनर्थ हुए और हो रहे हैं, अत उनका इसमें भाग लेना अनुचित है। संसार के सभी प्राणी किसी न किसी कार्य के मैदान में उतरते हैं, और बहुतों की वहाँ मुठभेड़ भी हो जाती हैं। उनमें से कुछ सफल होते हैं और अन्य असफल। मनुष्य गलती करने पर ही सीखता है। कौन सा मनुष्य, देश अथवा जाति ऐसी है, जो कभी न कभी किसी मार्ग पर भटकी न हो, अथवा असफल न हुई हो। यह तो प्राकृतिक नियम है, उसका तोड़ना या रखना हमारे हाथ में नहीं। फिर हम एक, दो अथवा सौ उदाहरण लेकर यह क्यों कहें कि अमुक स्त्री अथवा अमुक पुरुष के इस कार्य में भाग लेने के कारण ऐसा हुआ। चुनाव के नियम के अनुसार एक मनुष्य के एक छोटी सी त्रुटि करने पर भी बड़े से बड़े कार्यों का फल उलट जाता है। कैकेयी ने राजा दशरथ को ही मारने के उपाय प्रारम्भ से अन्त तक किये—एक नितान्त आश्चर्यजनक बात है। कैकेयी की बुद्धि-विलक्षणता की पराकाष्ठा हो गई। ऐसा सम्भव नहीं। स्वय वाल्मीकि जी कहलवाते हैं, उसी सरला, सरल हृदया कैकेयी से, जो कि मथरा के कहने में इतनी जल्दी आ गई थी।

इदं तु मथरे मह्यमाख्यात परम प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यात किं वा भूय करोमि ते॥
रामे वा भरते वाहं विशेष नोपलक्षये।
तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥

कैकेयी राम के युवराज-पद पर आरूढ़ होने को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करती है, क्योंकि वह राम और भरत में कोई विभिन्नता नहीं समझती।

इन सब बातों से कैकेयी का दशरथ की हत्यारिनी होने का दोष निर्मूल प्रतीत होता है।

मेरे विचार में इस रामायण के विषय को बढाना व्यर्थ है। यों तो अन्य संस्कृत ग्रन्थों में भी कहीं स्त्रियों की प्रशंसा और अन्य स्थानों पर इसके विपरीत लिखा गया है। और मैंने जब भी उसे पढ़ा, समयानुसार पुरुषों के विचार समझकर ही उस पर मनन किया है। अत उसको दृष्टि में रखकर वर्त्तमान काल की आवश्यकताओं पर विचार करना निरर्थक है। आज की स्त्री, वह स्त्री नहीं जो पचास वर्ष पूर्व अपने घर को ही अपनी सीमा समझती थीं। कदाचित् पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क में आकर वह स्वतंत्र वायुमण्डल में विचरण करना चाहती हैं और अपने को अधिकारिणी और सत्य रूप में ऐसा समझती है।

ईश्वर ने सृष्टि के दोनों अङ्गों को समान मानसिक योग्यता देकर, सम कार्य करने की आज्ञा दी है। मुझे जहाँ तक स्मरण है, मैंने अपने पहले प्रत्युत्तर में

कुछ ऐसी स्त्रियों के नाम लिखे हैं, जिनके नाम पर, और राजनीति में भाग लेने के कारण ही हम और हमारा भारत अपना सिर ऊँचा कर सकता है। साथ ही ऐसे पुरुष भी अनेक हुए है जिनका ध्यान आते ही आँखें ऊपर को नहीं उठतीं, जसे देशद्रोही जयचन्द। क्या उसका कलङ्क का टीका कभी भी धुल सकता है? नहीं—असम्भव है। यदि जयचन्द न हुआ होता, तो क्या आज हमारी यही दशा होती? आज हमारे लिये यही परतन्त्रता का रोना रह गया होता?

अब ज़रा पाठक सोचकर देखें कि यदि गौड़ जो के कथनानुसार स्त्रियाँ केवल सामाजिक कार्यों में ही संलग्न हो जावें और राजनीति में बिलकुल भाग न लें और उसका किञ्चिन्मात्र भी ज्ञान न रक्खें तो भारत की दशा जो कुछ सुधर रही है उसका क्या हो? अच्छा होता हुआ रोगी ऐसा पड़े कि फिर उठने का नाम न ले। प्रथम तो यह दो विभाग ऐसे है, जो मनुष्य-जीवन में दो वायु-बद्ध प्रकोष्ठों में नही रक्खे जा सकते। और यदि बलात् रक्खे भी जावें तो इससे कोई लाभ नहीं। गृहस्थ जीवन के आनन्द के नाशक प्रतीत होंगे। सहायता और सहानुभूति जो समाज का एक अङ्ग दूसरे अङ्ग से प्राप्त करता और सदैव प्राप्ति की आशा रखता है, उसका सुलभ होना सम्भव नहीं हो सकता। मुझे तुमसे क्या, और तुम्हें मुझसे क्या, अपने-अपने में मस्त रहना मेरी समझ में असम्भव और अत्यन्त हानिप्रद है। फिर क्या अनेकों सामाजिक कार्य ऐसे नहीं है, जिनके करने का बीड़ा पुरुष उठाएँ तो अत्यन्त लाभप्रद हो—जैसे मोदक वस्तुओं का सेवन। अस्तु, किसे क्या करना चाहिये—यह समस्या यदि प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपने लिये हल करे तो अच्छा है। अगर एक स्त्री समझती है कि उसे राजनीति में रुचि है, और वह उसी से सम्बन्ध रखने वाले कार्य अधिक उत्तमता से कर सकती है, तो वह अवश्य उसे अपना लक्ष्य बनाकर ही जीवन क्षेत्र में पैर रक्खे। यह निश्चय है कि वह इस कार्यक्षेत्र में सफलता की जितनी मात्रा प्राप्त कर सकती है उतनी अन्य क्षेत्रों में नहीं। एक गवैया को ही लीजिये, आप उसे एक बार उसको इच्छानुकूल और दुबारा उसके प्रतिकूल गाना सुनिये, अन्तर स्वयं ज्ञात हो जावेगा। मेरा विचार है कि स्त्रियों को, यदि कोई इस योग्य हो और अन्य आवश्यक कार्य करने के बाद उसके पास समय, शक्ति, साहस तथा बल है तो उसे कदापि बरबस दूसरी ओर न ले जाया जावे। एक राजनीति में अयोग्य पुरुष से वह लाख गुना अच्छा कार्य कर सकती है—इसमें किसी को सन्देह न होगा। और यह मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि स्वराज्यान्दोलन में यदि स्त्रियाँ भाग न लेंगी, तो उसके सफल होने की तनिक भी सम्भावना नहीं। यदि एक मनुष्य का एक पैर आगे बढ़ता है और दूसरा अपने स्थान पर स्थिर है तो क्या यह सम्भव है कि वह आगे बढ़ सके—कदापि नहीं। एक चक्रा-गन्त्री चल ही कैसे सकती है। चलाकर देखिये, हारकर दूसरा पहिया जोड़ना ही पड़ेगा। इससे मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि प्रत्येक स्त्री उसके लिये संभव हो अथवा नहीं, लड़ाई के मैदान में जाकर खड़ी हो जावे। मैं ऐसी अन्धविश्वासिनी नहीं। मैं तो निश्चय सत्य और समानाधिकारों में विश्वास करती हूँ। अत जो पुरुष अथवा स्त्री जिस कार्य के योग्य हों, बस वही कार्य करें, तभी पूर्ण सफलता मिल सकती है।

भाई गौड़ जी ने "बिना पुरुषों की प्रेरणा के ही स्त्रियों को राजनीतिक क्षेत्र में पैर बढ़ाना चाहिये" इत्यादि को अपने लेख में पुनरुद्धृत किया है। मैं इसका उत्तर पहले ही दे चुकी हूँ, अत उसका दोहराना व्यर्थ है। आप लिखते हैं कि "स्वराज्यान्दोलन में स्त्रियों को प्रवेश कराके पुरुषों ने क्या-क्या अन्याय नहीं किये? उन्हीं से बचने के लिए मैंने बहनों को कुछ सुझाया था" इसके लिये निश्चय ही आप धन्यवाद के पात्र है, परन्तु उनका ग्रहण करना अथवा न करना बहिनों के हाथ में है। मुझे खेद है कि बहुत सी बहिनें उससे असहमत रहीं।

अन्त में—जैसा कि मैंने पहले लिखा है—गौड़ जी को अपने विचारों से सहमत होते देखकर मुझे हार्दिक सन्तोष हुआ और मुझे पूर्ण आशा है कि कैकेयो के सम्बन्ध में भी यही होगा। अत उन्हें अब और कुछ लिखने का मौका न मिलेगा, क्योंकि उपरोक्त लेख पढ़कर रहा-सहा मतभेद भी विलीन हो जावेगा।

बेकारी और उसका उपाय

[श्री० ठाकुरप्रसाद सकसेना, बी० काम०, एल एल० बी०]

गत महायुद्ध के पश्चात् से बेकारी की समस्या ने संसार में एक भीषण रूप धारण किया है। प्रत्येक राष्ट्र को इसका सामना करना पड़ रहा है। इसे सुलझाने में बिशेष कठिनाइयाँ हो रही हैं। यह कहना भी अधिक अनुपयुक्त नहीं कि कोई देश भी इस समय तक इस समस्या को पूर्णतया सुलझा नहीं सका है। संसार के बड़े-बड़े सभ्य देशों में करोड़ों की संख्या में मनुष्य अब भी बेकार हैं और शासन उनके लिये कोई प्रबन्ध नहीं कर सका है। इङ्गलैण्ड अमेरिका ऐसे देश भी इस समस्या को सुलझाने में असमर्थ रहे हैं। बेकारी का स्वरूप, अलग-अलग देशों में अलग-अलग है। भारतवर्ष की बेकारी अमेरिका तथा यूरोप के देशों की बेकारी से बिल्कुल भिन्न है। उन देशों में बेकारी का मुख्य कारण वस्तुओं की अधिक उपज और उनकी बिक्री में कमी है। उन देशों में उद्योग-धन्धों से उपज तो बहुत है, परन्तु उनसे बनी हुई चीज़ों की बिक्री न तो उनके देश में ही इतनी है कि सब खपत हो जावें और न दूसरे देशों में ही। अत बहुत सा सामान बेकार रहता है और इसी कारण जब सामान की खपत न हो तो उपज में भी कमी करनी पड़ती है और उससे बेकारी और भी बढ़ती है।

परन्तु भारतवर्ष में बिक्री का प्रश्न इतना महत्व-पूर्ण नहीं है। यहाँ तो बनी हुई चीज़ों की सख्या ही इतनी कम है कि वह अपने देश की आवश्यकताओं को ही पूरा नहीं कर सकती, वरन् हमको दूसरे देशों से वस्तुएँ मँगाना पड़ती हैं। दूसरे शब्दों में भारतवर्ष में उद्योग-धन्धे ही कम हैं और जो हैं उनसे उपज कम है। बिक्री की कमी का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ तो करोड़ों मनुष्यों को काम करने को ही नहीं मिलता। खेती करने वाले किसान साल में ६ से ८ महीने तक तो प्राय स्थायी रूप से बेकार रहते हैं। शहरों में कारीगर या तो देशी मिलों द्वारा बेकार कर दिये गये हैं अथवा बिदेशी माल की आयात से उन्हें अपना काम बन्द कर देना पड़ा है। यह बात तो रही मजदूर व किसानों की। शहर का शिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित वर्ग अब तक नौकरियों पर ही अधिकतर आश्रित था, चाहे वह सरकारी नौकरी हो अथवा किसी अर्ध सरकारी सस्था, दूकान या वैय-क्तिक हो। उनका मुख्य काम क्लर्की करना था। कुछ दिनों तक जब तक कि ऐसे शिक्षित मनुष्यों की संख्या कम थी, इस प्रकार की नौकरियों में उनकी खपत हो जाती थी, परन्तु ज्यों-ज्यों उनकी सख्या बढ़ती गई उनकी माँग में कमी होने लगी। शिक्षा का प्रचार बढ़ने से शिक्षित वर्ग में वृद्धि हुई है और अब इन लोगों के लिये केवल नौकरियों पर ही आश्रित रहना पर्याप्त नहीं। नौकरियाँ इस बढ़ती हुई संख्या की खपत न कर सकेंगी। इसके चिन्ह इसी समय से दिखाई पड़ने लगे हैं और इसी कारण बेकार लोगों में एक बड़ा हिस्सा इस शिक्षित वर्ग का है।

गत वर्षों में इस बात की चेष्टा की गई है कि किसी प्रकार इस बेकारी को दूर किया जावे। कई समिति तथा उप-समितियाँ बनाई गई, ताकि इस प्रश्न पर पूर्णतया बिचार होकर उपाय निकाले जा सके। कमेटियों का ध्यान अधिकतर इस शिक्षित वर्ग की बेकारी पर ही रहा और इसी के लिये उन्होंने उपाय भी सोचे। इस प्रकार की नियुक्त कमेटियों में अपने प्रान्त में सप्रू कमेटी विशेष उल्लेखनीय है, परन्तु इस कमेटी का ध्यान भी विशेषतया इसी शिक्षित वर्ग की बेकारी की ओर ही रहा है।

परन्तु बेकारी ऐसे प्रश्न को किसी विशेष वर्ग के आधार पर सुलझाने की चेष्टा करना ठीक नहीं जँचता, क्योंकि इस समस्या का घनिष्ट सम्बन्ध देश के आर्थिक सङ्गठन से है और समस्या को सुलझाने के लिये सारे देश के आर्थिक सङ्गठन में ही परिवर्तन करना पड़ेगा। सच्चे अर्थ में समस्या का हल तो तभी होगा जब वर्तमान पूँजीवाद के आधार पर बने हुए आर्थिक सङ्गठन के स्थान पर, समाजवाद ऐसे आधार पर देश का आर्थिक सङ्गठन हो सकेगा, क्योंकि बेकारी तो पूरी तरह से उसी समय दूर हो सकती है। वर्तमान पूँजीवाद का तो आधार यही है कि कुछ मुट्ठी भर लोग देश के उद्योग-धन्धों से लाभ उठा सकें और अधिकतर जन-सख्या बेकार रहे, अस्तु कोई भी योजना जो केवल एक वर्ग के आधार पर बनाई जावेगी सफल न हो सकेगी। समस्या तो ठीक तरह से तभी सुलझाई जा सकती है जब कि किसान, मज़दूर, शिक्षित तथा अर्धशिक्षित सब वर्गों की स्थिति तथा आवश्यकताओं पर पूरी तरह से विचार किया जावे और उसके परिणाम-स्वरूप कोई योजना तैयार हो, क्योंकि वास्तव में बेकारी को दूर करने के लिये रुपया तथा अन्य साधन तो सब वर्गों से ही मिलेंगे और जब तक इन सब वर्गों की आर्थिक स्थिति नहीं सुधरती तब तक समस्या का सुलझना असम्भव सा है।

दूसरे बेकारी सर्वदेश-व्यापी समस्या है और उसे उसी प्रकार सुलझाना भी चाहिये। प्रान्तीय उपाय किसी हद तक सम्भव हो सकते हैं और सम्भवत वे थोड़ी स्थानीय कठिनाइयों को दूर भी कर सकें, परन्तु वे भी समस्या को पूरी तरह सुलझा नहीं सकते। इसके अतिरिक्त इस प्रकार प्रान्तीय उपायों को करने में इस बात का भी भय है कि कहीं भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न योजनाएँ होने से एक दूसरे के प्रतिकूल अथवा एक ही सी दो स्थान पर न हो जावें और सारी चेष्टा व परिश्रम व्यर्थ हो जावे। प्रान्तीय योजनाएँ केवल प्रान्त में सुलभ उपायों को ही सोच सकेंगी, परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि देश भर के लिये उपाय सोचे जावें और उन्हें कार्य रूप में परिणत किया जावे। यदि प्रत्येक प्रान्त अपने-अपने प्रान्त की बेकारी को दूर करने के अलग-अलग उपायों को कार्यान्वित करने लगें, बिना इस बात का विचार किये कि उसका प्रभाव दूसरे प्रान्तों अथवा देश पर क्या होगा, तो इससे प्रान्तों में एक प्रकार की व्यर्थ की प्रतिद्वन्दता होने को सम्भावना भी है तथा सकीर्ण सी प्रान्तीय भावनाएँ भी पैदा हो सकती है, इसलिये उचित यही है कि बेकारी की समस्या पर देश भर के आधार पर विचार किया जावे।

बेकारी की समस्या पर साधारण तथा निम्नलिखित विचार-धारा पर ही विचार हुआ है। सपरू कमेटी की सिफारिशें विशेषकर इन्हीं भागों में रक्खी जा सकती हैं।

(१) अशिक्षित तथा कम पढ़े लोगों के स्थान पर शिक्षित लोगों को रखना (२) वर्तमान धन्धों में काम को बढ़ाना। (३) नये धन्धे खोलना।

वास्तव में पहला उपाय बेकारी को दूर करने का उपाय नहीं कहा जा सकता है। हमें तो बेकारों को काम देना है, न कि कमजोर तथा अशिक्षित लोगों से काम छीनना है। यदि केवल इतना ही होता तब तो हमारा काम बहुत सरल था। छोटे-छोटे धन्धों में कुछ प्रतिबन्ध लगाये जा सकते थे। उदाहरणत नाई, धोबियों, चपरासी, डाक इत्यादि में ऐसा किया जा सकता था कि जो पढ़े अथवा दूसरी तरह से योग्य हों, वे ही इन कामों को कर सकें। इसी प्रकार ऐसा भी किया जा सकता था कि म्युनिसिपल बोर्ड तथा जिलाबोर्ड को आदेश दे दिया जावे कि वर्तमान कम पढ़े इन्जीनियरों के स्थान पर अधिक पढ़े तथा योग्य इन्जीनियर रक्खे जावें अथवा ठेकेदारों को मजबूर किया जावे कि वे पढे और योग्य इन्जीनियरों को काम की देख-भाल के लिये रक्खे और अपने पुराने अभ्यासी लोगों को, जो प्रारम्भ से काम करते-करते इतना अभ्यासी होकर उक्त पद पर पहुँचे है, निकाल दें अथवा कम पढे मुनीमों व मुन्शियों के स्थान पर योग्य वकील रक्खे जावें इत्यादि। बेकारी का मुख्य कारण तो काम की कमी है, न कि योग्य तथा शिक्षित लोगों की कमी अथवा उनके काम में कोई खराबी है। इस प्रकार की अदला-बदली से तो समस्या में अथवा बेकारों की संख्या में कोई अन्तर न होगा। हाँ

यह आवश्यक है कि इस अदला-बदली मे खर्चा अधिक बढ जावेगा और यह भी विचारने की बात है कि ऐसे आर्थिक सङ्कट के समय मे जनता ऐसे खर्चे को सहन कर सकेगी अथवा नहीं। पश्चिमी देशों में जहाँ जनता यहाँ से अधिक उन्नतिशाली है और जहाँ मज़दूरों की कमी है, इस प्रकार के उपायों से सम्भवत कुछ लाभ हो सकता हो, परन्तु भारतवर्ष ऐसे निर्धन देश में, जहाँ मज़दूरों की संख्या अधिक है, ऐसी योजनाओं से कोई लाभ न होगा।

फिर बेचारे अशिक्षित और कमज़ोर मनुष्यों का क्या होगा, जो निकाले जावेंगे। क्या वे फिर से किसानी के लिये जावेंगे ?

किसानी में वैसे ही लोग पेट पाल नहीं पाते हैं ? क्या उसमें यह लोग और संख्या बढ़ावेंगे अथवा भूखे रह कर अपने प्राण देंगे।

वर्तमान उद्योग-धन्धों में काम को बढाना वस्तुत आवश्यक है, परन्तु यदि उसमें इतनी गुञ्जाइश हो। कहा गया है कि डाक्टरी पेशा के लोग देहातों में फैल जावें और वहाँ इसी धन्धे से अपना जीवन निर्वाह करें। परन्तु विचार करने की बात है कि देहात में कितने मनुष्य ऐसे हैं, जो स्थानीय वैद्य या हकीम की दवा कर सकते हों। देहाती किसानों को पेट भर भोजन तो मिलता नहीं, फिर यह कैसे सम्भव है कि वे दवा में इतना पैसा खर्च कर सकेंगे। ऐलोपैथिक रीति की दवा वैसे ही बहुत मँहगी पड़ती है और ऐसी स्थिति में देहातों में इसका भलीभाँति चलना और इसके द्वारा जीवन निर्वाह तो और भी मुश्किल है। डाक्टरों को तो देहातों में अपनी दवा का मूल्य मिलना भी सम्भवत कठिन हो। यदि यह सोचा जावे कि शासन की ओर से डाक्टरों को आर्थिक सहायता दी जाये, तो विचारणीय बात है कि इस प्रकार की सहायता कब तक और कहाँ तक दी जा सकती है। और इस प्रकार कितने दिनों काम चल सकेगा। स्थायी रूप से तो इस प्रकार की योजना चल नहीं सकती और न कोई शासन इस प्रकार सदा के लिए सहायता ही दे सकता है।

सरकारी नौकरियों में कुछ वृद्धि हो सकेगी, ऐसी तो आशा ही व्यर्थ है। देश में वैसे ही शासन-व्यय बहुत अधिक है और उसमें कमी की आवश्यकता है, फिर बेकारों को और नौकरियाँ दी जा सकें, और उससे समस्या में कोई विशेष कमी की जा सके, ऐसा सम्भव नहीं मालूम होता। आखिरकार सरकारी नौकरियाँ कुछ थोड़े से ही लोगों को मिल सकती हैं।

कुछ थोड़े से बेकारों की खपत बीमा (Insurance), हिसाब-किताब (Accountancy) और लेखक (Journalism) इत्यादिक कार्यों से अवश्य हो सकती है, परन्तु यह धन्धे भी बेकारों की अधिक खपत नहीं कर सकते और न इनसे ही समस्या का अन्त हो सकता है।

अतएव बेकारी का वास्तविक उपाय न तो सरकारी नौकरियों में है और न छोटे-छोटे पेशों में ही, वरन् व्यापार और उद्योग-धन्धों की वृद्धि में है। देश में नए-नए उद्योग-धन्धे प्रारम्भ किये जावें, पुराने धन्धों को पुनर्जीवन दिया जावे और प्रचलित धन्धों की उन्नति की जावे और उन्हें मज़दूरों, अर्द्धशिक्षित तथा शिक्षित मनुष्यों के लिये अधिक काम देने की प्रोत्साहना दी जावे।

इन्हीं उद्योग-धन्धों के जीवन तथा कल-कारखानों की सहायता और उन्नति से बेकारी की समस्या दूर हो सकती है। उदाहरणत गत दस वर्षों के अन्दर ही खादी के कार्य से लगभग ३ लाख मनुष्यों की बेकारी दूर की जा सकी है और इस धन्धे में ही दिन प्रतिदिन हजारों बेकारों की खपत होती जाती है। इसके अतिरिक्त शक्कर के धन्धे को ले लीजिये, लगभग ५ वर्ष के अन्दर ही शक्कर के धन्धे ने कारखानों में २ लाख मजदूरों और खेतों में १½ लाख किसानों को काम पहुँचाया है। २५ से ३० करोड़ रुपया इसमें लगा है और सरकार को केवल दो वर्षों में २,५५,७४,००० रुपए की आमदनी Exise Revenue से हुई है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा दूसरे धन्धे, ट्रान्सपोर्ट और बिक्री इत्यादि धन्धों में भी काफी खपत हुई है।

दियासलाई के कारखाने भी इसी प्रकार के उदाहरण हैं। जब से इस धन्धे को सरकार द्वारा संरक्षण के

रूप में सहायता मिली है, विदेश से आने वाले सामान का मूल्य १९३४ व १९३५ ई० में केवल ६,२०,००० रुपया रह गया था, जब कि १९१८ व १९१९ ई० में यही १,७६,६८,००० रुपया था। लगभग १ करोड़ १५ लाख रुपये की बचत इस प्रकार की जा सकी और लाखों भारतवासियों को काम भी मिल गया। इसी प्रकार से यदि अन्य उद्योग-धन्धों अथवा कल-कारखानों को प्रोत्साहन दिया जावे और उनकी उन्नति के लिये प्रयत्न किया जावे, तो थोड़े ही समय में सरलता से बेकारी की समस्या बहुत कुछ कम हो सकती है और सम्भव है, धीरे-धीरे इस समस्या का अन्त भी हो जावे।

केवल सोचना यह है कि कौन-कौन से ऐसे उपयुक्त धन्धे हैं, जो हमारे देश में सुविधा से चलाये जा सकते है और जिनके द्वारा देश का भला भी हो सकता है तथा विदेशी व्यापार और उसके द्वारा बिदेशों में जाने वाला रुपया बचाया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-सूची देखने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि बहुत सी वस्तुएँ ऐसी हैं, जो हम अन्य देशों से मँगाते हैं और जो थोड़े समय में तथा थोड़ी पूँजी में ही अपने देश में बनाई जा सकती है। आयात का ५६ फीसदी व्यापार ऐसी ही वस्तुओं में होता है। इस प्रकार के पदार्थों में सूती कपड़ा, रेशम व रेशमी कपड़े, औजार, वैज्ञानिक तथा प्रयोगिक उपकरण, तेल इत्यादिक पदार्थ, रङ्ग, ऊनी कपड़े, लोहा का सामान, कागज़ इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन पदार्थों से लगभग ७० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष विदेशों में जाता है। इन्हीं वस्तुओं में से उपयुक्त और शीघ्र बनने वाले पदार्थ छाँट कर जिन प्रान्तों, स्थानों तथा परिस्थितियों में वे बन सकें, उनको प्रोत्साहन देना चाहिये।

पदार्थों के बनाने में और भी कई धन्धों की वृद्धि होगी, जो प्रत्येक धन्धों की उन्नति के साथ प्राय: सम्बन्धित रहते हैं। उदाहरणात माल ले जाने, बिक्री तथा बैङ्क इत्यादि संस्थाओं का प्रबन्ध। इन धन्धों में बहुतों को काम मिल जावेगा। पदार्थों की उत्पत्ति और उनकी बिक्री तक बहुत से दलाल भी बीच में आ जाते हैं और उनमें भी बहुत से बेकारों की खपत होती है। विदेश जाने वाला लगभग ७० करोड़ रुपया इस प्रकार बचाया जा सकता है और यदि सम्बन्धित काम धन्धों में इससे आधी रकम का भी काम मिल सका तो बेकारों के लिये १०० करोड़ रुपया प्रति वर्ष मिल सकेगा, जिससे वे अपनी रोज़ी कमा सकेंगे।

अन्य देशों से सामान न लेने पर उन्हें सामान भी कम भेजा जावेगा। बाहर भेजे जाने वाले पदार्थों में तेलहन और खनिजों की संख्या सबसे अधिक है। अत वे ही पहले रोके जावेंगे। तेलहन से उद्योग धन्धों की उन्नति में काफी सहायता मिलेगी। चमड़े के पदार्थ देश में बनाने में खाल का प्रयोग होगा, उसे साफ करने इत्यादि का काम भी साथ में लेना पड़ेगा और इस प्रकार नए नए धन्धों के काम बढ़ सकेंगे। सन इत्यादि ऐसी सामग्रियों में जो केवल भारतवर्ष में हो उत्पन्न होती हैं, अधिक कमी न होगी और यदि कुछ कमी होगी, तो वह देश के काम में आ जावेगी और उनके द्वारा भी नए धन्धे खुल सकते हैं।

आयात का धन इस प्रकार बचा कर अन्य देशों से अथवा उन्हीं देशों से, जहाँ से यह पदार्थ आते थे, मशीनें तथा उपज के अन्य साधन मँगाये जा सकेंगे। नई-नई मशीनों और कल-कारखानों के खुलने से देश के धन्धों को नवीन प्रोत्साहन मिलेगा। खेत के किसान तथा खेतिहर मजदूर खेती से खिच कर उद्योग-धन्धों की ओर लगेंगे और इस प्रकार खेती का बोझ भी हलका होगा। उद्योग-धन्धों के न होने से अधिकतर लोग खेती की ओर जाते है, जिससे खेतों पर काफी बोझ है। खेतों के छोटे-छोटे टुकड़े होने का एक कारण भी यह है। इसके दूर हो जाने पर खेतों को बड़ा करने अथवा उन्हें सम्मिलित करने में भी सुविधा हो सकती है।

घरेलू धन्धो की उन्नति

औद्योगिक उन्नति के अतिरिक्त बहुत से छोटे छोटे घरेलू धन्धे भी हैं, जो सरलता से और शीघ्रता से चलाये जा सकते हैं। कुछ तो इस समय भी चल रहे हैं, परन्तु सहायता और सहानुभूति न होने के कारण उनकी दिन प्रतिदिन अवनति होती जाती है। बहुत से कलाकौशल तो

प्राय मृतप्राय हैं, यदि उन्हे थोड़ी सी सहायता दी जा सके और उनकी बिक्री में सुविधा हो सके तो बहुत से लोगों को, जो इस समय बेकार हैं, सरलता से अपनी जीविका कमाने का अवसर मिल सकेगा। इन घरेलू धन्धों की उन्नति की ओर सयुक्त प्रान्त की सरकार का ध्यान भी गया था और उसकी नियुक्त इण्डस्ट्रियल कमेटी (Industrial Committee) ने अपनी रिपोर्ट में ऐसे पदार्थों की एक सूची भी प्रकाशित की है, जो बिना किसी खास मशीन के घर पर ही बनाए जा सकते है।

वैसे तो सूची हो काफी बड़ी है। लगभग २००, या २५० पदार्थों के नाम उसमें है, परन्तु तो भी वह सम्पूर्ण नहीं है और भी पदार्थ इसी प्रकार के हो सकते हैं, जो उसमें छूट गये हों। देश और क्षेत्रों की जाँच तथा स्थानीय कार्य-कर्ताओं से पूछ-ताछ करने से उनका पता लग सकता है।

ऐसे पदार्थों को बनाने और इन घरेलू धन्धों की उन्नति से भी समस्या बहुत हल हो सकती है और बहुत से पढे व अनपढ़े लोगों को काम मिल सकता है। वास्तव में भारतवर्ष ऐसे देश के लिये इस प्रकार के घरेलू उद्योग-धन्धे अधिक लाभदायक है। बड़े-बड़े कारखानों की अपेक्षा इन धन्धों के द्वारा इस देश की बेकारी अधिक सरलता और सुविधा से दूर हो सकती है। भारतवर्ष ऐसे देश में जहाँ अधिकतर खेती होती है, वास्तव में ऐसे ही धन्धों की विशेष आवश्यकता है। किसान खेती के बाद लगभग छः महीने बेकार रहते है और इस समय को इन उद्योग-धन्धों में व्यतीत करके वे भली-भाँति अपने जीवन के लिये आवश्यक धन पैदा कर सकते हैं। दूसरे इसमें अधिक मूलधन की भी आवश्यकता नहीं, केवल थोड़ा सङ्गठन तथा दस्तकारी का ज्ञान ही पर्याप्त होगा। इन धन्धों के लिये आवश्यक सामग्री की भी कमी नहीं, वे तो प्राय. गाँव-गाँव में मिल जाती है और वहीं उनका प्रयोग भी हो सकता है। देहातों में मजदूर भी सस्ते में मिलते हैं, केवल उन्हें एक-दो महीने की शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ेगा, ताकि वे दस्तकारी का विशेष ज्ञान पा जावें और उसके अनुसार ठीक तरह से काम करके उत्तम पदार्थ बना सकें।

बिजली तथा इस प्रकार की अन्य शक्तियों से भी सहायता ली जा सकती है। कहीं-कहीं तो इस प्रकार की शक्तियों की सुविधा है भी और ऐसे स्थानों पर तो इनसे काफी सहायता मिल सकती है।

ग्राम-सुधार योजना से काम

सरकार की ग्राम-सुधार योजना से इन धन्धों को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। ग्राम-सुधारक गाँव-गाँव में घूमते ही है। वे वहाँ की पुरानी कला-कौशल और धन्धों की जाँच भी कर सकते हैं और जाँच करने पर ग्राम-वासियों को अपनी कला-कौशल व दस्तकारी को पुनर्जीवित करने की शिक्षा देकर, प्राय नष्ट व दबे हुए धन्धों को उठाकर उन्हें नए ढङ्ग से चला सकते हैं और इस प्रकार ग्रामवासियों की आय में वृद्धि करके उनका वास्तविक सुधार कर सकते हैं। ग्रामवासियों का वास्तविक कष्ट तो उनकी निर्धनता ही है और इसी के बोझ से तो वे दिन-रात दबे रहते हैं। इस बोझ को हटाना ही उनके लिये सबसे बड़ा परोपकार और सुधार है। फिर बहुत से बेकारों को इसमें काम भी मिल सकता है। देश के नेताओं और दरिद्रों के एकमात्र सेवक महात्मा गाँधी ने इस ओर ध्यान दिया है और भारतीय ग्राम उद्योग सङ्घ की स्थापना करके देश का ध्यान इस अत्यन्त आवश्यक काम की ओर आकर्षित किया है। सङ्घ ने अपने एक वर्ष के काम में काफी सफलता प्राप्त की है और भविष्य में अधिक सफलता की आशा भी है।

जापान का उदाहरण

इस सम्बन्ध में अपने पड़ोसी जापान का उदाहरण अधिक उपयुक्त है। जापान की उन्नति अधिकतर घरेलू धन्धों से ही हुई है। वहाँ घरेलू धन्धे ही अधिक हैं और उन्हीं के द्वारा अधिकतर पदार्थ बनते हैं। ज्यादातर काम घरेलू कारखानों में ही होता है, बड़े-बड़े कारखाने तो नाम मात्र को ही है। टोकियो व्यापारिक सङ्घ की १९३५ की रिपोर्ट में लिखा है कि जापान में ९६ प्रतिशत कारखाने ऐसे है जिनमें केवल १०० मज़दूर काम करते हैं, लेकिन छोटे-छोटे कारखाने जिनमें केवल ५ या ६ मज़दूर काम करते है, उनकी

इसमें गिनती नहीं। औद्योगिक क्षेत्र में जापान की स्थिति किसी प्रकार भी कम नहीं कही जा सकती। जितने कम समय में और जितनी कठिनाइयाँ होते हुए भी जिस शीघ्रता से जापान में देश की औद्योगिक उन्नति हुई है, उसका अधिकतर श्रेय घरेलू धन्धों और कारखानों को ही है।

भारत-सरकार और विशेषकर प्रान्तीय सरकारों को भी अपनी औद्योगिक उन्नति के लिये छोटे-छोटे घरेलू कारखानों पर ही भरोसा करना चाहिए। ऐसे स्थानों पर, जहाँ आवश्यक सामग्रियाँ सस्ते में आसानी से मिल सके, ऐसे कारखानों को स्थापित करना अथवा करवाना चाहिये और थोड़ा सा मूलधन लगा कर और जहाँ लोग स्वय लगा सके, उन्हें इसके लिये प्रोत्साहित करके इन कारखानों की वृद्धि तथा उन्नति कराना चाहिये।

शिक्षा प्रणाली मे सुधार

सरकार की ओर से दस्तकारी की शिक्षा का प्रबन्ध जरूरी है और उसके इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रथम तो प्रारम्भिक साधारण शिक्षा अनिवार्य करनी पड़ेगी। इसके उपरान्त प्रत्येक मनुष्य को साधारण शिक्षा के साथ-साथ, किसी न किसी तरह की दस्तकारी की शिक्षा लेना आवश्यक हो और ऐसी शिक्षा अधिक समय तक दी जावे, ताकि किसी एक काम में विद्यार्थी निपुण हा सके और तुरन्त ही किसी धन्धे में लग सके। शिक्षा के इस ढङ्ग से उद्योग-धन्धों की उन्नति भी हो सकेगी और बेकारी का अन्त भी हो जावेगा। जापान में भी इसी प्रकार की शिक्षा की योजना थी। भारतवर्ष के लिये भी इसकी आवश्यकता है। प्रचलित शिक्षा-प्रणाली से तो धन के अपव्यय के अतिरिक्त अधिक कुछ हाथ लगता ही नहीं, वरन् यह कहा जावे कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली के कारण ही शिक्षित समाज में इतनी बेकारी है तो अधिक ठीक होगा।

प्रस्तावित शिक्षा-सुधारों में ऐसी आयोजना भी की जावेगी। अस्तु, शिक्षा का प्रश्न तो हल हो जाता है, अब केवल थोड़े से मूलधन का प्रश्न रह जाता है।

मूलधन का प्रश्न

बहुत समय तक ऐसा समझा जाता था कि भारत का धन उद्योग-धन्धों के लिये निकलेगा ही नहीं, परन्तु वह समय नहीं रहा। थोड़ी सी संरक्षणता होने पर, काफी मूलधन मिल जाता है। उदाहरणत शक्कर के धन्धे को ही ले लीजिये। सरकार द्वारा संरक्षण मिल जाने पर, शक्कर के धन्धे में मूलधन की कमी नहीं रही। कम सूद पर भी थोड़े से समय में सरकार को अपने उधार की पूरी रकम मिल गई। बैङ्क की दर भी इस समय कम है, अब तो संरक्षण तथा सुरक्षिता के आश्वासन पर उद्योग धन्धों के लिये रुपये की कमी नहीं रह सकती। देश के नेता उद्योग धन्धों को खोलने और चलाने के लिये राष्ट्रीय भावों की प्रेरणा से चन्दे के रूप में ही काफी धन इकट्ठा कर सके। खादी-भण्डार और चर्खा व खद्दर के काम में ही कई करोड़ रुपया इकट्ठा हुआ और लगा है। कागज के काम में भी काफी मूलधन लगा है। जब इस प्रकार से रुपया लग रहा है, तो सरकार के लिये तो कोई विशेष कठिनाई हो ही नहीं सकती।

वास्तविक स्थिति

सक्षेप में स्थिति इस प्रकार है —

(१) उद्योग धन्धों में लगाने के लिए रुपया काफी है।

(२) शिक्षित बेकार नवयुवक तथा मजदूर बहुत हैं।

(३) आसानी से चलने वाले उद्योग-धन्धे भी बहुत हैं और उनकी माँग भी अधिक है।

(४) केवल सरकार की सहायता, सहानुभूति और एक निश्चित नीति की कमी है।

यदि शासन इस कमी को दूर कर दे और इन सब शक्तियों को एकत्रित करके इनका उचित प्रकार से सङ्गठन कर दे, तो देश की वास्तविक समस्या शीघ्र सरलता से सुलझ सकती है। शासन के लिये इस काम में कठिनता भी नहीं। उधार लेकर अथवा सुरक्षिता का आश्वासन देकर मूलधन का प्रबन्ध हो सकता है। वास्तव में सरकार की इच्छा इस ओर देखकर ही बहुत से लोग स्वय ही अपना धन ऐसे धन्धों में लगाने लगेंगे और

यदि ऐसा न भी हो तो उधार इत्यादि लेकर नवयुवकों को प्रारम्भ में धन की सहायता दें और रुपया वापिस मिलने पर ऐसे कारखानों पर अपना अधिकार रक्खें। रुपया वापस मिल जाने पर वे स्वतन्त्र किये जा सकते है।

परन्तु इससे भी अधिक आवश्यक काम सरकार के लिए इन कारखानों से बने हुए पदार्थों की विदेशी प्रतिद्वन्दिता से रक्षा करना है। संरक्षण, सहायता इत्यादि देकर, मुद्रा नीति द्वारा अथवा विदेशी पदार्थों की मनाही करके किसी प्रकार से भी उनकी रक्षा आवश्यक है। दूसरे सङ्गठन, शिक्षा का प्रबन्ध, धन की सहायता इत्यादि भी प्रारम्भिक काल में विशेष रूप से जरूरी होंगे। ऐसा होने पर ही उन उद्योग धन्धों की उन्नति हो सकेगी। बेकारी को दूर करने तथा जन साधारण के जीवन को सुखी तथा आनन्दमय बनाने के लिये इस बात की विशेष आवश्यकता है। वास्तव में बेकारी को दूर करने का उपाय उद्योग-धन्धों की उन्नति है और विशेषकर घरेलू धन्धों की।

पंछी

[श्री० उजागर चित्रभास]

उड़ चले किस ओर पंछी
कौन सी दिशि-अङ्गना के प्रेम मे प्र विभोर पंछी?

वायु की कोमल हिलोरो—
मे बिना श्रम बह रहे से
आप अपने से अपरिचित
शब्द मे कुछ कह रहे से

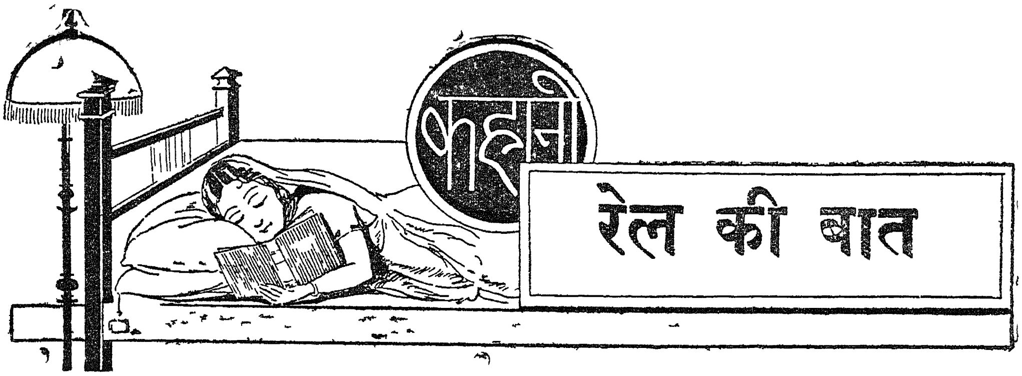
शान्त छाया मे गगन की
ताप-दुख सब भूलते-से
आत्म-रव की डोरियो मे
मस्त होकर झूलते-से

छोड़ने नीचे अवनि का तुमुल क्रन्दन शोर पंछी!

मलय मारुत के झकोरो—
से सजग श्रम हीन होकर
अन्तरिक्ष प्रदेश मे
निर्भय सहज उड्डीन होकर

ओस के कोमल कणो से
हृदय-तल तक सिक्त होकर
तारको की रजत किरणो से
विमल अभिषिक्त होकर

किस सुनहले देश मे होगा तुम्हे फिर ओर पछी?



रेल की बात

[श्री० भारतीय, एम० ए०]

इन्टर क्लास में दाखिल होते ही ट्रेन चल पड़ी। हम लोग बैठने का स्थान ढूँढ़ने लगे। कोने में एक तरफ़ पूरा बर्थ खाली पड़ा था। सामने वाले बर्थ पर एक प्रौढ सफेद चद्दर बिछाये लेटे अखबार पढ रहे थे। खिड़की से आती हुई हवा रह-रह कर उनके खिचड़ी हो रहे पट्टे को लहरा देती थी।

मैंने बर्थ पर बैठते हुए कहा—'मिस्टर यादव, सोने का तार कुछ देर में लगेगा, अभी बिस्तर खोलने की आप तकलीफ़ न करें।'

मिस्टर यादव ने 'होल्ड आल' ऊपर बर्थ पर ठूँसते हुए कहा—'हमारी बला से, तुम सोओ चाहे न सोओ, पर मैं अब बैठ नहीं सकता। सबेरे से. '

मैंने कहा—'मालूम है, सबेरे से आपने बड़ी कमर-तोड़ मेहनत की है, पर आप क्या आज सो सकते हैं ?'

वह मुझे खिड़की के पास ठेल कर सोने चला था, पर मैंने वैसा करने न दिया। आखिर वह झुँझला उठा, बोला—'न सोऊँगा, मेरी बला से।' और उसने सिगरेट जला ली और मुस्तैदी से कश खींचने लगा।

धीरे-धीरे हम लोगों की बातें शुरू हुईं, फिर बहस-छिड़ गयी। यह नित्य का धन्धा था, पर आज काफी फ़ुर्सत थी—काफी इतमीनान था। बात साहित्य से आरम्भ हुई—राजनीति, समाज और धर्म से होती हुई वेश्याओं पर टिकी।

मैंने कहा—'यह तुम्हारी धारणा बिलकुल ग़लत है कि वेश्याओं की समाज को ज़रूरत है। यह संस्था केवल हमारी सभ्यता के पतन की माप है।'

वह बोला—'पर आदिम काल से यह रहा है और रहेगा। और फिर समाज में यदि यह न रहेगा तो हमारा गार्हस्थ्य जीवन कलुषित हो उठेगा—हमारी स्त्रियाँ भ्रष्ट हो उठेंगी।'

मैंने ताव से कहा—'क्या बकते हो —' मेरे शब्दों में सात्विक क्रोध आ गया था। सामने लेटे हुए सज्जन एकाएक चौंक कर उठ बैठे। मैंने एक ही झलक में उनके रोबीले चेहरे और शरीफ़ाना अन्दाज़ को भाँप लिया। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो वे हम लोगों के बीच दखल देने के लिए मजबूर हो रहे हों। पर वे केवल चुपचाप बैठ कर फिर अपना अखबार पढ़ने लगे।

मिस्टर यादव ने व्यङ्ग करते हुए कहा—'मिस्टर पी, तुम चौंको चाहे जितना, पर समाज में तुम सबको देवता नहीं बना सकते। मनुष्य तो मनुष्य है। वह अपनी कमज़ोरी को छोड़ कर मनुष्य नहीं रह सकता।'

मैंने सक्षिप्त प्रश्न किया—'आखिर आप कहते क्या हैं ?'

'कहते क्या हैं—यही कि मानव समाज में कुछ ऐसे पुरुष, कुछ ऐसी स्त्रियाँ अवश्य रहेंगी, जो 'सेक्स मारैलिटी' के बन्धन से बँधी नहीं रहना चाहेंगी। आखिर उनके लिए कहीं जगह होनी चाहिए कि नहीं।''

मैंने उसे धिक्कारते हुए कहा—तुम्हें शर्म आनी चाहिए इस विचार पर। क्या तुम कुछ चोरों के लिए कुछ ऐसे घर अरक्षित छोड़ दोगे जिसमें वे चोरी कर सकें।

"मैं यह नहीं कहता, पर यदि तुम मनुष्य मात्र को सन्तुष्ट कर दो तो क्या तुम समझते हो वे चोरी न करेंगे ! चोरी का सम्बन्ध मानव प्रकृति से है, धन दौलत से नहीं—"

"ये बे सिर-पैर की बातें हैं मिस्टर—"

"सुनो मिस्टर पी, सेन्टीमेन्टल होनेसे काम नहीं चलता। मानव मनोविज्ञान के सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह असम्भव है कि जो वेश्या हैं उन्हें सुधार कर आप देवी बना सकें, जो लम्पट है उन्हें सच्चरित्र बनाया जा सके। भला इसी में है कि वे जिस हालत में हैं, पड़ा रहने दिया जाय।"

मैंने कहा—"देखो 'सेन्टिमेन्ट' कोई बुरी चीज़ नहीं। यदि उसका उपयोग हो सके तो यह मनुष्य को देवता बना सकता है। जिसकी तुम हँसी उड़ाना चाहते हो उसी के आधार पर मनुष्य की महत्ता का प्रासाद खड़ा होता है। क्या तुम्हें यह बात आघात नहीं पहुँचाती कि ये वेश्याएँ हमारी ही बहू-बेटियाँ हैं। क्या उन्हें उसी हालत में देखने में तुम्हें कुछ भी ग्लानि नहीं होती।"

मिस्टर यादव ठहठहा कर हँस पड़े—"यदि मनुष्य इतना सेन्टिमेन्टल हो जायगा तो उसका अस्तित्व ही दुनिया से उठ जायगा। फिर आप गाय का दूध न पीयेंगे.. "

वह जाने क्या-क्या कहने जा रहा था कि सामने बर्थ पर बैठे सज्जन बोल उठे—"देखिए—आप लोग अभी मेरे सामने लड़के हैं। मेरे बीच में दखल देने से बुरा तो न मानिएगा।"

हम दोनों एकटक उनकी तरफ देखने लगे। हम दोनों को कुछ नागवार सा लगा। पर हम दोनों इस आशा से उनकी तरफ देखने लगे कि शायद हमारे ही पक्ष का वे समर्थन करने वाले हों। हम दोनों के मुख से साथ ही निकला—"नहीं-नहीं, बुरा मानने की कौन सी बात है। यह तो साधारण सी बहस थी।"

सामने वाले बर्थ पर बैठे हुए सज्जन कहने लगे —

"आप देखते है, मेरी उम्र क्या होगी। अभी आप दोनों की उम्र मिल कर मुझसे कम ही होगी। ज़्यादा से ज़्यादा आप लोगों की मिलाकर चालीस होगी, मैं पचास पार कर चुका हूँ और दो ही एक साल में साठ को पहुँचता हूँ। फिर चाहे मैं सठिया जाऊँ, पर अभी मैं होश-हवास की बातें कर सकता हूँ।"

हम दोनों को हँसी सी आ गई, पर हम दोनों ने बड़े अदब से उसे दबाया और उनकी बातें सुनने लगे। वे अब डँट कर बैठ गये थे और कह रहे थे—"आप लोग शहर के रहने वाले हैं। मेरा रहना देहात में होता है। हम लोग जिमीदार हैं, जिनके नाम से अब कॉंग्रेस वालों को चिढ है। एक ज़माना था, जब मैं भी आप लोगों की तरह जवान था, पर वह जमाना और था। तब बीस साल की उम्र ज़्यादा नहीं समझी जाती थी। जब तक शादी न हो जाय, बच्चे न हो जायँ, बाप-माँ जिन्दा रहें, तब तक हम लोग बच्चे समझे जाते थे, दुनियाँ से हमें वास्ता न था, दुनियाँ के मसलों पर हम ग़ौर करने लायक न समझे जाते थे—"

हम लोग सुन रहे थे। बीच बीच में एक दूसरे को ऐसी नज़र से देख लेते थे कि यह कहाँ का पवाँरा छिड़ गया।

वे प्रौढ़ जिमीदार साहब कहने लगे—"देखिये, मैं अपनी आप-बीती सुनाता हूँ। उस वक्त मेरी उम्र आप ही के बराबर कोई बीस-इक्कीस की रही होगी। पर मैं आप से तगड़ा था, मस्त था, लापरवा था। हमारा काम था कुश्ती लड़ना, शिकार खेलना, गाना-बजाना, हँसी-मज़ाक। यह नहीं कि पढ़ने लिखने से हमारा सरोकार न था, पर हमारी पढ़ाई जीवन का उद्देश्य न था—केवल अलङ्कार था। मेरे लिए दो टीचर रक्खे गये थे। एक अङ्गरेजी पढ़ाता था, दूसरा तहज़ीब सिखलाता था। मुझे फोटोग्राफी का भी शौक था। मेरे मास्टर मुझे उसमें भी सहायता करते थे। उन दिनों मेरे पिता जिन्दा थे, मेरी शादी न हुई थी। एक दिन की बात है, मै बगल में केमरा लटकाये, हाथ में बन्दूक लिए जङ्गल की तरफ निकल पड़ा था। सोचा था, अगर कुछ मिला तो शिकार करूँगा। नहीं तो नदी के तट पर बैठ कर सुहावाने दृश्य का फोटो लूँगा। हल्की सी बदली थी। रह-रह कर धूप निकल आती थी। बरसात का पहला पानी पड़ चुका था। दबी हुई धूल के बीच-बीच में घास के

अँखुए उभड़ रहे थे। खेतों में किसान 'बिरवाही' मारने लगे थे।

"जब मैं जङ्गल में दाखिल हुआ उस समय चरवाहे अपने ढोरों को लेकर चराने पहुँच गये थे। गाय, भैंस, और बकरियों के झुंड छिटके हुए चर रहे थे और उनके चराने वाले लड़के-लड़कियाँ अपना-अपना गिरोह बना खेल रहे थे। मैं उन्हें देखता हुआ आगे बढ़ गया। घने जङ्गल तक पहुँचने में करीब आधे मील का रास्ता था।

"नदी तक पहुँचते-पहुँचते कई मोर भाग कर झाड़ियों में घुस गये, कई तीतर अपना बोलना भूल फुर से उड़ गये, कई खरगोश मेरा रास्ता काट गये। पर उनमें से एक पर भी वार न कर सका। आषाढ़ के आरम्भ की वह पूर्वान्द की पुर्वाई हवा अजीब आलस पैदा कर रही थी। जब वह ज़मीन छूती हुई, लहराती हुई निकलती तो हृदय में अजीब सी गुदगुदी होती। जी में आता कि किसी वृत्त की साया में लेट जाऊँ और आनन्द लूँ। चलते-चलते मैं झाड़ियों से बाहर निकल गया। सामने महुए के वृत्त हरे-हरे पत्तों और फलों से लदे थे। डाल पर बैठे हुए पत्ती और शाखामृग फलों को कुतर-कुतर कर खाते गिराते थे। कुछ दूर पर जङ्गली नदी टेढ़ी-मेढ़ी बल खाती बह रही थी। मुझे यह दृश्य ऐसा भला लगा कि मैं वहीं एक घने मधूक वृत्त की छाया में बैठ गया। बन्दूक एक तरफ डाल मैंने केमरा सीधा किया। कई एक स्नैपशाट लिए। एकाएक अँधेरा हो जाने के कारण केमरे को बन्द कर देना पड़ा। देखा तो आसमान में बादल घने हो रहे थे, हवा रुक रही थी। मैंने अब लौट चलना मुनासिब समझा।

"मिस्टर, आप लोग शहरों में रहते हैं, हम देहात के लोग सड़क और मोड़ का ध्यान नहीं रखते। हमें केवल दिशा का ज्ञान रहता है कि किधर जाना है और किधर जा रहे हैं। मैंने जङ्गल से बाहर होना आरम्भ किया। महुए की बारी को पार न कर पाया था कि बूँदें पड़ने लगीं। मैं जितनी देर में मैदान पार कर किनारे के बड़े बट वृत्त के नीचे पहुँचूँ कि बड़ी-बड़ी बूँदों ने काफी भिगो दिया। मैं उस सैकड़ों तने वाले वृत्त के बड़े तने से सट कर खड़ा हो गया। पानी घुमड़-घुमड़ कर बरसने लगा था। चिड़ियाँ प्रसन्न हो डालों पर बोलने लगी थीं। बन्दर पानी में भीगते हुए डालों पर उछल रहे थे और मैं यह सब देखता हुआ भीगने से बचने के लिए वृत्त के तने से सटा जा रहा था। इसी बीच मेरे कानों में 'बिरहे' की तान पड़ी। जान पड़ा, मानो कोई पास ही गा रहा है। गले का सुरीलापन मेरे कानों से छिपा न रहा। उत्सुकता से मैंने गाने वाले के लिए इधर-उधर आँखें दौड़ाई, पर कोई दिखाई न पड़ा। फिर मुझे ऐसा जान पड़ा मानों इसी बरगद के मोटे तने की ओट से आवाज़ आ रही है। मैं घूमकर उधर जा पहुँचा। मेरे पहुँचते ही गाने वाला शर्मा कर चुप हो गया। मैंने देखा, एक पन्द्रह-सोलह बरस की लड़की भीगती हुई, दुबकी, शर्माई, नीची निगाह किये, बरगद के तने से सटी, लाठी पकड़े खड़ी है। उसके भीगे हुए, फटे वस्त्रों के भीतर उसका कुन्दन सा यौवन और जलवायु पर पला स्वास्थ्य छिप न सका। मुझे अब यह कहते शर्म सी लगती है कि मैंने उसे सिर से पैर तक देखा। उसकी शृंगारहीन केशकलाप, उसकी हिरनी सी आँखें, उसके रक्ताभ कपोल और पतले होंठों को देखते ही बनता था। मैंने पूछा—"तू किसकी लड़की है रे!" वह चुप रही। मैंने डाँट कर जिमीदारी के रोब में कहा, बोली क्यों नहीं। वह धीरे से बोली—मैं इस गाँव की नहीं। मैंने पूछा, तो फिर यहाँ कैसे आई, ढोर चराने? बोली, फूफा के घर आई हूँ, उन्हीं के ढोर हैं। मैंने पूछा, तेरा फूफा कहाँ रहता है? बोली, आप के ही गाँव में। 'कौन है रे तेरा फूफा?'—मैंने फिर पूछा। उसने कहा, महाबीर! 'अच्छा तू महाबीर अहीर के यहाँ आई है। तब डरती क्यों है। बतलाती क्यों न थी?'

"उसने अब मेरी ओर देखा। मैं नहीं कह सकता। पर मैं मुस्करा पड़ा और उसने मुस्करा कर आँखें नीची कर लीं। पानी कुछ थम रहा था, फिर भी बरगद के पत्तों पर गिर कर वह 'पट-पट' शब्द कर रहा था। मैं एक क्षण उसे फिर ऊपर से नीचे देखने से अपने को रोक न सका।

मेरे मन में आया, दैव की कैसी विडम्बना है। यह सुन्दर शरीर, ये कोमल अङ्ग और यह दरिद्रता—यह कठोर जीवन ! मैंने कहा, तू तो अच्छा गाती है रे ! ज़रा सुना तो अपना गाना। वह लज्जित होकर सिकुड़ गई। मैंने कहा, देख एक बार गाना सुना दे तो तेरी तस्वीर खींच दूँ। उसने इस असम्भव प्रलोभन पर मेरी तरफ जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा, मानो जानना चाहती हो कि क्या बन्दूक से तस्वीर भी खींची जाती है। मैंने केमरे के लटकते हुए थैले को दिखा कर कहा, इसमें है तस्वीर खींचने की मशीन। उसने गौर से उसे देखा। मैंने चट केमरा निकाल लिया। दिखा कर बोला, अगर गाना सुना दे तो तेरी तस्वीर बना दूँगा। पहले वह कुछ हिचकी, पर आग्रह करने पर, प्रलोभन देने पर उसने कान पर उँगली देकर ऊँची टेर से 'बिरहा' आरम्भ किया। उसकी आवाज मानो घने जङ्गल को चीरती हुई दिशाओं में टकराने लगी और उसकी टेस मेरे युवक-हृदय में हूल पैदा करने लगी। मैं एकटक उसके मुखड़े को देखता हुआ मन्त्र-मुग्ध खड़ा था और वह आसावरी सँपेरनी की तरह विषैले सर्प से खेल रही थी।

पानी थम गया। धूप फिर निकल आई। दूर पर किसी चरवाहे की टेर सुनाई दी—"मालती ! और मलतिया !" उसने गाना रोक दिया, बोली—"हाँ—आई।" और वह चलने पर उद्यत हुई। मैंने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया। रोक कर बोला—"जाती है, तस्वीर नहीं खिंचायेगी।" वह सहमी हुई बोली—"क्या ऐसे जल्दी खिंचती है।" मैंने हाथ छोड़ कर कहा, अच्छा फिर खींच दूँगा। तू तो पास ही रहती है। सच बात तो यह थी कि एकाएक हाथ पकड़ने की अपनी धृष्टता पर मैं अनमनस्क हो उठा था। उसने कहा—"अच्छा भइया जी।" और वह लाठी के सहारे छलाँग मारती हुई चली गई। मैं जाने कितनी देर तक वहीं बरगद की जड़ के पास निर्विचार बैठा रहा, कह नहीं सकता। पर जब चलने का होश आया तब उस समय सूर्य सिर पर पहुँच रहा था।"

मिस्टर यादव दस मिनट बिना सिगरेट के नहीं बैठ सकते। दूसरी सिगरेट जलाकर उन्होंने प्रौढ़ को भी पेश की। वे बोले—"क्षमा कीजिएगा। युवावस्था में केवल एक बार मैं अपनी इच्छाओं पर काबू न पा सका था, जिसका पछतावा आज तक मुझे बना है। और इस गलती का दोष चाहे आप मुझे दें चाहे मेरी युवावस्था को। मालती से मिल कर जब मैं घर लौटा तो मेरा मन मेरे शरीर में न था। यद्यपि ढूँढ़ने पर कोई इच्छा न दिखाई पड़ती, कोई अभाव न नजर आता, पर आँखों के सामने उस लड़की की तस्वीर खिंची रहती। जी में उसी को देखने की अभिलाषा होती। उससे बातें करने को जी तड़प रहा था। शाम हुई, मैं टहलने निकल पड़ा। महाबीर का घर रास्ते से कुछ हट कर पड़ता था, फिर भी मैं उसी तरफ से निकला। गाँव की हालत शायद आप लोग न जानते हों—शहर के रहने वाले ठहरे। पर हम जिमींदार लोग जब कभी निकल पड़ते हैं, जिधर निगाह जाती है लोग झुके हुए सलाम करते ही नज़र आते हैं—चारपाइयाँ खाली हो जाती हैं। और अगर हमने किसी का नाम पुकार लिया तो वह कृतज्ञ होकर हाथ जोड़े सामने आ खड़ा होता है। किसी के दरवाज़े पर अगर हम रुक गये, कुछ हाल-चाल पूछ लिया तो वह बिना मोल का चाकर होने को तैयार हो जाता है। मैं आजकल की नहीं कहता—अब तो हवा ही बदल गयी है। उस दिन महाबीर के घर के सामने से निकलते हुए अनायास मैंने पुकारा, 'महाबिरवा !' वह तो शायद खेत से लौटा न था। उसका लड़का ढोरों में था। घर की टट्टी हटा कर किसी ने झाँका। मैंने देखा, मृगशावक सी दो आँखें मुझे देख रही थीं। मैंने पूछा—"अरे मालती, महाबीर घर पर है।" उसने सिर हिला कर धीरे से कहा—भइया जी, फूफा सीवान में हैं। मैंने कुछ न कहा, कुछ कह न सका, पर उसे एक बार देखकर मेरे होठों पर मुस्कराहट आये बिना न रही। मैं कदम बढ़ाता हुआ आगे बढ गया। एक बार मुड़ कर दबी हुई निगाह देखा तो वह चित्रवत् द्वार पर खड़ी है। फिर तो यह नित्य का धन्धा हो गया। उसी महाबीर के घर से होकर निकलना, लौटना। पहले

सिर्फ देख कर कलेजा ठंडा कर लेता था, फिर उसकी मधुर बोली का आनन्द लेने लगा। मुझे अब विश्वास हो गया कि जिस व्याधि की उत्पत्ति मेरे मन में हुई है उसी से मानों वह भी पीड़ित है। अब वह भी किसी न किसी बहाने मेरी बखरी में आती और किसी न किसी बहाने मुझे देख जाती, मुस्करा जाती। हमारी आँखें मिलने लगीं—जाने क्या समझने-बूझने लगीं, पर उनकी इस सुलह से मेरा चित्त उदास रहने लगा। किसी काम में जी न लगता था। बिना उसे देखे मुर्झाया सा पड़ा रहता था।

मेरे पिता जी काफी वृद्ध हो रहे थे। चार शादियों में मैं ही उनकी एकमात्र संतान था। मेरी माँ कभी की मर चुकी थी। घर में नौकर-नौकरानियाँ बहुत थीं। पिता जी के सम्बन्ध से मैं किसी को 'चाची' किसी को 'काकी' कह कर पुकारता था। मुझे उदास देख ऐसा जान पड़ता है, मेरी बहिन व चाची ने पिता के सम्मुख चिन्ता प्रकट की थी, नहीं तो पिता जी से मेरा सामना कब होता था। वे अपने काम व आराम में व्यस्त रहते थे और मैं अपनी दुनिया में रहता था। पर उस दिन उन्होंने बुला भेजा। मै अदब से उनके सामने जा खड़ा हुआ। वे चौकी पर बैठे अपने हाथों को शौच के प्रायश्चित्त में एक सौ एक बार मृत्तिका-स्नान करा रहे थे। पास में चिकनी मिट्टी का ढेर रखा था। सामने नौकर बड़ा सा लोटा लिए पानी छोड़ रहा था। मै सिर नीचा किये अदब से दाहिने बगल खड़ा था। मुझे देख कर वे बोले—'भइया, आज-कल क्या तबीयत ठीक नहीं रहती?'

मैंने एकाएक तन कर कहा—'नहीं तो, बप्पा, अच्छा तो हूँ।' वे फिर अपनी उँगलियों को तत्परता से मिट्टी से मलने लगे। बीच-बीच में नौकर को कुछ हिदायत देते जाते। एक बार फिर शायद मेरा ध्यान उन्हें आ गया। हाथ धोते-धोते बोले—'देखो बेटा, अपनी तन्दुरुस्ती का ख़्याल रखा करो। तुम्हें चिन्ता किस बात की, खाओ-पीयो मस्त रहो। तुम्हारी उम्र के हम थे तो अपने कुरते टोपी तक की खबर न रखते थे। तुम लोग इतनी ही उमर में जाने क्या-क्या विद्या पढ़ लेना चाहते हो। बार-बार समझाता हूँ कि पढने-लिखने से कुछ नहीं होता। तन्दुरुस्ती हजार नियामत है—बड़े-बूढे क्या योंही कह गये हैं।'

अब वे दातुन करने जा रहे थे। इस क्रिया में कम से कम बालिश्त भर की तीन-चार नीम की टहनियाँ वे चबा डालते थे और इस क्रिया के सपादन में दो घन्टे से कम नहीं लगता था। मैं कब तक खड़ा रहता। धीरे से दबे पाँव लौट कर अपनी बैठक में जा पहुँचा। लेट कर जाने क्या सोचने लगा। मन में शङ्का उठती, क्या बाप के कानों में कुछ भनक पड़ी है। फिर विश्वास हो गया। नहीं, वे गौ आदमी हैं। इन सब बातों पर क्या ध्यान देंगे। अपने पिता के इस महान-चरित्र पर मुझे अपार श्रद्धा हो उठी। मैंने मन ही मन उनके चरणों में अपना सिर रख दिया। और ईश्वर से गद्गद हृदय से भिक्षा माँगी कि उन्हें चिरंजीवी करें।

अब मेरे दिन अच्छे कटने लगे। मेरी मटरगश्ती बढ़ने लगी। शिकार के बहाने मैं जंगल में नित्य जाने लगा। पढ़ना-लिखना पिता के उपदेश के अनुसार व्यर्थ समझने लगा। मास्टर द्वय अपनी 'ड्यूटी' का ख्याल कर सन्ध्या समय मेरी मुसाहबी कर लेना आवश्यक समझने लगे। हम सब प्रसन्न थे। मैं हृदय से प्रसन्न था। जगल में प्राय नित्य मालती से मुलाकात हो जाया करती थी। जंगल का निराले से निराला कोना भी हमारे चरणों से पवित्र हो चुका था। हमारे सकेत-स्थान नित्य बदलते रहते। कभी हम नदी के तट पर जामुन के झुरमुटों में अजगर की तरह फैली हुई जड़ों पर बैठकर गाते, कभी हम पानी पर लटकी हुई सिहोर की डालियों पर बैठ कर झूलते, कभी हम करौंदे के पके फलों को तोड़ कर खाते हुए तीतरों के घोंसले ढूँढ़ते, कभी हम गायों को 'खादर' में चरने के लिये छोड़ खरगोश के बिलों की तलाश करते। दशा यह हो रही थी कि इन सब में हम अपना खाना-पीना भूल जाते—कभी-कभी अपने को भूल जाते।

कुछ ही महीनों बाद मेरी शादी ठीक होगयी।

उसकी तैयारियाँ होने लगीं। हम जिमीदारों की शादी हमारे जीवन की विशेष घटना नहीं होती, यदि इसका कोई महत्त्व होता होगा तो वह माता पिता का विशेषाधिकार है। हम इससे बच नहीं सकते, इसलिए हम इसकी विशेष चिंता नहीं करते। हमारी शादी हो गयी। हमारे घर में पिता की पतोहू आ गयी। अब वे जैसे अपने जीवन की अन्तिम अभिलाषा पूरी कर चुके थे। मैंने अक्सर उन्हें कहते सुना—"अब मुझे क्या करना है। भइया, अपना घरबार सँभालने लगें और मैं अयोध्या जी में जाकर राम नाम भजूँ। बहुत सुख किया, अब कुछ परलोक की फिक्र करनी चाहिये।" कहते-कहते एक दिन वे सचमुच चलने को तैयार हुए। मुझे बुला कर बोले—बेटा अब जिन्दगी का ठिकाना नहीं। जब तक शरीर में साँस है, भगवान का स्मरण करूँगा। अब तुम समझदार हुए, अपना बुरा-भला सोच सकते हो।' मैं क्या उत्तर देता। चुपचाप खड़ा सुन रहा था। वे कहने लगे—'मैं अब अयोध्या जी में जाकर रहना चाहता हूँ। तुम अपना कारबार देखो। जब तक मौजूद हूँ, जो पूछोगे बतला दूँगा।'

पिता जी चले गये। उनके साथ मेरी चाची, काकी भी चली गयीं, पुराने नौकर भी चले गये। अब मैं घर का मालिक था—सब कुछ था। नये-नये नौकर नौकरानियाँ भरती हुईं। इनमें मालती भी एक थी। मालती मेरी स्त्री की खास सेवा में रहती। इसी बहाने मैं उसे देख लेता, दो बातें भी कर लेता था। मालती अब खुशहाल थी। उसके तन पर अच्छे कपड़े रहते, कानों में कर्णफूल लटकते, हाथों और पैरों में चाँदी के कड़े खनकते। वह खिली जा रही थी। उसे देख कर मेरा दिल आपे से बाहर हो जाया करता था। पर मैं विवाहित था, इसलिए सुबह का भूला शाम तक घर पहुँच जाता था।

होली के दिन थे। अपने 'राज' की पहली होली आई थी। हफ्तों से ख़ुशियाँ मनाई जा रही थीं, तैयारियाँ हो रही थीं। वैसी उमङ्ग, वैसी खुशी, वैसा आनन्द फिर आज तक न देखने में आया। सबेरे से रङ्ग-रङ्ग में भीग कर दोपहर को नहा-धोकर खा पीकर बैठक के कोठे पर आराम कर रहा था। बाहर धूप चमक रही थी। भीतर ठण्डक अच्छी लग रही थी। मैं अलसाया हुआ पलङ्ग पर बैठा था। दूर कुएँ पर नौकरों के नहाने और हो-हल्ला की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। ज़ीने पर किसी के छम छम कर चढ़ने की आवाज सुनाई पड़ी। मैं समझ गया, मालती पान लेकर आ रही है। कह नहीं सकता क्यों, पर मैं सोने का बहाना करके बिस्तर पर पड़ रहा। पैरों की आहट से मैं समझ गया वह पास आकर खड़ी हो गयी है। मुझे ऐसा लगा, मानो वह गौर से मुझे झुक कर देख रही है। मेरे हृदय में गुदगुदी होने लगी। मैंने भरसक अपने को रोकने की कोशिश की, पर आखिरकार में मुस्कराहट आ ही गयी। उसने समझ लिया, मैं सो नहीं रहा हूँ। वह पान का डिब्बा सिराहने रख कर यह कहती हुई लौटने जा रही थी—यह चरित्तर! मुझे क्या, वह पान रखा है। मैंने चट से उसका बायाँ हाथ पकड़ लिया और हँसता हुआ उठ बैठा। आँखें खुलते ही उसका ठाठ देख मैं ठक रह गया। क्षण भर एकटक उसका मुखड़ा देखता रहा। उसका सौन्दर्य आज उन आभूषणों और बसन्ती साड़ी से फूटा पड़ता था। मैंने चिढ़ाते हुए कहा, आज किसे ठगने निकली हो मालती? उसने तिरछी निगाहों से मुझे तरेर कर देखा। मैं पलङ्ग से उठ खड़ा हुआ। बोला, 'आओ तुम्हारी तस्वीर खींच दूँ मालती।' और मैंने उसे पकड़ कर खिड़की के पास तख़त पर बैठा दिया। पश्चिम को ओर जाते हुए सूर्य की रोशनी साफ़ उसके कुन्दन से मुखड़े पर पड़ रही थी। मैंने चट केमरा निकाल उसके तीन-चार 'पोज़' ले लिए।

वह चलने को हुई। मैंने जाने क्यों जल्दी से केमरा अधमुंदा पलङ्ग पर फेंक उसे रोक लिया। फिर क्या हुआ, इसे कहने की क्या ज़रूरत है। कई दिन तक हम दोनों एक दूसरे का सामना करने से सहमते से थे। एक दूसरे की तरफ देखने का साहस न करते थे। वह मुझसे अकेले में मिलने से भागती। मैं उसे देखकर कतरा जाता।

मालती के लिए मेरे दिल के खिंचाव का जैसे अन्त हो गया। अब वह मेरी नज़रों में वह मालती न रही। साधारण नौकरानी मात्र थी, जिसपर ध्यान देना मेरे पद और सम्मान को शोभा नहीं देता था। पर यह मैं अब भी निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि जब कभी भूले से हमारी दृष्टि एक दूसरे से टकरा जाती थी, उस समय उसकी बड़ी-बड़ी आँखों का वह भाव मेरी नज़रों से न छिपा रहता था, जिसके कारण मेरे हृदय में एक अजीब वेदना उठती थी, जो बढ़ते-बढ़ते मुझे अपने को धिक्कारने पर विवश करती थी। पर हम लोगों की शिक्षा दीक्षा ऐसी है कि हम 'सेन्टीमेन्टल' नहीं हो सकते। मैंने धीरे-धीरे अपनी इस कमजोरी को दबा दिया और प्रायश्चित्त-स्वरूप मैंने मालती को कुछ धन देकर सन्तुष्ट कर देने का निश्चय किया। आप लोग शायद यह न जानते हों कि हम जिमींदार पैसों से अपनी आत्मा को भी शुद्ध कर लेने का अभ्यास रखते हैं।

मालती को एक बार किसी न किसी बहाने मैं देख ही लेता था। मैंने देखा कि उसके चेहरे की दीप्ति क्षीण होने लगी थी। मेरी आशंका निर्मूल न थी। अब कुछ दिनों बाद मुझे विश्वास हो गया कि मैंने उसके साथ भारी अत्याचार किया। एक दिन बाहर जाते हुए मैं उसे आदेश दे गया कि पान पहुँचा जा। मैं बैठक के ऊपर वाले कमरे में लेट कर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद वह डरती हुई हाथ में पान का डिब्बा लेकर पहुँची। मेरी आँख बचाते हुये उसने पूछा, "कहाँ रख दूँ।" मैंने बड़े साहस से कहा, "इधर ला।" और उसने हाथ बढ़ा दिया। उसने पनडब्बा वाला हाथ बढ़ा दिया और साथ ही साथ मेरी आँखों से बचने के लिये उसने मुँह फेर लिया। मैंने पनडब्बा के साथ उसकी कलाई भी पकड़ ली और खींचते हुए बोला—"मालती, मुझे पहचानती नहीं ?" उसने रुँधे हुए कंठ से कहा—"मुझे जाने दें।" मैंने कलाई न छोड़ी। बोला, "यह तेरी क्या हालत है। मालती, कैसी हो रही है।" उसने कठिनाई से इतना कहा—"क्या हालत है! आपने मुझे कहीं का न रखा। क्या आप कुछ जानते नहीं ?" मेरा जी सन्न सा हो गया। क्षण भर इस विचार ने मुझे कँपा दिया। बेचारी अब क्या करेगी! इस हिन्दू समाज में उसे कहाँ स्थान मिलेगा, इसे मैं भी जानता था। मैंने ढाढस बँधाते हुए कहा, "तू अपने घर चली जा न।" वह बोली—"मेरे घर कौन है।" मैंने पूछा, "तेरा आदमी कहाँ रहता है।" वह कुछ शर्मा सी गयी, फिर बोली—"सुनती हूँ, वे कहीं काशी में नौकरी करते हैं। मैंने तो उन्हें शादी के बाद देखा ही नहीं।" मेरे मन में उसके प्रति सहानुभूति भर गयी। मैंने तरकीब सोच ली। उसे ढाढस दिलाते हुए मैंने कहा—"तू घबरा मत। मैं तुझ पर आँच न आने दूँगा।' वह कृतज्ञता से छलछलाई हुई आँखों से मुझे देखती हुई उसे पोंछती हुई चली गयी। उसके चले जाने के पश्चात मुझे इसका अनुभव हुआ कि उसके लिये मेरे दिल में सच्ची हमदर्दी उठी थी।

महाबीर को बुलाकर मैंने मालती के पति का पता लगाया। उसके पास खत लिखवाये और उसे यहाँ आकर मालती को लिवा ले जाने के लिये खर्च भेजा। वह आया, मैंने उसकी बड़ी-बड़ी खातिरें कीं, बिदा करते वक्त उसे कपड़े-लत्ते से खुश कर दिया। मालती जा रही थी, मेरे हृदय का जैसे बोझ उतर रहा था। पर दिल जैसे बैठा जा रहा था। भीतर ही भीतर जैसे ऐसा मालूम होने लगा था कि कुछ भारी चीज़ खोने वाला हूँ। मैं अपनी इस कमजोरी पर खिजला उठता था। वह चली गयी। मैंने नौकरानी समझ उसके जाने की परवाह न की। पर उसके चले जाने पर मेरा जी जाने कैसा हो उठा। एकान्त में अपनी आँखों में उमड़े हुए आँसुओं को बहने देने से मैं रोक न सका। जी में आता था कि जी भर रोकर अपने हृदय को एक बार हल्का कर लूँ।

मालती चली गई। फिर उसकी खबर न मिली। यह भी न मालूम हुआ कि उसके बच्चे का क्या हुआ। अपने बखेड़ों में उसे एकदम भूल गया। इस बीच में मेरे लड़के लड़कियाँ हुईं। पिता का देहान्त हो गया। पन्द्रह वर्ष बाद मेरी पत्नी भी चल बसी—मैं कुछ का कुछ हो गया। जमाना कुछ का कुछ हो गया। लोगों ने

बहुत विवश किया कि अभी आपकी उम्र ही क्या है, अभी आप चालीस के भी नहीं हुए। पर मैं दूसरी शादी करने पर सहमत न हुआ। लड़कियों की शादी कर, लड़के को तालुकदार स्कूल में भेज मैं फिर अच्छी तरह अपनी ज़िन्दगी बिताने लगा था। पुराने ज़माने में हम लोग जो कुछ करते थे, घर पर ही रह कर करते थे। पर अब हमें देहाती दुनिया में मज़ा नहीं आता, इसलिए हम मौज करने शहरों में निकल जाते हैं—कभी मुक़दमे के सिलसिले में, कभी अफसरों से मिलने के बहाने, कभी तीर्थ में विश्राम करने के नाम पर। मैं भी किसी न किसी बहाने जब जी ऊबता, किसी बड़े शहर की शरण लेता। वहाँ हमारी दिनचर्या क्या होती, शायद आप लोगों को उसका कुछ अनुमान न हो। हमारा दिन वहाँ खाने-पीने, खरीद-फरोख्त, खेल-तमाशे और भोग-विलास में बीतता है। तीर्थ-स्थानों में जाकर हम गङ्गा भी नहा लेते हैं। घण्टों जाप भी कर लेते हैं, ब्राह्मणों और मंदिरों के पुजारियों को ख़ुश कर आशीर्वाद भी बटोर लेते हैं। पर यह सब जैसे अजीर्ण को रोकने के लिए पाचक सेवन की भाँति। आप इसे व्यंग न समझें, हम इस पर झेंपने वाले नहीं। हमें इसकी लज्जा नहीं। हमारा विश्वास है कि हम इस पृथ्वी पर सुख भोगने के लिए आये हैं। उस लोक में भी सुख से बीते, इसलिए हम समय समय पर धर्म का भी संचय कर दूरदर्शिता समझते हैं।

मेरी स्त्री को मरे पाँच साल हो गये थे। मैं गाँव से ऊब कर काशी में जी बहलाने पहुँचा था। दिवाली का त्योहार बीत चुका था। हलकी सरदी पड़ने लगी थी। रात के करीब नौ बजे मैं वहाँ की उसी गली में हवा खाने निकला था, जिसका नाम आजकल के शिक्षित लोग ज़बान पर लाने में हिचकते हैं। पर मैं काशी के उस गली का नाम लेना उतना बुरा नहीं समझता। आप समझ गये होंगे, वहाँ वेश्याएँ रहती हैं। मैं उसी दालमण्डी में एक पान वाले की दूकान पर खड़ा पान खा रहा था। सामने लगे हलम्बी शीशे में अपनी सूरत देखता हुआ मोंछे ऐंठ रहा था। आईने में अपनी सूरत देख मैं मन ही मन मुग्ध हो रहा था। सोचता था, क्या यह सूरत इस उम्र में भी किसी का दिल लुभाने में पीछे पड़ सकती है। देखते-देखते मुझे उस आईने में किसी सुन्दरी का मुस्कराता हुआ चेहरा नजर आया। मैंने मुड़कर ऊपर देखा तो सामने खिड़की पर बैठी एक बाई जी मुसकरा रही थी। एक बार आँखें उठीं तो फिर कुछ देर टिकी सी रह गयीं। मस्तिष्क में उथल-पुथल हो उठा। कुछ स्मरण न आता था कि उसे देख क्यों आँखें ललच उठीं। कभी देखा हो, यह दूसरी बात है, पर याद नहीं आ रहा था कि कहाँ देखा है।

पान वाले की कितनी गिलौरियाँ चबा गया और खड़ा खड़ा मुसकराता रहा। मेरे साथ मेरा विश्वासपात्र और स्वामिभक्त नौकर रामू भी था। वह इस समय भी मेरे साथ है। तीसरे डब्बे में आप उसे देख सकते है। मैंने रामू को इशारा किया। वह रास्ता ढूँढ़ कोठे पर जा पहुँचा। क्षण भर मैंने पान वाले से बाई जी का परिचय पूछा। मालूम हुआ, इनका नाम जमुनाबाई है और इस समय नगर में इसके सौन्दर्य और गले की धूम मची है। मैंने चार पान मुँह में दबा उसे रुपये फेंक दिये। रामू ने पीछे से धीरे से कहा, सरकार चलें। और मैं कोठे पर जा पहुँचा। वह नीचे ज़ीने पर बैठा अपनी बीड़ी सुलगाने में लग गया। ऊपर पहुँचते ही बाई जी ने मेरा स्वागत किया। पान हाज़िर किये। साजिन्दों की पुकार हुई। यह सब होता रहा। मैं एकटक उसका चेहरा देखता रहा। वह मुस्करा-मुस्करा कर मेरे ऊपर दृष्टिपात कर रही थी।

मुजरा हुआ। उसने ख़ूब गाया। मैंने भरपेट दाद दी और मुट्ठी भर-भर के इनाम दिये। उसने और उसके साजिन्दों ने झुक के सलाम किये। करीब ग्यारह बजे मैं घर लौट आया। सारे रास्ते मैं कुछ सोचने की नाकामयाब कोशिश करता रहा, पर मुझे भी न पता चला कि क्या सोचना था। अब मेरे दिन अच्छे कटते। सवेरे गङ्गा-स्नान करता, घाट पर बैठकर जप करता, लौटकर विश्वनाथ-अन्नपूर्णा का दर्शन करता। डेरे पर पहुँचकर खाता-पीता, सो जाता। सन्ध्या समय गपशप कर रात को जमुना के यहाँ मुजरा सुनता, दिल बहलाता। कुछ दिन बीत चले। अब हम दोनों में बेतकल्लुफी बढ़ने

सुखी कौन है ?

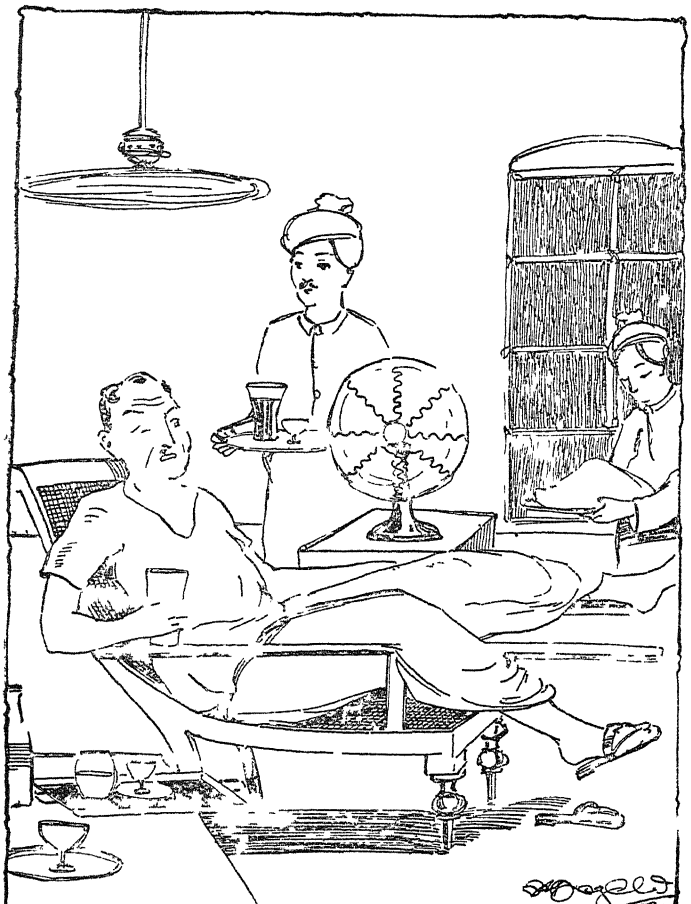
(१)



पेड़ की शीतल छाया में विश्राम करने से
सब थकावट जाती रही।

गर्मी कैसी है ?

(२)



उफ़ ! आज तो पह्खे से भी गर्म हवा
निकल रही है ।

सुखी कौन है ?

(२)



दिन भर मेहनत करने पर सूखी रोटी में भी कैसा आनन्द मिलता है।

सुखी कौन है ?

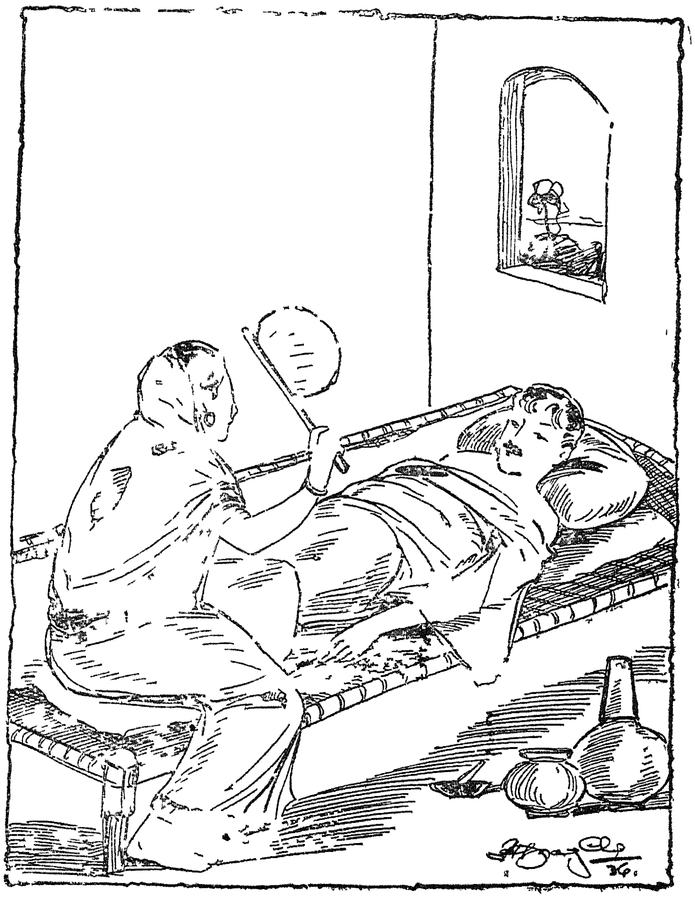
(४)



शारीरिक परिश्रम से दूर रहने वाले श्रीमानों को कैसा भी बढ़िया भोजन पसन्द नहीं आता।

सुझाव कैसा है ?

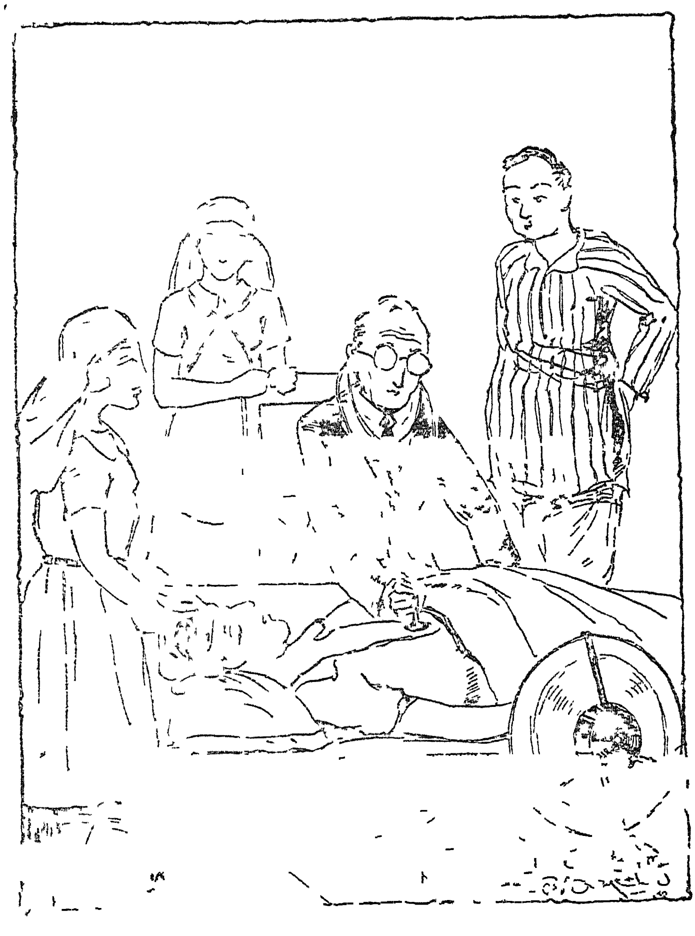
(५)



तुलसी और कालीमिर्च के काढ़े ने बुखार
को दो ही दिन में भगा दिया।

सुखी कौन है ?

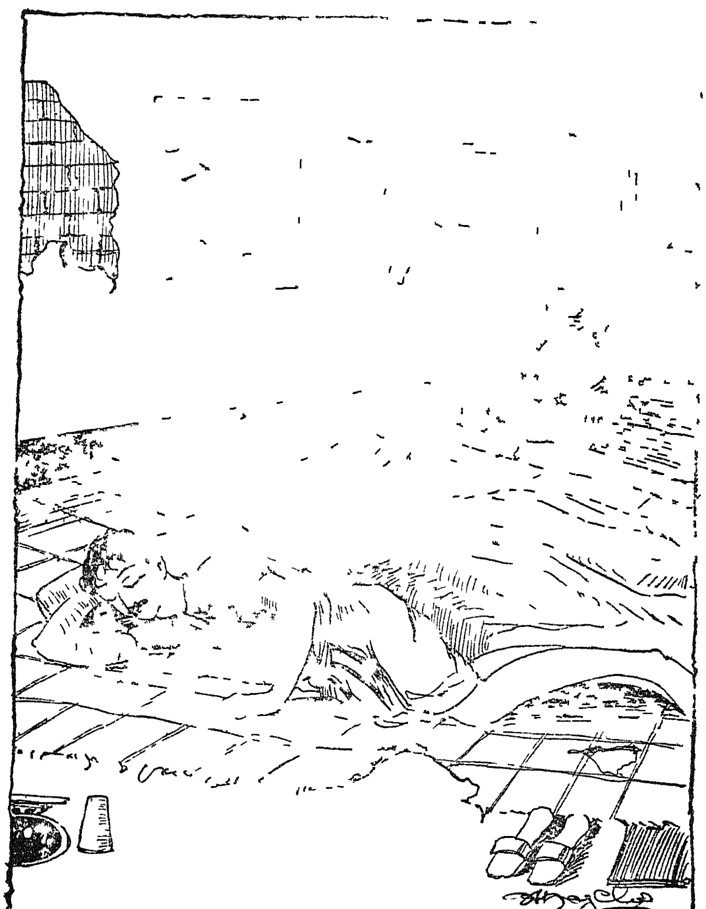
(६)



आपको जिगर की शिकायत के लिए
योरोप जाना पड़ेगा !

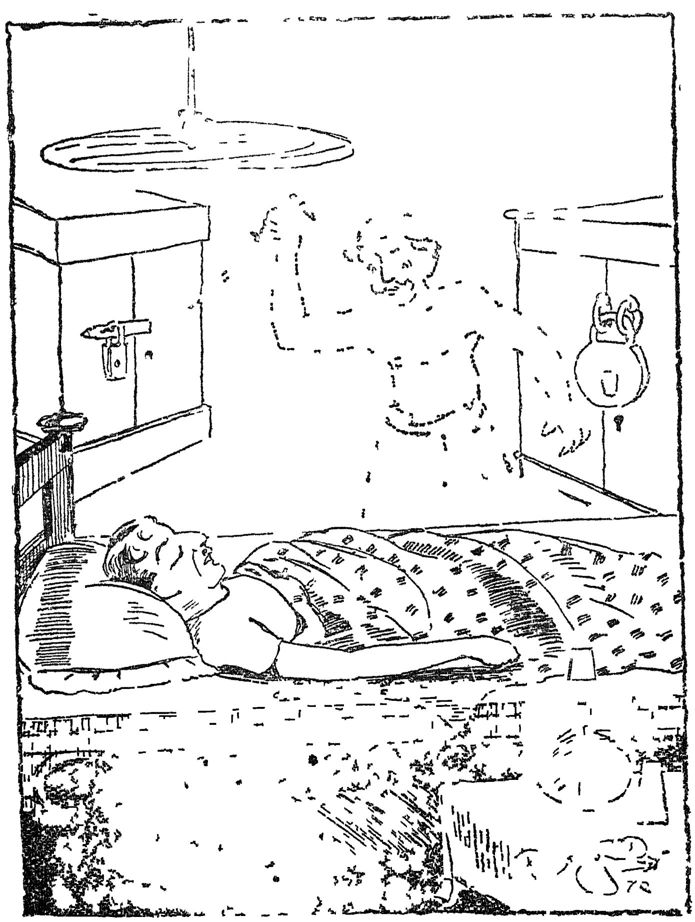
सुखी कौन है ?

(७)



ये रात को बेखटके पैर फैला कर
सोते हैं ।

(८)



यहाँ सोने पर स्वप्न में भी चोर-डाकू छाती
पर सवार रहते हैं ।

लगी। गाना बजाना कम होने लगा। गपशप, हँसी-मज़ाक की मात्रा बढ़ी। अक्सर हम अकेले बैठकर घण्टों ताश खेलते, कभी-कभी बीच-बीच में मैं हारमोनियम बजाने लगता और उससे किसी गीत को गाने की फरमाइश करता।

उस दिन कुछ सर्दी बढ़ गयी थी। अँधेरे पाख की रात हलकी बदली के कारण और भी अँधेरी हो रही थी। पर जब मैं अँधेरी सड़कों और गलियों को पार कर उस गली में पहुँचा तो वहाँ काफ़ी रौनक थी। दूकानों पर गैस की बत्तियाँ जगमगा रही थीं। उस ज़माने में काशी में बिजली का प्रबन्ध नहीं हुआ था। मैंने देखा, बाई जी कुछ मलीन सी जैसे किसी की प्रतीक्षा में बैठी है। मुझे देखते ही उनका चेहरा खिल उठा। कमरे में 'पेट्रोमेक्स' जल रहा था। उसकी दूध सी रोशनी में उसका चेहरा कमल सा लग रहा था। मैंने मुस्कराते हुए उसकी आँखों में आँखें डालते हुए कहा—"आज तुम बड़ी सुन्दर लग रही हो, जमुना।" उसने शर्मा कर आँखें नीची कर लीं। बोली—"कब से आसरा देख रही हूँ, यह तो न पूछो। रास्ता देखते-देखते आँखें पथराने लगीं।" मुझे हँसी आ गयी इस उपक्रम पर। पर मेरा हृदय उसका उपहास करने पर राज़ी न होता था। मैंने कहा—"अच्छा माफ करो बाई जी, बोलो कुछ सुनाती हो।"

मैंने फ़रमाइश की, वह हँस-हँस कर गाने लगी। उस दिन गाना ख़ूब जमा। साजिन्दों ने ख़ूब बजाया। बाई जी ने भी अपना जौहर दिखाया। मैं तो आनन्द-विभोर हो रहा था। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा मानो मैं सङ्गीत की मधुर लहरियों पर बहता जा रहा हूँ। गली में सन्नाटा छा गया। तमाशबीनों का झुण्ड भी चला गया था। अधिकतर खिड़कियों के दरवाज़े बन्द हो चुके थे। घड़ी पर नज़र पड़ी तो बारह बज रहे थे। मेरा इशारा पाते ही साज़िन्दे चलते बने। मैं भी उठने की सोचने लगा था। बाई जी ने कहा—"माफ कीजिएगा।" यह कह कर वह पास के कमरे में चली गयीं। बाहर की ठंडी हवा परदों को उड़ाती हुई भीतर आ रही थी। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो पानी की छींटे भी आ रही थीं। सामने कमरे की ओर नज़र चली गयी। दरवाज़े पर लगे जालीदार पर्दों के भीतर रोशनी जगमगा रही थी। ऐसा जान पड़ा मानों जमुनाबाई किसी काम में लग गयी हैं। मैं उससे बिदा माँगने की नीयत से कमरे में जा पहुँचा। देखा, तो सामने लगे बड़े आईने के सम्मुख खड़ी वे अपने बाल ठीक कर रही हैं। मैंने केवल पीठ पर लटके हुए उसके चमकीले काले लम्बे बालों को देखा। मैं पास जा पहुँचा। आईने में उसकी यौवनश्री देख मैं मुग्ध हो गया। मैंने कहा—"जमुना बाई, काफ़ी देर हो रही है, अब चलता हूँ।" उसने मुसकराते हुए कहा—"सचमुच आप जाना चाहते हैं। इस सर्दी की रात में, इस बेवक्त आप जाकर क्या करेंगे।" और उसने मेरे चेहरे पर आँखें गड़ा दी। मेरा जी जाने कैसा हो रहा। फिर भी मैंने अपने को रोका। मैंने कहा, "जाऊँगा नहीं तो यहाँ क्या करूँगा।" उसने मेरा हाथ पकड़ पास सोफ़े पर बैठा दिया और अपनी साड़ी सँभालने लगी। मैंने एकाएक उसका कोमल हाथ खींच उसे बगल में बैठा लिया और बोला, 'मुझे जाने क्यों नहीं देतीं।" वह चुपचाप मुसकरा रही थी। कोने में अगरदान में सुलगती हुई अगर-बत्ती की सुगन्ध कमरे को बसा रही थी। उसके कोमल हाथ अपने हाथ में दबाते हुए मैंने प्रश्न किया—"बोलतीं क्यों नहीं, जाऊँ या रहूँ।"

वह मुँह फेर कर चुप हो रही। मैं उन्मत्त हो उठा। सामने कुछ ऊपर दीवाल पर लगे सोनहले चौखटे वाले तैल चित्र पर मेरी दृष्टि जा पहुँची। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो सोनहले चौखटे के भीतर से जमुना धीरे-धीरे मुस्कराती हुई मुझे देख रही है। क्षण भर के लिए मैं एकाग्र हो उसे देखने लगा। चित्र है—यह स्मरण आते ही मैंने जमुना का मुख उधर फेरते हुए पूछा—"यह तुम्हारा चित्र किस चतुर चित्रकार का बनाया हुआ है।" चित्र की तरफ़ एकटक देखती हुई वह बोली—"यह मेरा चित्र नहीं है ठाकुर साहब।"

"फिर किसका है—तुम्हारी बहिन का ?" मैने पूछा ।

"नहीं, वह मेरी माँ का है ?" मैने अनुभव किया 'माँ' शब्द का उच्चारण करते समय उसकी वाणी कुछ लड़खड़ा सी उठी थी । मैने पूछा, "क्या तुम्हारी माँ अब जीवित नहीं हैं ?" उसकी आँखें सजल हो उठीं । बोली—"मेरी माँ मुझे धरती पर जन्म देने के पश्चात् ही स्वर्ग सिधारी थीं ।" मैं इस चित्र को रह-रह कर गौर से देखने लगा । ये आँखें जैसे कभी उसे देखने में अभ्यस्त थीं । मै स्मृति के भण्डार को टटोलता था, पर कुछ ध्यान में न आता था । मैंने कुतूहल-वश पूछा, "तुम्हारी माँ की माँ ने तुम्हें पाला-पोसा होगा ।" उसने अनाथ की भाँति पीड़ित मन से उत्तर दिया, "ठाकुर साहब, मेरी माँ वह न थी, जो मै हूँ ।" मेरा कुतूहल उत्तेजित हो उठा, मैंने फिर पूछा—"तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ । तुम तो कहती थीं कि तुमने उसे देखा ही नहीं ।"

वह बोली—"जिस दाई ने मुझे पाला-पोसा था वह बतलाती थी कि उसकी गोद में मुझे सौंप कर मेरी माँ ने बड़े कष्ट से प्राण त्याग किये थे ।" एकाएक एक साधारण सा विचार बिजली की भाँति मेरे मन में कौंध गया, फिर ज्यों का त्यों अँधेरा हो गया । मैंने पूछा, "क्या तुम्हारे यहाँ कोई और न था, जो तुम्हे इस पेशे से बचाता ।"

"कौन था, मेरे पिता मेरी माँ को इस हेतु त्याग चुके थे कि मेरी माँ का सम्बन्ध गाँव के एक ठाकुर से हो गया था ।" मैंने उत्तेजित होकर पूछा, "तुम्हारी माँ कौन जाति की थी ?" "अहीरिन" उसने उत्तर दिया । मै पूछता गया—"उसका घर कहाँ था ?" वह बोली, "यहाँ से बहुत दूर किसी गाँव में, मुझे स्मरण नहीं । भला सा नाम बतलाते थे ।" मेरा हृदय काँप रहा था । आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था । जिज्ञासा से प्रेरित होकर मैंने पूछा, "तुम्हारी क्या उम्र होगी जमुना ?"

वह इस अप्रासंगिक क्षेपक से कुछ लज्जित सी हो उठी । उसने अपने को पुनः सँभालते हुए, मुसकरा कर कहा—"मेरी उम्र क्यों पूछते हैं आप ? क्या मै बूढ़ी जान पड़ती हूँ ।" मैने कहा, "नहीं, नहीं, कितने दिन हुए होंगे, तुम्हारी माँ को मरे हुए ।" उसका गला जैसे फिर भर आया । बोली, "उसे मरे अब बीस वर्ष हो रहे है, और इतनी ही मेरी उम्र होगी ।"

मैने एक बार फिर उस चित्र की ओर गौर से देखा । मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मालती मुझे देख कर मुसकरा रही हो । मेरे हाथ-पाँव ढीले पड़ गये । मैने क्षण भर के लिये आँखें मूँद लीं । मेरे बगल में कौन बैठा है—इस विचार ने सर्प की भाँति मानों मुझे डस लिया । मै एकाएक खड़ा हो गया और यह कहता हुआ भाग निकला—"जमुना, बहुत देर हो रही है, अब नहीं ठहर सकता ।" वह मुझे रोकने के लिये न उठ सकी । मैं धड़धड़ाता हुआ जीने के नीचे उतर गया । द्वार पर सोते हुए रामू को फाँद कर गली में जा पहुँचा ।

गिरता पड़ता, भीगता, जब मै डेरे पर पहुँचा तो मेरे चौकीदार ने पूछा, "सरकार अकेले आ रहे हैं । और रामू !" मैने कुछ उत्तर न दिया । सीधे कमरे में पहुँच पलँग पर पड़ कर हाथों से मुँह ढाँप रोने लगा—"या परमेश्वर तूने मुझे साफ-साफ बचा लिया ।"

और यह कह कर वे प्रौढ़ ठाकुर साहब अपना मुँह ढाँप कर बच्चों की भाँति रोने लगे । हम दोनों झेंपे से इधर-उधर देखने लगे । खैरियत यही थी कि उस समय उस सारे डिब्बे में केवल हमी तीन यात्री बच रहे थे ।

मेल ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार से शोर मचाती हुई भागी जा रही थी, पर हमारे कमरे में सन्नाटा छा रहा था और हम तीनों मूर्ति की भाँति निश्चल बैठे थे । मैने यादव की तरफ देखा । वह अब बहस के लिए तैयार न था ।

पैरिस की प्रदर्शिनी

[श्री० भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०]

संसार के लगभग सभी राष्ट्र पैरिस की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी में अपनी-अपनी विभूतियाँ लेकर उपस्थित हुए हैं। पूरे ४३ राष्ट्रों के चित्ताकर्षक पंडाल वहाँ आपको नज़र आएँगे। राष्ट्रों में एक प्रतियोगिता का भाव दिखाई देता है। नये-नये विचार और नूतन आविष्कारों के बारे में एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से बहुत कुछ सीख सकता है। इस प्रकार की प्रदर्शिनी में ही ऐसा अवसर प्राप्त होता है, जब एक देश भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अन्य देशों के मुक़ाबले में अपनी शक्ति का सही अन्दाज़ लगा सकता है।

फ्रान्स में इस प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी १८६७ और १९२५ में भी हुई थी, किन्तु इस बार की प्रदर्शिनी उन सबों से कहीं बढ़कर है। १०,००० आदमियों ने इस प्रदर्शिनी की तैयारी में महीनों रात-दिन काम किया है। लगभग १२ करोड़ रुपये भी खर्च हुए। इस प्रदर्शिनी के लिये पैरिस के सुप्रसिद्ध 'एफिल टावर' के आस-पास सेन नदी के दोनों किनारों की जगह चुनी गयी है। 'एफिल टावर' और न्यू टोकैड्रो मानो इस प्रदर्शिनी की जान हैं। इसी सिलसिले में टोकैड्रो का पुनर्निर्माण हुआ है। उसका अर्द्धचन्द्राकार आकार पहले से ३ गुना हो गया है। टोकैड्रा के सामने विदेशी राष्ट्रों के पंडाल हैं। प्रदर्शिनी का केन्द्र भी यही है। सेन नदी में, पास ही, एक पतला और लम्बा द्वीप था। २००० लकड़ी के लट्ठे धँसा कर इसकी चौड़ाई बढ़ाई गयी है। अब उसका क्षेत्रफल पहले से चौगुना हो गया है। इसी द्वीप में फ्रान्स के औपनिवेशिक राष्ट्रों के पंडाल हैं। उनके अतिरिक्त प्रदर्शिनी में फ्रान्स के विभिन्न प्रान्तों का भी एक विभाग है। यह कला और विज्ञान की प्रदर्शिनी है, अतएव कारीगरी, चित्रकारी, कृषि, उद्यान, विज्ञान आदि सभी विभागों का इसमें समावेश है। इतने पर भी प्रदर्शिनी का कुल घेरा ५ मील से कम ही है। प्रदर्शिनी के बीच में से होकर सेन नदी बहती है, उसके दोनों किनारों पर भाँति-भाँति के फूल-पौदे लगे हुए हैं। जगह-जगह इस पार से उस पार जाने के लिये पुल भी बनाये गये हैं। प्रदर्शिनी में प्रवेश-द्वारों की संख्या ३० से ऊपर है। एक स्थान से दूसरे जगह जाने के लिये बिजली की छोटी रेलें बनी हुई हैं। सेन नदी पर मोटर बोट किराये पर दौड़ा करती हैं। सारांश, इस प्रदर्शिनी में आपको घूमने-फिरने की किसी तरह की असुविधा नहीं है।

प्रदर्शिनी में जिस देश के पंडाल में आप जायँ, आपको ऐसा मालूम होगा मानो आप उसी देश के वातावरण में विचर रहे हैं। इमारतें, दूकानें, दूकान के आदमी, उनका पहनावा, उनका तर्ज़ सब कुछ असली बाशिन्दों जैसा। अल्जीरिया पैबिलियन में काले काले हब्शी चटकीली पोशाकें पहने हुए, आपके लिये जलपान लाएँगे तो अपने ही देश की तर्ज़ पर तैयार की हुई चीज़ें। जितनी देर आप पंडाल में रहते हैं, ऐसा जान पड़ता है जैसे आप उसी देश में घूम रहे हैं।

प्रदर्शिनी में सब से आलीशान पैबिलियन रूस, जर्मनी और इटली के हैं। ब्रिटेन का भी एक रोनी सूरत बनाए पैबिलियन खड़ा है। जान पड़ता है, ब्रिटेन ने इस प्रदर्शिनी में कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं ली। शायद ब्रिटेन ने यह सोचा हो कि हमारी सभ्यता तो काफ़ी पुरानी हो चुकी है—संसार में हमारी धाक जम चुकी है। रूस, जर्मनी आदि नवनिर्मित राष्ट्रों को ही यह ज़रूरत है कि वे अपने नये-नये प्रयोगों को संसार के सामने रक्खें, ताकि लोग इस बात का अन्दाज़ लगा सकें कि अपने ध्येय में

उन्हें कहाँ तक सफलता मिली है। प्रदर्शिनी में भारत का कोई पैबिलियन नज़र नहीं आता। भारत-सरकार ने क्यों नहीं इस प्रदर्शिनी में भाग लिया, इस प्रश्न का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता। जहाँ तक मुझे मालूम है, एसेम्बली में इस सम्बन्ध में किसी ने प्रश्न भी नहीं उठाया। सच बात तो यह है कि भारत-सरकार ने कोई खास स्कीम या योजना भारत के राष्ट्रीय निर्माण के लिये कभी कार्यान्वित नहीं की, फिर प्रदर्शिनी में वह दिखाए क्या?

गृह युद्ध से परेशान स्पेन ने भी इस प्रदर्शिनी में भाग लिया है। स्पेन का पैबिलियन तो ब्रिटेन से कहीं अच्छा है। उस पैबिलियन में एक बहुत ही सुन्दर फौव्वारा बना है, जिसमें से पानी की जगह पारा निकलता है। अकसर दर्शकगण फौव्वारे के हौज़ में सिक्के फेंका करते हैं जो पारे में ऊपर ऊपर तैरते हैं। स्पेन की मुख्य खनिज सम्पत्ति 'पारा' है। इटली आज जेनरल फ्रेंको की सहायता इसी लोभ से कर रहा है कि विद्रोही पक्ष के विजयी होने पर स्पेन के खनिज पदार्थों पर इटली को भी आधिपत्य मिलेगा।

जर्मनी, रूस और इटली के पैबिलियन बहुत ही विशालकाय हैं। सुनते हैं, प्रदर्शिनी आरम्भ होने के पहले फ्रान्स के प्रीमियर मान्शेब्लम ने कहा था—'यह प्रदर्शिनी इस बात की द्योतक होगी कि फ्रान्स की जनसत्तावादी सरकार ने नात्सीवाद और फास्टीवाद की अपेक्षा कहीं ज्यादा उन्नति की है। इटली और जर्मनी ने मानों इस चुनौती को स्वीकार किया है और संसार की दृष्टि में अपने आदर्श की प्रतिष्ठा स्थापित करने का पूर्ण उद्योग किया है। रूस भी किसी से पीछे रहने वाला नहीं है, चुनाञ्चे शान-शौकत और सुरुचि में रूस का पैबिलियन सब से आगे बढ़ गया। संसार में आज दो महान शक्तियाँ नज़र आ रही हैं—फासिस्टवाद और साम्यवाद। जर्मनी और रूस के राष्ट्र इन्हीं दोनों आदर्शों के प्रतीक हैं। पैरिस की प्रदर्शिनी में ये दोनों ही शक्तियाँ आमने-सामने खड़ी हैं। मानों सारे संसार को इस बात का निमंत्रण दे रही हैं कि वे स्वयं आकर देखें, कौन सा आदर्श मानव-समाज को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकता है। रूस और जर्मनी के पैबिलियन दर्शकों का ध्यान बरजोरी अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। दोनों ही पंडालों के अन्दर लम्बे लम्बे आयताकार हाल हैं, दोनों ही के प्रवेश द्वारों पर गगनचुम्बी स्तम्भ हैं। सोवियट-स्तम्भ के ऊपर चाँदी के रंग की एक विशाल काय मूर्त्ति बनी हुई है। एक पुरुष और एक स्त्री। उनके हाथ में हथौड़ा और हँसिया है, अवयव सुगठित और वस्त्र पीछे को ओर हवा में फहरा रहे हैं। उनके रग-रग से स्फूर्त्ति और उल्लास टपक रहा है, उनके अन्दर निहित है उस मानवता का सम्बल, जिसने रूढ़ियों को पैरों तले रौंदते हुए भविष्य की ओर कदम बढ़ाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।

जर्मनी का स्तम्भ भी करीब-करीब इतना ही ऊँचा है। इस स्तम्भ पर जर्मनराष्ट्र का चिह्न 'गृद्ध' अपने पञ्जों में स्वस्तिका लिये एक गम्भीर और मनहूस सूरत बनाये बैठा है। उसे देखते ही भय और आतंक का सञ्चार हो आता है।

रूस के पैबिलियन में एक नवीन मानव-समाज के विकास की एक कहानी आपको मिलेगी। इस समाज के लोग किस तरह रहते हैं, क्या सोचते हैं, उनके आदर्श क्या हैं, ये सब बातें आपको इस पंडाल में मिलेंगी। हर कहीं एक तरह का मुक़ाबला देखने को मिलेगा कि रूस २० वर्ष पीछे कहाँ था और अब कहाँ है? साक्षरता १३ प्रतिशत से बढ़ा कर ६५ प्रतिशत कैसे पहुँची? पुस्तकालयों की संख्या पहले की अपेक्षा सैकड़ों गुना कैसे बढ़ गयी? इन सभी प्रश्नों का उत्तर सोवियट पैबिलियन के भीतर आपको मिलेगा। पग-पग पर आप अनुभव करेंगे कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण में सोवियट साम्यवादी सरकार ने जनसाधारण के हित को हमेशा मद्देनज़र रक्खा है।

इसके विपरीत जर्मनी के पैबिलियन में तरह-तरह के आशायश के सामान नज़र आते हैं—वाद्य यंत्र, लकड़ी के काम, चाँदी की रकाबियाँ, कीमती कैमरे इत्यादि। निस्सन्देह इनसे पता चलता है कि जर्मन कारीगर कितने निपुण हैं, किन्तु ये सभी चीजें मुट्ठी भर अमीरों के काम में आने वाली वस्तुएँ हैं। ६॥ करोड़

जर्मनों में से दो-चार लाख को छोड़ शेष लोगों को चाँदी की रकाबियाँ या बेशकीमती केमरे कहाँ नसीब होते हैं ? पैबिलियन में यह आपको कहीं भी देखने को न मिलेगा कि जर्मनी की फैसिस्ट सरकार ने जनसाधारण के लिये अमुक योजना पूरी की—हिटलर का तो दृष्टिकोण ही अलग है। कुलीनता का जोश, देश-प्रेम की पुकार, यहूदियों के प्रति घृणा, बाहरी तड़क-भड़क, इन्हीं चीजों का हिटलर की दृष्टि में महत्त्व है। उस दृष्टि-विन्दु से देखने पर रूस और अन्य देशों के पैबिलियन में खास अन्तर दिखाई पड़ता है। जहाँ दूसरे देशों में नफीस और बढिया चीजें उत्पन्न करके ही लोग सन्तुष्ट हो जाते हैं, रूस इस बात पर जोर देता है कि चीजें केवल अच्छी और नफ़ीस ही न हों, वरन् वे इतनी अधिक सख्या में बनायी जायँ कि जन-साधारण को भी वे लभ्य हो सकें—देश के दो-चार खाते-पीते व्यक्तियों ही के काम की चीज़ वह न रह जायँ। यही वजह है कि रूस के पेबिलियन में गरीब श्रेणी के लोग भी काफी संख्या में घूमते हुए नज़र आते हैं। इस पैबिलियन में वे एक प्रकार के भाईचारे का अनुभव करते हैं। वे समझते हैं—अनुभव करते है कि रूस का पैबिलियन उन्हीं के लिये है। इसमें उन्हीं के हितों का ख्याल किया गया है। साम्यवादी सरकार मजदूरों और किसानों की सरकार है।

तदुपरान्त दर्शक का ध्यान विज्ञानशाला की ओर जाता है। इस प्रदर्शिनी में विज्ञान को एक महत्वपूर्ण जगह मिली है। केमिस्ट्री व पदार्थ विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, जीव-विद्या सभी क्षेत्रों के नवीनतम आविष्कार इस प्रदर्शिनी में दिखाए गये है। स्वयं अपनी आँखों से विज्ञान के आश्चर्य्यजनक प्रयोग दर्शक देखता है। विज्ञान के प्रति उसके मस्तिष्क में एक उत्सुकता उत्पन्न होती है, वह विज्ञान के प्रति अब उदासीन न रह सकेगा।

उदाहरण के लिये विद्युत विभाग में एक विशालकाय घेरा बना है, जिसमें कृत्रिम ढङ्ग से बिजली की कौंध पैदा करने की मशीन रक्खी हुई है। उस घेरे का व्यास ८० फीट है। उस घेरे के भीतर पीतल के दो बड़े गोले हैं, जिनके बीच १० फीट लम्बी कौंध (spark) पैदा की जाती है। घेरा तार की जाली का बना है, ताकि यदि कौंध छटक कर बाहर आयी, तो घेरे के अन्दर तक ही उसका प्रभाव समाप्त हो जाय, अन्यथा दर्शकों की मृत्यु का भय था। इन गोलों पर ५० लाख वोल्ट (volt) की विद्युत आरूढ करा कर कौंध उत्पन्न की जाती है। जिस समय स्पार्क दोनों गोलों के बीच उत्पन्न होता है, गोलों के भीतर यत्र को परिचालित करने के लिये जो व्यक्ति बैठा रहता है, उस पर जरा सी आँच तक नहीं आती, यद्यपि उस गोले को यदि बाहर से कोई छू दे, तो वह जल-भुन कर वहीं ढेर हो जायगा। यह यत्र महज तमाशे और विनोद के लिये नहीं बनाया गया है। फ्रान्स के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीमती क्यूरी के परामर्श से उसका निर्माण हुआ है। इसका प्रयोग एक धातु को दूसरी धातु में बदलने के लिये किया जाय। वह दिन दूर नहीं है, जब हमारा विज्ञान पारस पत्थर वाले स्वप्न को सच्चा कर दिखायेगा। तब लोहा और सीसा हम स्वर्ण में परिवर्त्तित कर सकेंगे।

एक शीशे का बना हुआ मानव-शरीर का माडल भी उल्लेखनीय है। शरीर की तमाम रगें दिखाई देती हैं। रक्त का प्रवाह किस तरह शरीर में होता है, आप बखूबी देख सकते हैं। नक्षत्र मण्डल के अध्ययन करने के लिये एक सुन्दर माडल (Planetorium) भी इस विभाग में है। ग्रह, तारे और नक्षत्रों की गति का ज्ञान इस यन्त्र की सहायता से आसानी से हो सकता है। कृत्रिम ढङ्ग से उत्पन्न की हुई तुषार छतों पर जमी हुई दिखाई पड़ती है। जर्मनी का टेलिविज़न (दूरदर्शक) लोगों ने बहुत पसन्द किया। स्वयं दर्शकों को यहाँ 'टेलिवाइज़' करते हैं। पूरी विज्ञानशाला में कहीं पर भी आपको लम्बे-लम्बे फार्मूले नहीं मिलते—बगैर किसी प्रयास के विज्ञान की मोटी-मोटी बातें प्रयोगों के देखने से ही समझ में आ जाती हैं—विज्ञान का प्रदर्शन जीती-जागती चीज़ है।

रेडियो और सिनेमा-थियेटर पर भी अधिकारियों ने काफी ध्यान दिया है। नये ट्रोकैड्रो के थियेटर हाल में

३००० दर्शक बैठ सकते हैं। इतना बड़ा थियेटर हाल अन्यत्र कहीं नहीं है। सिनेमा विभाग में फिल्म बनता हुआ आप देखेंगे। किस प्रकार जिलैटिन की पतली चद्दर बनती है, किस प्रकार उस फोटो के मसाले की तह जमाया जाता है, इत्यादि इत्यादि। रेडियो द्वारा प्रदर्शिनी का प्रोग्राम भी ब्राडकास्ट किया जाता है।

एम्यूजमेण्ट पार्क में हर प्रकार की विनोद-सामग्रियाँ मौजूद हैं। सच्ची बात तो यह है कि पैरिस की विनोद-प्रियता पूर्णरूप से यहाँ विराजमान है। चर्खियाँ, कृत्रिम वायुयान, तैरने के लिये तालाब इत्यादि-इत्यादि। मानों समूचे फ्रान्स की ज़िन्दादिली बटोर कर इस पार्क में किसी ने रख दिया हो।

रात को प्रदर्शिनी मानों परियों का देश बन जाता है। सेन नदी में पानी के भीतर से फौव्वारे क्षण-क्षण पर रङ्ग बिरङ्गी धार छोड़ते है। एफिल टावर रोशनी से जगमगाता रहता है। अभी पूरा टावर हरा हो गया तो क्षण भर बाद वह लाल रङ्ग से जगमगा रहा है। टावर पर बिजली के बल्ब नहीं नज़र आते, वरन् समूचा टावर छोटे-छोटे ट्यूब से आलोकित किया गया है। नदी में फौव्वारों के बनाने में इञ्जीनियरों को काफी माथा-पच्ची करनी पड़ी थी। ये फौव्वारे पीपों में लगे हुए हैं, ये पीपे नदी के पेंदे में बंधे रहते हैं। जब फौव्वारों को चलाना होता है, उस वक्त उनमें पानी पम्प करते हैं, और तुरन्त नदी के पेटे में से फौव्वारे का पीपा ऊपर पानी की सतह पर आ जाता है, और फौव्वारा छूट चुकने के बाद वह स्वय नीचे बैठ जाता है। इस प्रकार नदी में चलने वाली मोटर बोट के रास्ते में कोई रुकावट नहीं पड़ती। इन फौव्वारों की धार कभी-कभी तो ७० गज की ऊँचाई तक पहुँच जाती है।

एक रेस्त्राँ में विशालकाय पियानो रक्खा हुआ है, उसके बटन दबाने से सामने के तालाब में रंग-बिरंगे फौव्वारे परिचालित होते है। प्रदर्शिनी में आँखों को चकाचौंध कर देने वाली ५०० सर्च लाइट लगी हुई हैं। और पूरी प्रदर्शिनी की रोशनी का परिचालन एफिल टावर के नीचे के अकेले एक स्विच-घर से होता है।

एफिल टावर और 'ट्रोकैड्रो' पिछली प्रदर्शिनियों की देन थीं। प्रस्तुत प्रदर्शिनी ने न्यू ट्रोकैड्रो का निर्माण किया है, फ्रान्स की बीसवीं सदी के गृहनिर्माण कला का यह सर्वोत्तम नमूना है। किन्तु इन सब से भी बढ़ कर इस प्रदर्शिनी ने वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय भावना को परिष्कृत करने का सराहनीय प्रयत्न किया है। संसार आज बड़ी विकट अवस्था से होकर गुज़र रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना प्राय लुप्त हो चुकी है। ऐसे समय पर इस प्रकार के अभियान का बड़ा महत्व हुआ करता है।



लोक-परलोक

[श्री० जी ० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल-एल० बी०]

हिन्दी-जगत मे एक सरस और मनोरञ्जक साहित्य-निर्माता की दृष्टि से श्री० जी० पी० श्रीवास्तव का क्या स्थान है, यह पाठको को बतलाना अनावश्यक है। हिन्दी पाठक अब तक उनकी दर्जनो रचनाओ का रस पान करके अत्यन्त आदरपूर्वक अपना चुके है। अनगिनती हिन्दी-भाषी उनकी चुलबुली लेखनी पर लट्टू है। पर इधर अनेक कारणो से आपने लिखना बन्द कर रखा था। हमारे विशेष आग्रह पर आपने यह सिनेमा-नाटक 'चॉद' के लिए लिखने की कृपा की है। वास्तव मे यह आपके आठ वर्षो के चिन्तन का परिणाम है और हमारा विश्वास है कि इसके द्वारा आपकी रचनाओ का एक नया युग आरम्भ होगा। पाठक अवश्य ही इसमे एक ऐसी नवीनता और मौलिकता का अनुभव करेगे, जिसकी तुलना उच्चकोटि की विदेशी हास्य और व्यङ्ग पुस्तको से की जा सकती है। —स० 'चॉद'

२

दृश्य १७

फिर नवॉ दृश्य पॉचवी बार

यमदूत सरदार—'तो तो क्या. .क्या तुम अपने को पापी नहीं समझते ?'

क़ानूनीमल—'पापी होगा तू और तेरे सात पुश्त। मैं क्यों पापी होने लगा ? इसीलिये तो कहता हूँ कि ईश्वर के पास ले चल।'

यमदूत सरदार—'ईश्वर के पास जाने की क्या ज़रूरत ? पहिले मुझसे तो निपट लो। देखो मैं अभी साबित करके दिखाए देता हूँ कि तुम कितने बड़े पापी हो।'

क़ानूनीमल—'आ हा हा ! यह मुँह और पुदीने की चटनी ? मैं वकील हूँ। मेरा दिमाग़ फालतू नहीं है कि किसी से बेकार बक-बक करूँ। अगर मुझसे इस मामले पर बहस करने का शौक हो तो लाओ मेरी फ़ीस दाखिल करो।'

यमदूत सरदार—'फीस ? अच्छी बात है। देखो यदि बहस में मै जीतूँ तो तुम्हें भीगी बिल्ली की तरह मेरे इशारे पर सीधे नरक को चला जाना पड़ेगा और यदि तुम जीतो—जो कि बिल्कुल असम्भव है—तो मेरी कुल शक्ति आप से आप तुममें चली जाएगी। और तब तुम्हारी आज्ञा के बिना मै हिल भी नहीं सकूँगा और तुम यहाँ बेधड़क हर जगह आ-जा सकोगे और कोई तुम्हें मृतात्मा न समझेगा।'

कानूनीमल—'बस ! ख़ैर ! तुम्हारी औकात देखकर यही सही। मगर मुश्किल तो यह है कि तुम्हारे अक्ल ही नहीं। तुम मेरी कानूनी बातें समझोगे क्या अपना सर ?'

यमदूत सरदार—'मेरे अक्ल नहीं है ?'

कानूनीमल—'बेशक। अगर है तो बताओ पाप किसे कहते हैं।'

यमदूत सरदार—'क्या तुम्हारे धर्म ने नहीं बताया ?'

कानूनीमल—'बस मालूम होगया। किस धर्म को कहते हो ? दुनिया में तो हज़ारों धर्म हैं। अगर

साथ टहलने निकलीं। उनका बच्चा एक दासी की गोद में है। वह मचल कर उतर पड़ा। खेलते-खेलते अलग चला गया। इतने में मधुमक्खियाँ उड़ने लगीं। दासियाँ चिल्ला कर भागीं, मगर रानी अपने बच्चे की तरफ दौड़ी और उसे अपनी गोद में छिपा कर वहीं बैठ गई। और मज़दूरिन भी अपने बच्चे को चारों तरफ से अपने शरीर के कुल कपड़ों से ढक कर उसपर पड़ जाती है। उसकी नङ्गी पीठ में मधुमक्खियाँ डस रही है। मगर परवाह नहीं। इसी तरह

दृश्य १९

फिर नवाँ दृश्य छठी बार

यमदूत सरदार—'हाँ, प्रकृति के नियम तो सच-मुच अटल और सबके लिये एक समान हैं।'

कानूनीमल—'इस कानून को ईश्वर ने दुनिया को राह बताने ही के लिये बनाया। जिसने इसको जितना समझा उतना ही उसने ईश्वर को पहचाना।'

यमदूत सरदार—'ठहरो! ठहरो! ज़रा मुझे सोचने दो हाँ यह बताओ कि यदि धर्मों से ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है तो उन सभों में बहुत सी बातें मिलती-जुलती क्यों हैं?'

कानूनीमल—"भई वाह! भैंस के आगे बीन बजायी और भैंस खड़ी पगुराय। अरे ओ अकल के दुशमन! जब धर्मों को ईश्वर तक पहुँचने के लिये इसी कानून कुदरत के सहारे अपने कायदे-कानून बनाने पड़े तब उनमें बहुत सी बातें खामखाही आपस में मिलती-जुलती होंगी।'

यमदूत सरदार—'अब मार लिया है। आगए घूम कर तुम मेरे चंगुल में। तुम अभी कह चुके हो कि सभी धर्मों की मिलती-जुलती बातों की जड़ प्रकृति के नियम हैं अर्थात् साक्षात् भगवान् का बनाया हुआ कानून। और तुमने वह काम किये हैं, जिनको सभी धर्म बुरा कहते हैं। यहाँ तक कि सभी धर्म एक मत से ईश्वर की पूजा करने की ताकीद करते हैं और तुमने वह भी नहीं की।'

कानूनीमल—'क्यों करता? न मैं अपाहिज था न कामचोर, न खुशामदी और न मुझे ईश्वर के मिजाज पर कलंक लगाना मञ्जूर था।'

यमदूत सरदार—'इसके क्या मतलब?'

कानूनीमल—'ईश्वर न करे किसी को अक्ल मोटी हो। खैर इस तरह समझो। फ़ज करो कि तुमने एक नाटक मण्डली खोली...।'

दृश्य २०

स्टेज का ग्रीन रूम

[यमदूत सरदार और कानूनीमल एक जगह खड़े होकर ऐक्टर और एक्ट्रेसों का बनाव सिंगार निरखते हुए बातें कर रहे हैं।]

कानूनीमल—'अब इन ऐक्टर और ऐक्ट्रेसों से तुम क्या आशा करोगे और इनसे तुम किस तरह .खुश होगे?'

यमदूत सरदार—'यही आशा करूँगा और इसीसे खुश हूँगा कि यह लोग अपना-अपना ।'

दृश्य २१

स्टेज

[पहिले राधा और कृष्ण का नाटकीय हाव-भाव के साथ गाना। उसके बाद हर तरफ से सहेलियों का आकर उसी गाने के सिलसिले में गाना। उसके बाद हरेक सहेली के पास एक-एक कृष्ण का यकायक प्रगट होकर सहेलियों को आश्चर्य में डालना। फिर उसी सिलसिले में सबका गाना और नाचना।]

राधा और कृष्ण

गाना

राधा—चलो हटो कान्धा,
कृष्ण—सुनो मोरी राधा,
राधा—रहिया न मोरी गरेरो॥
कृष्ण—सुनो सुनो,
राधा—नहिं जाओ कहनवा मानो।
हाय! आए रहीं सब सखियाँ ताको।
बइयाँ न मोरी मुरेरो॥

(सहेलियों का हर तरफ से आजाना)

सहेलियाँ—ओहो!

क्या ही अनोखा निराला यह ढग,
कान्धा तो है देख राधा के संग ।
राधा—बावरी सहेली तु कहती है क्या,
कान्धा तो है देख तेरे ही सग ।
काहे को नैना तरेरो ॥
(हरेक सहेली के पास एक एक कृष्ण का प्रगट होना)

राधा—आ हा हा हा !
एक सहेली—वाह ! कैसा स्वपन !
दूसरी सहेली—यहाँ जीया है सन !!
तीसरी सहेली—मिले मोरे मोहन !!!
सब सहेलियाँ—जग के सबके दिल के जीवनधन ।
राधा और सहेलियाँ—यह तो कन्हइया है मेरो ॥

दृश्य २२

फिर बीसवाँ दृश्य दूसरी बार

यमदूत सरदार—[पार्ट करके आए हुए ऐक्टरों की पीठ ठोकते हुए]—'शाबाश ! ख़ूब पार्ट किया ! और तुम्हारा काम इनाम के काबिल है। और शाबाश, तुमने भी कमाल किया।'

कानूनीमल—(यमदूत सरदार से)—'वह कोने में कौन एक्टर है ? वहाँ क्यों बैठा है ?'

यमदूत सरदार—(बैठे हुए ऐक्टर के पास जाकर) 'क्यों जी, तुम यहाँ आँख बन्द किये क्यों बैठे हो ? अपना पार्ट करने नहीं गये ?''

ऐक्टर—(चौंक कर उठता हुआ) 'कौन ? मालिक आप है ! मै आप ही का नाम जप रहा था। पार्ट में क्या धरा है ? जो कुछ है मालिक सब आपके नाम में है। आपही के भजन और गुणगान में अपना जीवन बिता कर अपनी अपूर्व भक्ति से आपको प्रसन्न कर रहा हूँ ?'

यमदूत सरदार—'धत् तेरी ऐसी तैसी ! क्यों बे खुशामदी टट्टू तू मुझे खुशामद-पसन्द बना रहा है ?' निकल यहाँ से अपाहिज, कामचोर, कोढ़ी कहीं का।'

(धक्के देकर निकाल बाहर करता है।)

दृश्य २३

फिर नवाँ दृश्य सातवीं बार

कानूनीमल—''बस इसी नज़ीर की रू से मैं नहीं बल्कि ईश्वर को रातो दिन अपनी पूजा से तग करने वाले, दुनिया से भाग कर उनके नाम को हरदम जपने वाले महापापी और नरक में जाने काबिल है। ये सब दुनिया के स्टेज पर अपना दुनियाबी पार्ट करने के लिये भेजे गए थे। मगर ऐसे निकम्मे और कामचोर निकले कि उससे जी चुराया। न अपना भला किया और न दुनिया का।'

यमदूत सरदार—'यह तो ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारा कहना सत्य है। और यह क्या ? मेरी शक्ति भी घटती जाती है।'

कानूनीमल—'इसकी फिक्र मत करो। वह शक्ति इधर आती जाती है।'

यमदूत सरदार—'अच्छा हाँ ! क्या नाम के। हाँ तुम '

दृश्य २४

रूपवती वेश्या का कमरा

[कानूनीमल बड़े शौक से रूपवती वेश्या का नाच और गाना सुन रहे हैं]

रूपवती का नाच के साथ गाना

रूपवती—'आओ आओ हे राजा बसो मोरे मन में
दिल की कोठरिया की खोले किवड़िया
बैठी हूँ साजे मैं प्रेम सेजरिया
आओ-आओ सँवरिया रहो पलकन में ।
रहो अँखियन में बसो मोरे मन में ॥'

[नाचते-नाचते अठखेलियाँ करती हुई कानूनीमल के पास बैठ जाती है और वह उसे अपनी ओर खींच लेता है।]

दृश्य २५

फिर नवाँ दृश्य आठवीं बार

(बैठे हुए)

यमदूत सरदार—'इसको भी सभी धर्म बुरा कहते हैं।'

कानूनीमल—'कहते होंगे।'

यमदूत सरदार—'अरे! इतनी लापरवाही? क्या यह पाप नहीं है?'

कानूनीमल—'पाप? भला तुझे मालूम भी है कि पाप है क्या?'

यमदूत सरदार—'जितने भी बुरे कर्म जिनसे परलोक बिगड़े वह सभी पाप हैं।'

कानूनीमल—'फिर लगे धाँधली करने? परलोक और ढचरलोक अपने घर रखो। इसीलिये मैंने धर्म-कर्म को पहिले ही अलग कर दिया है। कोई बात अगर बुरी है तो बताओ क्यों बुरी है। किस कानून से बुरी है। तब तो मैं मान सकता हूँ।'

यमदूत सरदार—'उफ़ ओ! ईश्वर न करे तुम ऐसे कानूनी से किसी को पाला पड़े।.. ...अच्छा तुम्हारे ही कानून से तुम्हें पछाड़ता हूँ। तुम कहते हो कि धर्म जीवन को अच्छाई से बिताने के ढङ्ग बताते हैं। इसलिये वे उन्हीं कर्मों को बुरा कहते होंगे जिनसे संसार को किसी न किसी प्रकार की हानि पहुँचे और जीवन के लिए दुखदाई हों।'

कानूनीमल—'बेशक! देखो, मेरी संगत का असर। तुम्हारी औंधी खोपड़ी अब कुछ-कुछ सीधी हो चली है। अब तुम मानते हो कि पाप वह है, जो दुनिया के लिये, जिन्दगी के लिये या किसी के लिये नुकसानदेह हो। अगर न हो तो वह पाप नहीं है।'

यमदूत सरदार—'जब परलोक का विचार हटा दिया गया तब यह मानना ही पड़ेगा।'

कानूनीमल—'अच्छा अब तुम बताओ कि तन्दुरुस्ती के लिये कुदरती ज़रूरियात को जबरन रोकना अच्छा है या पूरा करना।'

यमदूत सरदार—'पूरा करना।'

कानूनीमल—'जो काम तन्दुरुस्ती के लिये अच्छा हो उसे तुम पाप कहोगे या नहीं?'

यमदूत सरदार—'कदापि नहीं।'

कानूनीमल—'तब अगर किसी दिन रास्ते में किसी वजह से पेट ज़रा ज़ोरों से गड़बड़ा उठा तो बजाए अपने घर तक पहुँचने के बम्पुलुस में चला गया तो तेरे बाप का क्या बिगड़ा।'

यमदूत सरदार—'कुछ भी नहीं।'

कानूनीमल—'बस इसी नज़ीर से वेश्या के यहाँ जाने को भी बात समझ ले।'

यमदूत सरदार—'अररररर? हाय गजब? यह क्या? क्या तुम ठीक कह रहे हो या मेरी बुद्धि ही चकराई हुई है। अच्छा? अच्छा ख़ैर, वेश्या की बात जाने दो, बाजारी सौदा होने के कारण तुम उसे खरीद कर अपना माल कह सकते हो। परन्तु परन्तु हाँ तुमने तो पराई स्त्रियों को भी ताका है, यहाँ तक कि अपने समाज में इसका अधिक अवसर न पाकर विलायती समाज में भी..'

दृश्य २६

विलायती बालरूम

[बैण्ड बाजे के साथ विलायती नाच खूब धूम-धाम से हो रहा है। उसमें कानूनीमल भी साहबी ठाट में एक अति सुन्दरी विलायती युवती के साथ नाच रहे हैं। नाचते हुए छेड़खानियाँ भी करते जाते हैं। उनकी आँखों से शोख़ी और मस्ती का रंग साफ़ ज़ाहिर हो रहा है।]

दृश्य २७

फिर नवाँ दृश्य नवी बार

कानूनीमल—'तो क्या बुरा किया? वह तो मैंने ईश्वर की कारीगरी की कदर की।'

यमदूत सरदार—'कदर?'

कानूनीमल—'और नहीं तो क्या? फ़र्ज़ करो कि तुमने बड़े शौक और मिहनत से एक फुलवारी लगाई। उसमें बीच-बीच में ख़ूबसूरत मूर्तियाँ भी रखीं। अब वहाँ हवा खाने के लिये तुमने दो आदमी भेजे। एक मुँह लटकाए अन्धे की तरह इस तरफ़ से उस तरफ़ निकल गया मगर दूसरा जिधर निकला उधर ही हर फूल, हर कुञ्ज और हर मूर्ति पर मस्त होकर लट्टू हो गया और वाह-वाह करने लगा। तो तुम किससे ख़ुश होगे?'

यमदूत-सरदार—'दूसरे से, जिसने मेरी चीज़ों का आदर करके मेरी मिहनत सफल की।'

कानूनीमल—'तो अब अक्ल हो तो तू ही समझ ले कि पापी मैं हूँ या वह जो दुनिया में सुन्दरियों से आँखें फेर कर ईश्वर की कारीगरी की बराबर बेकदरी करता रहा।'

यमदूत सरदार—'अयँ! यह भी दाँव ख़ाली गया? परन्तु ठहरो .. हाँ, तुमने तो उनमें से किसी-किसी से प्रेम भी किया है। अब कहो। भला कौन सा धर्म या कानून पराई स्त्री से प्रेम करना अच्छा कह सकता है?'

कानूनीमल—'मगर वे पराई कब थीं?'

यमदूत-सरदार—'क्या उनका विवाह दूसरों के साथ नहीं हुआ था?'

कानूनीमल—'हुआ होगा। शादी ब्याह से ईश्वर से मतलब? यह रस्म समाज का है या ईश्वर का?'

यमदूत सरदार—'अयँ?' (सर खुजाता है)

कानूनीमल—'सुन, ईश्वर ने दुनिया बढ़ाने के लिये सिर्फ एक प्रेम का सम्बन्ध दिया है। और यह बस उन्हीं दो औरत-मर्दों में पैदा हो सकता है जिनको उन्होंने खास तौर से एक दूसरे के लिये बनाया है, औरों के बीच में नहीं। ताकि सारी दुनिया एक ही के पीछे न पड़ जाए। इसीलिये हर रङ्ग और हर मिजाज के मर्द के लिये उसी रङ्ग और मिजाज की देखो ."

दृश्य २८

प्रेम की फुलवारी

[भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रेमी जोड़े भिन्न भिन्न ढङ्ग पर। पहिले सबसे सुन्दर प्रेमी और प्रेमिका की जोड़ी गाने की पहिली दो लाइनें गाती हुई नजर आती है। उसके बाद एक हबशी और हबशिन की जोड़ी उसी सिलसिले में उस गाने की दूसरी दो लाइनें गाती हुई दिखाई पड़ती हैं। इसी तरह बावने प्रेमी और प्रेमिका की जोड़ी गाने की तीसरी दो लाइनें। फिर लम्बे प्रेमी और प्रेमिका की जोड़ी चौथी दो लाइनें। फिर मोटे प्रेमी प्रेमिका की जोड़ी पाँचवीं दो लाइनें। तब दुबले प्रेमी प्रेमिका की जोड़ी छठी दो लाइनें गाकर अन्त में सबकी सब मिल कर गाती हुई दृश्य के सामने आ जाती हैं।]

गाना

१ सुन्दर प्रेमी—तुम प्रानन की हो प्यारी।
सुन्दर प्रेमिका—तुम नैनन के हो तारा॥

२ हब्शी प्रेमी—तुम हो मेरे जीवन-धन।
हबशिन प्रेमिका—तन मन है तुम पर अरपन॥

३ बावना प्रेमिका—तुम जीवन के उजियारा।
बावना प्रेमी—तुम नैनन के हो तारा॥

४ लम्बी प्रेमिका—सुन्दर मुखड़ा बाँकी चितवन।
लम्बा प्रेमी—गज़ब का तुम पर भोलापन॥

५ मोटा प्रेमी—तुम बिन सूनी दुनिया सारी।
मोटी प्रेमिका—तुम पर वारी मैं बलिहारी॥

६ दुबला प्रेमी—तुम बिन जग अँधियारा।
दुबली प्रेमिका—तुम नैनन के हो तारा॥

सब एक जगह पर—तुम्हीं ने हमको मारा,
तुम्हीं पर मन मतवारा,
तुम नैनन के हो तारा॥

दृश्य २९

फिर नवाँ दृश्य दसवीं बार

कानूनीमल—'अब अगर समाज बीच में कूद कर चमड़ौवे को बनाती, सलीपर को चप्पल और सलेमशाही को बूट से मिला कर इस तरह जोड़ा बना दे ..'

दृश्य ३०

विवाह-मण्डप

[सुन्दर प्रेमी का हब्शिन प्रेमिका से विवाह हो रहा है। यह दोनों विलीन होकर उनके स्थान पर हब्शी दूल्हा और सुन्दर दुल्हिन आ जाती है। इसी तरह इनके गायब होने पर लम्बा दूल्हा और बावनी दुल्हिन, फिर बावना दुल्हा और लम्बी दुल्हिन, फिर मोटा दुल्हा और दुबली दुल्हिन, फिर दुबला दुल्हा और मोटी दुल्हिन और अन्त में एक गदहा दुल्हा और घोड़ी दुल्हिन दिखाई पड़ती है।]

दृश्य ३१

फिर नवाँ दृश्य ग्यारहवीं बार

यमदूत-सरदार—'तो आखिर इसके मतलब क्या?

कानूनीमल—'धत् तेरे की! अच्छा बताओ हिन्दुस्तान किसका मुल्क है।'

यमदूत सरदार—'हिन्दुस्तानियों का।"

कानूनीमल—'मगर उस पर तो अङ्गरेज़ों की हुकूमत है, उन्होंने इसे जीत कर अपना कर लिया। इसलिये यह हिन्दुस्तानियों के लिये पराया होगया।'

यमदूत-सरदार—'फिर भी वह असल में हिन्दुस्तानियों ही का देश है। ईश्वर ने इन्हीं लोगों को वहाँ पैदा किया है। जन्मस्थान होने के कारण वहाँ का जलवायु क्या हर चीज़ जितना इनके अनुकूल है उतना औरों के नहीं हो सकता।'

कानूनीमल—'अच्छा पराया हो जाने पर भी हिन्दुस्तान को हिन्दुस्तानी तन-मन-धन से प्यार कर सकते हैं या नहीं ?'

यमदूत-सरदार—'अवश्य। इसका उन्हें केवल अधिकार ही नहीं, बल्कि मातृभूमि को प्यार करना तो उनका सब से बड़ा धर्म है।'

कानूनीमल—'बस इसी तरह मैंने भी जिस स्त्री से प्रेम किया होगा तो उसीसे जिसका ईश्वर ने खास तौर से मेरे लिये बनाई होगी। वरना प्रेम पैदा ही न होता। अब अगर समाज ने उस पर किसी दूसरे का अधिकार दे दिया था तो क्या समाज की धाँधली से अपनी चीज़ छोड़ देता ? मै ऐसा बेवकूफ न था कि समाज को ईश्वर से बड़ा समझता ? सच पूछो तो जिन्होंने ऐसा नहीं किया वह अव्वल नम्बर के पापी और एकदम नरक में ढकेले जाने काबिल हैं।'

यमदूत—'हाय! हाय! मेरी सारी शक्ति लोप हुई जा रही है। तुमने मुझ पर कोई जादू तो नहीं कर दिया है कि तुम्हारे सारे पाप अब मुझे धर्म ही धर्म दिखाई पड़ रहे हैं। क्या करूँ ? अच्छा अब भी एक सवाल करने का कुछ दम है। बस इसी पर इस पार या उस पार। हाँ, झूठ बोलना महा पाप है। और तुम जब वेश्या के घर से लौटते थे तो बराबर अपनी स्त्री से झूठ बोलते थे और कहते थे कि मैं ज़रा रामायण सुनने गया था।'

कानूनीमल—'तो क्या कहता कि कोकशास्त्र पढ़ने गया था ? बिल्कुल गावदी ही हो क्या ? यह भी कुछ खबर है कि ईश्वर ने आदमियों को अक्ल किस लिये दी है ? इसीलिये कि मौका महल देख कर अपनी अक्ल से काम लें। झूठ बोलना बुरा है सही, क्योंकि इससे बहुत सी मुसीबतें पैदा होती हैं। मगर जहाँ इससे बला टले और सब झगड़ों से छुट्टी मिल जाए, वहाँ इससे बढ़ कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। वहाँ सच बोलना पाप है। इसी को कहते हैं डिप्लोमेसी (Diplomacy) कूटनीति दुनिया का सब से बड़ा, ताज़ा और फ़ैशनेबिल क़ानून। समझे ?'

यमदूत सरदार—(क़ानूनीमल के परों पर गिर कर) 'बस मान गया! धन्य हो! धन्य हो! आप सचमुच बड़े धर्मात्मा हैं। अब सेवक में इतनी भी शक्ति नहीं कि आपकी आज्ञा बिना आपके चरणों पर से उठ सके। अब बताइए, क्या आज्ञा है।'

क़ानूनीमल—'बस यही कि मिहरबानी करके अपनी मनहूस सूरत फिर न दिखाइएगा। इसे जल्दी मेरी आँखों के सामने से हटा और जाकर किसी खोह में छिप रह। मगर यह खबर फैलाता जा कि धर्मराज के बेतुके फैसलों से तङ्ग आकर दुनिया ने परलोक की कचहरी का मुआइना करने के लिये यहाँ अपना गुरुघन्टाल भेजा है।

(क्रमशः)

नोट—आगामी अङ्क में कानूनीमल की शैतान से मुठभेड़ और धर्मराज की कचहरी का मुआइना देखिये।

चीन-जापान-संघर्ष

[श्रीमती ललिताप्रसाद]

सभ्यता की चरम सीमा पर आने के पश्चात् ही मनुष्य मात्र में एक दारुण प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति जाग उठी है, यह कहना अत्युक्ति न होगी। अतीत के सुदूर काल में मनुष्यत्व वा देवत्व बर्बरता की ओट में छिपा हुआ था, परन्तु अपने अनवरत प्रयत्न, दृढ़ शक्ति और बौद्धिक विकास के कारण हमने अपनी शक्ति पहचानी, और सभ्यता भी। परन्तु अब तो मानव जाति का एक महान् अंश पुनः उसी बर्बर अवस्था की ओर लौट जाना चाहता है, जिस समय केवल हिंसा अथवा दानवी पराक्रम की तूती बोलती थी। यदि ऐसी बात न रहती तो क्या आज फिर २० वर्ष के भीतर ही—१९१४—१८ के महायुद्ध के रौद्र रूप को देखने के बाद ही—मनुष्य अपनी ही जाति के प्राणियों का संहार करने के लिये, खून की धारा से अपनी प्यास को मिटाने, इस प्रकार उन्मत हो उठता? अबीसीनिया, स्पेन, चीन, जापान, और आस्टिया के संहार की स्मृति होते ही हमें तो यही विश्वास होता है कि हमारी सभ्यता के बिनाश होते कुछ देर न लगेगी। मालूम तो ऐसा ही होता है कि वेल्स साहब ने भविष्य जगत् का जो रूप अपनी पुस्तक में खींचा है, वह होकर ही रहेगा। विस्मय की सब से बड़ी बात तो यह है कि बुद्ध, कनफूसियस और गाँधी के प्राच्य खण्ड में भी स्वयं उनके अनुयायी पृथ्वी के वक्षस्थल को रक्तपात से लाल कर देने को उतावले हो पड़े हैं।

यदि ऐसा न होता तो क्या एशिया-निवासी आज चीन-जापान के भयंकर संघर्ष से इस प्रकार चौंक पड़ते? वस्तुतः हमारी छाती को तो सब से बड़ा धक्का इस बात का लगता है कि जिन पूर्वीय प्रदेशों को घृणा की दृष्टि से देख पाश्चात्य राष्ट्र वालों ने अपनी जीविका चलाने का एक अच्छा सुगम क्रीड़ा-स्थल समझ सब तरह से चूसना आरंभ किया था, उसी पूर्व खण्ड के एक राष्ट्र ने इस शोषण अनाचार-पूर्ण नीति का अवलंबन कर अपने ही पड़ोसियों को इसका निशाना बनाया। जापान इस समय साम्राज्यवाद के नशे में चूर हो चीन को कुचल कर ही विश्व में अपना प्रभुत्व जमा रखना चाहता है, नहीं तो क्यों उसने एक असङ्गठित, दुर्बल राष्ट्र पर पुन ऐसे समय में हमला किया है जब कि उसे जय की आशा अधिक से अधिक हो सके।

चीन और जापान के बीच पहले की लड़ाइयाँ

किन्तु वर्तमान युद्ध चीन और जापान के बीच प्रथम बार ही नहीं हुआ है। अनेकों बार इसके पूर्व दोनों में काफी मुठभेड़ हो चुकी है और दोनों को यथेष्ट हानि उठानी पड़ी, यद्यपि जापान को लाभ भी बराबर होता ही गया। पर हमें यह सोचना उचित है कि इस सङ्घर्ष का कारण ही क्या है? बीसवीं सदी में युद्धों के प्रमुख कारण हैं—(१) साम्राज्य-लिप्सा, (२) आर्थिक समस्याएँ और (३) असमान राष्ट्रीय शक्ति, अर्थात् एक शक्तिशाली देश और दूसरा दुर्बल। चीन-जापान के सङ्घर्ष के सम्बन्ध में भी ये ही बातें लागू हैं।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग तक चीन के विशाल व्यापारिक क्षेत्र में रूस, जापान, ग्रेट ब्रिटेन एवं अमेरिका का बहुत बड़ा भाग था और वे सभी चीन की आपसी फूट और कमज़ोरी से अनुचित फायदा उठाकर अपनी आर्थिक स्थिति को मज़बूत बनाने के ही फिक्र में

लगे रहते थे। परन्तु इनमें भी पारस्परिक वैमनस्य की ज्वालामुखी भी अन्त में फूट ही उठी और १८९४ ई० में कोरिया के युद्ध में चीन को हरा कर ही जापान ने दम लिया। जापान का सिक्का जम चुका था और यूरोप तथा अमेरिका के प्रमुख राष्ट्र भी उसे भय और प्रतिष्ठा की निगाह से देखने लगे। परन्तु जापान की श्रीवृद्धि से उनकी द्वेषज्वाला भभक उठी और उन लोगों ने एक पूर्वीय देश की बढ़ती ताकत को चौपट कर देने के निमित्त कोई कसर न उठा रक्खी। आखिर बाध्य होकर जापान को पुनः १९०४—५ ई० में युद्ध-प्रांगण में आ ही जुटना पड़ा। इस लड़ाई में तो रूस की हड्डी पसली टूट गई। इस विजय के पश्चात् जापानियों का कोरिया में प्रवेश हुआ और १९१० में कोरिया जापानी साम्राज्य में मिला दिया गया।

महायुद्ध और जापान

कुछ ही साल के पश्चात् यूरप में महायुद्ध का भयंकर बम फूटा और सभी राष्ट्र १९१४ से १९१८ तक उसी में लटपटा गये। जापान के लिए यह सुवर्ण सुयोग था। उसने अपने हाथ-पाँव फैलाने शुरू किये। तत्कालीन चीन के राष्ट्रपति यूआन सीन काय के सम्मुख इक्कीस माँगें पेश की गई, जिनके ग्रहण करने पर चीन जापान की शरण में चला जाता, मचूरिया जापान के संरक्षण में रहता और मङ्गोलिया में जापानियों के लिए प्रवेश-द्वार खुल जाता। भय के कारण चीन के सूत्रधार ने अदल बदल कर इन माँगों को स्वीकार तो कर लिया, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् ही चीन की राष्ट्र-सभा ने इन माँगों को साफ नामंजूर कर दिया। जापानियों की चालबाजी विफल हुई, पर कुछ योरोपीय राष्ट्रों की मदद से चीन को ऐसा न करने के लिए यथाशक्ति मजबूर करने की चेष्टा की। चीनी लोगों ने अपनी कमजोरी को समझ युद्ध में मित्र-मण्डल की ओर योगदान दे अपनी शक्ति बढ़ानी चाही। जापान भी पीछे न था। फल यह हुआ कि दोनों ही में अब पुन. वैमनस्य और द्वेष का प्रारम्भ हुआ। बात यहाँ तक बढ़ी कि युद्ध (१९१४–१९१८) के समाप्त हो जाने के बाद पश्चिमीय राष्ट्रों को चीन में वाणिज्य करने में कठिनाइयाँ होने लगी। और आर्थिक सुविधाओं के लिए अब ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका और जापान में भी संघर्ष होने लगा। आखिर, वाशिङ्गटन में एक सभा हुई, जिसका प्रमुख ध्येय था अनावश्यक नाविक स्पर्द्धा को दूर करना। इसमें जो शर्तें मंजूर हुई उनमें दो प्रमुख हैं—(१) चीन का स्वातन्त्र्य एवं साम्राज्य की कदर करना और (२) चीन में व्यापारिक सुविधाओं की समानता। पर चीन को इससे कोई विशेष लाभ न हुआ। हाँ उसे जापानियों के द्वारा क्याचू का प्रान्त मिल गया और अङ्गरेजों से हायवी।

चीन में राष्ट्रीयता की लहर

इसी समय चीन में राष्ट्र-प्रेम की एक प्रबल धारा बह चली। इस उत्कट देश प्रेम में जापानियों के प्रति घृणा-भाव का विशेष रूप से सचार था। इसी भाव-वृद्धि के लिए योरप के राष्ट्रों ने भी भरपूर कोशिश की, ताकि जापानियों का आधिक्य अब और बढ़ने न पावे और वे स्वयं कूटनीति के द्वारा चीन को अपने व्यापार का अड्डा बना पावें। किन्तु उन योरपीय राष्ट्रों की यह नीति सफल न हुई, बल्कि विरोधियों तथा राष्ट्रसंघ के होते हुए भी जापान ने मंचूको पर अपना प्रभुत्व जमा ही लिया। राष्ट्रसंघ के घोर विरोध के होते हुए भी जापानियों ने साघाय पर बंब फेंके और पेकिङ्ग के निकट स्थानों को बिलकुल ही सेनारहित निरस्त्र कर डाला। जापान के इस ज़बर्दस्त अत्याचार से पीड़ित हो चीन की छाती दहल उठी। और तभी से इसने बदला चुकाने के हेतु सेना की वृद्धि करनी शुरू की, यद्यपि इसे ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका अथवा रूस से बहुत ही कम सहायता मिली।

जापान के विरुद्ध चीन का आन्दोलन

सन् १९३१—१९३२ की भयङ्कर घटनाओं के बाद, जिनमें बहुत से चीनी सांघाय और मुकदन में घायल हुए और मारे गए, चीन में जापानियों के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन छिड़ा। इसके सूत्रधार हैं—चाग-काय-शेक। जापानी माल का वहिष्कार कर उन्होंने जापान की आर्थिक शक्ति को बड़ा ही धक्का पहुँचाया। पर

जापान न तो निरुत्साह हुआ न घबड़ाया ही। बल्कि अधिक आशा और मज़बूती के साथ उसने पुन चीन को तङ्ग करना आरम्भ किया और लगातार युद्ध के बाद करीब ४ साल हुए उसने मंचूरिया को जीत पास के प्रान्त जेहोल को भी कब्जे में ले लिया। जापानियों का शासन और अधिकार अब इस प्रकार बढा कि पेकिङ्ग के उत्तर चीन का एक विस्तृत भाग अब उन्हीं के साम्राज्य का एक अङ्ग हो गया है।

जापानियों की अशान्ति

किन्तु इतने ही से क्या जापान को शान्ति या तृप्ति हुई ? चीन आज पुन जापान की भयङ्कर साम्राज्य-लिप्सा का शिकार हो रहा है। कई बार उसने योरोपीय राष्ट्रों और राष्ट्रसघ से अपील भी की, पर किसकी कौन सुनता है ? राष्ट्रसघ आज निर्जाव, मुर्दा सा पड़ा है, अथवा उसे यदि हम ढकोसला की एक प्रतिमूर्ति कहें तो कोई हानि न होगी। विश्व की चारों ओर की अशान्ति के कारण जापान को पूरी स्वतंत्रता मिल गई है।

ऐसे सङ्कट के समय चीन को चाग काय शेक के समान प्रतापी, तेजस्वी एवं सूक्ष्मदर्शी नेता मिलने का सौभाग्य प्राप्त है, और उन्हीं के नेतृत्व में सपूर्ण चीन आज देश-प्रेम की वेदी पर अपना बलिदान कर रहा है।

किन्तु अब हाल की खबरों से हमें मालूम होता है कि चीनी अभी तक सफलतापूर्वक युद्ध में लगे हुए हैं, यद्यपि जापानियों ने उनकी बहुत हानि की है, तथापि चीन का उत्साह खतम नहीं हुआ है और अब बहुतों के हृदय में यह आशा होती है कि शायद चीन ही अन्त में इस युद्ध से बिजय-पताका लेकर निकले। यदि ऐसा हो तो यह बिजय प्रजातन्त्र की होगी और हार होगी साम्राज्य-वादियों की।

सरिता

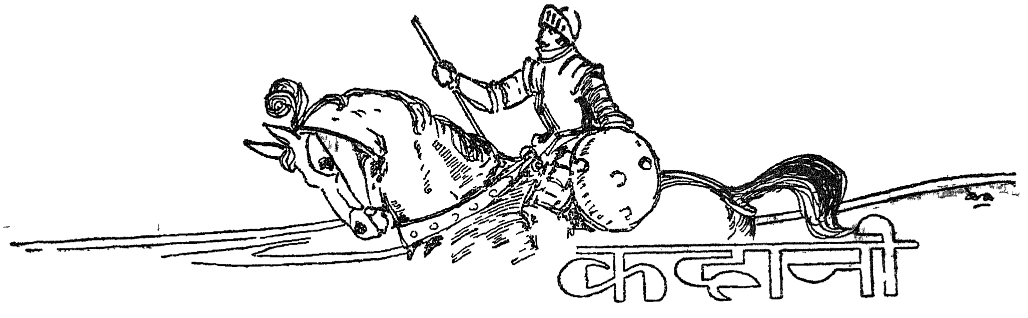
[श्री० पशुपतिनाथ मिश्र 'प्रफुल्ल']

री ! सुहागिन, कौन हो तुम ?
विमल, खरतर धार वाली !
पाविनी, मृदु-भाषिणी,
सौदामिनी मधु-भार वाली !

किस विजय के गान गाती,
नाचती, अलकापरी सी।
मोहिनी सी रूप मधुऋतु,
सी, मृदुल शृङ्गार वाली !
री ! सुहागिन कौन हो तुम ?
विमल, खरतर, धार वाली !

कूजती, तुम कोकिला सी
विजयिनी मृदु-हास वाली !
छलकती, झनका रही—
नूपुर, मधुर झङ्कार वाली !
री ! सुहागिन, कौन हो तुम ?
विमल, खरतर, धार वाली !

कौन तुम एकाकिनी ?
चिर-विरहिनी सी विकल मन हो !
काश्यिपो की गोद मे;
तुम कौन ? जल-विस्तार वाली !



प्रोफ़ेसर की पत्नी

[श्री० कुँवर मोहनसिंह सेगर]

(१)

मसूरी
१६ मार्च

सुधा,

मुझे मसूरी आए दो सप्ताह से अधिक समय हो गया, पर इच्छा होते हुए भी तुम्हें अब तक पत्र न लिख सका। इसका कारण लापरवाही या समयाभाव नहीं है। बात यह है कि केवल कुशल-क्षेम के लिये मै तुम्हें पत्र लिखना नहीं चाहता था। चाहता था कि एक बार क्यों न तुम्हें अपने मन की सारी बातें साफ-साफ लिख दूँ। पर उन्हें लिखने में सकोच और झिझक हो रही थी। तुम कह सकती हो कि भला पत्नी से संकोच और झिझक कैसी? पर यदि तुम मेरा विश्वास कर सको तो मै कहूँगा कि तुममें पूर्ण पत्नीत्व को मैने पाया ही नहीं, कभी नहीं पाया, फिर यदि तुम्हें कुछ 'कटु सत्य' लिखते हुए सकोच हो, तो आश्चर्य ही क्या?

तुम्हें शायद यह बात ठीक-ठीक नहीं मालूम होगी कि मै तुम्हें चकमा देकर मसूरी आया हूँ। बीमारी मेरी इतनी भयकर नहीं थी कि मसूरी आना पड़ता। साधारण हरारत के लिये भला कौन डॉक्टर अपने मरीज़ को मसूरी जाने की सलाह देगा—और वह भी फिर मार्च में? पर बात यह है कि मै घर से, तुमसे और अपने दाम्पत्य जीवन से एकदम इतना ऊब उठा था कि कुछ दिन तुमसे दूर रहने को बेचैन हो उठा था। गर्मियों की छुट्टियाँ होने में अभी २-२॥ महीने बाकी थे और मेरा वहाँ दो महीने तो क्या, दो दिन ठहरना भी दुरूह हो चला था, इसलिये मैंने ठीक यही समझा कि मै ही कहीं भाग चलूँ। तुमसे बहाना यह बनाया कि मेरी बीमारी गभीर रूप धारण कर रही है और डॉक्टर ने आज ही मसूरी चले जाने की सलाह दी है। मुझे यह ग्लानि जरूर हो रही है कि इस साधारण सी बात के लिये मैने तुमसे झूठ क्यों बोला? मैं देखता हूँ कि दूसरों का दिल न दुखाने वाले, कायर और सङ्कोच-शील व्यक्तियों का ऐसे मौकों पर एकमात्र सहारा झूठ ही है। तुम जो भी समझो।

यह पढ़ कर तुम्हें दु ख तो जरूर होगा कि तुमसे दूर रहने के लिये मैं बहाना बना कर मसूरी चला आया हूँ। मैं भी चाहता हूँ कि तुम्हें दु ख हो, खूब दु ख हो—इतना कि तुम अपनी भूल और मेरी व्यथा को ठीक-ठीक समझ सको। पति-पत्नी के सम्बन्ध में इतना तनाव और विकर्षण आ जाना क्या दुःख और लज्जा

की बात नहीं है ? क्या यह हमारे जीवन की विफलता नहीं कि हम दोनों एक दूसरे से पृथक् रहने की इच्छा करने लगे ? परिस्थिति ने मुझे यह मनवा दिया है कि दु ख और सुख हमारे अपने ही कर्मों का फल है।

तुम पूछ सकती हो कि अगर मेरे दिल में तुम्हारे प्रति कोई गिला था, तो मैंने अब तक उसे तुम पर प्रकट क्यों नहीं किया ? यह मेरी गलती जरूर। है, पर मैंने ऐसा इसलिये नहीं किया था कि आगे चल कर यह इतनी बड़ी भूल साबित होगी। मै तो यही समझ रहा था कि आज नही तो कल, और कल नहीं तो परसों, एक न एक दिन तो तुम मुझे समझ सकोगी, हम दोनों एक दूसरे को समझ सकेंगे और शरीर की अपेक्षा हृदय से अधिक निकट हो सकेंगे। तुमने जब जो चीज़ पसन्द की, मैंने न सिर्फ उसे खरीद ही दिया, बल्कि उसकी प्रशसा भी की और अपनी चीज़ों से अधिक उसकी देख-भाल की। यह सब मैंने किसी स्वार्थ या दब्बूपन के कारण नहीं किया—यद्यपि तुम्हारी सहेलियाँ मुझे यह कह कर चिढाया करती थीं कि मैं बीबी का ग़ुलाम हूँ, जब देखो तब उसी को ख़ुश करने में लगा रहता हूँ। बल्कि तुम्हारी ख़ुशी को ही मैं अपनी ख़ुशी समझता था और तुम्हारी पसन्द को ही मैंने अपनी पसन्द समझा। पर आज मै यह कहना चाहता हूँ कि तुमने मेरी ख़ुशी को कभी अपनी ख़ुशी नही समझी। जिन बातों या कामों में मुझे खुशी होती या हो सकती थी, उनमें तुमने कभी रस नहीं लिया। न मालूम क्यों ? तुमने शायद समझा हो कि मैं तुम्हारे रूप का परवाना होने के कारण ही तुम्हारी ख़ुशामद किया करता हूँ। अगर तुमने यह समझा और नाज़-नख़रे तथा उपेक्षा से मेरे विशुद्ध प्रेम पर पर्दा डालना चाहा, तो तुमने मुझे, प्रेम को, दाम्पत्य-जीवन और उसके मनोविज्ञान को ख़ाक भी नहीं समझा। मैं कहूँगा कि बी० ए० पास करके भी तुम निरी मूर्खा और नासमझ ही रही। अस्तु—

अब मैं तुम्हें कुछ ऐसे उदाहरण देना चाहता हूँ, जो शायद तुम्हें बिल्कुल भूले न होंगे। तुम्हें याद होगा कि बड़े दिनों में जब हम गणेश-बाग की सैर कर रहे थे, तो मैंने तुमसे गुलाब के फूल की प्रशंसा की थी। मैंने गुलाब के दो बड़े-बड़े फूल तोड़े थे—एक तुम्हारे लिए और दूसरा अपने लिए। तुम्हें मालूम था कि मैं गुलाब को सबसे ज़्यादा पसद करता हूँ। यदि तुम उसे एक बार सूँघ भी लेतीं, तो मैं कृतकृत्य हो जाता और समझता कि तुम और मैं एक हैं, हमारी पसद-नापसंद एक है और मेरी ख़ुशी ही तुम्हारी ख़ुशी है। इसमें तुम्हारा कुछ बिगड़ नहीं जाता और मेरा आनन्द दुगुना हो जाता। पर आश्चर्य और दु.ख मुझे तब हुआ जब कि तुमने मेरा दिया हुआ गुलाब का वह फूल वहीं ज़मीन पर फेंक कर जूते से मसल डाला और बड़ी उपेक्षा से कहा—'मुझे गुलाब सख़्त नापसद है। जिस फूल में काँटे हों, सूँघना तो दूर रहा, मैं उसे छूना भी पाप समझती हूँ !' सच कहता हूँ सुधा, मुझे उस समय ऐसा मालूम हुआ कि तुमने फूल को नहीं, मेरे दिल को पाँव से रौंद डाला है। मैं तिलमिला उठा, पर बोला कुछ नहीं। इसलिए नही कि मुझमें बोलने का साहस नहीं था या कहने लायक कोई बात नहीं थी, बल्कि इसलिए कि बात का बतङ्गड़ बनाने से सिवा मनमुटाव और बुराई के और कुछ हासिल नहीं होता। मैं बहस करके तुम्हें नाराज़ नहीं करना चाहता था। तुम्हें नीचा दिखाना मुझे इष्ट न था। इसलिए नहीं कि तुम मेरी १००) मासिक कमानेवाली बी० ए० पास पत्नी हो, बल्कि इसलिए कि वाद-विवाद से हमारे दाम्पत्य-जीवन में कटुता या नीरसता न आ जाय। मैं सब कुछ बिना किसी रूखेपन या उदासीनता के पी गया, पर तुमने फिर भी मेरा पिंड न छोड़ा और अपनी आदत के वश जले पर नमक डालने से बाज़ न आईं। यह जानने के बाद भी कि मैं गुलाब को सब फूलों से अधिक पसद करता हूँ, तुमने एक-एक कर अन्य सब फूलों की प्रशंसा करनी शुरू की और हर फूल के साथ गुलाब की तुलना करके यह सिद्ध करना चाहा कि गुलाब फूलों में सबसे निकम्मा और वाहियात है। तुम्हें यह ख़याल नहीं हुआ कि बोटेनी के प्रोफ़ेसर को उल्लू बनाने की कोशिश कर तुम अपनी अज्ञानता का ही परिचय दे रही हो। तुम्हारी बात रखने को मैं तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाता गया और तुम

अपनी विजय पर फूली नहीं समाई। इस मिथ्या गर्व ने तुम्हें इतना अन्धा बना दिया कि तुमने कर्नैल तक को गुलाब से अच्छा सिद्ध कर दिया! यह सरासर तुम्हारी हिमाकत और मुझे चिढ़ाने की शरारत नहीं तो और क्या था? पर मै सब कुछ जब्त किये रहा। मै जानता हूँ कि कई स्त्रियों में ऐसी हठधर्मी होती है। वे जब बहस करने या किसी की तारीफ करने पर उतर आती हैं, तो उचित या अनुचित रूप से जब तक अपने विरोधी का मुँह बन्द न कर दें, चैन नहीं लेती। तुम्हारे बारे में मैं हैरत के साथ यही सोचा करता था कि पढ़-लिख कर भी तुमने मूर्खाओं का यह शस्त्र कैसे अपनाया? तुम्हें उनसे ऊँचा उठना चाहिये था।

तुम्हें याद होगा कि पिछली बार जब हम अमृतसर का स्वर्ण-मन्दिर देख कर लौट रहे थे, तो तुमने मार्ग में से एक सोने का अनन्त और दो जार्जेट की साड़ियाँ ख़रीदी थीं! पढ़ी-लिखी स्त्री का अनन्त पहनना न मुझे तब पसन्द था, न अब है। उस समय रुपयों की भी तङ्गी थी। अत मैंने तुमसे कहा कि अगर अभी अनन्त न ख़रीदो तो अच्छा है। पर मेरी असमर्थता को देख कर तुमने और ज़िद की और मुझे झुकना पड़ा। साड़ियों के बारे में मैं तुम्हें स्पष्ट कह चुका था कि मुझे विदेशी वस्त्र पसन्द नहीं। तुम इनसे चौगुने अठगुने मूल्य की जितनी चाहो, देशी साड़ियाँ ख़रीद लो, किन्तु यह विदेशी साड़ियाँ न लो। पर तुम्हारा काम तो मेरा विरोध करना था! तुमने तानेज़नी करनी शुरू की। मुँह बनाकर मक्कारी से कहे हुए तुम्हारे वे शब्द आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं कि—'जो चीज़ मुझे पसन्द आती है, आप हमेशा उसे ख़रीदने से इनकार कर देते हैं, और आप साड़ी न ख़रीद कर देंगे, तो क्या मैं नंगी-बूची थोड़े ही फिरूँगी?' तुम्हें शायद अब भी पता न हो कि इन शब्दों ने मेरे दिल पर कैसी चोट की, पर बिना किसी हील-हुज्जत के मैंने तुम्हारी यह ज़िद पूरी की, क्योंकि गृह-कलह को निमन्त्रण देना मेरे लिए अनन्त साड़ियों के मूल्य से कहीं महँगा पड़ता। पर उनके ख़रीदे जाने के बाद मैंने भूल कर भी कभी तुमसे उनकी निन्दा नहीं की, बल्कि झूठ मूठ को, तुम्हारा दिल रखने के लिए, मैंने जब-तब तुमसे उनकी प्रशंसा ही की। उस दिन जब तुम नई साड़ी पहन कर स्कूल जाने की तैयारी कर रही थी, तो मुझे इस बात पर दुःख हो रहा था कि लोग कहेंगे—देखो अमुक राष्ट्रवादी प्रोफ़ेसर की पत्नी विदेशी वस्त्र पहनती है। उस समय मैं बड़े शोक और ग्लानि का अनुभव कर रहा था। पर ज्योंही तुमने मेरी ओर मुख़ातिब होकर पूछा कि साड़ी कैसी है, मैंने अपने हार्दिक भावों को दबाकर हँसते हुए कह दिया—'ख़ूब अच्छी है। यह तुम्हें अन्य सब साड़ियों से अधिक फबती है।' उस समय शायद तुम ख़ुशी में फूली न समाई होंगी, पर मैं ही जानता हूँ कि मुझे कितना दुःख हो रहा था। पर मैंने तुम्हे अप्रसन्न नहीं किया।

सुधा, तुम मानो या न मानो, समझो या न समझो, मै आज यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि तुम्हें सदा अपना, अपने बनाव-शृङ्गार का और अपनी ख़ुशी का ही ध्यान रहता है। तुमने उस पुरुष के प्रति अपनी कोई नैतिक ज़िम्मेदारी या कर्त्तव्य ही नहीं समझा, जिससे कि तुमने विवाह किया है। यही कारण है कि तुम मुझे ठीक-ठीक न समझ सकीं, शायद समझने की चेष्टा ही नहीं की! क्या तुम यह समझती हो कि केवल तुम्हारे रूप और अपनी वासना के लिये मै महीने भर की गाढ़ी कमाई गृहस्थी के नाम पर तुम्हारे शौक पूरे करने में पानी की तरह बहा रहा हूँ? पर सच जानो, इनके लिये विवाह करने या अपने घर पढ़ी-लिखी, ख़र्चीली और शौकीन पत्नी रूपी सफ़ेद हाथी बाँधने की कतई आवश्यकता नहीं है। विवाह का जो पवित्र और गौरवमय उद्देश्य है, वह तुमसे अविदित नहीं। पर मैं कहूँगा कि विवाह करके भी मै उसके आनन्द और जीवन का सच्चा साथी पाने में सर्वथा असफल और असमर्थ रहा हूँ। घर मेरे लिए जेल या पागलख़ाने से कम नहीं है। तुमने तो मानो मेरे साथ असहयोग करने का प्रण करके ही विवाह किया है। सुबह जब मै सैर करने को जाने के लिये उठता हूँ, तो तुम्हें मीठी मीठी नींद आती है! जब मेरे खाने का वक़्त होता है, तो तुम स्कूल चली जाती हो। जब शाम का मै कॉलेज से लौटता हूँ, तुम्हारे घूमने

का समय होता है। जब कभी मैं सिनेमा जाने का प्रस्ताव करता हूँ, तो तुम्हारे सिर या आँखों में दर्द होने लगता है। जब मै सोना चाहता हूँ तो तुम्हारा रेडियो सुनने को जी होता है और जब मैं बात करना या रेडियो सुनना चाहता हूँ तो तुम्हारा पढ़ने या सोने को जी होता है। जो खाना मुझे पसन्द है, उसे देखते ही तुम्हे कै होने को होती है। जब मेरा पेट खराब हो तो तुम्हारा जी हलुवा-पूरी खाने को करता है और जब कोई त्यौहार हो या मेरा जी कुछ अच्छी चीज़ खाने को हो, तो तुम्हे खिचड़ी या दाल-चावल की सुधि आती है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी एक बात में भी तो हम दोनों की रुचि एक नहीं हुई। जिधर मै चला, तुमने सदा उससे विपरीत दिशा अख्तियार की। मुझे तो अब यह भी सन्देह होने लगा है कि तुम्हे मेरी उपस्थिति या मेरे साथ रहना भी पसन्द है या नहीं!

यह सब मैने तुम्हे शिकायत के तौर पर नहीं लिखा है। मैंने अपनी कठिनाई, अपने दृष्टिकोण से, तुम्हारे सामने रक्खी है। मैं चाहता हूँ कि तुम इसका कोई हल सोच निकालो और मानसिक क्लेश से मेरा उद्धार करो। जीवन की इस विषमता ने मेरे शरीर और मन दोनों को जर्जर बना दिया है। मेरी सहन-शक्ति खत्म हो चुकी है। इसीलिये चाहता हूँ कि तुम मेरी सहायता करो और मुझे इस सङ्कट से उबारो।

आशा है, तुम सानन्द हो। सुविधानुसार शीघ्र उत्तर देना। मैं उत्सुकतापूर्वक तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करूँगा।

मैं हूँ तुम्हारा ही,
सतीश

२

मसूरी
२८ मार्च

सुधा,

तुम्हारा पत्र काफी प्रतीक्षा के बाद मिला। मुझे जिस बात की आशंका थी, वह सत्य निकली। प्रेम, सौहार्द्र और सद्भावना के स्थान में मुझे इसमें तीखे व्यंग्य और कटूक्ति का ही विशेष आभास मिला। यह लिखने की भला क्या आवश्यकता थी कि तुम एक पढ़ी-लिखी और अपने अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ स्त्री हो। मैंने तुम्हारे विदुषी होने में कब संदेह किया है? कब मैंने तुम्हारे अधिकारों के अपहरण या उन्हें ठेस पहुँचाने की चेष्टा की है? क्या यह गर्वोक्ति तुम्हारे अहभाव और 'त्रिया-हठ' की परिचायक नहीं? सुधा, ज़रा तुम्हीं सोचो, क्या यह बात हास्यास्पद नहीं है कि विवाह के ८ वर्ष बाद तुम मुझे यह बता रही हो कि तुम पढ़ी-लिखी और अपने अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ हो?

हमारे विवाह की सारी जिम्मेदारी तुमने मुझ पर डाली है। मैं बिना किसी झिझक, सफाई या कैफियत के उसे स्वीकार करता हूँ। मै यह भी मानता हूँ कि तुमसे विवाह करके मैंने गलती की है, पर यह एक ऐसी गलती है, जिसे नई रोशनी का प्रायः प्रत्येक युवक करता या कर सकता है। मै कालेज से निकला ही था कि तुम्हारे पिता ने विवाह का प्रस्ताव किया। दुनिया का अनुभव मुझे कुछ था नहीं। मैं तो उस समय विवाह को विलासिता का पासपोर्ट और पत्नी को जी बहलाने की एक गुड़िया ही समझता था। जब मैंने पहले-पहल तुम्हें देखा तो तुम्हारे रूप और यौवन ने मुझे अंधा बना दिया। यह जानकर कि तुम बी० ए० पास हो, पार्टियों आदि में मेरा साथ दे सकोगी, मेरा तुमसे विवाह करने का निश्चय और भी दृढ़ होगया और बिना तुम्हारे गुण-दोषों की जाँच किये ही मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। विवाह होगया और हम तुम दोनों विलासिता में डूब से गए। पर ज्योंही यौवन का आवेग कुछ मन्द पड़ा और वासना की भूख कम हुई, जीवन के नैतिक कामों ने हमारे विचार-भेद, रुचि विभिन्नता और असलियत को उभार कर हमारे सामने रख दिया। तब मेरी आँखें खुलीं और मैं अनुभव करने लगा कि हम तुम एक-दूसरे से उतने ही दूर हैं जितने कि पृथ्वी और आकाश। वासना ने हमें मिला दिया था। इस पर हमने विवाह की मोहर लगा कर अपने आपको समाज की दृष्टि में मान्य और निर्दोष बना लिया था, पर हृदयों को मिलाना हमारे बस के बाहर की

बात थी, यही कारण है कि पिछले ६-७ वर्ष से पति-पत्नी होते हुए भी हमने गैरों की तरह जीवन बिताया है।

तलाक देने की बात तुमने ख़ूब कही। क्या तुम यह समझती हो कि यह मुझे नहीं सूझी थी? मुझे तो यह बात उसी दिन सूझ गई थी, जब तुमने किसी साधारण सी बात पर झुँझला कर कहा था कि 'मैं किसी की गुलाम या ख़रीदी हुई लौंडी नहीं हूँ, जैसा मेरे मन में आयेगा करूँगी।' इसके बाद तुमने अपनी मनमानी करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी, पर मैंने कभी इस सम्बन्ध में किसी तीसरे आदमी से ज़िक्र तक नहीं किया। तलाक तो मैं किसी भी समय ले सकता था—अब भी ले सकता हूँ—पर मैं हमारे-तुम्हारे झगड़े को 'पब्लिक-स्कैंडल' नहीं बनाना चाहता। अगर तलाक ही लेनी होती तो तुम्हें पत्र लिखने के बजाय मैं अदालत ही न जाता। यह दूसरी बात है कि सब ओर से मायूस होने के बाद मुझे इसी की शरण लेनी पड़े, पर जहाँ तक सम्भव होगा मैं इसको काम में न लाऊँगा। किसी हद तक मैं तलाक की उपयोगिता और आवश्यकता को स्वीकार कर सकता हूँ, पर पति-पत्नी के झगड़े का एकमात्र हल वही है, इसे मैं नहीं मानता। मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि यदि हम गंभीरता और सद्भावना से काम लें, तो ऐसा कोई प्रश्न नहीं जो आपस में ही हल न किया जा सके। हमारे लिये अब भी समय है।

तुम्हारा यह कहना भी ठीक है कि भावुकतावश मैंने तुम्हें बहकी-बहकी बातें लिखी है। सचमुच मैं भावुक हूँ। मेरा तो यह विश्वास है कि भावुकता ही मानवता की पहचान, जीवन की सरसता और सुख का सार है। जिसके हृदय में भावुकता नहीं, वह पत्थर की मूर्ति से अधिक और क्या है? अगर मैं भावुक न होता, तो इस स्थिति में यह लम्बे आठ वर्ष तुम्हारे साथ भला कैसे बिता देता? पर भावुकता हँसी या तिरस्कार की चीज़ तो नहीं है। भावुक कह कर तुम मुझे बुद्धू या मूर्ख नहीं बना सकतीं। काश, तुम इस बात को समझ पातीं।

मेरी बातों को लेकर तुमने पुरुषों पर ख़ूब व्यंग्य-बाण कसे हैं। मैं इसे बुरा नहीं समझता। पर तुम्हारी यह धारणा कम से कम मुझ पर लागू नहीं हो सकती कि पुरुष सदा अपनी स्वार्थ-सिद्धि और इच्छापूर्ति के लिये आतुर रहता है और चाहता है कि स्त्री उसकी उचित-अनुचित हर आज्ञा को सिर-आँखों पर रक्खे। हो सकता है इसमें कुछ तथ्य या तर्क हो, पर अब वह युग बीत गया। मैं इस विचार का पुरुष नहीं हूँ। मैंने यह कभी नहीं चाहा कि तुम मेरी हर 'आज्ञा' को मानो। आज्ञा मैंने तुम्हें दी ही कब? मै तो सदा तुमसे साथी या सहयोगी का सा व्यवहार करता रहा हूँ। रही स्वार्थ की बात, सो वह तो हमारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य रही है। बिना स्वार्थ के हमारा कुछ भी करना या जीवित रहना कोई अर्थ नहीं रखता। परमार्थ का ढोल बजाने वालों को मैं परले सिरे का स्वार्थी और ढोंगी समझता हूँ। पर सुधा, तुम शायद यह न सोच सकीं कि दाम्पत्य-जीवन में पति का स्वार्थ पत्नी का भी स्वार्थ है। विवाहित-जीवन में एकांगी स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं है। सच मानो, मैंने कभी ऐसे क्षुद्र स्वार्थ के लिए कामना नहीं की कि जिसमें मुझे अकेले का ही फ़ायदा दिखा हो।

तुम्हारा यह कहना कि बचपन के पड़े हुए संस्कार और विचार बदले नहीं जा सकते, मानो बुद्धि को तिलांजलि देना है। पशुओं पर यह बात भले हो लागू हो सके, पर समझदार मनुष्यों के लिए यह अकाट्य नहीं। मनुष्य को तो सदा समय और परिस्थिति देखकर ही चलना होता है। बचपन के संस्कार और विचार प्राय अपरिपक्व और अधूरे होते हैं। उन्हें स्थायी और पत्थर की लीक बना लेना बुद्धिमानों को शोभा नहीं देता। फिर मैंने तो तुमसे कभी विचारों या संस्कारों के परिवर्त्तन की बात नहीं कही। कहता और चाहता मैं सिर्फ यही रहा हूँ कि तुम अपने आपको जीवन और उसकी जिम्मेदारी के अनुकूल बनाने का यत्न करो। नदी की धारा के विरुद्ध चलने वाले बड़े-बड़े सामर्थ्यवान् भी हार जाया करते हैं, फिर तुमने समय-प्रवाह के विरुद्ध चलने की क्यों ठानी है? मैं मानता हूँ कि बचपन के विचारों,

रुचि और आदतों को बदला नहीं जा सकता, पर उन्हें सुधारा तो अवश्य जा सकता है। जिस प्रकार मैंने तुम्हारी रुचि और प्रसन्नता के लिए अपने आप में बहुत से सुधार किये हैं, बहुत सी बातें बदली है, वैसे ही क्या तुम भी नहीं कर सकती थीं? यह कोई कठिन या असम्भव बात तो नहीं है। जरूरत केवल हृदय और अपनी जिम्मेदारी को महसूस करने की है। दो आदमियों के बीच में स्वार्थ या मनमुटाव की भावना का उदय उसी समय होता है, जब कि उनमें से कोई एक कम से कम देने और अधिक से अधिक लेने की दुर्बुद्धि का शिकार हो जाता है। जीवन का सच्चा सुख तो उसी में है कि हम अधिक से अधिक देने और कम से कम पाने की आशा लेकर चलें। अगर तुम सच मान सको तो मैं कहूँगा कि मैंने यही किया या करने का प्रयत्न किया है और तुमने इससे सर्वथा विपरीत। यही कारण है कि बहुत जल्द हमारे प्रेम कहे जाने वाले दिखावे ने स्वार्थ और मनमुटाव की एक बड़ी-सी दीवार हमारे बीच में खड़ी कर दी।

सुधा, आज मैं और तुम जीवन के उस चौराहे पर खड़े हैं, जहाँ से हम दोनों को अपने अपने मार्ग निश्चित कर लेने हैं। यह दो होंगे या एक, इसका निर्णय मैं तुम पर छोड़ता हूँ। सच मानो, यह बहस या दलीलबाज़ी की बात नहीं है। यह तो केवल समझने की बात है। अगर तुम देखती हो कि हम तुम दोनों अपने-अपने स्थान से कुछ आगे बढ़ सकते है, अपनी रुचि-अरुचि और विचारों में एक-दूसरे की खातिर थोड़ा-बहुत परिवर्त्तन कर सकते हैं, तो मैं तुम्हारे सुलह के प्रस्ताव का स्वागत करने को तैयार हूँ। मैंने अभी तक अपनी ओर से इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय नहीं किया है। तुम्हारा उत्तर आने पर ही कुछ सोचूँगा। अगर तुम्हारा रुख और निर्णय वही रहा जो अब तक था, तो मेरा और तुम्हारा मार्ग स्पष्ट है।

तुम स्वयं पढ़ी-लिखी और समझदार हो, इसलिये मैं तुम्हें कोई उपदेश देने की विडम्बना नहीं करता। मैंने कभी इस प्रकार का दुष्प्रयत्न किया भी नहीं। मैंने अपने आपको तुम्हारा 'पति' न समझ कर 'साथी' ही समझा है। इसी भावना से मैं तुम्हारे लिये अपने समय और साधनों में से सदा गुञ्जाइश निकालता रहा हूँ। इसी भावना से प्रेरित होकर आज तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। इसके बाद, मेरी यह हार्दिक कामना है कि हम-तुम जब मिलें एक नई स्थिति और वातावरण में मिलें—वह इधर हो या उधर, इसकी मुझे चिन्ता नहीं।

आशा है, तुम सब बातों पर विचार करके अपना मत लिखोगी।

तुम्हारा ही,
सतीश

३

मसूरी, ६ अप्रैल

सुधा,

इस बार तुम्हारे पत्र की मैंने उसी उत्सुकता और बेचैनी से प्रतीक्षा की, जिससे कि एक परीक्षार्थी परीक्षा दे लेने के बाद परिणाम की प्रतीक्षा करता है। जब तुम्हारा पत्र आया तो मेरा हृदय धड़क रहा था, सिर भारी हो रहा था और ऐसा मालूम हो रहा था कि एक क्षण में मानो सारी दुनियाँ ही बदल जायगी। काँपते हुए हाथों से मैंने लिफाफा खोला और तुम्हारा निर्णय पढ़ा। पढ़ने के बाद ऐसा लगा कि सदा के लिये मुझ पर से एक बोझ उतर गया है, रोज़-मर्रा का संकट टल गया है। पर दूसरे ही क्षण मैं काँप उठा। तलाक का निश्चय करके तुमने मेरे हृदय पर एक ऐसा घाव सा कर दिया है, जो शायद इस जीवन में पुर न सके। मेरे जीवन को जरा-जीर्ण करने के लिये यह उसे एक अमोघ औषधि का काम देगी। इसमें अपराध मेरा ही है। मैंने भावुकता और तुमने यथार्थवाद की पूजा की है। इसीलिये मैं विफल और तुम सफल रही हो।

तुम्हें तलाक देने से तनिक भी संताप नहीं होगा, पर मैं इस तरह बच नहीं सकूँगा। मैंने पश्चिम में नहीं, भारत में जन्म लिया है। मैं संस्कृति का गुलाम हूँ, विवाह को मैंने दो शरीरों का नहीं, दो आत्माओं का सम्बन्ध समझा था। शायद अब भी समझता हूँ। पर मैं अपनी इस समझ पर लोगों को हँसते देखता हूँ। हँसें भी क्यों नहीं,

मेरी समझ भी तो पुरानी पड़ गई है। विज्ञान के इस युग में दो आत्माओं का अविच्छिन्न सम्बन्ध क्या अर्थ रखता है? आज तो बिना विवाह के भी पति-पत्नी का काम चल सकता है। ओह! ज़माने की इस दौड़ में मै कितना पीछे हूँ।

मैं अगले सप्ताह आ रहा हूँ। तलाकनामे पर बिना किसी आपत्ति के हस्ताक्षर कर दूँगा। और भी मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा, करने का यत्न करूँगा। पुरानी बातों को भूल जाना सुधा। अपनी समझ में मैंने तुम्हें कभी अप्रसन्न या दुखी करने का यत्न तो नहीं किया, पर यदि जाने-अनजाने कभी ऐसा कुछ हुआ हो तो क्षमा करना। आदमी से भूल हो ही जाती है। पर वह बार-बार भूल नहीं करता। कभी सँभल जाता है। मैं भी कोशिश करूँगा कि आगे के लिये सावधान हो जाऊँ।

तुम जहाँ और जिसके साथ भी रहो, सुखी रहो, यही मेरी हार्दिक कामना है। तुम्हें अनावश्यक तौर पर लम्बे पत्र लिख-लिख कर मैंने जो कष्ट दिया है, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। विशेष कुशल।

तुम्हारा शुभैषी,
सतीशचन्द्र

❀ ❀ ❀

अभाव

[श्री० गौरीशङ्कर 'द्विजेन्द्र']

मेरे अन्तर के मूक भाव !
कलकल छलछल की चिर-ध्वनि मे
बह-बह रुक जाते मूक भाव !

अपनी ही आभा मे जल-जल
हीरक-कण-से नक्षत्र-वृन्द
ऊषा की मङ्गल बेला मे
खो देते है आभा अमन्द।

पर जान जगत् कब है सकता
उनके अन्तर का विफल चाव ?
मेरे अन्तर के मूक भाव !

अपनी ही छबि मे चमक-चमक
हिम की लघु बूँदें तरल, लोल,
स्वप्निल किरणो की गोदी मे
खो देती निज जीवन अमोल !

पर सकती संसृति जान कहो,
कब उनके हिय का अमर घाव ?
मेरे अन्तर के मूक भाव

अपनी ही कम्पन मे हिल-हिल
कोमल-लघु झोको का समीर
कलिका के मधुमय चुम्बन को
रुक जाता हो-होकर अधीर।

पर पड़ता कब जगती-उर पर
इस वायु-विवशता का प्रभाव ?
मेरे अन्तर के मूक भाव !

अपने ही बल से गरज-गरज
जल-पूरित बादल-दल सरोष
जीवन के यौवन मे ही तो
खो देता अपना रोष, घोष।

पर विश्व समझता कब उसका
चिर-परवशता-सँग दृढ़ लगाव ?
मेरे अन्तर के मूक भाव !

अपने ही भावों मे गा-गा आकांक्षाओ का क्षुद्र दास
यौवन के मङ्गल उत्सव मे चुप हो जाता मै अनायास !

पर यत्न जानने को जगती
कब करती है मेरा अभाव ?
मेरे अन्तर के मूक भाव !

बिखरे फूल

हम और हमारे कुम्भ मेले

ऐसा कौन हिन्दू होगा, जो कुम्भ मेले के नाम से परिचित न हो। हाँ, यह हो सकता है कि बहुत से कुम्भ के असली अर्थ को न समझते हों। वास्तव में यही बात है, तभी तो किसी भी तीर्थ स्थान में कुम्भ के आते ही प्रत्येक प्रान्त से लोग बिना आगा-पीछा सोचे इस प्रकार टूट पड़ते हैं जैसे मीठी चीज़ पर मक्खियाँ। अगर इन जाने वालों से पूछा जाय कि भाई, तुम इस तरह कहाँ जा रहे हो और वहाँ जाने से क्या फल होगा, तो ९९ प्रतिशत यही उत्तर देंगे कि इस कुम्भ के पुण्य-समय में गङ्गा-स्नान करने जा रहे हैं। ऐसे समय में स्नान करने से मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। कितनी भोली है इस बूढे भारत की जनता। ऐसा कौन समझदार भारतीय होगा, जो अपने प्यारे देश की यह दशा देख कर पीड़ा का अनुभव न करे।

इन मेलो में यदि इन जाने वालों की दशा देखी जाय तो इन बेचारों की बुद्धि पर तरस आता है। यह लोग पुण्य समय वाले रोज़ मरने की चिन्ता छोड़ एक दूसरे से धक्कामुक्का करते हुए यही प्रयत्न करते हैं कि पहले हम गङ्गा-स्नान कर लें, ताकि शीघ्र पाप से मुक्त हो जायँ। इस कशमकश में और तो कुछ हाथ आता नहीं, या तो साथियों से पिछड़ जाते हैं, ज़ख्मी हो जाते हैं या जान से ही हाथ धो बैठते हैं। क्या कहने हैं, पाप-मुक्त होने के तरीक़ों के। भीड़ में पिच कर मरते भी हैं, फिर बुरी गति से। उस समय इनसे पूछा जाय, क्यों भाई इतना पुण्य लूटा कि इस शीघ्रता से बैकुण्ठ धाम का पास मिल गया? किन्तु नहीं, उस समय तो इन बेचारों की दशा देख कर दया आती है और जी चाहता है इनकी कुछ सहायता करने को। पर तब हो ही क्या सकता है।

हृदय को अपार कष्ट तो उस समय होता है जब यह देखा जाता है कि जनता नुकसान उठाकर, इन कुम्भ मेलों की विपत्तियों का अनुभव करते हुए भी, दुबारा वहाँ जाने से बाज नहीं आती। जहाँ जाने से लाभ के स्थान में हानि उठानी पड़े, वहाँ फिर जाना किस लिये?

मालूम होता है कि ऐसे स्थानों में जाने के लोगों के दो मुख्य उद्देश्य हैं। पहला गङ्गा-स्नान से पापों का धोना और दूसरा मनोरञ्जन के लिये जाना। पर जब यह दोनों ही बातें पूरी न हों, तो ऐसे पवित्र स्थानों पर इकट्ठे होकर वहाँ के वायुमण्डल को भी दूषित करना व्यर्थ है।

आप जानते हैं कि भगवान ने कर्मफल कितना प्रधान बनाया है। जो जैसा कर्म करता है, उसको उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। यह बात सभी ने मानी है। महात्मा तुलसीदास तक ने इसे माना है और अपने रसमय पद में इस बात को कितनी सरलता से दर्शाया है।—

> "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा,
> जो जस कीन्ह सो तस फल चाखा।"

अब जब यह बात सिद्ध हो ही गई कि जो जैसा करता है, उसे उसका फल भोगना ही पड़ता है। तो फिर बतलाइए, भला यह कैसे सम्भव हो सकता है कि गङ्गा में स्नान मात्र ही से मनुष्य पाप-मुक्त हो जाय?

अब दूसरा विषय लीजिये, मनोरञ्जनार्थ जाना। मनोरञ्जन वहीं न हो सकता है जहाँ मन प्रसन्न हो और मस्तिष्क में ताज़गी आवे, पर जहाँ यह न होकर उलटा भीड़ और गरमी के मारे मन घबरा उठे तथा दिमाग को यही न सूझे कि अब क्या करूँ, वहाँ मनोरञ्जन कैसा?

कुछ तो भगवान की दया से वैसे ही कुम्भ पर लोग टूटते हैं, कुछ यह हाथियों, पालकियों, मोटरों पर निकलने वाले साधु, वैरागियों, उदासियों और नागों आदि के जलूस गज़ब ढाते हैं। लोग इनको देखने के लिये जान देते है।

भला सोचिये, जो मंहत राजा-महाराजाओं की नाईं रहते हैं और इस शान से हाथी-मोटरों पर चढ़ कर निकलते हैं, क्या वह महात्मा कहलाने योग्य है? जिन वैरागियों और नागों में लाठी चल जाँय, तलवारें म्यान से बाहर निकल जावें, क्या वह साधु के पवित्र नाम से पुकारे जा सकते हैं? नहीं, कभी नहीं। महात्मा पुरुषों का क्षेत्र ही अलग है, वह दुनियाँ का बुरा कभी नहीं कर सकते। वह तो सभी का भला चाहते और सदेव संसार से अलग रहते हैं। तिसपर भी लोग उनके दर्शनों के लिये इतना मरते है और उनकी चरण-रज लेना अपना परम सौभाग्य समझते है। इनका फल बेचारों को कितना सुन्दर मिलता है? कुछ बेदर्दी से हाथी के पैरों तले कुचले जाते हैं और कुछ राह में ही भीड़ में दबकर प्राण विसर्जन कर बैठते हैं, इसलिये उन हाथी-पालकियों वाले महानुभावों से प्रार्थना है कि वह इस प्रकार धर्म की आड़ में भोली-भाली जनता को न ठगा करें। जनता को भी समझना चाहिये कि वह ऐसे व्यर्थ के स्थानों में जान खोने न जाया करे।

यह सब तो हैं ही, पर ऐसे स्थानों में वायुमण्डल दूषित हो जाने के कारण बीमारियाँ बहुत फैलती हैं। हैज़ा तो अवश्य ही फैलता है। इतने से ही शान्ति हो, यह बात नहीं। जब ये जो लोग अपने-अपने घरों को भागते हैं तो जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ-वहाँ भी इन्हीं बीमारियों को फैलाते हैं। इसी प्रकार इन भयानक बीमारियों से हज़ारों आदमी हर बार मरते हैं, पर फिर भी जनता की आँख पर पट्टी बँधी हुई है।

अब पाठक स्वयं सोच लें कि जब इन कुम्भ मेलों में जाने से लाभ कुछ नहीं होता और नुकसान इतना है, तब वहाँ जाना ही क्यों चाहिये।

हरिद्वार के कुम्भ मेले पर क्या हुआ? समाचार-पत्रों में सभी ने उस प्रलय-काण्ड को पढा होगा, बहुतों ने अपनी आँखों भी देखा होगा तथा बहुत से अभागे इसमें नुकसान भी उठाए बैठे होंगे। दुर्भाग्य से मुझे भी आँखों से यह सब देखना पड़ा। भीड़ में पिसे, कराहते हुए प्राणी, आग लग जाने से उसमें जली अथवा अध-जली लाशें से बेचारे भारत के होनहार वालन्टियर्स बेदर्दी पुलीस की गोली द्वारा हताहत, हैजे से मक्खियों की तरह मरते हुए मनुष्यों की सहायता की करुण पुकार, तिस पर पुलीस का ज़ुल्म। उफ़! आप लोग अन्दाज़ लगा सकते हैं कि देखने वालों का क्या हाल होगा, जब उन दृश्यों के स्मरण मात्र से ही कलेजा काँप उठता है।

अब मुझे एक बात और कहनी है कि जो लोग यह तुच्छ लेख पढें वह यह धारणा न कर बैठे कि मैं तीर्थ करने अथवा गङ्गा-स्नान के विरोध में हूँ। नहीं, यह बात बिलकुल नहीं है। मै तो इन व्यर्थ के उपद्रव रूपी मेलों के खिलाफ हूँ तथा यह भी दावे से कह सकती हूँ कि कोई भी समझदार भारतीय इसके विपक्ष में ही होगा।

मेरी सामान्य बुद्धि में तो यह आता है कि अगर गङ्गा-स्नान उच्च ध्येय रख कर किया जाय तो अच्छा होगा। हर एक मनुष्य गङ्गा में स्नान करते समय गङ्गा से यही प्रार्थना करे—"हे गङ्गे करुणामयी, त्रिपथगामिनी, मैं आज तेरे पवित्र जल में स्नान करता हूँ, माँ मुझमें तू इतना साहस और बल दे कि जो मैंने पाप किये हैं उनका जो फल मुझे मिले, उसका मै वीरतापूर्वक भोग करूँ, यह मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि आगे से ऐसे जघन्य कार्यो से बचने का भरसक प्रयत्न करूँगा।" यह भाव

मन में तभी उदय होते हैं, जब कि एकान्त स्थान हो और मनुष्य का मन पापों से खिन्न हो चुका हो।

—राजकुमारी लीलावती

* * *

दुग्ध-पान करने की भी विधि है

आजकल दूध की समस्या तथा उसकी उपयोगिता पर एक अच्छा-खासा आन्दोलन छिड़ा हुआ है। हमारे वर्त्तमान वायसराय महोदय तक इसमें काफ़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। ये शुभ लक्षण हैं। किन्तु यदि इस दूध-आन्दोलन के साथ साथ जनता में यह भी प्रचार हो कि इस दूध को कैसे ग्रहण करें, जिससे उसका पूरा-पूरा लाभ प्राप्त हो तो यह सोना में सुगन्ध का काम कर जाय।

इसमें तो कोई शक नहीं कि दूध मनुष्य का पूर्ण भोजन है, और यही एक ऐसा खाद्य पदार्थ है जिसमें पाँचों 'विटामिन्स' (जीवन-तत्व) पाये जाते हैं, इसके अतिरिक्त सद्वैद्यों की 'सद्योबलकरम्पय:' वाली उक्ति प्रसिद्ध ही है, किन्तु साथ-ही-साथ यह भी मानना पड़ेगा कि दूध को यदि उचित रीति से ग्रहण किया जायगा, तभी वह गुणकारी सिद्ध होगा, अन्यथा अप्राकृतिक और अवैज्ञानिक रीति से उसे ग्रहण करने से हम न केवल उसके गुणों से वञ्चित रह जायँगे, अपितु उसका प्रभाव हमारे शरीर पर उल्टा पड़ेगा और हम चिररोगी बन जायँगे। एक ही वस्तु विष का भी कार्य कर सकती है और अमृत का भी, यह उसके सही और ग़लत सेवन-विधि पर निर्भर करता है। विशुद्ध शहद और विशुद्ध घी को अलग-अलग कौन विष कहेगा, किन्तु इन्हीं दोनों वस्तुओं के सम्मिश्रण से हलाहल विष की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार दूध भी बाह्य ताप और वायु के संयोग से अपना अधिकांश नैसर्गिक गुण खो बैठता है, और उसकी जगह कतिपय विनाशकारी अवगुण उसमें प्रवेश कर जाते हैं, जो मानव-स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त अनिष्टकर सिद्ध होते हैं और अनेकानेक रोगों की सृष्टि करते हैं।

वैज्ञानिकों ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि केवल एक घन इञ्च वायु में अनगिनित रोग-परमाणु पाये जाते हैं, और यह भी सिद्ध हो चुका है कि खुले हुये दूध पर इन रोग-कीटाणुओं का आक्रमण विशेष रूप से होता है। अब यह समझने की बात है कि कितना ही तुरन्त का दुहा हुआ दूध क्यों न हो, उसमें ये कीटाणु पर्याप्त या अपर्याप्त मात्रा में अवश्य प्रवेश कर जायँगे। अस्तु। ऐसा दूध स्वास्थ्य की दृष्टि से सिद्धान्ततः अग्राह्य है। इस कीटाणु-सम्बन्धी ख़तरे की निवृत्ति के लिये जो उपाय हम काम में लाते हैं, वह दूध को अग्नि पर गरम करना है, जो इस सम्बन्ध में हमारी दूसरी भूल है। हमारी धारणा है कि दूध को गरम करने से उसमें प्रविष्ट रोग-कीटाणु नाश को प्राप्त हो जायँगे और दूध शुद्ध हो जायगा, किन्तु यह हमारा कोरा भ्रम है। सच बात तो यह है कि यदि दूध में किसी प्रकार के रोग-परमाणु होंगे तो वे गरम करने से भी नहीं जायँगे। परमाणुओं का क्या कभी नाश होता है? किसी-न-किसी रूप में वे बने ही रहते हैं, इसलिये दूध को रोग-कीटाणुओं से मुक्त करने के लिये उसे गरम करना बेकार ही नहीं, हानिकारक भी है, क्योंकि दूसरी ओर अग्नि के स्पर्श से दूध के सारे पौष्टिक तत्वों के नष्ट हो जाने की सम्भावना है। यह असत्य नहीं है कि उबला या औटा हुआ दूध गरिष्ठ और विकारपूर्ण हो जाता है, और फिर उसमें स्वाद के अतिरिक्त और कुछ रह ही नहीं जाता। ऐसी दशा में जब कि प्रकृति, दूध को गरम तक करने की आज्ञा नहीं देती, उससे बनी रबड़ी, मलाई आदि पदार्थ तो घोर आपत्तिजनक सिद्ध होंगे ही। यही कारण है कि जो लोग ग़लत तरीक़े पर घी-दूध का अधिक सेवन करते हैं, उनका शरीर अनावश्यक रूप से फूल कर बेकार हो जाता है, जो एक प्रकार का रोग है। मारवाड़ियों और धनी परिवारों की यही दशा होती है।

यह अनुभव-गम्य है कि दूध में चीनी आदि डाल कर पीना, उस दूध तथा उसकी कर्त्री प्रकृति देवी दोनों का अपमान करना है। दूध में चीनी आदि डाल-कर मानो हम यह संकेत करते हैं कि प्रकृति देवी ने

भूल की थी, जो दूध को और अधिक मीठा नहीं बनाया। यह प्रकृति का अपमान करना ही तो हुआ, हालाँकि इस अपमान का बदला भी हमको बिना मिले नहीं रहता, अर्थात् दूध, चीनी के संयोग से स्वादिष्ट भले ही हो जाय, किन्तु वह और भी अधिक गरिष्ट बनकर हमारे स्वास्थ्य को कुछ-न-कुछ हानि पहुँचाये बिना नहीं रहता।

उपरोक्त पङ्क्तियों से यह स्पष्ट है कि आजकल मानव-समुदाय में, दूध ग्रहण करने की जो रीति प्रचलित है, वह कितनी भयावह और अस्वास्थ्यकर है। लेखक का तो यहाँ तक विश्वास है कि उक्त अस्वाभाविक ढंग से दूध ग्रहण करने के बजाय, दूध का सर्वथा त्याग कर देना ही अधिक युक्तिसंगत और कल्याणकर होगा। किन्तु यह प्रस्ताव सर्वमान्य नहीं हो सकता, इसलिए अब हमें यह देखना है कि दूध ग्रहण करने का प्राकृतिक ढङ्ग कौन सा है।

'पीयूषाऽभिनवे पय' लोकोक्ति के अनुसार, दूध स्तन से निकल कर तुरत हमारे शरीर में प्रवेश कर जाना चाहिये, तभी वह अमृत का फल देगा, अन्यथा उसमें वाह्य वायु का स्पर्श होते ही उसका अधिकांश आवश्यक गुण नष्ट हो जायगा। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर प्रकृति ने नवजात शिशु के लिए स्तन-पान की प्रणाली निर्धारित की है, और यही दुग्ध-पान करने की सर्वोत्तम और प्राकृतिक विधि है। इस प्रणाली से किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं और लाभ सोलहो आने है। यह एक सिद्धान्त हुआ, किन्तु किसी सिद्धान्त में और उसकी व्यावहारिकता में बहुत अन्तर पाया जाता है। अस्तु। स्तन-पान की प्रणाली शिशुओं के सम्बन्ध में तो ठीक है, किन्तु बड़े-बूढ़ों के सम्बन्ध में तो यह प्रणाली, उत्तम और लाभदायक होते हुए भी भोंडी और हास्यास्पद सिद्ध होगी, इसलिए इसका निर्वाह इस लेख के निष्कर्ष रूप से यहाँ दिया जाता है —

१—उन गायों और बकरियों का दूध, जो स्वच्छन्द-रूप से जङ्गलों और चरागाहों में चरती-फिरती रहती हैं, अधिक लाभदायक होता है, बनिस्बत उन पशुओं के दूध के, जिनको खूँटों पर बाँध कर नमक, दाना, भूसी आदि विविध प्रकार के दूध उतारने वाले पदार्थ खिलाये जाते हैं।

२—दूध सदैव धारोष्ण पीना चाहिए, उसमें चीनी आदि मिलाकर पीना बड़ी भारी भूल है।

३—दूध का प्रत्येक घूँट, धीरे-धीरे मुँह में घुलाकर कण्ठ के नीचे उतारा जाय, एक साँस में सेरों दूध गले के नीचे उतार जाना हानि करता है।

४—भोजन के साथ दूध खाने की प्रथा ठीक नहीं, दूध तो अकेले ही पीने की वस्तु है।

५—दूध को आग पर रखना, उसके गुणों को नष्ट कर देना है।

६—बासी दूध वा देर का रखा हुआ दूध कभी न पीना चाहिए।

७—रोगी मवेशियों का दूध कदापि ग्रहण न करे।

८—कृत्रिम दूध वा डब्बे के दूध का पीना और न पीना दोनों बराबर है।

९—मक्खन निकाला हुआ दूध न पीवे।

—गङ्गाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

* * *

गोरख्याणी

भारत के इतिहास में इसका क्या स्थान है तथा ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें कितना तथ्य है ?—यहाँ पर इसके विषय में लिखना आवश्यक नहीं। इस विषय पर लिखने का मन्तव्य केवल यही है कि पाठकगण भी जान लें कि इस घटना का हिमालय के अंतराल में सुप्त सुरम्य गढ़स्थली के राजनैतिक, सामाजिक आदि अङ्गों पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा, गढ़वाल का बच्चा-बच्चा भी आज तक उस प्रलयकारी रक्तलीला का इतिहास अच्छी तरह जानता है। संसार के अनेकों उदाहरणों के समान गढ़वाल में भी गृह-कलह ने कैसा उग्र रूप धारण कर लिया था और अन्त में क्या परिणाम हुआ, 'गोरख्याणी' इसका नमूना है।

उस समय गढ़वाल अपने शैशव काल की सुनहली

ऊषा का उदय देख रहा था। बालक महराज, जिनके अधिकार में हिमालय का विराट भू खण्ड—गढ़वाल—चैन की वंशी बजा रहा था, अलखनन्दा तट स्थित अपनी राजधानी श्रीनगर में पार्वतीय जीवन का सुखोपभोग कर रहे थे। नाम को तो वे राजा थे, किन्तु असली नकेल थी उनके मन्त्रीद्वय, 'रामा' व 'धरणी' नाम के ब्राह्मणों के हाथों में। दोनों सगे भाई थे और उप-जाति के 'खंडूड़ी' थे। पारस्परिक वैमनस्य तो गढ़ देश की उपजातियों में हमेशा से ही रहा है और रहेगा। खंडूड़ियों के प्रति और वह भी रामा-धरणी के कारण तथा सबसे अधिक उनके ही प्रति सारी प्रजा और भी जली-भुनी बैठी थी। अन्य कई कारणों के अतिरिक्त लोगों का विश्वास था कि उन दोनों भाइयों ने गढाधीश का प्राचीन स्वर्ण-रत्नाभिमंडित राज-सिंहासन और छत्र तोड़कर अपनी ससुराल नैपाल पहुँचाया था। इस सम्बन्ध में सुविख्यात गढ़वाली-गीत का एक पद है—"सोना को सिंहासन तोड़ी तौन पौंछायो नैपाल, रामा जी धरणी।" किन्तु खुल्लम-खुल्ला इनके खिलाफ कुछ कहते या करते विपक्षियों की नानी मरती थी—आखिर प्रधान मन्त्री ही थे। किसकी खोपड़ी खुजला रही थी जो दीवाल से टक्कर लेती।

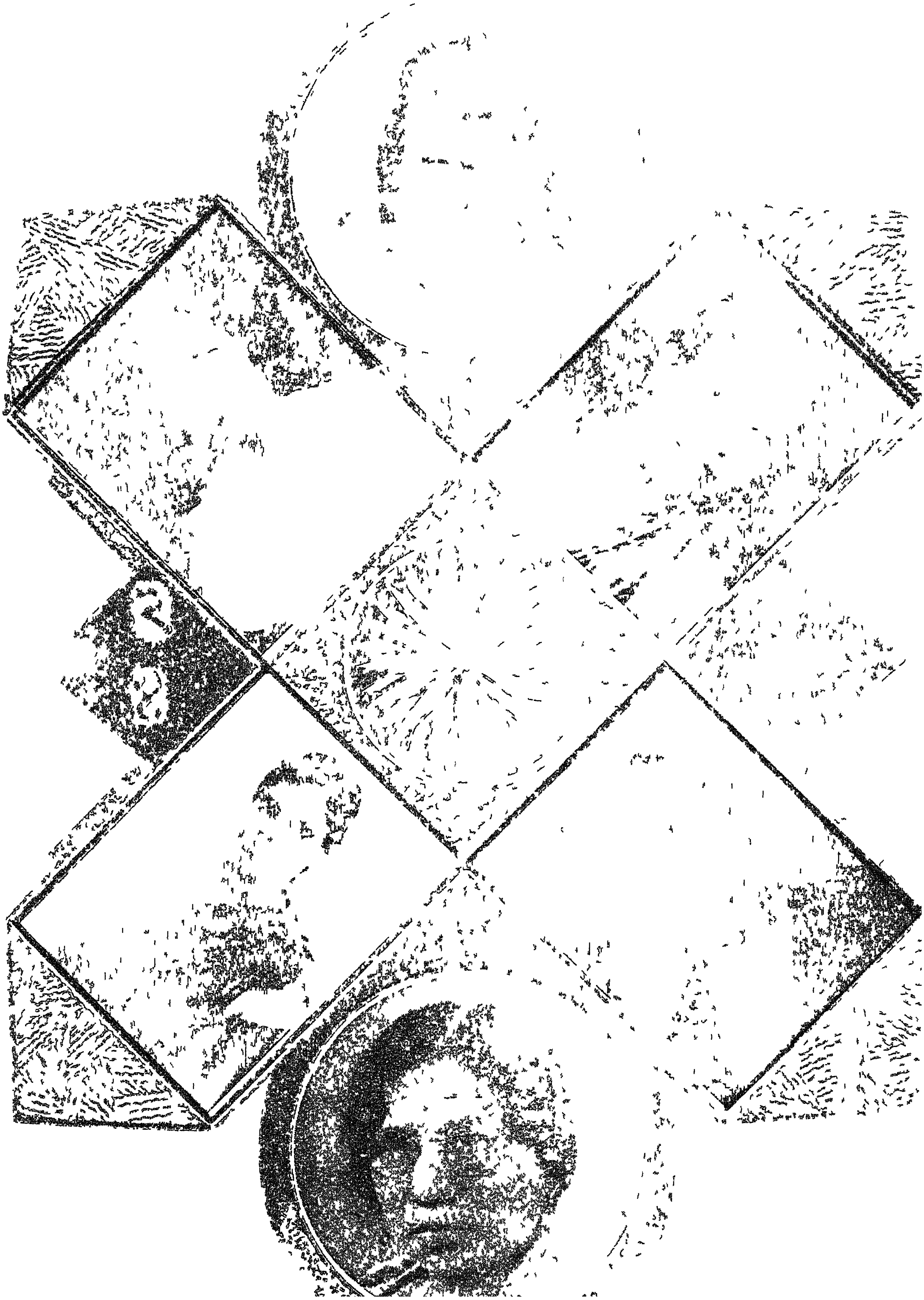
किन्तु अन्त में कुटिल चक्रियों की चाल कारगर हो ही गई। गहन गवेषणा और परामर्श के पश्चात् उन्होंने एक दिन बालक महाराज से शिकायत की—'महाराज! घेंडुड़ियों (गौरेया पक्षियों) ने राज्य भर में उत्पात मचा रक्खा है।' आज्ञा मिली—'फौरन मार डालो।' बालक महाराज को क्या पता कि 'खंडूड़ी' ही 'घेंडुड़ी' बनाये जा रहे हैं। बस, राजाज्ञा की आड़ लेकर 'घेंडुड़ियों' की खोज होने लगी।

किसी विशेष राजकार्य के हेतु उस समय रामा जी 'बधाण' प्रान्त के 'रामणी' नामक गाँव में गये हुये थे। विद्रोहियों का एक दल वहीं पहुँचा। उस समय रामा जी भगवद्भजन में मग्न थे। प्रभात काल का बालसूर्य आततायियों की राक्षसी लीला देखने से पहिले ही मेघों की आड़ में छिपकर सिसकने लगा। पूजास्थल पर अभागे रामा जी का रक्त बहाकर और उसका जीवन-प्रदीप बुझाकर बागी यही रक्त-रंजित खड्ग लेकर वापिस श्रीनगर आये। तब तक अलखनन्दा नदी के तट पर सूर्यार्घ देते हुये 'धरणी' को भी दूसरे दल ने शेष कर डाला। अभागा मन्त्री, जिसने सहस्रों बार अनेकों जीवनों का फैसला किया था, आज अपने जीवन की रक्षा करने के लिये नंगे पैरों ही 'शीतला की रेती' पर भागा। मगर बागियों ने बलि के भैंसे की तरह उसका पीछा करके उस पर शस्त्र प्रहार किये। अन्त में शिथिल होकर 'धरणी' अलखनन्दा के तट पर नङ्गी और भूरी रेत पर गिर पड़ा।

इस तरह दुष्टों ने अपनी साध पूरी की और 'खंडूड़ी-केबिनेट' का अन्त हुआ।

'रामा-धरणी' की स्त्रियाँ नैपाल के सुप्रसिद्ध ब्राह्मणवंश की कन्यायें थीं। अपने पतियों की ऐसी अमानुषिक हत्या का वृतान्त सुनकर और वैधव्याग्नि से दग्ध होकर दोनों बहिनों ने एक थैली में पोश्ता भर कर अपने मायके नैपाल भेजा और लिखा कि—"अगर गुर्खों ने अपनी माँ का दूध पिया है और अपनी माँ-बहिन, बहू बेटी की रक्षा करना जानते हैं, तो इन्हीं पोश्ता के दानों की तरह गढ़वाल में फैलकर हमारे पतियों के घातक आततायियों से इसका पूरा पूरा बदला लें।"

बस क्या था—नैपाल में हाहाकार मच गया। स्त्री-जाति की रक्षा में प्राण न्योछावर करने वाले वीर गुर्खे टिड्डी दल की तरह गढ़वाल में छा गये। प्रलय का ताण्डव नृत्य होने लगा—रक्त की नदियाँ बह गई—प्रकृति की क्रीड़ास्थली गढ़भूमि मरुस्थली बन गई। धानों के लहलहाते पीत-हरित खेत गुर्खों की पद शिलाओं से रौंदे जाकर भूरे वीरान हो गये। नदियों का नील जल लाल हो उठा। मछलियों की जगह नरमुण्ड तैरने लगे। अबोध ग्रामीणों की झोपड़ियाँ जलाई जाकर श्मशान की राख की ढेरियाँ बन गईं। वन्य पशु-पक्षी तक भाग कर विदेशों में चले गये। मनुष्यों ने गिरि-गह्वरों या जङ्गलों में पनाह ली, मगर प्रतिहिंसा से दग्ध गुर्खों ने भोली प्रजा को वहाँ से भी खींच-खाँच कर बाहर किया और निर्दयतापूर्वक बध करने लगे। रक्तपिपासु 'खुँखरी' नर-रक्त चाट कर रणचण्डी



(१) श्रीमती गुलबाई मुलक ईरानी—आप किर्की (बम्बई) के कैन्टोन्मैण्ट बोर्ड की गत सात वर्षों से सदस्या है।

(२) मिस तारा ग्लैडी सिंह—आप इन्दौर के प्रोफेसर बी० बी० सिंह की कन्या है। आपने धात्री कर्म की शिक्षा प्राप्त की है और अब इस सम्बन्ध में विशेष अध्ययन के लिए इङ्गलैण्ड जा रही है।

(३) श्रीमती यशोदरा दसप्पा—आप काग्रेस की तरफ से मैसूर व्यवस्थापिका सभा की उम्मेदवार थीं। आपने चुनाव में सफलता प्राप्त की है।

(४) मिस के० के० लक्ष्मी एल० एम० पी०—आप कोचीन की एक सुयोग्य और समाज सेवा से अनुराग रखने वाली महिला चिकित्सिका है।

(५) श्रीमती शान्ताबाई लेले—आप सङ्गमनेर (अहमदनगर) की म्युनिसिपैलिटी की वाइस प्रेसीडेण्ट निर्वाचित की गई है।

(६) डॉ० ताराबाई पुन्निया—आप सिन्ध प्रान्त की प्रथम महिला चिकित्सिका हैं, जो बम्बई मेडिकल कौंसिल की सदस्या नियुक्त की गई है। आप एक प्रसिद्ध समाज सेविका भी है।

की तरह लपलपाने लगी और बिजली की तरह कौंदने लगी। गुफाओं, घाटियों, पर्वत शृङ्गों में 'त्राहि-त्राहि' गूँजने लगा। बुढियों को पुआल से लपेट और तेल से भिगो कर गुर्खे आग लगा देते और जब वे 'हाय-हाय' करके रोतीं और चिल्लाती तो गुर्खे ताली बजाकर ख़ुश होकर कहते—"गढ़वाल की बुढिया कैसा नाचती है!"—ऐसी थी उस समय गढ़देश की अवस्था।

अबोध, निरपराध बालक राजा तक को जानों के लाले पड़ गये। गुर्खों ने उस सत्ता के आधार को ही निःशेष करना चाहा जिसने उनकी कन्याओं को वैधव्य सहने के लिये विवश किया। मगर 'खँडूड़ियों' ने ही उस समय अपनी नमक-हलाली का परिचय दिया। उन्होंने महाराज को अपने 'ढाई पूरे' में छिपा लिया। खँडूड़ियों पर गुर्खों का शक न गया और इस तरह महाराज की प्राण-रक्षा हुई। गढवाल के भाग्य में अपने उसी पुराने राजवंश की सेवा का श्रेय बँधा था और उस प्रयत्न का सेहरा बँधा खँडूड़ियों के सिर।

ख़ैर, वहाँ से किसी तरह बाहर निकल कर लुकते-छिपते प्रसिद्ध 'ड्यूँडी' पुरोहित और कुछ राजभक्त दरबारियों के साथ महाराज हरिद्वार आये और भेष बदल कर गुप्त वास के दिन यापन करने लगे। वृद्ध पुरोहित और दरबारीगण दिन भर वेश बदल कर चङ्ग और डफली बजा-बजा कर भीख माँग लाते और अपने राजवंश की अन्तिम रश्मि—उस आँधी में बुझते हुये प्रदीप की रक्षा करते। इसी १२ वर्ष के प्रवास काल में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट से लिखा-पढ़ी की। 'अन्धे को चाहिये दो आँखें' विशेष शर्तों पर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने इन्हें सहायता देना स्वीकार कर लिया। इसके फलस्वरूप इतिहास-प्रसिद्ध ब्रिटिश-गुर्खा-युद्ध हुआ। गुर्खे परास्त हुये और महाराज तथा वृद्ध पुरोहित और दरबारीगण अपनी मातृ-भूमि में वापिस आये।

निश्चित शर्तों के अनुसार अलखनन्दा के उस पार का गढ़वाल और अन्य कई सुन्दर-सुन्दर प्रदेश ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के हाथों में चले गये, और उस महान पार्वतीय साम्राज्य का एक सामान्य भग्न अङ्ग इनके (महाराज के) हाथों पड़ा। आत्माभिमानी हिमाञ्चली नरेश अवस्था देख कर ख़ून का घूँट पीकर रह गये। विशेषत इसलिये कि नीति-विशारदा भारत-सरकार ने उस हिस्से में पहाड़ी नरेश के शासन के ऊपर अपना 'रक्षापूर्ण हाथ' रखना आवश्यक समझा।

तत्कालीन गढवाल की याद करके, विशेषकर आज के गढ़वाल से उसकी तुलना करके, आँखों में आँसू भर आते है। हिमालय का गौरवपूर्ण साम्राज्य—वह गढ़वाल अब एक छोटे पहाड़ी राज्य की सीमाओं में बँध कर रह गया और बाकी हिस्सा एक हृदय के भिन्न खण्ड की तरह अलखनन्दा* के उस पार से कातर आँखों से उस विपुल शक्तिशाली गढ़वाल राज्य के भग्नावशेष को टुकुर-टुकुर देखता रह गया—ख़ुद पराधीन होकर।

अब 'गढ़वाली' शब्द एक होने पर भी उसमें भेद आ गया।—'रियासती' और 'ब्रिटिश'। किन्तु समस्त गढ़ देश की केन्द्रस्थली—प्राचीन राजधानी—श्रीनगर, जो अब ब्रिटिश-गढवाल के अन्तर्गत एक सामान्य शहर है, आज भी अपनी खण्डित शिरा और पुराने कलशों को ऊँचा कर कह रही है कि—"मैं गढ़ राज्य की राजलक्ष्मी का निवास-मन्दिर हूँ!" अलखनन्दा आज भी पूर्ववत् गढ़वाल राज्य के चरण धोती हुई बह रही है, मगर डरते-डरते।

आज के गढ़वाल राज्य की राजधानी का नाम है, बल्कि था—'टिहरी' जो अब उठ कर 'नरेन्द्रनगर' आ पहुँची है और आगे पता नहीं कहाँ जायगी।

यही है उस विनाशकारी 'गोरखयाणी' की रक्त-रञ्जित विकट कहानी और उसका दुष्परिणाम!

—मेधाकर नौटियाल

* * *

आर्थिक उन्नति भला कैसे हो?

इन दिनों किसी देश अथवा राष्ट्र की सामाजिक एवं राजनैतिक उन्नति का अधिक श्रेय धन को ही प्राप्त है। जो देश जितना अधिक सम्पन्न है, उतना ही वह अधिक उन्नत है। इसके विपरीत जो देश धन-उत्पा-

दन में पिछड़ा हुआ है, उतना ही वह गरीब है। भारत की गरीबी एवं बेबसी का एक मुख्य कारण उसकी धन-उत्पादन शक्ति है। देश के हितेच्छुओं और कर्त्ता-धर्त्ताओं के सम्मुख यह एक समस्या के रूप में है, जो सुलझनी असम्भव-सी हो रही है।

कोई भी कठिन समस्या परिश्रम द्वारा सुलझाई जा सकती है। और भारत के दारिद्रय में यदि एक-दो कारण काम कर रहे हों तो इससे त्राण पाने की कोई युक्ति सोच भी ली जाये, पर यहाँ तो उलझनों में उलझनें उलझी हुई हैं।

•

जनवरी मास की बात है। माता जी और एक अन्य स्त्री बैठी बातें कर रही थीं। बातों बातों में ही माता जी ने उससे पूछा—' . के घर का कैसा हाल है ?'

'अच्छा ही है। रुखी-सूखी से गुज़ारा चल जाता है। मोटा पहन लिया या बारीक, तन ही तो ढँकना है। इसी प्रकार यह जीवन बीत जाना है, चाहे ··।'

मैंने सोचा—इन विरक्त विचारों ने हमें गरीब बनाने में मुख्य भाग लिया है और अभी ले रहे हैं। जिस देश के वासियों की इनी-गिनी आवश्यकताएँ हों, थोड़े ही से जो संतुष्ट हो जायँ, संसार को जो मिथ्या समझते हों, वे आर्थिक उन्नति कैसे कर सकते हैं।

फरवरी की बात होगी, जब मैं एक बाजार से गुजर रहा था। एक दुकान के सामने देखा कि लोगों की भीड़ लगी थी। मैं भी अपनी उत्सुकता संवरण न कर सका और भीड़ में जाकर मिल गया। देखा—एक कबाड़ी की दुकान है। सैकड़ों पुरानी वस्तुएँ बिखरी पड़ी हैं। एक भले पुरुष ने दुकानदार से पूछा—सेठ जी, इस लैम्प के दाम बताना ? क्या यह कुछ दिन चल भी सकेगा ?

एक महोदय जो पास ही खड़े थे, बोले—अजी, चलेगा क्यों नहीं। नई वस्तु से काम ले लिया या पुरानी से, बात तो एक ही है। अच्छा खा-पहन लिया तो क्या, बुरा तो क्या, किसी तरह जीवन के दिन पूरे करने हैं।

चित्त ने कहा—जिस जगह के मनुष्य कैदियों की तरह जीवन के दिन पूरे करने के लिए पैदा हुए हों, उनको उन्नति किसके लिए करनी। जिनके लिए जीवन शिशिर शुष्क-पत्र की भाँति हो और जो झञ्झा के एक झोंके से ही धरा पर गिर पड़े, भला उन्हें अभ्युत्थान के लिए क्योंकर रोना है।

इसी प्रकार मार्च मास की बात है कि पिता जी से उनके एक मित्र महाशय मिलने आए। बातचीत के सिलसिले में पिता जी ने उनसे पूछा—अच्छा। आज कल आपके कारोबार का क्या हाल है ?

वे बोले—अजी, इस संसार में कौन किसी का अपना है, सभी मतलब के यार हैं। कमाना किसके लिए। ये रिश्ते नाते सभी एक बहाना हैं !

जी में तो आया कि उनसे कह दूँ—यदि अपना आपका कोई नहीं, तो एक-एक पैसे के लिए यह दौड़ धूप किस लिये। कुटुम्ब यदि एक बहाना है, तो उसके पालन के लिए दिन रात एक क्या करना।

कुछ समझ में नहीं आता कि ये लोग संसार को भला क्या समझते हैं। ईश्वर इतना अदूरदर्शी नहीं जो उसने बिना किसी उद्देश्य के सृष्टि की रचना कर डाली। यदि संसार को मिथ्या ही बनाना था, तो रचना किस बात की ? जिस वस्तु या कार्य से कोई लाभ पहुँचने की सम्भावना नहीं, उसे किया ही क्यों जाय ?

इन विरक्त विचारों ने भारत को आज कहीं का नहीं रहने दिया। भारत दिन-प्रति दिन गरीब हो रहा है, बेकारी उग्र रूप धारण कर रही है। ये समस्याएँ तभी हल हो सकती हैं जब देश में धन पर्याप्त हो। जहाँ सहस्र-सहस्र उदर-क्षुधा की कराल वेदना के मारे तड़फड़ा रहे हों, वहाँ 'पानी के बुलबुले' का राग किस लिए अलापा जा रहा है ? जिसकी रग-रग में मज़हब ने विनाश का मन्त्र फूँक दिया है, वह जाति दूसरों द्वारा क्यों न निपीड़ित हो ? जिस देश के वायुमण्डल में 'यह जीवन मिथ्या है, झूठ है, अपना कोई नहीं' के गगन भेदी स्वर गूँज रहे हों, वहाँ गरीबी एवं बेकारी का नग्न नाच क्यों न हो ? जिन्हें अपना आत्मा, अपने अन्त करण, अपने मनुष्यत्व पर विश्वास नहीं, वे ऊँचा उठने के स्वप्न कैसे देख सकते हैं ?

शोषित देश उत्कर्ष-पथ पर तभी आरूढ़ हो सकता

है, जब उसके हृदय में ऊँचा उठने का अदम्य उत्साह, उच्च आकांक्षा और अपने-आप और अपने कार्यों पर पूरा विश्वास है और साथ ही इस उद्देश्य-पूर्ति के आवश्यक साधन भी मौजूद हैं। परन्तु जिन हृदयों का उत्साह 'जीवन और संसार एक स्वप्न है' द्वारा ठण्डा पड़ गया हो, वे आर्थिक या भौतिक उन्नति भला किस प्रकार कर सकेंगे?

—सुशील

* * *

भारत, बर्मा तथा यूरोप की स्त्रियाँ

'चाँद' के विशेषाङ्क "समाज-अङ्क" को पढ़ते हुए मैंने सुप्रसिद्ध लेखिकाओं तथा लेखकों के लेखों में से भारतीय स्त्रियों की दुर्दशा का विवरण पढ़ा। जिसको पढ़ कर हृदय पर एक गहरी चोट लगी। स्त्रियों की कमज़ोरी तथा अज्ञानता ने अपना पद कितना हीन तथा हेय बना लिया है, सोच कर अपनी जाति पर ही क्रोध आने लगा। पर क्या किया जा सकता है। यह कमजोरी और यह अज्ञानता आज की नहीं, अपितु हज़ारों वर्षों से चली आ रही है। इस अज्ञानता रूपी महामारी को भी भारत से निकलते कुछ समय की आवश्यकता है, यही सोच कर चुप रह जाना पड़ा है।

मुझे पढ़ कर तथा लौकिक व्यवहारों के अनुभवों द्वारा जान कर आश्चर्य तथा खेद होता है कि प्राय भारतीय स्त्रियाँ क्यों इतनी ज्यादा अपनी ही जाति के लिए संकुचित विचारों वाली हैं? उनको यह अच्छी तरह से मालूम है कि यही मेरी कन्या कल किसी की बहू और किसी दूसरे की बेटी मेरी बहू बनेगी। सारी जिन्दगी "पति, पुत्र, पतोहू" इन्हीं के झञ्झटों में निकल जाती है। किसी सम्मेलन में भी जहाँ इकट्ठी होती है, वहीं पर नोंक-झोंक शुरू हो जाती है। उन बेचारियों को मालूम ही नहीं रहता कि हम किस उद्देश्य को लेकर इकट्ठी हुई थीं। वह तो यही सोच कर समाज-संस्था में एकत्रित होती हैं कि चलो सब से मिलना हो जावेगा। क्या जीवन का लक्ष्य है—किस लक्ष्य को लेकर वह इस संसार में जीती हैं, इससे तो सर्वथा अपरिचित रहती हैं। उनका पारिवारिक संसार ही उन बेचारियों की धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक पूँजी है और वह उसकी एकमात्र उत्तराधिकारिणी हैं। पर अगर उनसे पूछिए कि कितने प्रतिशत तुमको इस पारिवारिक जिन्दगी में अधिकार हैं तो वह निरुत्तर है। एक घर का स्टोर यही उनकी सम्पत्ति है। पर अगर पति देवता जी नाराज़ हो गए या किसी अभागिनी विधवा को अपने पुत्र से खटपट हो गई तो फिर उसकी जिन्दगी बर्बाद है। उससे स्टोर की चाभियाँ छीन ली जावेंगी और वह रोटी की भी मुहताज बन जावेगी। सारी उमर अपने पति के साथ सुख तथा दुःखों को सहती हुई अन्त समय में जब सम्पत्ति के जायज होने के अधिकार का सवाल आता है, तो वह उसकी अधिकारिणी नहीं हैं। यह भारतीय नारी होने का उसे दण्ड है। अज्ञानता की पराकाष्ठा है।

दूसरी तरफ़ यूरोप की स्त्रियों के जीवन पर दृष्टिपात किया जावे तो उसमें जीवन है। हमारा भारतीय स्त्री-जीवन उसके सामने मुर्दा है। उनके बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक का जीवन उन्नतिपूर्ण है। वह इस जिन्दगी के अधिकारों को भोगती हैं। उनको मालूम है, या कहिए उनको ज्ञान है कि जिन्दगी कैसी तथा कौन से समय किस ढङ्ग से व्यतीत करती हैं। वह "Work while you work and play while you play" की अनुगामिनी हैं। उनके अन्दर नवीन चीज़ों के सीखने की चाह तथा लगन है। इसी कारण वह नवीन सभ्यता के अनुसार बराबरी के अधिकार के प्रयत्न में रहती हैं और वह इसमें सफल भी हुई है।

पर अगर हमारी भारतीय नवयुवती अच्छा अकल वाला काम करना चाहे तो घर की बड़ी पूज्या वृद्धाएँ तथा आस-पास के कुटम्बीजन नुकताचीनी करके उसके उत्साह को वहीं ठण्डा कर देंगे। पश्चिमीय स्त्रियों की कसरत से बनाई हुई शारीरिक गठन की सुन्दरता को देख दिल में ख़ुशी होती है। दूसरी तरफ़

भारतीय नारियों के बदन को देखिए, कुँवारी नवयौवना भी सुस्त तथा वृद्धा सी दिखाई देंगी। यह इतना अन्तर क्यों है? इस पर अगर विचार किया जाय तो मालूम पड़ेगा कि हम लोग जितने संकुचित विचारों वाले हैं उतनी ही हम लोगों के शारीरिक गठन में भी कमज़ोरी आ गई है।

अब मैं यूरोप की स्त्रियों के विषय में अधिक न लिख कर भारत के प्रान्त "बर्मा" जो अभी हाल ही में उससे विभक्त कर दिया गया है, वहाँ की स्त्रियों की सभ्यता तथा स्वतन्त्रता का सिंहावलोकन कराना चाहती हूँ।

मुझे यह जान कर आश्चर्य होता है कि हमारे भारत में जहाँ पर आपस की विभिन्नता ने हम लोगों की जड़ को एकदम खोखला कर दिया है, वहाँ दूसरी तरफ़ यह बर्मा प्रान्त एक धर्म, एक रहन-सहन तथा एक ही बोली का दावा करता है। यहाँ की स्त्रियाँ यद्यपि यूरोप की स्त्रियों जैसी शिक्षिता तथा नवीन सभ्यता के युग से बराबरी करने वाली नहीं है, पर मुझे यह लिखते संकोच न होगा कि बर्मी स्त्रियाँ यूरोप की स्त्रियों से भी अधिक क्रियाशील तथा कर्मण्य है। मजदूर श्रेणी से लेकर बड़ी मिलों की मालकिनों तक स्त्रियाँ ही हैं। स्त्रियाँ किसी भी काम को करते हुए शर्माती नहीं हैं, परन्तु काम करना अपना कर्तव्य समझती हैं। बड़े-बड़े पूँजीपतियों की स्त्रियाँ भी बाजारों में दुकानें तथा व्यापार करती हैं। एक स्त्री, जिसके पास ५) या १०) रुपया भी है, वह अपनी छावड़ी के द्वारा आजीविका कमा सकती है तथा अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण भी कर सकती है। कई एक पुरुष घरों में बच्चों को सँभालते तथा देख-भाल करते हैं तथा स्त्रियाँ दैनिक रोजगार करती हैं। हमारे भारतीय दुकानदार जहाँ पर सुबह से लेकर रात तक दुकानदारी करके अपनी जिन्दगी के सुख से भी वञ्चित हो जाते है, वहाँ पर यह बर्मी स्त्रियाँ तथा पुरुष प्रात ८ बजे दुकानें खोल कर शाम के ५ बजे बन्द कर देते हैं। इतने समय के अन्दर ही प्रत्येक को बाजार से अपनी ख़रीद फरोख्त कर लेनी होती है। यह लोग शाम को स्त्री-पुरुष, बच्चे सब मिल कर घूमते, खाते तथा पारिवारिक जिन्दगी के सुख को भोगते हैं। स्त्रियाँ बाहर के काम करते हुए भी उसी प्रकार गृहस्थी सँभालती हैं जिस प्रकार अपनी भारतीय स्त्रियाँ।

यहाँ की स्त्रियों को सम्पत्ति की मालकिन होने के पूरे अधिकार हैं। वह लाभ, हानि, तथा कर्ज़ की उतनी ही अधिकारिणी हैं जितना कि एक पुरुष। अगर वह किसी से रुपया उधार लेते है तो रुक्के पर स्त्री-पुरुष दोनों ही के हस्ताक्षर लेने होते हैं। यहाँ की स्त्रियों के अधिकारों की स्वतन्त्रता तथा उत्तरदायित्व के भाव को देख कर गर्व होता है।

हमारे यहाँ की विवाह प्रणाली तथा बर्मा प्रान्त की विवाह प्रणाली में कितना भेद है, यह जान कर आश्चर्य होता है। भारतीय नवयुवक तथा नवयुवती का विवाह भी एक व्यापारी सौदा है। जिस तरह बाजार में कोई चीज़ लेनी हो तो पहिले मोल-भाव किया जाता है उसी प्रकार हमारे यहाँ के विवाह में भी कीमत आँकी जाती है। युवक को मालूम ही नहीं होता कि मेरी पत्नी किस गुण-स्वभाव की होगी। आजकल नवीन प्रथा फोटो देखने की चल पड़ी है। क्या सुन्दर प्रथा है। कितना सुन्दर तरीक़ा है अपने भावी सङ्गी के चुनने का। विवाह के बाद चाहे आपस में बने या न बने, परन्तु जैसे तैसे जरूर जीवन व्यतीत करना है। अगर पुरुष बहुत ही अपनी पत्नी से तङ्ग आ गया है तो उसको पूरा अधिकार है कि वह दूसरी शादी कर सकता है, पर स्त्री और समाज ज़रा भी उसके कामों की आलोचना नहीं कर सकते। पर अगर बर्मा प्रान्त की ओर ज़रा दृष्टिपात किया जावे तो हमको स्पष्ट मालूम हो जावेगा कि यह लोग कितने स्वतन्त्रता-प्रिय हैं।

यहाँ पर पश्चिम की तरह तलाक़ की प्रथा प्रचलित नहीं है तथा पूर्व की तरह यह लोग सकुचित विचारों वाले नहीं हैं। दहेज प्रथा यहाँ पर बिल्कुल ही नहीं है। विवाह करना बर्मी स्त्रियों के लिए जरूरी नहीं है। अगर उनको योग्य वर नहीं मिलता तो वह विवाह नहीं करतीं तथा उनके समाज में कुँवारी रहना बुरा नहीं गिना जाता। यहाँ पर स्वयबर प्रथा प्रधान है। लड़का-लड़की विवाह

के बाद आर्थिक तथा पारिवारिक दृष्टि को देख कर एक दूसरे के घरों में रहते हैं।

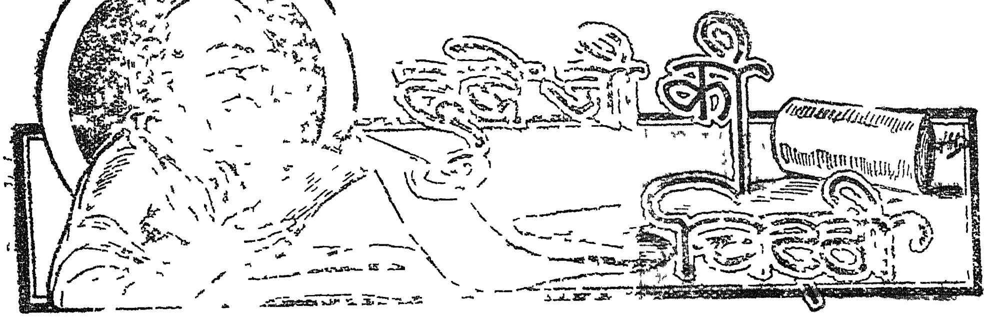
धार्मिक कृत्यों में भी स्त्रियाँ समानाधिकार रखती हैं। सब बुद्ध धर्मानुयायी हैं। इनमें अपने धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा है। स्त्री वा पुरुष दोनों ही अपनी जिन्दगी में एक बार घर के मोह को त्याग कर आश्रमों में रहते हैं। इनको अपनी रोटी की फिकर नहीं करनी होती। भारतीय प्राचीन सभ्यता की प्रणाली का सुन्दर तथा सजीव चित्र यहाँ पर हमको दिखाई पड़ सकता है। गृहस्थी लोग इन भिक्षु तथा भिक्षुणियों के लिये खाना प्रात ४ बजे ही बना लेते हैं। जिसको बर्मी भाषा में 'सौ' कहते है।

स्त्रियों को यहाँ पर राजनैतिक अधिकारों की भी पूर्ण स्वतन्त्रता है तथा यहाँ की स्त्रियाँ ६० प्रतिशत पढ़ी-लिखी हैं। बर्मा के गाँव-गाँव में पाठशालाएँ हैं, जिनको 'चौ' बोलते है। यहाँ पर मुफ्त शिक्षा दी जाती है। मजदूर श्रेणी से लेकर बड़े-बड़े अमीरों के बच्चे इन पाठशालाओं में पढ़ते हैं। गरीब अमीर में कोई भेद नहीं। छुआछूत का नाम तो इनको मालूम ही नहीं, एक ही खान-पान व रहन-सहन है। जाति-पाँति के बन्धन से सर्वथा मुक्त हैं।

इन सब बातों को जानकर साफ प्रकट होता है कि हम भारतीय नारियों की दशा इन बर्मी स्त्रियों से कितनी भिन्न है। यहाँ पर बच्चे के पैदा होने से अन्त समय तक लड़का या लड़की के होने का भेद-भाव ही नहीं समझा जाता। दोनों का पालन-पोषण समान ढग से होता है। यहाँ पर लड़कियों का लाड़चाव लड़कों की अपेक्षा अधिक ही होता है।

क्या ऐसी सुन्दर स्थिति कभी हम भारतीय स्त्रियों की होगी, जब हम लोगों के दिलों से भी यह भेदभाव दूर हो जायेगा, जिससे हमारी जाति इतनी जजरित हो रही है। आजकल प्रयत्न तथा सङ्घर्षण तो चल रहा है, पर मालूम नहीं कहाँ तक सफल होगा। मैं उस दिन की चाह में हूँ जिस दिन भारतीय स्त्रियाँ भी जीवन के रणक्षेत्र में एक सफल तथा वीर योद्धा बनेंगी। पुरुष की केवल पत्नी ही नहीं, परन्तु सच्ची सगी बनेंगी।

—मिस के० वर्मा



अजी सम्पादिका जी,

जय राम जी की !

कानपुर के मिलों की हड़ताल एक ऐसी हड़ताल है जिसे वाकई हड़ताल कहना चाहिए । सुसंगठित, शान्त तथा अहिंसापूर्ण हड़तालों में यह हड़ताल सब से बाजी मार ले गई।

अपनेराम के पड़ोस में कुछ मजदूर रहते है । उस दिन चार-पाँच मजदूर अपनेराम के मकान के पिछवाड़े गली में बातचीत कर रहे थे । अपनेराम ने उनसे पूछा—'क्यों भई, क्या हाल-चाल है ?'

उनमें से एक बोला—'हाल-चाल न पूँछिये, दिन काटे नहीं कटता । बैठे-बैठे तबीयत ऊबती है ।'

'चर्खा क्यों नहीं चलाते । चर्खा चलाओ, सूत कातो ।'

'चर्खा चलाने के लिये तो हमसे किसी ने कहा नहीं ।'

'किसने नहीं कहा ।'

'हमारे नेता लोगों ने ।'

'नेता क्यों कहने लगे । यह तो तुम्हारे सोचने की बात है । दिन काटे नहीं कटता—यह बात नेता लोग तो जानते नहीं ।'

'इस हड़ताल की बाबत आपकी क्या राय है ?'

'अपनेराम की राय यह है कि यह हड़ताल बिल्कुल अनुचित है । आप किसी पर यह जोर नहीं डाल सकते कि वह आप लोगों को जितनी आप तनख्वाह माँगें उतनी ही तनख्वाह दें या आपको निकाल न सकें, या जुर्माना न कर सकें वग़ैरह, वगैरह ! जिनका रुपया मिलों में लगा है वे अपना नफा-नुकसान पहले देखेंगे । । क्योंकि दुनिया का यही कायदा है । सब लोग अपनी हानि-लाभ देखते हैं ।'

'यह आपकी राय है !'—एक मजदूर ने आँखें लाल करके कहा ।

'जी नहीं, यह मिल मालिकों और उनके पक्षपातियों की राय है ।'

'तो आप शायद मिल-मालिकों के पक्षपाती हैं !'

'कदापि नहीं ।'

'तो अपनी राय बताइये—आपकी क्या राय है ?'

'मिल-मालिक बड़ा मुनाफा उठाते हैं । मजदूरों से एक रुपये का काम कराके उन्हें एक पैसा देते हैं—और उस पैसे में से भी जुर्माना, नागा वगैरह-वगैरह के रूप में कतर-व्योंत कर लेते हैं ।'

'यह आपकी राय है ?'

'ऊँहुँ ! यह मजदूरों और मजदूरों के पक्षपातियों की राय है ।'

'हम दुनिया की राय नहीं पूछते—आप अपनी राय बताइये ।'

'भई, जब तुम्हें दुनिया भर की राय का ज्ञान कराये दे रहा हूँ, तो केवल एक अपनेराम की राय यदि न भी मालूम हो तो क्या हर्ज है ।'

'हम आपकी राय जानना चाहते हैं—दुनिया भर की राय से हमें मतलब नहीं है ।'

'अमाँ क्या बातें करते हो ! दुनिया भर की राय ही तो असली राय है ।'

एक दूसरा मजदूर बोल उठा—'बस मालूम हो गया। आपकी राय मजदूरों के खिलाफ है तभी आप बताने में सङ्कोच करते हैं।'

अब अपनेराम को ताव आगया। अतएव हम बोले—'यदि हमारी राय जानना चाहते हो और यदि तुम लोगों का यह ख्याल है कि हम अपनी राय इसलिए नहीं बताते हैं कि वह तुम लोगों के खिलाफ जाती है तो कान खोल कर सुनो। तुम लोगों ने हड़ताल करके सख्त गलती की।'

'क्यों ?'—तीन-चार मज़दूर एक साथ बोल उठे।

'इसलिए कि तुम लोगों का समय नहीं कट रहा है। न हड़ताल करते और न यह मुसीबत आती।'

'हम लोगों का समय नहीं कट रहा है, यह बात तो कोई ऐसी बात नहीं है जिसके लिए हड़ताल न की जानी चाहिए थी।'

'तो समय न कटने की शिकायत व्यर्थ है।'

'हम शिकायत नहीं करते—जो बात है खाली उसका ज़िक्र किया।'

'खाली-खूली जिक्र से कोई लाभ नहीं। ऐसा ज़िक्र भ्रम में डाल देता है।'

'मान लीजिए कि हमें समय न कटने की कोई शिकायत नहीं है, ऐसी दशा में आपकी राय क्या होगी।'

'वह जब होगी तब बता देंगे।'

'नहीं, यह मानकर कि हमको कोई शिकायत नहीं है—इसी समय अपनी राय बताइये।'

'यह तो गैरमुमकिन है कि किसी को कोई शिकायत न हो। किसी को बवासीर की शिकायत है, किसी को दाद की, किसी को कब्ज़ की। गरज़ प्रत्येक आदमी को कोई न कोई शिकायत रहती ही है।'

'आप भी कहाँ से कहाँ जा पहुँचे। हम लोग समय न कटने की शिकायत के बारे में कह रहे हैं, आप दाद-खाज ले बैठे।'

'अच्छा, यह बात है। आपका यह मतलब है कि हम यह मान लें कि आपको समय न कटने की शिकायत नहीं है।'

'जी हाँ।'

'ऐसा मान लेना अपनेराम की कल्पना के बाहर की बात है। जब तुम लोग अभी-अभी समय न कटने की शिकायत कर चुके हो तब हम कैसे मान लें कि समय न कटने की शिकायत नहीं है। अभी थोड़ी देर में आप लोग यह कहने लगेंगे कि 'मान लीजिये हम लोगों ने हड़ताल नहीं की' या 'मान लीजिए हड़ताल में हम लोग भूखे मर गये' अपनेराम ऐसी व्यर्थ की बातें बहुत कम करते हैं।'

'तो आखिर आप कुछ मानते हैं ?'

'कुछ क्या, मैं बहुत कुछ मानता हूँ।'

'क्या मानते हैं ?'

'यह मानता हूँ कि आप लोग, जो है सो, मज़दूर हैं। यह भी मानता हूँ कि आप लोगों ने हड़ताल की है। और यह मानता हूँ कि आप लोगों को इस हड़ताल से बड़ा कष्ट है।'

'और ?'

'और भगवान जाने क्या-क्या मानता हूँ—सब बातें एकदम से याद करके बताना बहुत कठिन काम है।'

'यह भी मानते हैं कि हम लोगों की यह हड़ताल ठीक है और मिल-मालिक हमारे साथ अन्याय करते हैं।'

'आप लोगों की यह हड़ताल अभी तक बिलकुल ठीक है, किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं है। आप लोग सुसंगठित हैं, सुदृढ़ है, शान्त हैं, अहिंसक हैं। इससे अधिक और क्या ठीक होगी।'

'ठीक से हमारा मतलब यह है कि न्याय की दृष्टि से उचित है या नहीं ?'

'न्याय की दृष्टि! न्याय की दृष्टि होना तो बड़ा ही कठिन काम है। अदालतें भी इस दृष्टि के सम्बन्ध में चूक जाती है। बड़े-बड़े न्यायाधीशों को भी न्यायदृष्टि गलती कर जाती है। इस कारण इस सम्बन्ध में मौन रहना ही ठीक है।'

एक मज़दूर महोदय बोल उठे—'अजी किसके मुँह लगे हो, यह अपनी राय कभी नहीं बतावेंगे। इनका रुख मिल-मालिकों की तरफ है।'

'फिलहाल तो अपनेराम का रुख आप लोगों

की तरफ है । इस समय यहाँ कोई मिल मालिक कहाँ है ?'

'आपकी तबीयत का रुख, मुँह का रुख नहीं !'

'तबीयत का हाल कोई क्या जान सकता है ।' बाहर का रुख ही असली रुख है—तबीयत का रुख कोई चीज़ नहीं ।'

'तबीयत का रुख ही असली चीज है ।'

'यदि तबीयत का रुख ही असली चीज़ है तो आप लोग अहिंसक नहीं है ।'

'यह कैसे ?'

'आप लोग नारे लगाते हैं कि मिल-मालिकों का नाश हो ।' यह तो अहिंसा नहीं है । किसी का नाश चाहना कब से अहिंसा में दाखिल हुआ—यह तो बताओ ।'

'हम कोई अहिंसा का काम तो नहीं करते, दिल में हमारे चाहे जो हो ।'

'इसी प्रकार अपनेराम के दिल में चाहे जो हो, उससे आपको क्या मतलब ।'

इसी समय मज़दूरों के लिये आटा माँगने वाली टोली आ निकली । वे लोग नहीं जानते थे कि ये लोग मज़दूर हैं । अतएव उन्होंने इन लोगों से आटा माँगा । इस पर एक मज़दूर बिगड़ कर अपनेराम से बोला—'यह अंधेर देखिये, हमी से आटा माँगते हैं । तब तो आप लोग ख़ूब हड़ताल चलायेंगे ।'

आटा माँगनेवाली टोली में से एक बोला—'क्यों, आपके क्या सुरख़ाब का पर लगा है ।'

इसपर दोनों दलों में तकरार होने लगी । लुत्फ़ यह कि न मजदूर लोग यह कहते हैं कि हम मज़दूर हैं और न आटा माँगनेवाले ही यह पूछते हैं कि आख़िर आप लोग हैं कौन जो आटा देने से इन्कार करते हैं । आटा माँगनेवाले कहते थे—'आपको आटा देना चाहिए ।' मज़दूर कहते थे—'हम नहीं देंगे ।'

आख़िर मामला बढ़ता देख अपनेराम ने आटा माँगनेवालों से कहा—'यह लोग मज़दूर हैं, इनसे आप आटा मत माँगिये ।'

'तोबा ! तो यह पहले ही क्यों न कह दिया ।' आटा एकत्र करनेवालों में से एक बोला ।

'इन लोगों को तो आटा मिलता होगा । क्यों भई, तुम्हे आटा मिलता है ?' अपनेराम ने मज़दूरों से पूछा ।

एक मजदूर का बुड्ढा पिता भी खड़ा था । वह बोल उठा—'भीख का आटा हम नहीं लेते बाबू जी । हम मेहनत मजदूरी करके खाने वाले आदमी हैं, हम भीख माँगकर नहीं खाते ।'

अपनेराम बोले—'तो तुम्हे भीख कहाँ माँगनी पड़ती है ।'

'वह हमने माँगी तो क्या, हमारे बदले दूसरों ने माँगी तो क्या, बात तो एक ही है । दान तो भीख का ही है । हम तो जब तक अपने पास है, या कर्ज मिल सकता है, तब तक भीख की चीज नहीं ले सकते । जब यहाँ गुज़ारा न होगा तो देहात चले जाएँगे ।'

'लेकिन और मजदूर तो लेते हैं ।'

'लेते होंगे । हम तो नहीं ले सकते ।'

आटा एकत्र करने वाले आगे बढ गये । बुड्ढा बोला—'बाबू जी, एक बात तो बताइये । यह जो ख़बर उड़ी हुई है कि अगर मिलवाले न माने तो मिलों पर सरकारी कब्ज़ा हो जायगा, यह ख़बर ठीक है ।'

अपनेराम बोले—'हमें तो मालूम नहीं, शायद ऐसा कोई क़ानून हो ।'

'ऐसा कानून तो नहीं हो सकता ।'—बुड्ढे ने कहा ।

'ख़याल तो हमारा भी ऐसा ही है ।'

'ऐसा कैसे हो सकता है कि मिल मालिक मजदूरों की बात न मानें तो मिल छीन लिये जायँ । ऐसा अन्धेर नहीं हो सकता ।'

एक मज़दूर बोला—'हो कैसे नहीं सकता । उस दिन मीटिङ्ग में कहा गया था ।'

बुड्ढा बोला—'अरे बेटा ! तुम नहीं जानते । यह सब इसलिए कहा जाता है जिसमें तुम लोगों की हिम्मत बढी रहे, हड़ताल न टूटे । अभी तुम बच्चे हो, इन बातों को नहीं समझते ।'

इतना कह कर बुड्ढा चला गया ।

मजदूरों में से एक बोला—'ये बुड्ढे अपनी टाँग हर जगह अड़ाते हैं। जब अलानिया कहा जा चुका है कि मिलों पर सरकारी कब्जा हो जायगा तब भी इन्हें विश्वास नहीं होता।'

'सरकारी कब्जा तो मामूली बात है, यदि तुम्हीं लोग चाहो तो तुम्हारा कब्जा हो सकता है।' मजदूर लोग कान खड़े करके बोले—ऐं! क्या ऐसी बात है?

'हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही है, लेकिन किसी से कहना नहीं।'

'नहीं! लेकिन क्या बाबू जी, मिलवाले भी यह बात जानते हैं कि नहीं।'

'ज़रूर जानते होंगे।'

'लेकिन जब मिलवाले यह बात जानते हैं तब भी समझौता नहीं करते।'

'बात ज़रा कठिन है, आसान नहीं है। इसलिए समझौता नहीं करते।'

'हाँ, यही तो हम भी सोचते हैं। आसान बात होती तो अब तक मिलवाले घबरा कर समझौता कर लेते।'

'यही बात है।'

'क्यों बाबू जी, अगर मिल पर मजदूरों का कब्ज़ा हो जाय तो फिर हमी लोग मालिक होंगे।'

'बेशक!'

'तो उस समय हमें तनख्वाह मिलेगी।'

'तनख्वाह तो नहीं मिलेगी।'

'तो क्या मिलेगा?'

'मिल में जो कुछ मुनाफा होगा, वह सबको बराबर बाँट दिया जायगा।'

'तब तो तनख्वाह से अधिक मिल जाया करेगा।'

'उम्मीद ऐसी हो है।'

'तब तो भगवान करें मिल-मालिक न मानें तो अच्छा है। हमको क्या, साल छः महीने मुसीबत सह लेंगे, पर अन्त में तो हमी हम होंगे।'

'अरे भई, कुछ दिनों में तुम लोगों का राज होगा। जैसे इस समय काँग्रेस की सरकार है, वैसे ही मज़दूरों की सरकार होगी। तुम्हीं लोगों में से प्रधान मन्त्री और मन्त्री होंगे।'

एक मजदूर मूँछों पर ताव देता हुआ बोला—'सो तो होवेंगे ही। रूस में सुनते हैं ऐसा ही है।'

'सभी जगह हो जायगा, रूस में क्या। तुम्हें कितनी तनख्वाह मिलती है।'

'हमें पैंतालीस मिलते हैं, इन्हें चालीस, इनको पचास, इन्हें पचीस—यह अभी नये हैं—काम कम जानते हैं।'

'तो क्या सबको इतने ही के करीब मिलते हैं?'

'नहीं, बिनता में काम करने वालों को अधिक मिलते हैं। हम लोग सब बिनता में काम करते हैं—यह एक कताई में हैं।'

इसी समय उधर से एक मेहतर निकला। एक मज़दूर उससे बोला—'क्यों जी, तुम हमारे घर के सामने का कूड़ा नहीं उठाते।'

'दिन भर कूड़ा डालोगे तो कौन उठायेगा?'

'अच्छा! यह दिमाग है! देखिये बाबू जी—यह हालत है इन लोगों की। अभी एक बीस जूते खोपड़ी पर लग जाँय तो अक्ल ठिकाने आ जाय। जाते कहाँ हैं, कभी इनके मिजाज़ भी दुरुस्त करने पड़ेंगे। इनके मिजाज बहुत बढ़ गये हैं। जब से अछूतों का आन्दोलन चला तब से सीधे मुँह बात ही नहीं करते।'

'इनको भी आप ही लोग ठीक करेंगे?'

'सो तो करना ही पड़ेगा! इनके बड़े दिमाग हैं।'

मेहतर सुनता हुआ चला गया।

'नौ तारीख़ को मीटिङ्ग में देखिये क्या होता है।'

'हम लोगों के माफिक ही होगा।'

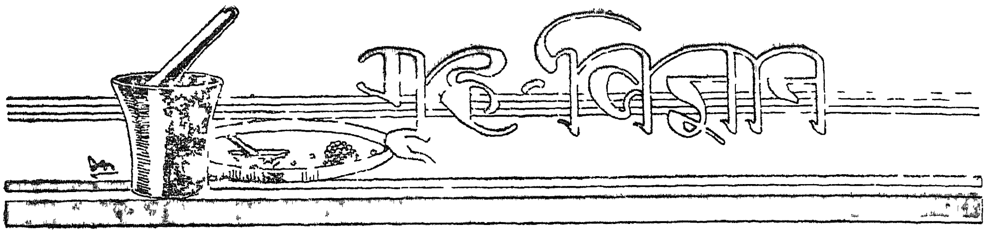
'उम्मीद तो ऐसी ही है।'

'और अगर न हुआ?'

'तब? तब फिर देखा जायगा। जैसा हमारी सभा में पास होगा वैसा होगा। लेकिन दिल्लगी नहीं है।'

इतना कह कर सब लोग चल दिये।

भवदीय,
विजयानन्द (दुबे जी



मातृत्व और शिशु-रक्षा की समस्या

[श्री० नन्दगोपालसिंह सहगल]

वर्तमान समय में हमारे देश में समाज-सुधार का जो आन्दोलन हो रहा है, उसमें मातृत्व और शिशु-रक्षा का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है। अगर्चे अभी तक हम प्राय बाल-विवाह का निरोध, विधवा-विवाह का प्रचार, स्त्री शिक्षा, पर्दा निषेध, जात-पाँत के बन्धनों का निराकरण आदि विषयों पर अधिक जोर दिया जाता देखते हैं, पर खयाल किया जाय तो मालूम होता है कि मातृत्व और शिशु-रक्षा का महत्व इनसे ज़्यादा ही है, किसी तरह कम नहीं। यह हमारी जाति और नस्ल की आधार-शिला है, जिससे कि मानव-जीवन आरम्भ होता है और जिसका भला या बुरा परिणाम जीवन भर कायम रहता है। इस विषय का सम्बन्ध हमारी जाति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य से है। आज जो हम बहुसंख्यक स्त्रियों को रोगग्रसित, निस्तेज और जीवन से ऊबी हुई देखते हैं, तथा बहु-संख्यक पुरुषों के चेहरे पर जो मुर्दनी का सा भाव दिखलाई पड़ता है, अकर्मण्यता पाई जाती है, उसका एक बहुत बड़ा कारण प्रसव के समय जच्चा और बच्चा की उचित सम्हाल न करना भी है। उस समय अज्ञानता और रूढ़िप्रियता के कारण हम जिस दूषित व्यवस्था का आश्रय लेते हैं, उसके फल-स्वरूप अनेक माताओं और बच्चों का तो सौरी के भीतर ही या दो-चार महीनों में अन्त हो जाता है और बहुत से ऐसी बीमारियों अथवा शारीरिक खराबियों में ग्रसित हो जाते हैं, जिनसे जन्म भर छुटकारा पाना मुशकिल होता है।

इन प्रसव सम्बन्धी त्रुटियों का बहुत बड़ा कारण जैसा हम बतला चुके हैं, हमारी अज्ञानता और रूढ़ि-प्रियता है। समय के बदल जाने पर भी हम प्राचीन रीति-रिवाजों में बुरी तरह बँधे हुये हैं। इन रिवाजों या प्रथाओं में सबसे अधिक हानिकारक दाई का चुनाव है। हम यह मानते हैं कि हमारे यहाँ चिरकाल से इन्हीं दाइयों द्वारा प्रसव-सम्बन्धी कार्य होता आया है और इसी परिस्थिति में उत्पन्न होकर हमारे पूर्वजों में बड़े शूरवीर, राजनीतिज्ञ और विद्वान पुरुष हुये हैं। पर इसमें दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह है कि जिस प्रकार प्राचीन काल में हम अनेक कला और विद्याओं में अग्र-गण्य थे, शिक्षा का सर्वत्र पर्याप्त प्रचार था उसी प्रकार दाइयों का पेशा भी उन्नत अवस्था में था और वे वर्तमान समय की कुसंस्काराच्छन्न और अज्ञान दाइयों के बजाय समझदार और अपने विषय से सम्बन्धित शारीरिक और चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान से युक्त होती थीं। दूसरी बात यह भी है कि प्राचीन स्त्री-पुरुषों का रहन-सहन और खान-पान ऐसा स्वाभाविक और प्राकृतिक नियमों के अनुकूल था तथा इसके परिणाम-स्वरूप वे देह और मन से ऐसे सबल और स्वस्थ रहते थे कि उनको इस प्रकार की प्राकृतिक क्रियाओं में विशेष झञ्झट ही नहीं पड़ता था।

पर वर्तमान समय में हालत बहुत बदल गई है। जिस प्रकार हम और हमारा समाज पतन के गर्त में डूबता हुआ अपनी पुरानी विद्याओं और कलाओं को

भूलकर मूढ और असंस्कृत व्यक्तियों का समुदाय बन गया उसी अधोमुख प्रवाह में पड़ कर हमारी दाइयाँ भी अपनी कला को खो बैठी । उनके गुण तो जाते रहे और त्रुटियाँ बनी रहीं । सुनने में अब भी यह आता है कि कोई-कोई देशी दाई प्रसव सम्बन्धी ज्ञान में काफी बढ़ी-चढ़ी होती हैं और अनेक बार ऐसे काम कर दिखाती हैं जिनका करना शिक्षित नर्सों और पासशुदा दाइयों के लिये कठिन होता है, पर उनकी संख्या नगण्य है । अधिकांश दाइयाँ आजकल परम मूर्खा, गन्दी और स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों से पूर्णतया अनभिज्ञ ही देखने में आती हैं। वे प्रसव के समय शुद्धता का कतई ध्यान नहीं रखतीं, स्वयं भी मैली रहती हैं और मैली सामग्री का ही उपयोग करती हैं । अनेक बार तो वे अज्ञानता अथवा जल्दबाजी के कारण प्रकृति को अपना काम भी नहीं करने देतीं और ऐसी हरकतें कर बैठती हैं जिनका परिणाम जच्चा और बच्चा के लिये बड़ा हानिकर होता है ।

दूसरी बात है हमारा वर्तमान कृत्रिम रहन-सहन । चाहे हमको आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति पर कितना भी नाज़ क्यों न हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसने साधारण लोगों के जीवन को अत्यन्त कृत्रिम बना कर स्वास्थ्यप्रद प्राकृतिक मार्ग से बहुत दूर हटा दिया है । नल का पानी, मशीन की चक्की का आटा, विशाल कल-कारख़ानों के भीतर की जाने वाली मज़दूरी, बिजली की रोशनी, बड़े-बड़े शहर, भेड़-बकरियों की तरह थोड़े से स्थान में बहुत से मनुष्यों का रहना आदि ऐसी बातें हैं जो आधुनिक प्रगति के ही परिणाम हैं और जिनका प्रभाव साधारण श्रेणी के व्यक्तियों पर प्रायः हानिकर ही पड़ता है । इनके कारण लोगों की जीवनी शक्ति का दिन पर दिन ह्रास होता जाता है, जिससे वे सहज ही रोगों के शिकार बन जाते हैं और सदैव निर्बल और हतोत्साह बने रहते हैं । यह अवस्था स्त्रियों की प्रसव सम्बन्धी कठिनाइयों के लिये कम उत्तरदायी नहीं है । पुराने ज़माने की स्त्रियाँ अपने-अपने हाथ से चक्की चला कर घर भर के लिये आटा पीसती थीं, पानी भी प्रायः काफ़ी दूर चल कर भर कर लाती थीं, दिन भर घर के काम धन्धों में लगी रहती थीं । उनके भोजन वस्त्र आदि भी आजकल की अपेक्षा प्रकृति और देश-काल के अधिक अनुकूल होते थे । इसका परिणाम यह होता था कि उनका स्वास्थ्य सबल और सुदृढ़ रहता था और प्रसव-काल में उनको अपेक्षाकृत बहुत कम कष्ट होता था । पर आजकल क्या बड़े घरों की और क्या छोटे घरों की, प्रायः सभी स्त्रियों को किसी न किसी दृष्टि से कृत्रिम और हानिकारक ढङ्ग से जीवन व्यतीत करना पड़ता है । बड़े घरों की स्त्रियाँ तो प्रायः हाथ से काम ही नहीं करतीं और अधिक परिमाण में गरिष्ठ भोजन करती हैं, जिसके कारण वे प्रायः बहुत ही सुकुमार और कष्ट सहन के अयोग्य हो जाती हैं । उनमें कितनी ही तो सन्तानोत्पादन के सर्वथा अयोग्य हो जाती हैं और शेष प्रसव के कष्ट को सहन कर सकने में असमर्थ । रह गईं छोटे घरों की स्त्रियाँ, उनको दरिद्रता के कारण पौष्टिक पदार्थ प्रायः मिलते ही नहीं, और जो थोड़े से साधन प्राप्त होते भी हैं, उनका एक बड़ा भाग बड़े लोगों की ऊपरी तड़क-भड़क की झूठी नकल करने में ख़र्च हो जाता है । इससे उनकी देह में जीवनी शक्ति का सर्वथा अभाव हो जाता है और वे किसी भी आकस्मिक कष्ट का मुकाबला कर सकने में असमर्थ हो जाती हैं । इन सब बातों का नतीजा यह हुआ है कि जिन प्रसव सम्बन्धी कठिनाइयों को पुरानी औरतें सहज में बरदाश्त कर लेती थीं उनको सहन करने में आजकल की औरतें असमर्थ हैं । इतना ही नहीं, उनकी कठिनाइयाँ और कष्ट पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ भी गये हैं । इन कारणों से उनको देशी दाइयों के सीधे-सादे और कुछ अंशों में त्रुटि-पूर्ण उपचारों के बजाय आधुनिक विज्ञान-सम्भव उपचारों की आवश्यकता पड़ने लगी है ।

मातृत्व की रक्षा की यह समस्या कैसी महत्वपूर्ण है, यह इसी बात से समझा जा सकता है कि देश की प्रमुख विदुषी महिलाओं के मत से राष्ट्र को अपना ध्यान सबसे पहले प्रसव के अस्पतालों की स्थापना करने में लगाना चाहिये और अन्य बीमारियों का इलाज करने वाले अस्पतालों का नम्बर बाद में आना चाहिये ।

क्योंकि बाद में खराबियों का प्रतिकार करने के बजाय मूल-स्रोत का सुधार ही क्यों न किया जाय ? जब मातृत्व की रक्षा का ठीक प्रबन्ध हो जायगा और प्रसव-काल से ही शिशु और उसकी माँ की उचित परिचर्या की जायगी तो आगामी जीवन में वह स्वत ही अनेक रोगों के आक्रमण से मुक्त रहेगा और साधारण अस्पतालों की आवश्यकता अपेक्षाकृत कम हो जायगी।

अब प्रश्न यह है कि हमारे पुराने ढङ्ग के प्रसूतिका-गृहों और दाइयों में पाये जाने वाले दोषों का निराकरण करके उनका सुधार किस प्रकार किया जाय। इस अवस्था का मुख्य कारण हमारी महिलाओं की अज्ञानावस्था और पुरानी रूढ़ियों में अन्धविश्वास ही है। हमारे प्राचीन ढङ्ग के परिवारों में अभी तक दादियों और सासों की प्रधानता है और वे अपने पुराने सिद्धान्तों और प्रथाओं को बिना हानि-लाभ का खयाल किये भावी पीढ़ी की कन्याओं के मस्तिष्क में बैठाती रहती है। यही कारण है कि पुरुष और शिक्षित स्त्रियाँ बाहर सभा-समाजों में बैठ कर सुधार की बड़ी-बड़ी योजनायें बनाते हैं, पर उनको अपने घरों के भीतर कार्यरूप में परिणत कर सकने में अधिकाश में असमर्थ रहते हैं। हमारी बड़ी बूढी स्त्रियाँ अपनी पुत्रियों और पोतियों के सम्मुख आधुनिक सुधारों की बुराइयाँ करके उनको ऐसा भयभीत कर देती हैं कि बड़ी अवस्था में प्राचीन रूढ़ियों से होने वाली हानि को समझते और सहते हुये भी वे नवीन सुधारों को सशंकित दृष्टि से ही देखतो रहती हैं।

इन पुराने ख्याल की स्त्रियों में अभी तक देशी दाइयों का बड़ा मान है, क्योंकि उनके विचार साधारण जनता में फैले भ्रमपूर्ण मत से बिलकुल मिलते-जुलते होते है और वे घर की बड़ी बूढ़ी स्त्रियों की प्रत्येक हिदायत का बड़े ध्यान से पालन करती हैं। इसके सिवा वे अक्सर पास ही रहती है और थोड़े ही खर्च में जिस समय आवश्यकता हो, आ सकती हैं। ये दाइयाँ प्राय प्रत्येक परिवार में पहले से ही नियत होती हैं और उनका पारस्परिक सम्बन्ध स्थायो होता है। इस कारण उनको प्राय आधुनिक दाइयों की अपेक्षा अधिक विश्वासपात्र समझा जाता है।

तो भी इन दाइयों में अनेक त्रुटियाँ ऐसी पाई जाती हैं जिनके कारण वे जच्चा और बच्चा के हित की दृष्टि से उपयुक्त नहीं समझी जा सकतीं। पहली बात तो यह है कि वे प्राय बहुत गन्दी रहती हैं, उनके कपड़े और आभूषण प्राय हानिकारक कीटाणुओं से भरे रहते हैं। यह बात नवजात शिशु और जच्चा के स्वास्थ्य के लिये घातक सिद्ध हो सकती है। इसके सिवा ये दाइयाँ केवल सीधे-सादे ढङ्ग का काम ही कर सकती हैं। अगर गर्भ में किसी तरह की ख़राबी हो गई या बच्चा उत्पन्न होने में किसी तरह की विशेष कठिनाई पैदा हो गई तो यह ऐसे मूर्खतापूर्ण और क्रूरतायुक्त उपायों से काम लेती हैं कि उसके फलस्वरूप अनेक स्त्रियों और शिशुओं का जोवन सकट में पड़ जाता है।

इस अवस्था का प्रतिकार किस उपाय से किया जाय, यह प्रश्न समाज-सुधारकों के सामने उपस्थित है। यह तो स्पष्ट है कि आधुनिक धात्री-विज्ञान के अनुसार कार्य करने से और पासशुदा दाइयों द्वारा प्रसव कार्य कराने से अनेक प्राणों की रक्षा हो सकती है और जन्म-समय के अनेक रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है, पर भारत के सभी शहरों और गाँवों में शीघ्र ही सुशिक्षित दाइयों की व्यवस्था कर सकना सहज नहीं है। इस काम के लिये अपार परिश्रम के साथ ही अपरिमित धन की भी आवश्यकता है, जो वर्तमान अवस्था में सुलभ नहीं हो सकता।

इस सम्बन्ध में कुछ लोगों का यह मत है कि पुरानी दाइयों के बजाय आधुनिक ढङ्ग की नर्सें रखने के बजाय यह अच्छा होगा कि पुरानी दाइयों को ही थोड़ी बहुत आधुनिक शिक्षा दी जाय और अपना पेशा करने दिया जाय। इसमें यह कठिनाई अवश्य जान पड़ती है कि ये दाइयाँ अपनी पुरानी और पुश्त दर पुश्त से सुनी और सीखी बातों को जल्दी से न छोड़ सकेंगी, तो भी मौजूदा हालत में इससे बेहतर उपाय दूसरा मिल सकना कठिन है। इसलिये अगर ऐसी योजना बनाई जाय कि हर एक बड़े गाँव या तहसील में एक सुशिक्षित नर्स जाकर सब दाइयों को आधुनिक तरीके की शिक्षा दे और जब वे सब बातों को अच्छी तरह जान जायँ तो प्रसव सम्बन्धी जरूरी सामान का एक बक्स उनको इनाम के तौर पर

दे दें, तो कुछ समय में हालत बदल सकती है। कुछ लोगों का अनुमान है कि ऐसी दाइयों को दो-चार सप्ताह एक-एक या दो-दो घण्टे तालीम देने से काम चल जायगा। पर जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, इतने थोड़े समय में वे अपनी पुरानी आदतों और विश्वास को त्याग नहीं सकतीं, इसलिये सम्भवतः वे फिर नये तरीकों को भूल जायँगी। इसलिये दाइयों को शिक्षा देने की अवधि एक साल या छः मास रखनी चाहिये और इस काम के लिये जहाँ तक सम्भव हो, नई लड़कियाँ और युवतियाँ ही लेनी चाहिये, जो रूढ़ियों के कठोर बन्धनों से कुछ अंशों में मुक्त होती हैं।

वास्तव में हमारे देश की वर्तमान अवस्था सभी तरह से शोचनीय है और उसमें चारों तरफ परिवर्तन और सुधार की बड़ी आवश्यकता है। इसलिये हम यह तो आशा नहीं कर सकते कि मातृत्व और शिशु-रक्षा सम्बन्धी ये सुधार शीघ्र ही कार्य रूप में परिणत हो सकेंगे, तो भी हमको इसका महत्व अवश्य समझ लेना चाहिये। इसमें सबसे मुख्य लोगों में फैली अज्ञानता और रूढ़ियों की अन्धभक्ति को दूर करना ही है, जिससे अवसर और साधन प्राप्त होने पर वे सुधारों को अपनाने को तैयार हो सकें। इन तमाम स्कीमों और योजनाओं में हमको अपने देश की अवस्था और आवश्यकताओं का ध्यान रखना भी आवश्यक है और उन्हीं के अनुसार उपायों से काम लेना जरूरी है।

क्यों तुमने मुझको याद किया ?

[श्री० चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र']

जीवन की सूनी घड़ियों में, क्यों तुमने मुझको याद किया ?

मैं भूल रहा था क्रीड़ाएँ, मैं भूल रहा था रास-रङ्ग,
मैं भूल रहा था, ज्वार सदृश, यौवन की अनियन्त्रित तरङ्ग,
मैं भूल रहा था प्रेम-पुलक, मैं भूल रहा था उर-उमङ्ग,
मैं भूल रहा था, नयनों से रिमझिम बरसाना नेह-रङ्ग,
इन सब को याद दिलाने को, क्यों तुमने मुझको याद किया ?

मैं भूल रहा था जीवन को, जीवन की मुझको चाह न थी;
विस्मृति के प्याले पी-पी कर, मुझको जग की परवाह न थी,
मैं था अकाम, था वीतराग, मेरे विराग की थाह न थी;
मेरे अधरों पर हास न था, मेरे मानस में आह न थी,
मैं तट पर था, फिर लहरों में, क्यों तुमने मुझको याद किया ?

पर अब तो मैं कृतज्ञ ही हूँ, जो तुमने मुझको पहिचाना,
इस भेद भरी दुनिया में, सखि ! तुमने मुझको अपना माना,
लेकिन सच मानो, सारहीन—मेरा तुमसे यह मिल जाना;
युग की बिछुड़न, पल का सँयोग, इतना ही फिर हमको पाना,
आजीवन मुझे रुलाने को, क्यों तुमने मुझको याद किया ?

लघु धूप-छाँह का खेल एक, यह जीवन का आधार यहाँ,
अभिशाप सदा बन जाता है, एकाकीपन का भार यहाँ,
सङ्गी बन कर करने लगता, मानव सङ्गी से प्यार यहाँ,
बस इसी प्यार में दिख जाती, उसको जीवन की हार यहाँ,
मैं हार-जीत से परे, कहो क्यों तुमने मुझको याद किया ?

मेरा यह अपना अनुभव है, है प्यार सदा अनुताप भरा,
कसकों की गोदी में सोता, यह शाप भरा, सन्ताप भरा,
हँसना तो इसका व्यङ्ग मात्र, यह सच्चा सदा विलाप भरा,
अब बतला दो ना, तुम्हीं मुझे—यह पुन्य भरा या पाप भरा,
हैं सजल नयन अब तक रोकर, क्यों तुमने मुझको याद किया ?

छाया पथ

छाया-पथ का सुप्रसिद्ध कलाकार

[श्री० सरजूप्रसाद 'प्रेम']

जिस कलाकार के विषय में मैं लिखने बैठा हूँ, उस ख्याति-प्राप्त सफल अभिनेता का नाम है श्री पृथ्वीराज कपूर बी० ए०। आपका असली नाम यही है। अन्य अभिनेताओं की भाँति आप नाम बदल करके छाया-पथ में अग्रसर नहीं हुये। आज पृथ्वीराज सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में से एक कहे जा रहे हैं। अपने आदर्श व्यक्तित्व और आचरण के कारण। आपका जन्म पेशावर के क्षत्रिय कुल में १६०५ में हुआ। आप अपने विद्यार्थी जीवन से सभी विषयों में दिलचस्पी लेते आ रहे हैं। खेल, कूद, दौड़, धूप आदि सभी में आप पूर्ण थे। आपका चरित्र विद्यार्थी जीवन में कितना निर्मल था, आज उनके सुन्दर, सुडौल बदन को देख कर मालूम होता है। सिनेमा से आपको बचपन से ही प्रेम है, पर आपको यह आशा नहीं थी कि मैं भी एक दिन भारत का सर्वोत्तम कलाकार कहलाऊँगा। आज हरेक कलापरखी पृथ्वीराज को अपने कसौटी पर सच्चा साबित कर चुके हैं। स्पोर्ट से आपको विशेष प्रेम था। एडवर्ड कालेज के प्रिन्सिपल साहब का आपके पास सर्टीफिकेट है, जिसमें लिखा है—

"अपने जीवन में हमने इतना व्यक्तित्वपूर्ण व्यक्ति कभी नहीं देखा। किसी भी अच्छे और सीखने लायक काम में यह पीछे नहीं रहा। सभी को आकर्षित करने की इसमें शक्ति है। रङ्गमञ्च के कई अभिनयों में यह स्वर्ण-पुरस्कार पा चुका है। हमें पूरी आशा है, यह व्यक्ति अपने जीवन की प्रत्येक दिशा में आशातीत उन्नति करेगा।"

पेशावर से बी० ए० पास करने के बाद आप लाहौर ला-कॉलेज में एक साल पढ़े। पर तुरन्त ही आप बम्बई चले आये, और इम्पीरियल कम्पनी में आवेदन किया। वहाँ के प्रोप्राइटर मि० इरानी ने उनके सुन्दर शरीर को देखकर तुरन्त रख लिया। आपने उक्त कम्पनी के ११ फिल्मों में काम किया। जिसमें 'आलम आरा', 'द्रौपदी' और 'दगाबाज़ आशिक' मुख्य हैं। आपने अङ्गरेजी के खेलों में भी अभिनय किया, जिनमें 'हेमलेट' और 'रोमियोजूलियट' प्रसिद्ध हैं। आप पहले हिन्दी नहीं जानते थे, पर थोड़े ही दिनों में ख़ूब अच्छी हिन्दी जान गये। आज भारत के प्रसिद्ध से प्रसिद्ध सिनेमा एक्टर में भी चरित्र-दोष मौजूद हैं, और इसीलिये सिनेमा हाउस से निकलने के बाद वे घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगते हैं। सिनेमा जगत् का वातावरण ही ऐसा दूषित है, जहाँ पवित्रता असम्भव ही है। पर पृथ्वीराज को यहाँ की हवा ने छुआ भी नहीं। आप इससे कोसों दूर रहे। वर्तमान अभिनेताओं के प्रधान मित्र सुरा और वासना देवी से आपकी मुलाकात भी नहीं हो पाई। आप अपने इसी चरित्र-बल के कारण इतने उच्चकोटि के अभिनय में सफलता प्राप्त करके, जनता की नज़रों में श्रद्धा की दृष्टि से देखे जा रहे हैं। आपको अपनी गृहलक्ष्मी हैं, दो बच्चे हैं। एक सुन्दरी

बच्ची है। आपका पारिवारिक जीवन सुखद और सरस है। आप विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सच्चे भक्त हैं।

श्री नौटीयल जी से एक बार बातचीत हुई थी, उसे मैं संक्षेप में दे रहा हूँ। इससे आप समझ सकते हैं, कि आपके कितने उच्च और आदर्श विचार हैं।

'. ....?'

'मैं शौक से फ़िल्मों में घुसा और देखना चाहता हूँ कि यह कला कितनी गहरी है।'

'आपके जीवन का क्या ध्येय है?'

'किसी भी चीज़ की असलियत को देखना।'

'एक अभिनेता का क्या ध्येय होना चाहिये?'

'अपने दिल को पहिचानने में भूल न करना।'

'इसका मतलब?'

'जो अपने ही दिल को नहीं जानता, वह दूसरे को कैसे जानेगा। बिना दिल पहिचाने अभिनय करना ही मुश्किल है। तोता रटाई से कितना और कब तक काम चलेगा।'

इन बातों से आप जान सकते है कि पृथ्वीराज कितने अनुभवी हैं, और आपके विचार कैसे उच्च हैं। आपने अब तक इनकलाब, सीता, डाकू मन्सूर, राजरानी मीरा, After the earth quake, मञ्जिल, अनाथाश्रम, प्रेसीडेन्ट, विद्यापति में अभिनय किया है, और ये सब फिल्म न्यू थियेटर्स के हैं। इसके अलावा आपने मोती महल थियेटर्स कृत एक चित्र 'मिलाप' में भी श्रेष्ठ अभिनय किया है।

आपका अभिनय लोग तभी भूलते है, जब दर्शक उनके दूसरे चित्रपट में दूसरे अभिनय को देखते हैं। श्री पृथ्वीराज में सबसे विशेष गुण है 'मुखाभिव्यक्ति'—वे अपने मुँह पर हृदय के निगूढ़तम भावों को इस प्रकार झलकाते हैं, मानों उनका मुखमण्डल एक अमूल्य पुस्तक हो, जिसे वे दर्शकों के सामने खोल देते हैं। हृदय के आन्तरिक भावों की कुञ्जी अभिनेता की मुख-व्यंजना है। मञ्ज़िल में जैसा आपने गम्भीर अभिनय किया है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। राजरानी मीरा में राणा कुम्भ की भूमिका में जब वह मन्दिर के द्वार पर अस्त-व्यस्त विक्षिप्त भाव से खड़े होते हैं, उस समय ट्रेजेडी का साकार रूप कहा जा सकता है। 'सीता' में राम की भूमिका में जब वह सारे जङ्गल में, 'सीते, सीते' की चिल्लाहट में दौड़ते है, तो दर्शक कलेजा थाम कर देखने लगते हैं। प्रलय का वह भयङ्कर दृश्य, जब आप भटकते हैं, तो दर्शक भूल जाते हैं कि राम है या पृथ्वीराज।

पृथ्वीराज के अभिनय पर सारा सिनेमा-मण्डल मुग्ध है। आपका आचरण ही सब से मुख्य बात है। आप एक बड़े वेतन-भोगी होते हुये भी एक सिगरेट तक नहीं पीते। आशा है, भविष्य में इसी तरह कला के पुजारी अपनी कला को जनता के सामने उपस्थित करेंगे।



[संग्रहकर्ता—कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

मुझको मुहब्बत अब न रही जिन्दगी के साथ,
क्या जिन्दगी गुज़र न सके जब खुशी के साथ।
खुलके[1] मिलने को सबने ख़ुशामद समझ लिया,
क्या-क्या मुसीबतें हैं गरीब आदमी के साथ।

* * *

हर ज़र्रा चमकता है अनवारे[2] इलाही से,
हर साँस यह कहती है हम है तो ख़ुदा भी है।
हो नहीं सकता कभी हमवार[3] दुनिया का नशेब[4],
इस गढे को अपनी ही मिट्टी से भरना चाहिये।

* * *

साथ यारों के हमारी राहते दिल[5] उठ गई,
एक दो का ज़िक्र क्या महफिल ही महफिल उठ गई।

—'अकबर' इलाहाबादी

* * *

काबओ दैर[6] में पथरा गईं दोनों आँखें,
ऐसे जलवे नज़र आए हैं कि जी जानता है।
तुम नहीं जानते, अब तक यह तुम्हारे अन्दाज़,
वह मेरे दिल में समाए हैं कि जी जानता है।
दोस्ती में तेरी दर परदा हमारे दुशमन,
इस कदर अपने पराये है कि जी जानता है।

* * *

एक मेहमान ने आते ही यह घर लूट लिया,
वह जो दिल में है तो बाक़ी नहीं अरमाँ कोई।

* * *

१—अच्छी आदत, २—ईश्वरी ज्योति, ३—बराबर, ४—नीचाई, ५—दिल का आराम, ६—मन्दिर।

सुनते हैं कान रख के फ़रिशते भी इसकी बात,
कहता है दूर-दूर की इनसाँ कभी-कभी।

* * *

काम बिगड़ा न बनाए से बनेगा हरगिज़,
मेरी तदबीर न तकदीर से बदला लेगी।
दर्दो गम रञ्जो अलम मोल लिया क्या-क्या कुछ,
और क्या-क्या न मेरी ख़्वाहिशे[1] बेजा लेगी।

—'दाग' देहलवी

* * *

जी में है शेख़ो बिरहमन को दिखाओ दरे यार,
नाज़ काबे पे इसे है उसे बुतख़ाने पर!
है वही दोस्त जिसे जिससे मुहब्बत हो जाय,
न यह अपने पे है मौक़ूफ़ न बेगाने[2] पर।

* * *

वाह क्या ख़ूब परो बाल निकाले बुलबुल,
उड़ते ही पड़ गई सैय्याद[3] के पाले बुलबुल।
फ़ूल गुलशन[4] में न आए थे कि सैय्याद आया,
दिल के अरमाँ कहो क्या ख़ाक निकाले बुलबुल।
एक दिन आएगी ख़िज़ाँ दून को कैसी यह 'अमीर'
चार दिन बाग में बे पर को उड़ाले बुलबुल।

* * *

हश्र[5] में भीड़ गुनाहों की तो होगी पीछे,
और गुनहगारों के आगे तेरी रहमत[6] होगी।

१—ख़राब इच्छाएँ, २—गैर, ३—बहेलिया, ४—बाग, ५—प्रलय, ६—कृपा।

बेगुनाहों का किया ख़ून इसी ज़ालिम ने,
नाउमीदी से उमीदों को शिकायत होगी।

—'अमीर' लखनवी

* * *

मेरा तो जी वहीं रहता है नित जहाँ तू है,
अगरचे मैं यह नहीं जानता कहाँ तू है।

* * *

करे क्या फ़ायदा नाचीज़ को तक़लीद[1] अच्छों की,
कि जम जाने से कुछ ओला तो गौहर[2] हो नहीं सकता।

* * *

बसते हैं तेरे साये में सब शेख़ो बिरहमन,
आबाद तुझी से तो है घर दैरो हरम का।
है ख़ौफ़ अगर जी में तो है तेरे ग़ज़ब से,
और दिल में भरोसा है तो है तेरे करम का।

—'दर्द' देहलवी

* * *

याद दिल में तेरी ऐ जाने जहाँ रखते हैं,
देख आँखों से भी हम तुझको निहाँ[3] रखते हैं।
तुझको आँखों में हम ऐ जाने जहाँ रखते हैं,
तेरे ही वास्ते यह दोनों मकाँ रखते हैं।
रट तेरे नाम की ऐ जान लगी है हमको,
सहरो शाम[4] यही विरदे ज़बाँ रखते हैं।

* * *

ख़बरदार करेगा तो हमें ऐ ज़ाहिद[5]
आप तो अपनी हक़ीक़त से ख़बरदार नहीं।
चशमे दिल[6] खोल अगर है तलबे दीद[7] 'अकबर'
नज़र आएगा इन आँखों से वह दीदार नहीं।

* * *

१—नक़ल करना, २—मोती, ३—छुपा हुआ, ४—सवेरे-शाम, ५—परहेज़गार, ६—दिल की आँख, ७—देखने की इच्छा।

है यही मेरी तमन्ना[1] है यही मेरी दुआ,
सामने बैठा रहे तू और मैं देखा करूँ।
जुस्तजूये[2] यार में आया है कुछ ऐसा मज़ा,
आपको खो दूँ उसी को उम्र भर ढूँढ़ा करूँ।
उम्र आख़िर हो गई मिलता नहीं दिल का पता,
कब तक उस खोये हुए को या ख़ुदा ढूँढ़ा करूँ।
शीशए दिल में नज़र आती है कुल आलम की सैर,
साफ़ कर लूँ इसको और उसको यहीं देखा करूँ

—'अकबर' दानापुरी

* * *

किसी पते से उन्हें हम तलाश कर लेते,
सितम तो यह है कि नामो निशाँ नहीं मालूम।

* * *

इतनी तो ख़बर है कि वह जलवा नज़र आया,
बस और हमें इसके सिवा कुछ नहीं मालूम।

* * *

हसरते दीदार लाज़िम है नज़र के वास्ते,
जिसको आँखें दे ख़ुदा शौक़े तमाशा क्यों न हो।

—'नूह' नारवी

* * *

हक़ बजानिब कह रहा हूँ मैं यह कहना मान भी,
मेरी नज़रों में है यकसाँ[3] वेद भी, क़ुरआन भी।
देखते ही देखते बदली यह दुनिया की हवा,
पर लगा कर उड़ गए अब दीन भी ईमान भी।
ढूँढ़ने वाले को 'बिस्मिल' जुस्तुजू की शर्त है,
उसका मिल जाना बहुत मुशकिल भी है आसान भी।

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

* * *

१—आरज़ू, २—प्रियतम की खोज, ३—एक समान।

मेरा गाँव—लेखक, रायसाहब तनसुख जी राजवैद्य, प्रकाशक साहित्य निकेतन, अजमेर, पृष्ठ सं० ७०, मूल्य ॥)

वर्तमान समय में ग्राम सुधार का विषय भारतीय राजनीति में अग्रगण्य हो रहा है। क्या काँगरेसी और क्या गैर-काँगरेसी सभी का ध्यान देश के इस अत्यावश्यक, पर अब तक अवहेलना की दृष्टि से देखे जाने वाले अङ्ग की ओर आकर्षित हुआ है, और सबने समझ लिया है कि बिना ग्रामों का सुधार और उन्नति हुये देशोन्नति की बातें करना केवल ढोंग है। इसलिये पिछले कुछ समय से हमारे साहित्य में ग्राम सम्बन्धी साहित्य की बढ़ती हो रही है और प्रस्तुत पुस्तक छोटी होने पर भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें ग्रामों की अवस्था का अर्थ-शास्त्र के अङ्कों और सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रसिद्ध व्यक्तियों के उद्धरणों को दिये बिना, केवल एक कहानी के रूप में वर्णन किया गया है। यह विशेषतया देहातों की स्वास्थ्य-रक्षा और सफाई से सम्बन्ध रखती है और बहुत सरल तथा रोचक ढङ्ग से लिखी गई है। देश का वर्तमान वातावरण इस तरह की पुस्तकों के अनुकूल है, और हमारा ख़्याल है कि इसका काफी प्रचार होगा।

पान फूल—लेखक, श्री० सुन्दरलाल गर्ग, प्रकाशक साहित्य निकेतन, अजमेर, पृष्ठ सं० ६६, मू० ।॥)

इस पुस्तक में लेखक की छ कहानियाँ संग्रहीत हैं, जो विशेषतया राजपूताने के वातावरण से सम्बन्धित हैं। कहानियाँ रोचक तथा साथ ही सुरुचिपूर्ण हैं। पुस्तक का गेटअप सादा होने पर भी सुन्दर और आकर्षक है।

मालगुजारी प्रथा—लेखक श्री० पुरुषोत्तम दत्तात्रेय मराठे, प्रकाशक, पुरोगामी विचारमाला, महाल कानपुर, पृष्ठ सं० ८८, मू० ।।)

जिस प्रकार हमारे संयुक्त प्रान्त में जमींदारी प्रथा द्वारा किसानों का शोषण हुआ है, मध्य प्रान्त में मालगुजारी प्रथा ने किसानों को दाब रखा है। और चिरकाल से उनके मुँह के कौर को छीन रही है। इस पुस्तक में इसी प्रथा के पूर्व और वर्तमान रूप पर प्रकाश डाला है और इसको अन्त करने की माँग बड़े जोरदार और स्पष्ट शब्दों में उपस्थित की है। पुस्तक के लेखक किसान सभा के नेता अथवा कार्यकर्ता हैं, इसलिये उन्होंने जमींदारों के दृष्टिकोण का कुछ ध्यान रक्खे बिना किसानों की माँग को ही पेश किया है। उनके मतानुसार इस प्रथा का मूलोच्छेद जल्दी से जल्दी और पूर्ण रूप से हो जाना चाहिये। मालगुजारों को हर्जाना देने की बात को वे मजाक बतलाते हैं। सम्भव है, बहुत से पाठकों को लेखक के विचार बहुत 'गर्म' जान पड़े और जमींदार-वर्ग के लोग तो उनको 'बोलशेविज्म' के नाम से ही पुकारें, पर हमको यह स्वीकार करना पड़ता है कि ये विचार युग की पुकार हैं और आज नहीं तो कल वे कार्य रूप में परिणत होंगे ही। संसार के अधिकांश देशों का आधुनिक इतिहास हमको इसी निष्कर्ष पर पहुँचने को बाध्य करता है।

श्री श्यामसुन्दर रसायनशाला गायघाट, बनारस से हमको निम्न पुस्तकें समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं :—

१—नीम के उपयोग—लेखक, श्री केदारनाथ पाठक 'रासायनिक' पृष्ठ सं० १२०, मूल्य ।।।)

२—अनुभूत योग—लेखक, रसायन-शास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्य वैश्य, पृष्ठ सं० ६०, मूल्य ।।=)

३—अनुपान विधि—लेखक, रसायन-शास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्य वैश्य, पृष्ठ सं० ५६, मूल्य ।=)

इन पुस्तकों में प्रथम नीम के विभिन्न रोगनाशक गुणों के सम्बन्ध में हैं। इसमें प्रायः सभी रोगों को नीम से अच्छे करने की विधि दी गई है। नीम की सुलभता और इस देशवासियों के उसपर विश्वास को देखते हुये पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी है। दूसरी पुस्तक सुप्रसिद्ध रसायन शास्त्री जी के अनुभूत नुस्खों का संग्रह है, जो साधारण पाठक और वैद्य दोनों के लिये ही लाभजनक हैं। तीसरी पुस्तक में भस्मों की अनुपान विधि सविस्तार दी गई है।

आसव-विज्ञान—लेखक, स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, प्रकाशक पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी, अमृतसर, पृष्ठ-सं० १५०, मूल्य सजिल्द का १)

इस पुस्तक के लेखक स्वामी जी एक सुधार-प्रिय वैद्य हैं। आप पुरानी बातों और प्रणाली को ज्यों का त्यों मान लेने अथवा उनमें किसी तरह का परिवर्तन न करने के पक्ष में नहीं हैं। इसलिये आप आयुर्वेद के सिद्धान्तों और प्रणाली को आधुनिक खोजों की कसौटी पर कसते रहते और उनमें समयानुकूल परिवर्तन करते रहते हैं। आपकी यह पुस्तक इसी प्रवृत्ति का परिणाम है और काफी खोज के साथ परिश्रमपूर्वक लिखी गई है। इसमें आपने आसव और अरिष्ट बनाने के प्राचीन ढङ्ग की त्रुटियों को खोल कर बतलाया है और उसमें ऐसे सुधारों की सम्मति दी है जिससे ये औषधियाँ अधिक प्रभावशाली और टिकाऊ बन सकती हैं और उनके नष्ट होने का डर भी कम हो सकता है। पुस्तक से अनेक नई बातों का पता चलता है।

शारदा ऐक्ट—लेखक, कुँवर चाँदकरण शारदा, बी० ए०, एल एल० बी०, प्रकाशक, शारदा पुस्तकालय, दौलतबाग, अजमेर, मू० ।)

इस पुस्तक में बालविवाह-निषेधक कानून पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है। मूल कानून के सिवा प्रश्नोत्तर के रूप में तत्सम्बन्धी शंकाओं का उत्तर दिया गया है। बालविवाह की बुराइयों और इस कानून के पूर्व इतिहास को भी भली प्रकार बतलाया गया है। यह लगभग सौ पेज की पुस्तक बढ़िया कागज पर छपी है और कई चित्र भी दिये गये हैं, इसलिये सुलभ मूल्य और विषय के प्रतिपादन की दृष्टि से यह इस सम्बन्ध की सर्वोत्तम पुस्तक कही जा सकती है। इसकी भूमिका स्वयं इस कानून के निर्माता श्री० हरविलास जी ने लिखी है।

जीवनादर्श—लेखक और प्रकाशक पं० ज्योतिशरण जी रतूड़ी, टिहरी, गढ़वाल, पृष्ठ सं० लगभग १५०, मू० १)

इस पुस्तक में बतलाया गया है कि धार्मिक, नैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में हमारा जीवनादर्श क्या होना चाहिये। लेखक स्वामी रामतीर्थ के विशेष भक्तों में से हैं और उनके साथ रह भी चुके हैं, अतः आपके विचार स्वामी जी के सिद्धान्तों से बहुत अंशों में प्रभावित हैं। आप पश्चिम की सब बातों को लाभजनक नहीं समझते और इसलिये आपने पूर्वीय और पश्चिमीय विचारों के सामञ्जस्य की चेष्टा की है। पुस्तक अपने विषय की उत्तम और विशेष रूप से युवकों के लिये पठनीय है। अगर प्रचार की दृष्टि से इसका मूल्य कुछ कम रखा जाता तो और अच्छा होता।



लेखक—
श्री० एस० डी० आपटे
सङ्गीत-प्रवीण

दुर्गा—झपताल

शब्दकार—
अज्ञात

इस राग मे गंधार, निषाद स्वर वर्जित हैं। बाकी के सब शुद्ध स्वर। वादी—धैवत, संवादी—रिषभ। जाति—औडव, समय—रात का दूसरा प्रहर।

आरोहावरोह

सा री म प ध सां। सां ध प म री सा।

पकड़

मपध, मरी, सारी, ध़सा।

गीत

सखी मोरी रुमझुम बादल बरसे जिया तरसे।
इतनी अरज मोरी प्रभु से कह दिजिये।
उन बिन नैनन मे आँसु बरसे जिया तरसे॥

स्थायी

प	प	पम	रीमपध	मपध-	म	री	साध़	सा	सा
स	खी	मोऽ	ऽऽऽऽ	रीऽऽऽ	रु	म	झुऽ	ऽ	म
×		२			०		३		

साध	सा	मरीसरी	प	प	म-धप	ध	रींसा	-ध	मरी
बाऽ	ऽ	दऽऽऽ	ऽ	ल	बऽरऽ	से	जिया	ऽत	रसे
×		२			०		३		

अन्तरा

म	म	म	ध	म	सा ध	सा	सा ध	सां	सा
इ	त	नी	ऽ	अ	र	ज	मो	ऽ	री
×		२			०		३		

सा	ध	सां	—	रीं	सा	—	ध	म	री
प्र	भु	से	ऽ	क	ह	ऽ	दि	जि	ये
×		२			०		३		

प	प	पम	रीमप	मपध-	म	री	साध	सा	सा
उ	न	बीऽ	ऽऽऽऽ	नऽऽऽ	नै	ऽ	नऽ	न	मे
×		२			०		३		

रीसा	मरी	पम	ध	ध	सा पध	सा	रींसा	-ध	मरी
आऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	सुँ	बर	से	जिया	ऽत	रमे
×		२			०		३		

वातायन

महिला कार्यकर्ताओं का सङ्गठन

जब से संयुक्त प्रान्त के बड़े जमींदारों ने अपने आप को सङ्गठित करने और किसानों ने अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए कॉङ्गरेस से लड़ाई करने का निश्चय किया है, तब से कॉङ्गरेस-जन अपनी शक्ति बढाने के लिए उत्साहित हो उठे हैं। श्रीमती उमा नेहरू ने प्रान्त भर की कॉङ्गरेसवादी स्त्रियों को सङ्गठित करने की एक योजना पेश की है। इस योजना के अनुसार प्रत्येक जिले में एक स्त्री व्यवस्थापक नियत की जायगी जिसके साथ एक छोटी सी कमेटी होगी। कमेटी की प्रत्येक सदस्या एक-एक तहसील की इन्चार्ज होंगी। इस योजना का नियन्त्रण एक प्रान्तीय महिला कमेटी द्वारा किया जायगा, जिसकी अध्यक्षा श्रीमती उमा नेहरू होंगी। यह संस्था गृह-विज्ञान, निरक्षरता, चर्खा, खद्दर आदि विषयों पर अपना ध्यान केन्द्रित करेगी। स्त्री कार्यकर्ताओं का एक विशेष कार्यक्रम होगा राष्ट्रीय झण्डे की सलामी।

* * *

मेहतरों का प्रशंसनीय कार्य

मैसूर से करीब १५ मील दूरी के एक तीर्थस्थान नानजुड़ से खबर मिली है कि वहाँ के मेहतरों ने हाल ही में अपनी एक मीटिङ्ग कर शराब आदि सब तरह के नशीले पेय पीना छोड़ देने का निश्चय किया है। उन्होंने अपने बच्चों के लिए अलग स्कूल कायम कर शिक्षा का प्रचार करने का भी निश्चय किया है।

* * *

लड़की का अपहरण

गाज़ियाबाद की खबर है कि एक सुनार की चौदह वर्ष की लड़की को कोई भगा ले गया। मामला इस प्रकार बतलाया जाता है कि सुनार कहीं बाहर गया हुआ था कि रात को करीब नौ बजे लड़की को घर से बुला कर कार में बिठाकर उड़ा लिया गया। लड़की की माँ ने पुलिस को रिपोर्ट दे दी है। लड़की की अभी शादी होने वाली थी और लग्न भी जा चुका था।

* * *

संस्कृत के लिये आन्दोलन

गुजराँवाला गवर्नमेंट गर्ल्स हाईस्कूल की हाई क्लासों में संस्कृत पढ़ाए जाने के लिये शिक्षा विभाग के अधिकारियों को मजबूर करने के लिए यहाँ की जनता की ओर से एक बड़ा आन्दोलन जारी है।

* ❀ *

रङ्ग में भङ्ग

गाज़ियाबाद के पास बिसरख की खबर है कि कुछ व्यक्ति सैर करने वहाँ आये, जिसमें खाना-पीना भी हुआ। कहा जाता है कि उसमें से करीब २७ व्यक्ति हैज़े से मर गये। यह भी कहा जाता है कि पीतल के बरतन में घी रख दिया गया था और उसी से खाना बना।

* * *

ठाकुर गोली का शिकार

एटा में शराबबन्दी जारी है। कहा जाता है कि वहाँ का एक ठाकुर छिपकर गैर-कानूनी शराब खींचता रहता था। आबकारी पार्टी को इत्तिला मिलने पर उसने ठाकुर के मकान को घेर लिया। बच निकलने का कोई मौका न देखकर ठाकुर ने पार्टी पर ईंट चलाना शुरू किया, जिससे कुछ लोग जख्मी हो गये। इसपर कहते हैं, आबकारी इन्स्पेक्टर ने आत्मरक्षा में गोली चलाई, जिससे ठाकुर जख्मी होकर मर गया।

* * *

संस्कृत मे दस्तावेज़

छपरा लोकमान्य समिति के सस्कृत प्रचार, हिन्दी एव देवनागरी लिपि प्रचार विभाग को ओर से सस्कृत में दस्तावेज रजिस्ट्री किये गये है। स्थानीय आर्यसमाज की जो ज़मीन है, उसकी भी रजिस्ट्री समिति के उद्योग से शीघ्र ही सस्कृत में ही होने जा रही है। लोकमान्य समिति का संस्कृत, हिन्दी एव देवनागरी लिपि प्रचार विभाग गत कई वर्षों से इस अन्दोलन को चला रहा है। फलस्वरूप सैकड़ों दस्तावेज़ शुद्ध हिन्दी एव देवनागरी लिपि में रजिस्ट्री किये गये और दर्जनों संस्कृत भाषा में हुए।

* * *

एक स्त्री को २० वर्ष कैद

कपूरथला के सेशन जज सरदार नौबतराय ने सरदारों नाम की एक स्त्री को अपने पुत्र की हत्या करने के सम्बन्ध में धारा ३०२ के अधीन २० वर्ष कड़ी कैद की सज़ा दी। इस्तगासे का बयान है कि जब स्त्री अपने पति से पृथक रहती थी तो किसी दूसरे व्यक्ति के अनुचित सम्बन्ध से उसके बच्चा पैदा हुआ। स्त्री ने इसको छिपाने के लिए बच्चे की हत्या कर डाली। कुछ दिनों बाद बच्चे की लाश पुलिस को बरामद हुई।

* * *

एक लड़की की दो बाराते

कुछ दिन हुए वृन्दाबन में एक गौतम के घर बारात आई और करीब ४-५ बजे शाम को ही विवाह का कार्य हो गया। कुछ देर बाद जब फेरे पड़ चुके तो एक बारात और आई। उससे कहा गया कि लड़की के फेरे तो पड़ चुके। इस पर बारात ने आकर घर घेर लिया और और वर धरना देकर पड़ा रहा कि जब तक विवाह न होगा तब तक नहीं जाऊँगा। पता चला है कि जो बारात पीछे आई थी, उससे लड़की वाले के १२००) ठहरे थे और जो बारात पहले आई उससे १३००) ठहरे थे। लड़की वाले ने पहले सौदे को तोड़ कर ऊँची बोली बोलने वाले के साथ लड़की की शादी कर दी।

* * *

हिन्दू स्त्रियो को तलाक का अधिकार

सुप्रसिद्ध डॉ० देशमुख ने हिन्दू महिलाओं के तलाक़ सम्बन्धी अधिकार के लिए एक बड़े महत्व का बिल पेश करने को सूचना दो है। इस बिल का उद्देश्य है कि हिन्दू महिलाओं को कुछ हालतों में तलाक़ देने का अधिकार होना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि पति कोई असाध्य मर्ज से पीड़ित हो, पागल हो अथवा नपुसक हो, तो उसकी पत्नी तलाक़ दे सकती है। यह बिल केन्द्रीय एसेम्बली के अगले अधिवेशन में पेश किया जायगा।

* * *

लड़कियो की हिम्मत

शेखूपुरा (पञ्जाब) की खबर है कि कालेकी स्टेशन के पास एक डाकू चलती ट्रेन में एक स्त्री के ज़ेवर उतारने लगा, परन्तु तीन नौजवान लड़कियों ने हिम्मत करके उसे पकड़ लिया और ज़ञ्जीर खींच दी। डाकू लड़कियों से छूट कर गाड़ी से कूद पड़ा, परन्तु टाँग में चोट आ जाने के कारण भाग न सका और पकड़ा गया।

* * *

वृद्ध-विवाह रोका गया

मून्दो (खण्डवा) के एक महाजन की १३ वर्षीया लड़की का ब्याह महू के एक ५० वर्ष के सेठ के साथ में होने वाला था। इस बीच लड़की के मामा ने खण्डवा डिस्ट्रिक्ट जज के यहाँ इस अनुचित कार्य की रोक के लिये दरख़ास्त देकर विवाह रुकवा दिया है। मामले की पेशी २२ जुलाई को है।

* * *

माँ के पुनर्विवाह से क्रुद्ध

पञ्जाब के एक कस्बे में एक सिख लड़के ने अपनी माँ को कृपाण से मार डाला। कहा जाता है कि १४ वर्ष पहले स्त्री ने अपने पहले पति के मर जाने पर पुनर्विवाह कर लिया था। लड़का तभी से उससे असतुष्ट था और अब समर्थ होने पर अवसर पाकर उसने अपना इरादा पूरा कर दिखाया।

* * *

महन्त की लीला

जगन्नाथपुरी की नयनदेवी नामक एक स्त्री ने महन्त के विरुद्ध अपने छोटे बच्चों की ओर से गुजारे की नालिश की है। वादी का कथन है कि वह गत २५ वर्षों से महन्त के साथ रहती थी और महन्त से उसे ११ सन्तानें हुई, जिनमें से तीन जीवित हैं। महन्त ने उसे दोनों अल्पवयस्क बच्चों के साथ मठ से निकाल दिया है और उसकी कोई खबर नहीं लेता है। महन्त ने उनका पालन-पोषण करना भी अस्वीकृत कर दिया है। नयनदेवी ने प्रत्येक बालक के लिये ५०) मासिक गुजारे का दावा किया है।

* * *

विधवा नोकरानी गिरफ्तार

सोलन (शिमला) में कई दिन हुए रेलवे स्टेशन के पास एक नवजात शिशु पुलिस को मिला था, उसके सम्बन्ध में पुलिस ने जाँच करने के पश्चात् एक सेठानी की क्रिश्चियन विधवा नौकरानी और एक नौकर को शिशु की हत्या करने की चेष्टा करने के अभियोग में अदालत में चालान किया है।

* * *

आधुनिक संयोगिता हरण

बम्बई में एक मारवाड़ी युवक ने आधुनिक पृथ्वीराज का काम किया है। उक्त युवक की एक लड़की से सगाई हो गई थी और वह उसके पिता की इच्छा के विपरीत तुरन्त शादी करना चाहता था। अतएव वह अपने साथियों के संग मोटर गाड़ी द्वारा लड़की के मकान पर पहुँचा और लड़की को लेकर भाग गया।

* * *

कुओं पर सबका अधिकार

पञ्जाब सरकार के स्वास्थ्य और स्वायत्त विभाग की ओर से सभी डिवीजनल कमिश्नरों के नाम सरक्यूलर जारी किया गया है कि सार्वजनिक कुओं को दलित जातियों के लिये भी खुला दिया जाय।

एक लाख रुपये का गुप्त दान

कलकत्ता में एक केन्द्रीय आयुर्वेदिक कॉलेज की स्थापना के लिए किसी सज्जन ने १ लाख रुपये का गुप्त दान दिया है। थोड़े दिन हुए इस बात की कोशिश की गई थी कि कलकत्ता में इस समय जो चार आयुर्वेदिक कॉलेज हैं, उनको मिला कर एक बना दिया जाय। जब यह कालेज स्थापित हो जायगा तो यह कोशिश की जायगी कि कलकत्ता यूनिवर्सिटी में एक आयुर्वेदिक फैकल्टी की स्थापना की जाय। चारों कालेजों को मिलाने की कोशिशों में सफलता मिलने की आशा की जाती है।

* * *

वृन्दावन में गो-हत्या

वृन्दावन की खबर है कि जुगल घाट के पास एक बगीचे में एक गौ चरने चली गयी। उसे वहाँ के एक मुसलमान ने जान से मार दिया। जनता में बड़ा जोश फैल रहा है, क्योंकि श्री वृन्दावन में चिरकाल से 'गौ', 'बन्दर' तथा 'मोर' नहीं मारे जाते हैं। थाने में रिपोर्ट कर दी गई है।

* * *

ब्रिटेन में आत्म-रक्षा के उपाय

हवाई आक्रमण से बचने के लिए उपाय किए जाने के सम्बन्ध में श्री जाफरे लायड ने कहा कि हवाई आक्रमण की सूचना देने के लिए एक ऐसा उपाय किया गया है कि १ मील की दूरी से ही खबर सुनाई पड़ जायगी। ऐसा प्रबन्ध करने के लिए देश में १०० जिले बनाए जायँगे। दुलाई बोर्ड से शरणार्थियों के ले जाने के सम्बन्ध में प्रबन्ध किया जायगा और उनके भोजन तथा रहने के लिए स्थान की भी व्यवस्था रहेगी। रेलवे कम्पनियों के साथ ऐसा प्रबन्ध किया जा रहा है कि ७२ घंटों के भीतर ३५ लाख व्यक्ति लन्दन से ५० मील की दूरी पर पहुँचाए जा सकें। फ्रान्स वालों के इन्तजाम से यह अच्छा होगा, क्योंकि वहाँ केवल २२॥ लाख व्यक्ति १० दिन के भीतर हटाए जा सकेंगे।



[सम्पादकीय]

निरक्षरता का मूलोच्छेद

जब से प्रान्तीय सरकारों के शासन की बागडोर कॉङ्ग्रेस के प्रतिनिधियों के हाथों में आई है, तब से वे देश में पाई जाने वाली सभी त्रुटियों को यथा-सम्भव दूर करने की चेष्टा कर रहे हैं। देशव्यापी निरक्षरता की तरफ़ उनका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है और इसके लिये भिन्न-भिन्न योजनायें बनाई जा रही हैं। मध्यप्रदेश में विद्यामंदिर की योजना को कार्य रूप में परिणित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में वहाँ के शिक्षा मन्त्री माननीय शुक्ल जी ने नवयुवकों के नाम एक अपील प्रकाशित की है, जिसमें वे कहते हैं :—

"दैन्य की चक्की में पिसनेवाले हमारे जैसे प्रान्त में ग्रामोद्धार और निर्माणकारी शिक्षा के प्रचारार्थ यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति प्राण-पण से नागरिक सेवा करे और विशेष कर छात्र वर्ग तो यह सुचारु रूपेण कर ही सकता है, क्योंकि उनकी शक्ति का स्रोत अबाध है और परिमित सीमाओं से उनका कार्यक्षेत्र परे है, अतः वे इसके सर्वथा योग्य भी हैं।

मैं १५ वर्ष से ऊपर के समस्त बालकों, शिक्षकों और प्रोफ़ेसरों से यह निवेदन करना चाहता हूँ कि वे अपनी छुट्टियों के समय ग्रामों में जाकर व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा स्वच्छता का आदर्श उनके सामने प्रस्तुत करें, निरक्षरों को साक्षरता का ज्ञान करायें, उन्नत कृषि के लाभ दर्शावें और जनता को यह भी समझावें कि प्रान्त की सीमित सीमा के बाहर का भी वे ज्ञान प्राप्त करें और अपेक्षाकृत उत्तम, स्वच्छ, सम्पन्न और जाग्रत ग्रामीण भारत की नींव डालने में सहायक हों।

मैं यह चाहता हूँ कि कुछ ही समय में यह अनिवार्य हो जाना चाहिए कि विश्वविद्यालय की परीक्षा उत्तीर्ण होने और डिग्री के बीच के समय का नागरिक सेवा करने में सदुपयोग किया जाय, क्योंकि मैं यह अनुभव करता हूँ कि हमारे देश में जो मुख्यत ग्रामों का देश है, कोई भी व्यक्ति तब तक स्वत को ग्रेजुएट नहीं कह सकता जब तक कि वह अपनी सेवाओं और त्याग द्वारा किसी ग्रामीण को कुछ सहायता नहीं पहुँचाता। किन्तु जब तक ऐसा नहीं हुआ है और कोई निश्चित मार्ग खोज नहीं निकाला गया है, तब तक मैं चाहता हूँ कि समस्त युवक—प्रान्त की आशा—इस बात का आदर्श उपस्थित करें कि जनप्रिय सरकार के तत्वावधान में कॉङ्ग्रेस के उद्देश्यों के अनुकूल क्या और कितना कार्य किया जा सकता है।"

सयुक्त प्रान्त और बिहार में भी इस सम्बन्ध में कार्य आरम्भ हो चुका है। इन तीनों प्रान्तों की भाषा हिन्दी है और इनकी अवस्था अनेक अशों में मिलती-जुलती है। हम आशा करते हैं, ये तीनों एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठाकर ऐसी व्यवस्था करेंगे जिससे आगामी चार-पाँच वर्ष में इन प्रान्तों की अधिकाश जनता वास्तविक अर्थों में शिक्षित नहीं तो साक्षर अवश्य हो जायगी। इस सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि हिन्दी भाषा और नागरी लिपि अपनी सरलता और वैज्ञानिकता के लिये प्रसिद्ध है। अगर हम इन प्रान्तों के करोड़ों व्यक्तियों को इनसे परिचित बना सकें तो भाषा और साहित्य का भी असीम उपकार होगा। यह काम अब तक के अनुभव से विशेष कठिन भले ही जान पड़े, पर अगर हम रूस आदि आधुनिक देशों के उदाहरणों पर ध्यान दें, तो असम्भव नहीं कहा जा सकता।

* * *

अध्यापिकाओं के सुधार की योजना

भारतवर्ष में शिक्षा-प्रचार के मार्ग में अनेकों बाधाएँ हैं, सरकार की उदासीनता, लोगों की ग़रीबी, शिक्षा की व्यवस्था के लिये पर्याप्त धन का अभाव आदि बातें तो प्रकट ही हैं, पर इनके सिवा और भी कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनसे शिक्षा के उचित प्रचार में बाधा पड़ रही है। उदाहरण के लिये हम योग्य अध्यापकों के अभाव को ले सकते हैं। अभी तक हमारे स्कूलों में ऐसे अध्यापकों की संख्या बहुत कम है, जो शिक्षा-दान के महत्त्व का हृदय में अनुभव करते हों और बच्चों को शिक्षा देना अपना पवित्र कर्तव्य समझते हों। इसके विपरीत यह उनके निकट केवलमात्र एक पेट भरने का पेशा है और इसलिये वे किसी तरह अपने ऊपर रखे भार को ख़त्म कर देना ही अपना उद्देश्य बना लेते हैं और उनमें से कुछ अनेक बार तो ऐसी चेष्टा भी करते हैं, जिससे वे छात्रों का अनहित करके भी दो पैसा अधिक प्राप्त कर सकें। यह दशा वास्तव में शोचनीय है और प्रत्येक देशहितैषी का कर्तव्य है कि वह इसके कारणों को जानने और इसका सुधार करने का प्रयत्न करे। इस सम्बन्ध में लाहौर की अध्यापिका कॉन्फ़रेन्स ने कुछ उद्योग किया है, जिससे थोड़े बहुत समय में पर्याप्त सुफल की आशा है। इस सम्बन्ध में उक्त कॉन्फ़रेन्स की प्रेसीडेण्ट मिस के० वी० फ़ीरोजुद्दीन ने हाल ही में जो उद्गार प्रकट किये है, वे ध्यान देने योग्य हैं। आपका कथन है :—

"अधिकाश अध्यापिकाएँ मजबूरी की हालत में पढ़ाने का काम ले लेती हैं। उन्हें वैसे पढ़ाने के लिये कोई शौक या योग्यता नहीं होती। अधिकाश अध्यापिकाएँ विधवा या परित्यक्ता हैं, या गरीबों की गरीब लड़कियाँ हैं, जिन्हें जीवन-निर्वाह के लिये यह काम करना पड़ता है। ऐसी अध्यापिकाओं से यह आशा नहीं हो सकती कि वे बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सकेंगी। उनका जीवन इतना दुःखी होता है और जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण इतना सङ्कुचित पाया जाता है कि वे अध्यापन कार्य के योग्य नहीं कही जा सकतीं। उनके जीवन में प्रकाश लाने के लिये और उनका दृष्टिकोण बदलने के लिए गाँवों में, शहरों में सभाओं का प्रबन्ध किया गया, जहाँ कि खेल, गाना, बातचीत, नाटक आदि का सिलसिला जारी किया गया। दूर-दूर की अध्यापिकाएँ इसमें दिलचस्पी लेने लगीं। बाद में अध्यापिका एसोसिएशन तैयार की गई। अब लाहौर सर्कल की भिन्न-भिन्न एसोसिएशनों में कोई ६०० अध्यापिकाएँ सदस्य बन चुकी हैं।"

अध्यापक और अध्यापिकाओं का इस प्रकार सङ्गठन देशव्यापी होना आवश्यक है। आशा है, नवीन शासन-विधान में शिक्षा सरकार की जो चेष्टा की जा रही है, उसमें अध्यापक और अध्यापिकाओं की योग्यता की वृद्धि पर भी ध्यान दिया जायगा।

* * *

बालकों का अपहरण

आजकल छोटे-बड़े बालकों का अपहरण गुण्डों द्वारा प्रायः भारतवर्ष भर में हो रहा है। इनसे बचने के लिये लेखक ने इस लेख में कई उपाय सुझाये हैं। ये माता-पिताओं और बालकों के काम के हैं, अतः इनके अनुसार चलना चाहिए। लेखक ने बालकों को सम्बोधन कर 'शक्ति' में लिखा है :—

"प्यारे बाल-बन्धुओ, तुममें से बहुतों ने समाचार-पत्रों में अपनी जाति के बच्चों के अपहरण की घटनाएँ पढ़ी होंगी। ऐसी घटनाएँ प्रायः बड़े-बड़े नगरों में, मेलों और पर्वों के अवसर पर अधिकता से घटती रहती हैं। तुम्हें ऐसी घटनाओं को पढ़कर या सुन कर अवश्य ही बड़ा भय और दुःख होता होगा, परन्तु स्मरण रखो, डरने से काम न चलेगा। इन घटनाओं के कुछ मुख्य कारण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) कई बार माता-पिताओं को अपने बच्चों को सुन्दर दीख पड़ने की झूठी लालसा और इसके लिये

उनको बहुमूल्य आभूषणादि पहनाना आततायियों के लोभ को उत्तेजन देता है।

(२) मेला आदि में माता-पिताओं की असावधानता के कारण बच्चों के अलग हो जाने से भी गुण्डों को अवसर मिलता है तथा विधर्मी गुण्डों की पाप-भावना से रचे षड्यन्त्रों के कारण भी बच्चों को दुःख उठाना पड़ता है, इसलिए जहाँ माता-पिता और नगर की रक्षक पुलिस इन कारणों को हटाकर और उनका उपाय करके अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकती है, वहाँ सबसे उत्तम उपाय बच्चों का स्वयं अपने पैरों खड़े होना है। इसके लिये निम्न साधन विचारणीय हैं।

(१) तुम अपनी गली, मुहल्ले, तहसील, थाने और जिले आदि का पूरा-पूरा नाम, पता आदि स्मरण कर लो और एक कागज पर स्वयं लिखकर या लिखवा कर सदा जेब में रखा करो, ताकि कभी तुम माता-पिता से बिछुड़ जाओ तो पूछ-ताछ कर घर पहुँच सको। (२) अपने माता-पिता और चाचा और बड़े भाई आदि का नाम भी याद कर लो, ताकि समय पड़ने पर तुम पुलिस या सेवा-समिति आदि में बतला कर उन्हें बुलवा सको अथवा उनके पास पहुँच सको। (३) मेलों और पर्वों आदि में जाते हुए सदा सादे कपड़े पहन कर जाओ और आभूषण आदि तो कभी भी धारण न करो जिससे लोभी और स्वार्थी व्यक्तियों को तुम्हारे अपहरण की इच्छा ही न होवे। (४) मेलों आदि में अकेले मत जाओ, सदा अपने बड़े सम्बन्धियों के साथ रहो। यदि उनका साथ छूट जावे तो घबरा कर या डर कर रोने मत लगो, प्रत्युत साहस और धैर्य से आगे-पीछे चारों ओर उनकी खोज कर उनके साथ हो लो। पर यदि वे न मिलें तो झट पुलिस, सेवा-समिति अथवा स्काउट के वालन्टियरों के पास जाकर अपने माता-पिता और घर का पता बता कर अपने घर पहुँच जाओ। (५) ऐसे अवसर पर सदा इस बात को ध्यान में रखो कि यदि कोई अन्य अपरिचित व्यक्ति घर पहुँचाने को कहे तो उसके साथ मत जाओ और न उसकी झूठी बातों के बहकावे में आकर उनपर किसी तरह का विश्वास करो, क्योंकि ऐसे अवसरों पर ही बुरे व्यक्ति बच्चों को अपहरण करने के लिये नाना प्रकार के कपट-जाल रचते और बच्चों को मीठी-मीठी बातें कर बहकाते हैं। तुम्हे जब कोई व्यक्ति ऐसे बहकाने लगे, तो झट इसकी सूचना पहरे पर खड़े पुलिस के सिपाही अथवा सेवा-समिति के स्वयंसेवक को करनी चाहिये और उसको उनके सामने उचित फटकार बतानी चाहिये। (६) तुम इस बात को सदा स्मरण रखो कि कभी किसी अपरिचित व्यक्ति से कोई वस्तु लेकर न खाओ, चाहे वह कितना ही आग्रह और हठ करे और न किसी से कोई वस्तु लेकर सूँघो, क्योंकि न जाने उसमें कोई मादक द्रव्य या जहर (विष) आदि पदार्थ हों जिसे सूँघते या खाते ही तुम्हारी जान चली जावे या कोई और अनिष्ट हो जावे। यदि कोई तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध जबरन ऐसा करने लगे तो शक्ति भर उसका मुकाबला करो और शोर आदि मचाकर आसपास के लोगों को सूचित कर दो, ताकि वे तुम्हारी रक्षा कर सकें।

❀ ❀ ❀

राष्ट्रपति का दृढ़ संकल्प

इन दिनों राष्ट्रपति सुभाष बाबू पूर्वीय बङ्गाल का दौरा करके कॉङ्ग्रेस का प्रचार कर रहे हैं। इस प्रदेश में मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक है और उन्हीं को कॉङ्ग्रेस का अनुयायी बना कर देशोद्धार के कार्य में संलग्न करना उनका उद्देश्य है। अपने उद्योग में उनको बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो भी रही है। इस बात को देख मुस्लिम लीग के अनुयाइयों के पेट में चूहे कूदने लगे हैं, और वे सभी सम्भव उपायों से इसमें बाधा डालने की चेष्टा करने लगे हैं। इसके लिये जहाँ जहाँ सुभाष बाबू का आगमन होता है वहीं लीग वाले उनका बायकाट करने का प्रचार करते हैं। पर इसका परिणाम प्रायः उलटा ही होता है और राष्ट्रपति के स्वागत में भाग लेने की लोगों की इच्छा और भी बढ़ जाती है। इससे क्रुद्ध होकर ब्राह्मणबरिया नामक स्थान में लीग वालों ने जलूस पर पत्थरों की वर्षा की, जिससे स्वयं सुभाष बाबू को और उनके १५ साथियों को काफ़ी

चोट आई। लीग वालों के इस दुष्कृत्य का एक ही उद्देश्य हो सकता है कि कॉङ्ग्रेस कार्यकर्ता डर कर मुस्लिम जन-समुदाय में प्रचार करना बन्द कर दें। उनकी यह भावना देशद्रोह के सिवा अज्ञानता की भी सूचक है। वे नहीं समझते कि जिन हृदयों में देश-प्रेम की भागीरथी हिलोरें ले रही हैं और जिन्होंने अपने तन-मन-धन सर्वस्व को मातृभूमि की सेवाहित बलिदान कर देने का दृढ़ संकल्प कर लिया है, वे थोड़े से हीनमना स्वार्थी लोगों के डराने से कैसे पश्चात्पद हो सकते हैं। जो लोग हँसते हँसते जल्लाद की रस्सी और सैनिकों की गोली का स्वागत कर चुके हैं, वे कुछ ईंट-पत्थरों के फेंके जाने से किस तरह अपने ध्येय से विरत हो सकते हैं। उपर्युक्त घटना के पश्चात् माननीय सुभाष बाबू ने ऐसा ही भाव प्रकट करके कॉङ्ग्रेस की अजेयता की छाप लोगों के हृदयों पर लगा दी है। उन्होंने कहा—"मैं साफ़ बता देना चाहता हूँ कि ईंट पत्थर फेंकने अथवा दङ्गा-फ़साद करने से हम अपने मौलिक सिद्धान्त अथवा नीति से एक इञ्च भी टस से मस नहीं हो सकते। बल्कि इस तरह फेंकी एक-एक ईंट हमारे चिर-अभिलाषित उद्देश्य-पथ का एक-एक मील का पत्थर प्रमाणित होगी। इस अवसर पर मैं कॉङ्ग्रेसी कार्यकर्ताओं को यह परामर्श देना चाहता हूँ कि लाख उत्तेजित किये जाने पर भी उन्हें सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों से विचलित नहीं होना चाहिये।" हमको पूर्ण आशा है कि इस दृढ़ता, आत्मविश्वास और साथ ही निर्विरोधता के भाव के सम्मुख भ्रमपतित विरोधियों को अवश्य ही मुँह की खानी पड़ेगी।

❀ ❀ ❀

पञ्जाब में बेकारी की समस्या

कुछ समय हुआ पञ्जाब सरकार ने अपने प्रान्त की बेकारी की जाँच करने के लिये एक कमेटी नियुक्त की थी। इस कमेटी के पास प्रान्त के ७५ हज़ार शिक्षित युवकों ने अपने नाम भेजे हैं। ये युवक बेकार बैठे हैं और कोई नौकरी या अन्य धन्धा जीविका निर्वाह के लिये चाहते हैं। कहा जाता है कि कमेटी ने सिफारिश की है कि इन बेकारों के लिये सरकार ऐसे केन्द्र खोले जहाँ उनके रहने और भोजन का प्रबन्ध हो। इनमें दस्तकारी आदि की शिक्षा की भी व्यवस्था की जायगी। २५ हज़ार बेकारों को भत्ता देने की स्कीम भी सरकार के सामने उपस्थित है। बेकारी की समस्या वास्तव में समाज के हित की दृष्टि से बड़ी गम्भीर है और बहुसंख्यक बुराइयों को उत्पन्न करने वाली है। उसके कारण ही लोग जघन्य कार्यों को करने के लिये तैयार हो जाते है, और देश तथा समाज के हित को ताक पर रखकर केवल स्वार्थ साधन पर दृष्टि रखने लगते हैं। भूखे व्यक्ति से किसी सत्कार्य या परोपकार के कार्य की आशा रखना व्यर्थ है। इसलिये सरकार और देश के सभी समर्थ व्यक्तियों का कर्तव्य है कि वे इस समस्या का सन्तोषजनक समाधान करने के लिये अपनी पूर्ण शक्ति से प्रयत्न करें।

❀ ❀ ❀

मद्रास में हिन्दी-विरोधी आन्दोलन

मद्रास की सरकार ने समस्त देश में एकता की स्थापना के उद्देश्य से स्कूलों में द्वितीय भाषा के रूप में आम तौर से हिन्दी पढ़ाये जाने की आज्ञा दी है, और कुछ कॉङ्ग्रेस-विरोधी लोगों ने इस आज्ञा का भ्रमपूर्ण अर्थ निकाल कर लोगों को भड़काना आरम्भ किया है कि इसके फल से उनकी मातृ-भाषा तामिल की क्षति होगी। इतना ही नहीं, उन्होंने हिन्दी पढ़ाये जाने के विरुद्ध बाक़ायदा आन्दोलन आरम्भ कर दिया है, जलूस निकाले जाते हैं और दो-एक मनचलों ने अनशन भी आरम्भ किया है। इन जलूसों में 'हिन्दी का नाश हो' इस तरह के घृणित पोस्टर निकाले जाते हैं। इन लोगों का प्रचार कार्य कैसा भ्रमात्मक और स्वार्थपूर्ण है, इसका स्पष्टीकरण मद्रास के प्रधान मन्त्री माननीय राजगोपालाचार्य जी के निम्नलिखित बयान से लग सकता है। उन्होंने एसोसियेटेड प्रेस के प्रतिनिधि से कहा :—

"मैं विश्वास करता हूँ कि अपने प्रान्त के स्कूलों में हिन्दुस्तानी की शिक्षा प्रचलित करने का इरादा कई बार स्पष्ट किया जा चुका है, फिर भी शीघ्र ही एक कम्यूनिक निकाल कर स्थिति साफ कर दी जायगी, ताकि शरारती लोगों को भले आदमियों का दिमाग खराब करने का मौका न मिले। प्रश्न यह नहीं है कि तालीम का नाश हो रहा है, बल्कि प्रश्न यह है कि क्या जनता द्वारा चुनी हुई सरकार को प्रान्त के लड़कों को उदारतापूर्ण शिक्षा देने का अधिकार नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या जनता द्वारा चुने हुये मन्त्री शासन करें या कि कुछ नाखुश लोग उन्हें जैसा चाहें दबा लें। सबको यह समझ लेना चाहिये कि मैं प्रान्त के बालकों से स्नेह करता हूँ और उन्हे उचित शिक्षा देना चाहता हूँ। उदार शिक्षा में ऐसी भाषा को शिक्षा देनी ही होगी जो कि अधिकाश भारत में बोली जाती है। फिर सरकार उन स्कूलों में हिन्दुस्तानी नहीं प्रचलित कर रही है, जहाँ कि तेलगू, मलयालम या कनाडो ही पढ़ाई जाती हैं। सभी विषयों का माध्यम प्रान्तीय भाषा ही होगी और विदेशी भाषा न रहेगी। सरकार सभी छात्रों में देशी भाषा की अच्छी योग्यता पैदा करना चाहती है। हिन्दुस्तानी केवल छठी से ८वीं कक्षा तक पढ़ाई जायगी। हिन्दुस्तानी का स्थान प्रान्तीय भाषा न ले सकेगी और हिन्दुस्तानी में फ़ेल होने से तरक्क़ी न रुकेगी। हिन्दुस्तानी से मतलब उर्दू नागरी दोनों ही लिपियों से है।"

वास्तव में मद्रास सरकार ने अपने निश्चय द्वारा हिन्दी को वह स्थान देने की चेष्टा की है, जो अब तक अङ्गरेज़ी को प्राप्त था। यदि हम समस्त देश के विभिन्न प्रान्तों को एक राष्ट्रीयता के सूत्र में बाँधकर अपनी स्थिति को दृढ़ करना चाहते हैं, तो हमको प्रान्तीय भाषाओं के रहते हुए भी एक ऐसी भाषा का प्रचार करना अनिवार्य है, जो सर्वत्र समझी जा सके और जिसके द्वारा सब प्रान्तों के लोग भली प्रकार विचार विनिमय कर सकें।

Has been approved [illegible] for use in Schools and Libraries by The Director of Public Instruction, Punjab, United Provinces and Kota State [illegible]

Price As -/10/

सम्पादिका—

महादेवी वर्मा, एम० ए०

मैनेजिङ्ग एडीटर तथा जनरल मैनेजर—

नन्दगोपालसिंह सहगल

डाइरेक्टर—

१—नन्दगोपालसिंह सहगल

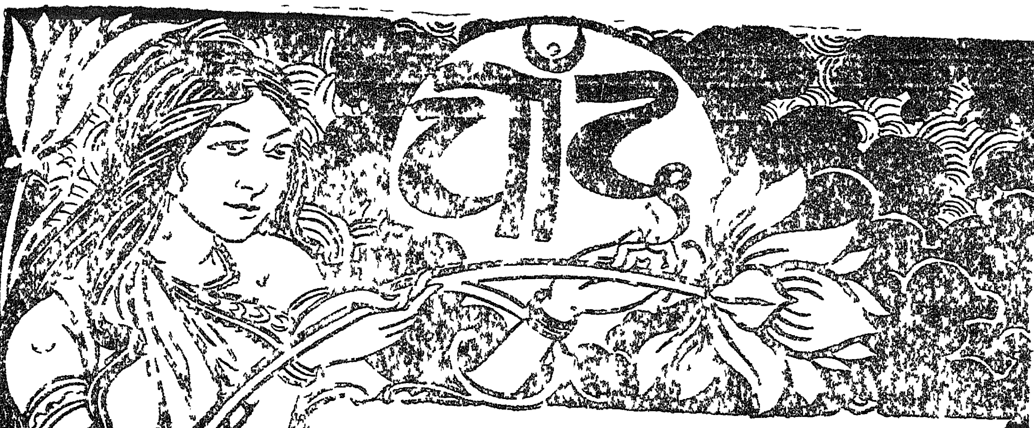
२—पं० हीरालाल भार्गव

वर्ष १६	वार्षिक मूल्य ६॥)
खण्ड २	छःमाही मू० ३॥)
संख्या ३	विदेश के लिए—
पू० सं० १८९	१ वर्ष का मू० ८॥)

प्रकाशक :—चाँद प्रेस लिमिटेड, [illegible]



माँ





नव समीर स्नात

वह कुसुम-कलिका खिली थी,
खोजती-सी प्रात ॥

[illegible] ([illegible] अन्धकार) मलीन ।
[illegible] नवीन-नवीन ॥

पाप से [illegible] हुआ था
[illegible] का प्रिय [illegible] नव समीर-स्नात

ओस-[illegible] अर्घ्य देकर सुर[illegible] की प्रिय बाल ।
[illegible] के [illegible] थी [illegible] सम्हाल-सम्हाल ॥

देखता [illegible] बन गया—
उसके लिए आघात ! नव समीर स्नात

मैं कुसुम-कलिका सुरभि की हूँ अलक्ष्य हिलोर ।
जा रही [illegible] इस ओर या उस ओर ॥

निज दिशा में साँस-गति से,
कर न दो नियात ? नव समीर-स्नात

[illegible]

एक तारे के समान हूँ। स्वय ज्योतिहीन हूँ। लेकिन जब आप आकर प्रेम से चूम लेते हैं, उस समय मेरा मुँह लज्जा से लाल हो जाता है, और मैं जगत् को ज्योतिर्मय बनाने वाला एक मङ्गल तारा बन जाती हूँ।

बच्चे, युवक, और वृद्ध सभी मेरे इस अनूठेपन से आनन्द उठाते हैं, और कवि कल्पना का बाजार लगाता है। कहो न यह कैसी विचित्रता है।

एक दीन के समान स्वय प्रकाशहीन हूँ, लेकिन जब आप आकर "स्नेह" से मेरी ओर निहारते हैं उस समय मैं घर को प्रकाशित करने वाला जगमगाता गृह-दीप बन जाती हूँ।

कवि मेरे प्रकाश में शब्दों पर भावना की फूँक मार कर संसार को रसास्वादन कराता है। वैज्ञानिक विज्ञान की अनूठी खोज कर अपनी चाह को पूरा करता है। और आप स्वय उन भोले-भाले गहरे अन्धकार में डूबे हुए अनन्त के पथिकों को दीपक दिखाकर आशा का सञ्चार कराते हैं।

-मंजनदना अग्रवाल

❀ ❀ ❀

अपनी बात

परित्यक्त भारतीय नारी

(१)

स्त्री का परित्याग भारतीय इतिहास में विशेष महत्व रखता है। पुरुष समाज ने उसे स्वेच्छानुसार अङ्गीकार और अस्वीकार कर असंख्यों बार यह प्रमाणित कर दिया है कि वह स्त्री को सुख के अन्य उपकरणों से अधिक ऊँचा स्थान नहीं देना चाहता। जिस प्रकार आवश्यकता और इच्छा न होने पर मनुष्य, क्या बहुमूल्य और क्या साधारण, सभी वस्तुओं को फेंक सकता है, उसी प्रकार पुरुष भी स्त्री के बन्धन से, इच्छा होते ही मुक्त हो सकता है। इस सम्बन्ध में स्त्री की इच्छा अनिच्छा जानने की कभी पुरुष ने आवश्यकता नहीं समझी, क्योंकि स्त्री को उसने कभी स्वतन्त्र सहयोगी के रूप में ग्रहण ही नहीं किया। इस प्रकार पुरुष के स्वच्छन्द बन्धन और मुक्ति से समाज ने भी अपनी कोई हानि नहीं समझी। यदि ऐसे परित्याग के पीछे कोई महान उद्देश्य छिपा रहा तो समाज ने क्रूरतम परित्याग को भी प्रशंसा से परिष्कृत कर उजला कर दिया और यदि अभाग्य से कोई भी ऊँचा लक्ष्य प्रशंसा के लिए न मिल सका तो या तो उसने इस सम्बन्ध में मौन धारण किया या अभिज्ञान शाकुन्तल की अभिशाप-कथा के समान कोई किम्वदन्ती ही गढ़ डाली, परन्तु किसी भी दशा में उसने पुरुष को दोषी ठहराना उचित न समझा। यही स्वाभाविक भी था, क्योंकि सामाजिक न्याय-दण्ड सदा से पुरुष के हाथ में रहता चला आ रहा है। स्त्री के दृष्टिकोण से पुरुष के आचरण पर विचार करना उनके लिए कठिन था। यदि ऐसा न होता तो अनेक इतिहास-प्रसिद्ध परित्यागों पर प्रशंसा का सुनहला पानी न फेरा गया होता। चाहे स्त्री के आत्मत्याग से संसार चकित हो गया, चाहे उसके बलिदान से स्वर्ग कम्पित हो उठा, परन्तु पुरुष ऐसे त्याग और बलिदानों से अपने निश्चित पथ पर न विचलित हुआ न विस्मित। जब कभी स्त्री द्वारा उसके स्वार्थ में किसी प्रकार की भी बाधा उपस्थित हुई तब वह उसके चारित्र्य और सतीत्व सम्बन्धी गुणों को गौण स्थान देने को प्रस्तुत हो गया। साधारण व्यक्तियों की साधारण कहानियों के विषय में तो कहना ही क्या, हमारे महान पुरुष भी स्त्री का अपने शरीर के वस्त्राभूषणों के समान ही परित्याग करते रहे हैं। प्रबुद्ध सिद्धार्थ ने क्या अपने राजसी परिधान और अलंकारों के समान ही सोती हुई यशोधरा का परित्याग नहीं किया था? ऐसी साध्वी स्त्री के लिए इससे बढ़कर और कौन सा अपमान हो सकता था कि उसका अभिन्न हृदय पति उसे अपने मन की बात बिना बताये हुए छिपकर चला जावे। कोई परित्याग इससे दारुण नहीं हो सकता, परन्तु आहत-हृदया यशोधरा के दृष्टिकोण से कितने व्यक्ति बुद्ध के आचरण की विवेचना कर सकेंगे! इस परित्याग का उद्देश्य महान था, परन्तु उसकी सारी महानता भी नारी की स्थिति को कुछ उन्नत सिद्ध नहीं कर सकती। स्त्री परित्यक्त तो हुई ही, साथ ही गौरव हीनता के साथ और ऐसे पुरुष के द्वारा जिसकी दृष्टि प्राणिमात्र के लिए समान थी। सिद्धार्थ ऐसे पुरुष को सहगा-

मिनी भी उस महान लक्ष्य का महत्व समझने में असमर्थ थी, यह मानने की इच्छा नहीं होती, परन्तु इससे यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि पुरुष के निकट स्त्री की स्थिति जड़ से भिन्न नहीं थी। पतिप्राणा छाया के समान अनुगामिनी सीता का परित्याग इससे भी करुणतर कहा जा सकता है। इस क्रूर त्याग का नैतिक महत्व किसने समझा, यह कहना कठिन है, परन्तु इसे साधन बना कर राम की प्रशस्ति लिखनेवालों की कमी कभी नहीं रही। सभी के विचार में प्रासाद में निवास करने वाले सुख-साधनों से घिरे मर्यादा पुरुषोत्तम राम की स्वेच्छा से अंगीकृत पत्नीहीनता सीता की बन में जीवन-निर्वाह की कठिनता के साथ ही विवशता से स्वीकृत विरह-व्यथा से अधिक भारी है। राम ने अपनी सुख-दुःख में एकान्तसङ्गिनी, भावी सन्तान का सुख-स्वप्न देखने में मग्न पत्नी के सम्मुख अपनी समस्या न रखकर उसे बालिका के समान बहका कर चिरनिर्वासन के लिए भेज दिया। सीता जैसी सहगामिनी किसी प्रकार भी अपने प्रजापालक पति की कर्तव्यपरायणता में बाधक बनने का हठ करती, यह अनुमान करना भी कठिन है। सम्भव है, वह साध्वी सब जानकर नारी-जीवन की सबसे कठिन परिस्थिति में भी स्वामी से बिदा ले लेती, परन्तु उस दशा में पुरुष के अधिकार का कोई उपयोग ही नहीं हो सकता था। यदि पुरुष स्त्री को भी ऐसे परित्याग का अधिकार देना उचित समझता तो कहानी कुछ और ही होती। स्त्री भी पुरुष का परित्याग कर सकती है, कदाचित इसकी कल्पना भी पुरुष के लिये दुरूह सी है और रहेगी।

हमारे प्राचीन आख्यानों ने जिन परित्यक्त नारियों की गाथायें विस्मृत होने से बचा ली हैं, उनमें बन-वासिनी शकुन्तला एक विशेष स्थान रखती है। उस वन्य कुसुम के समान निर्जन में खिली हुई बनबाला पर, दुष्यन्त सा अनेक सुन्दरी राजरानियों का स्वामी इतना मुग्ध हो गया कि उसने उसे पत्नी-रूप में स्वीकार करने में सकोच नहीं किया। परन्तु राजधानी में लौट कर उस उन्माद के दूर होने पर जब उसने नर्तकी की ग्रामीण पुत्री से अपने विचार की विवेचना की, तब सम्भवत उसे अपने कृत्य पर ग्लानि ही हुई, अन्यथा उसकी नवीन रानी को सभा में अपरिचित के समान न उपस्थित होना पड़ता। यदि अभागिनी शकुन्तला ने अनादृत तथा उपेक्षित रूप में पति के निकट जाना अस्वीकृत कर दिया होता तो वह जीवन के एक दारुणतम अपमान से बच जाती, परन्तु वह तो समाज को अपनी भावी सन्तान के पिता का परिचय देने के लिये बाध्य थी। अपमानिता और लाञ्छिता शकुन्तला ने राजसभा में भूलने का अभिनय करते हुये राजा से अपने पत्नीत्व की याचना कर स्त्री का जो करुण चित्र अङ्कित कर दिया है, उसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं। वह प्रत्येक सहृदय को व्यथित और स्तम्भित किये बिना नहीं रहता। चाहे जितनी बार दुर्वासा के अभिशाप की कथा दुहराई जावे, चाहे जितनी बार अँगूठी के खोने की दुर्घटना पर खेद किया जावे, परन्तु शकुन्तला के त्याग को अनहोनी घटना नहीं कहा जा सकता। यदि स्त्री को भी ऐसे त्याग का अधिकार होता तो कदाचित् क्रोधी दुर्वासा उसे अपने पति और भावी पुत्र के पिता का नाम भूल जाने का ही शाप देते।

जब हम इन परित्यागों के परिणाम पर दृष्टि डालते हैं, तब स्त्री की स्थिति और भी दयनीय जान पड़ने लगती है। त्यागी तथागत चाहे यशोधरा के पति के रूप में नहीं लौटे हों, परन्तु राहुल को ले जाने के लिए उसके पिता होकर अवश्य लौटे, अन्यथा वह परित्यक्त पत्नी इतनी उदारता से पुत्र का दान न कर देती। जिस पुत्र से उसने जीवन के सबसे बड़े अभाव को भरने का प्रयत्न किया था, उसे भी देकर उसने सौभाग्य-शून्य पत्नी और अङ्क-शून्य माता बने रहने का अभिशाप स्वीकार कर लिया। सीता के मातृत्व का भी यही परिणाम हुआ। उसके लङ्कानिवास ने चाहे उसे पति-गृह में रहने के अयोग्य प्रमाणित कर दिया, परन्तु यह अपवाद उसकी सन्तान को स्पर्श नहीं कर सका, इसे उसका सौभाग्य समझना चाहिए या दुर्भाग्य, यह कहना कठिन है। दूषित स्थान में पड़े हुए रत्न के समान जब पिता ने अपने पुत्रों को अङ्गीकार कर लिया तब भी माता का अञ्चल मलिन ही बना रहा। सम्भवतः उसका क्षतविक्षत हृदय इस

आघात को सहने में असमर्थ होने के कारण ही विदीर्ण हो गया। चक्रवर्ती दुष्यन्त ने भी अन्त में उत्तराधिकारी न रहने के कारण निरुपाय होकर उसी पत्नी से पुत्र की याचना की, जिसे वह भरी सभा में पर-स्त्री कह कर लाञ्छित कर चुका था। स्त्री के जीवन की यह विजय भी अन्त में हार के समान ही मन को क्लान्त कर देती है। जीवन की कठिनतम यात्रा के अन्त में उसे शेष बचा हुआ सम्बल भी उसी व्यक्ति को दे देना पड़ता है जिसने साथ रहने का वचन देकर भी उसे दुर्गम पथ पर अकेला छोड़ दिया था।

इन पौराणिक गाथाओं के कुछ अशों को चाहे कल्पित माना जावे चाहे सत्य, परन्तु इसमें तर्क का स्थान नहीं है कि यह नारी की स्थिति का प्रतिविम्ब हैं। अवश्य ही इन कथाओं का अस्तित्व न होता, यदि यह नारी जीवन का किसी न किसी रूप में परिचय न देतीं। भारतीय नारी, जीवन के अन्य क्षेत्रों में जितनी दयनीय है उससे कहीं अधिक अपने दाम्पत्य जीवन में कही जा सकती है। सारी धार्म्मिकता के आधार पर और देवता तथा मनुष्यों के साक्षित्व पर स्थित बन्धन भी इतना सूक्ष्म है कि स्त्री उसके किसी छोर को पकड़ ही नहीं पाती। वह बन्धन पुरुष के इङ्गित पर बँधता और टूटता रहता है। स्त्री के सारे गुण, समस्त बलिदान और सम्पूर्ण आत्म-निवेदन केवल पुरुष को अनुकूल बनाये रखने के लिए हैं, जिससे वह कोई विपरीत निश्चय न कर सके। यदि कभी ऐसा सम्भव हो सका तो पुरुष की इच्छा समाज के सारे नियन्त्रण और नैतिकता का अतिक्रमण कर भी निन्दनीय नहीं समझी जाती। स्त्री यदि स्वय ही अपने आत्मनिवेदन की गरिमा को पुरुष की इच्छा का प्रतिबन्ध नहीं बना देती तो फिर और कोई प्रतिबन्ध असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। जीवन की जो जटिलता स्त्री के लिए आवश्यकता बन गई है उसे पुरुष के जीवन को स्पर्श करने का भी अधिकार नहीं है, इसीसे उन दोनों के जीवन में आकाश-पाताल का अन्तर है।

शास्त्र और समाज किन-किन परिस्थितियों में स्त्री-परित्याग की अनुमति देते है, इसकी विवेचना से भी कोई लाभ नहीं, क्योंकि उनके बन्धन भी पुरुष के लिए मुक्ति के मार्ग बनते रहे हैं। पुरुष सब विधि-निषेधों का अतिक्रमण करने के लिए प्रायः स्वतन्त्र रहता है, इसे प्रमाणित करने के लिए उदाहरणों की कमी नहीं है। यदि इस सम्बन्ध में हमारे सामाजिक न्याय और दण्ड का कोई महत्व होता तो अवश्य ही बहुत सी घटनायें अघटित रह जातीं। प्राचीनतम युग से आधुनिक काल तक समाज ने अपने पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण को बदलने की आवश्यकता नहीं समझी, इसे स्त्री की अपात्रता ही कहा जायगा, क्योंकि यदि उसे अपनी स्थिति के प्रति असन्तोष होता तो जीवन का यह क्रम इतने दीर्घकाल तक किसी प्रकार भी न चलता और यदि चलता भी तो उसे इतना सम धरातल न मिल सकता। अन्याय को मूक निरीह भाव से सहन कर लेना उतना ही गुरु अपराध है जितना अन्याय में सहयोग देना।

इतने युगों में कभी स्त्री ने अपने दाम्पत्य जीवन की नींव की अस्थिरता नहीं देखी, यह समझना उसकी बुद्धि का तिरस्कार करना होगा, परन्तु यह कहना बहुत कुछ सत्य के निकट है कि उसने अपनी सहन शक्ति का परिचय देने के उत्साह में उस ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं पाया। वह सोचती रही कि अपने असन्तोष को प्रकट करना अपनी हार स्वीकार करना होगा, इसी से अब तक उसकी अग्निपरीक्षा समाप्त न हो सकी।

"शुभाशुभ"

[श्री० कुँवर राजेन्द्रसिंह]

यह जानते हुये भी कि शुभ और अशुभ केवल हृदय की भावनायें हैं, इनका बहुत बड़ा प्रभाव हम सब पर पड़ता है। यह हाल केवल हम भारतवासियों का ही नहीं है, जिन पर मौका बे मौका आक्षेप हुआ करते हैं बल्कि यही हाल उनका भी है जो अपने को सभ्यता के जन्मदाता समझते हैं। मनुष्य के मस्तिष्क का निर्माण कुछ विचित्र ढङ्ग का होता है, उसे प्रकट से अप्रकट पर अधिक विश्वास हो जाता है। कवि कीट्स की एक कविता का भावार्थ यह है कि सुना हुआ सङ्गीत मधुर और बेसुना हुआ अधिक मधुर होता है। देखना विश्वास करना है; जिसे देख लिया उसकी यथार्थता का पता चल गया। यथार्थता भ्रमान्तकारी और आशा भ्रमोत्पादक होती है। हर एक आदमी "बेवकूफों के बैकुण्ठ" में रहा चाहता है, चाहे यही आक्षेप वह दूसरों पर करे। एक ने आशा को सम्बोधित करके कहा कि देख तू कहीं साथ न छोड़ देना, क्योंकि अब तेरा ही सहारा रह गया है। दूसरी बात यह भी है कि जब सब उद्योग और प्रयत्न विफल हो जाते है, तब एक तिनके ही का सहारा बहुत मालूम होता है। आशा पर ससार अवलम्बित है और आशा ही अन्धविश्वासों की और बेसर-पैर की बातों की बड़ी सहायक है। अपने लिये हम क्या आशा नहीं कर सकते हैं। टूटी चारपाई पर पड़े राजसिंहासन पर बैठने का स्वप्न देखते है। एक अङ्गरेजी लेखक ने लिखा है कि यदि मूर्खता शोक होती तो प्रत्येक घर रोता। उसी तरह से यदि आशा कोई अपराध होती तो प्रत्येक मनुष्य जेलखाने में चक्की पीसता होता।

गण्डे और तावीजों पर, पुरानी रस्मों और रवाजों पर और झाड़ और फूँक पर सब ही देश वालों को विश्वास होता है। शाहजहाँ के ज़माने में सुल्तान बीजापुर बीमार पड़े और जब दवाओं से कोई फायदा नहीं हुआ तब एक फकीर बुलाया गया और उसने झाड़-फूँक की और अपनी उमर के कुछ साल सुल्तान को दिये, तब उनकी जान बची। कहने को तो लोग यही कहेंगे कि यह अन्धविश्वास है, परन्तु ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक मनुष्य यही करता। आज तक ऐसा कौन हुआ है जिसने आशा से मुँह मोड़ा हो। शिवाजी अपनी दूसरी रानी के व्यवहार से प्रसन्न नहीं थे और यहाँ तक कि रनिवास का आना-जाना छोड़ दिया और वह गण्डे तावीज़ों के ज़ोर से उन्हें ख़ुश किया चाहती थीं। एक किम्बदन्ती है कि गाज़ीउद्दीन हैदर के ज़माने में कानपुर से लखनऊ नहर लाये जाने की कोशिश हुई थी। पानी चढ़ता नहीं था, समथल पर किसी की निगाह नहीं थी और सैकड़ों बकरों की कुरबानी कर डाली गई कि नहर ख़ुश हो जाय। इनका और ऐसी ही हजारों बातों का स्थान अन्धविश्वासों की सूची में है, परन्तु ऐसी ही बातें हमेशा से हो आई हैं और जब तक मनुष्य की प्रकृति में बड़ा परिवर्तन नहीं हो जायगा तब तक होती रहेंगी। हम लोग अपनी हिन्दी भाषा में "भाग्यचक्र" कहते हैं और अङ्गरेज़ी भाषा में उसे "किस्मत का हाथ" कहते हैं, परन्तु यह कभी नहीं ख्याल आता है कि गण्डे और तावीज किस तरह चक्र की गति को या किस्मत के हाथ को रोक सकते हैं।

संसार में आने के समय, विवाह के समय और संसार से जाने के बाद प्रत्येक देश में कुछ ऐसी रस्म और रवाजें है जो अन्धविश्वासों का प्रतिरूप हैं, यह सब ही जानते हैं और तब भी सब ही करते हैं।

इङ्गलैण्ड में १५ वीं शताब्दी तक जन्मपत्र बनवाने की प्रथा थी। हम लोगों के यहाँ अब भी है, चाहे वही जन्मपत्र बनाने वाले हों, जो लखनऊ को "लषनऊ" लिखते हैं। उस देश में उस समय को जन्म समय समझते थे, जब लड़का पैदा होने के बाद रोता था। अपने यहाँ कई मत हैं। प्रचलित मत यही है कि पैदा होते ही समय निश्चित किया जाता है। प्राय देखा गया है कि बहुत से लड़के पैदा होते ही नहीं रोते हैं। अगर उनके रोने का रास्ता देखा जाय तो कम से नवाँसा तो बदल ही जायगा। ज्योतिष के विषय में हम लोगों का अन्धविश्वास नहीं कहला सकता है, क्योंकि इस देश में इस शास्त्र के जानने वाले इतने बड़े हुये हैं कि जिनकी बनाई हुई जन्म-पत्रियाँ आदमियों के चरित्र को पूर्णरूप से प्रतिविम्बित करती है। अब भी इस शास्त्र के अच्छे जानने वाले इस देश में हैं। खोज की कमी ने विज्ञान की इस प्रतिशाखा को भी चौपट कर दिया है। अस्तु। सभी देशों में नवोत्पन्न शिशु के नाल के विषय में अन्धविश्वास है। विदेशों में कहा जाता है कि यदि नाल सुरक्षित रहा तो शिशु सब तरह सुखी रहेगा और यदि उसे कोई हानि पहुँची तो लड़का जन्मपर्य्यन्त दुखी और भाग्यहीन रहेगा। कहीं-कहीं इसे जमीन में गाड़ करके इस पर एक दरख्त लगा देते है और उनके विश्वासानुसार इस दरख्त से लड़के के जीवन का घनिष्ट सम्बन्ध होता है। जर्मनी में इसकी रक्षा का भार पिता पर होता है। बहुत देशों में इसे मकान के दरवाजे पर पत्थर के नीचे दबा कर गाड़ देते हैं और उनका यह ख्याल है कि इसकी वजह से प्रेतादि का घर में प्रवेश नहीं हो पाता है और लड़का सुरक्षित रहता है। अपने यहाँ भी इसे सुरक्षित रखने के लिये प्रसूतिगृह के दरवाजे पर या उससे थोड़ी दूर हट कर गाड़ देते हैं और उस पर आग जला देते हैं। आग जलाने की प्रथा शायद इस वजह से हो कि कुत्ते और बिल्ली उसे पञ्जों से खोद न डालें। हिन्दुस्तान में जितने बच्चे मरते है उनमें से अधिकाश इसके काटने की बेएहतियाती में मरते हैं। विदेशों में यह भी कहा जाता है कि पैदा होने के समय जिनके सर पर एक झिल्ली सी लिपटी रहती है, वह बड़े भाग्यशाली होते हैं। अङ्गरेजी भाषा में उस झिल्ली को caul कहते हैं। अगर इसका रङ्ग लाल हुआ तो बहुत शुभ समझा जाता है और अगर काला हुआ तो अशुभ माना जाता है। इसके लिये भी उनका विश्वास यह है कि अगर यह किसी जादू जानने वाले के हाथ में पड़ जाय तो लड़के को नुकसान पहुँचाया जा सकता है। यह भी उन्ही के यहाँ का विश्वास है कि परियाँ लड़के को बदल लेती हैं। बदले में जो लड़का छोड़ जाती हैं, उसे अङ्गरेजी भाषा में changeling* कहते हैं। इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में शेक्सपियर ने अपने नाटक 'मिड समर नाइट्स ड्रीम' में किया है। इङ्गलैण्ड के कुछ स्थानों के रहने वालों का विश्वास है कि रविवार के दिन पैदा हुये बच्चों में चारुता होती है। सोमवार के दिन के बच्चों का चेहरा भरा होता है। मङ्गल के दिन की जिन बच्चों की पैदायश है, उनमें गम्भीरता और उदासीनता होती है। बुध के दिन जो पैदा हुये है वह प्रसन्न रहते हैं। वृहस्पति के दिन का जन्म चोरी करने का सूचक समझा जाता है। शुक्रवार वाले लड़के उदार और शनिवार को पैदा होने वाले कड़ी मेहनत करके रोटी कमाने वाले समझे जाते है। अपने यहाँ का कोई ऐसा विश्वास नहीं है। हाँ, हँसी में लोग कहते हैं, जब किसी को उदास देखते हैं, कि क्या मोहर्रम मे पैदा हुये थे। दिन या महीने से कुछ नहीं होता है। बाजों की शक्ल ही कुछ ऐसी होती है कि उदासीनता बरसती मालूम होती है। एक ने एक से पूछा कि भाई, क्यों रो रहे हो। उसने जवाब दिया कि रोता नहीं हूँ, सूरत ही ऐसी है। किसी ने ख़ूब कहा है—'जिन्दगी ज़िन्दादिली का है नाम, मुर्दा दिल ख़ाक जिया करते है।' यह भी उनका विश्वास ह। जो लड़के तीन बजे, छ. बजे, नौ बजे और बारह बजे पैदा होते हैं वह मिस्मेरिज्म के अच्छे जानने वाले होते है। न मालूम किस वजह से इन अङ्कों

* आधुनिक भाषा में यह शब्द उनके लिये प्रयोग होता है जिनका मत स्थिर नहीं होता है। कभी कोई राय है और कभी कोई।

पर उनका विश्वास है। अपने देश में तीन का अङ्क शुभ समझा जाता है। इसमे त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) का बोध होता है। नौ का अङ्क अपने यहाँ भी शुभ समझा जाता है। नौ ही अङ्क है, इन्हीं में सब गणना खतम है, और जो कुछ है वह नौ तक के अङ्कों का उलट-फेर है। इसके शुभ समझे जाने की एक वजह और भी है। यह एक पौराणिक कहावत है कि नन्द जी के पास नौ हजार गायें थी। अब नन्द शब्द नौ के अर्थों में प्रयोग होने लगा है। अङ्गरेज़ी में नौ का अङ्क जादू का अङ्क कहलाता है। अपने देश की तरह इङ्गलैण्ड में भी बिल्ली से चिढ होती है। यहाँ प्रसूति गृह में यह नहीं जाने पाती है, इसका नाम तक नहीं लेते हैं—इसे नकटी कहते हैं। उनका यह कहना है कि जिस घर में नवोत्पन्न शिशु हो उसमें बिल्ली के बच्चे रहने देना अशुभ होता है। बच्चों को तौलने की प्रथा वहाँ और यहाँ भी बहुत पुरानी नहीं है। अपने यहाँ तो कभी थी ही नहीं और अब जो है वह वहीं की नकल है। पहले यहाँ सिर्फ तुलादान होता था। वही प्रथा मुसलमान बादशाहों के समय में भी प्रचलित रही और अब भी है।

इङ्गलैण्ड में बच्चे के पैदा होते ही उसके चारों तरफ आग घुमाते हैं और अपने यहाँ प्रसूति गृह के दरवाजे पर आग जलाते हैं। दोनों के लिए एक ही विश्वास है कि इससे भूत-बाधा से रक्षा होगी। अपने यहाँ की तरह बच्चे के 'दूध' के दाँतों को और देश वाले भी नहीं फेंकते हैं। उनका कहना है कि जो जानवर उस दाँत को खुतरेगा वैसा ही दाँत लड़के के निकलेगा। अपने यहाँ दाँत को घास में गाड़ देते है और कहते हैं कि ज्यों-ज्यों घास हरी होगी वैसे हो दाँत अच्छा और जल्दी निकलेगा। लङ्काशायर में दाँत को नमक के साथ रख कर आग में फेंक देते हैं। लड़के के नाखून काटने के विषय में भी उनके यहाँ की तरह अपने यहाँ भी अन्ध-विश्वास है। वेल्स की बहुत सी जगहों में कहा जाता है कि अगर तीन महीने के अन्दर लड़के के नाखून किसी धातु की बनी हुई चीज़ से काटे गये तो वह चोर होगा। इङ्गलैण्ड में यह प्रथा थी कि लड़के के नाखून एक साल तक नहीं काटते थे—दाँतों से काटने देना मना नहीं था। अङ्गरेजों में किसी उमर में भी अपने दाँतों से नाखून काटना असभ्यता समझी जाती है। यह भी उन्हीं लोगों का कहना है कि रविवार को प्रातःकाल नाखून नहीं काटना चाहिये। अपने यहाँ रविवार नहीं माना है, मङ्गल और शनिश्चर बचा देते हैं। वह लोग सोमवार को भी नाखून नहीं कटवाते हैं, जिनके बाल-बच्चे होते हैं। अपने यहाँ तब तक नहन्नी से पैर के नाखून नहीं कटवाते हैं जब तक ब्याह नहीं हो जाता है। अपने यहाँ हाथों और पैरों के सब नाखून एक ही साथ कटवाना अशुभ समझते हैं, क्योंकि दसवें और तेरहवीं के रोज़ यही करना पड़ता है। अब तो अपने देश के युवा पुरुष भी विदेशी नवजात शिशुओं से आगे बढे हुये हैं, वह अपने नाखून दाँत से भी नहीं काटते हैं। अब तो यह समझा जाने लगा है कि जितने नाखून बड़े होंगे, उतने ही ज़्यादा वह सभ्य समझे जायंगे। यह प्रथा अपने देश की समाज के दृष्टिकोण से प्रतिकूल है। ईश्वर की कृपा से यह अपने यहाँ की प्रथा नहीं है कि लड़के का दाहना हाथ न धोया जाय। यह उनके यहाँ की प्रथा है जो हमेशा हम लोगों को सफाई पर लेक्चर दिया करते हैं। उनका विश्वास है कि दाहना हाथ न धोने से वह अपने जीवन में रुपया ख़ूब जमा कर सकेगा। अगर उनका यह विश्वास है तो क्या बुरा है, जब वह अमलता में पवित्रता समझते हैं। प्राचीन समय में साम्प्रदायिक मठ़ी मे रहने वाली स्त्रियाँ नहाने नहीं पाती थीं। कहा जाता था कि शुचिता शैतान को आकर्षित करती है। अपने यहाँ की तरह इङ्गलैण्ड में भी यह अशुभ समझा जाता है कि पैदा होने के समय बच्चों के दाँत मौजूद हों।

इङ्गलैण्ड में कहीं-कहीं यह प्रथा थी कि लड़का जब बहुत दुबला हो जाता था तब कहा जाता था कि इसके नजर लग गई है और उसे सूर्योदय के पहले उस लोहार की दूकान पर ले जाते थे, जिसका सात पुश्तों से यही पेशा रहा हो और उसे निहाई पर लेटा देते थे। लोहार हथौड़े को ऊँचा उठा करके ऐसा खड़ा होता था कि जैसे लड़के की उससे जान ही ले लेगा,

लेकिन धीरे से नीचे लाकर सिर्फ छुला देता था। यह तीन दफे करने से समझा जाता था कि नज़र का असर जाता रहा। लड़के को सूखे की बीमारी हो जाने पर अपने यहाँ भी एक ऐसा ही टोटका किया जाता है। उसे सूर्य्य निकलने के पहले धोबी के पाटा पर लेटा करके नहलाते हैं और गोबर से तौलते हैं। ससेक्स में यह प्रथा थी कि जाति-कर्म के पहले किसी से यह नहीं कहा जाता था कि लड़के का क्या नाम रक्खा जायगा। अपने यहाँ भी पहले राशि का नाम कभी नहीं बतलाते थे। दोनों जगहों का विश्वास एक ही था कि इस नाम से नुकसान पहुँचाया जा सकता है। वहाँ भी और यहाँ भी इसी उम्मीद से लड़के का नाम बड़े आदमियों के नाम पर रखते हैं कि नाम का कुछ ही प्रभाव पड़ जाय।

इङ्गलैंड की किसी-किसी जगह में बायें हाथ को अशुभ और दाहने को शुभ समझते हैं। अपने यहाँ भी बायें हाथ से न तो किसी का अभिवादन करते हैं और न कोई चीज़ किसी को देते हैं या लेते हैं। अगर अपने यहाँ बायाँ हाथ अपवित्र समझा जाय तो ठीक भी है, परन्तु इसकी वहाँ भी कदर नहीं है, जहाँ शौचादि का झगड़ा ही नहीं है। यह जानने के लिये कि अमुक स्त्री या पुरुष अपने से प्रेम करता है, वह लोग घोंघे के कीड़े को राख पर बिठला देते हैं और उसके रेंगने से यदि उसके नाम का प्रथम अक्षर सा बन गया तो मान लेते हैं कि वह प्रेम करता है। अपने यहाँ किसी के मरने पर दसवें के दिन रात को एक जगह राख बिछा करके ऊपर से ढक देते है और कहते हैं कि उसने जो देह धारण की होगी, उसके पद-छाप बन जायँगे।

टोटके और टोने इस कहावत को प्रमाणित करते हैं कि प्रेम अन्धा होता है। सब ही देशों में इन पर बड़ा विश्वास होता है। मिश्र देश वाले इन कामों के लिये बाल, पर और साँप की खाल इस्तेमाल करते थे। भेड़िये की दुम के बाल, मेढक की बाँई पसुली की हड्डी, जो कीड़ों की खाई हुई कहीं पड़ी मिल जाय, नये पैदा हुये बछड़े के सर का गोश्त और कुछ जानवरों की आँतें वग़ैरा भी काम में लाते थे। पहले रोम देश में प्रेम उत्पन्न करने वाली दवाओं का बड़ा चलन था। इन्हें बुड्ढी औरतें और दाइयाँ बेचा करती थीं। किसी-किसी में थोड़ा ज़हर होता था या किसी चीज़ के सड़ने से ज़हर पैदा हो जाता था। इन्हें खा करके बहुत से आदमी पागल हो जाते थे। तब वहाँ के बादशाहों ने इनका बेचना रोक दिया।

पाश्चात्य देशों में 'विवाह की अँगूठी' की प्रथा बहुत कुछ अन्धविश्वासों पर निर्भर है। यह प्रथा सन् ईस्वी के कुछ ही शताब्दियों के बाद से शुरू हुई थी। पहले यह दस्तूर था कि शादी तय होने पर सोने या चाँदी का एक टुकड़ा तोड़ा जाता था और आधा स्त्री के पास और आधा पुरुष के पास रहता था। फिर यह होने लगा कि एक कोई सिक्का झुका कर उसपर ईश्वर-प्रार्थना पढ़ी जाती थी और यह कहा जाता था कि यह दोनों के सच्चे हृदय की पहचान है और भूत-बाधा से रक्षा करेगा। उसके बाद अँगूठियों का नम्बर आया। पहले ब्याह की अँगूठियाँ लोहे की बनती थीं, फिर सोने की बनने लगीं। डीन काउलर ने सातवीं शताब्दी में लिखा था कि सोना शुद्ध प्रेम का सूचक होता है। अब विवाह की रस्मों में अँगूठी का होना अनिवार्य समझा जाने लगा। ज़रूरत अपना इन्तजाम कर लेती है। अँगूठी की अनुपस्थिति में परदे के छल्लों और गिरजे की कुञ्जी से काम लिया जाता है। कहा जाता है कि द्वितीय जार्ज के समय में जब ड्यूक आफ हैमिल्टन को अनुपम सुन्दरी मिस गनिंग से शादी जल्दी में तय हुई तो अँगूठी बनवाने का समय नहीं था। ड्यूक जल्दी से जल्दी शादी किया चाहते थे। पादरी डॉक्टर कीथ ने इनकार किया और कहा कि जब तक लायसेंस और अँगूठी नहीं होगी तब तक वह शादी नहीं करवायगे। ड्यूक ने डाटा और फटकारा, फिर वह राज़ी हुये, लेकिन तब तक नहीं जब तक अँगूठी की जगह पर पर्दे के छल्ले से काम नहीं लिया गया। उनके यहाँ का विश्वास है कि ब्याह की अँगूठी को बिलनी पर रगड़ देने से तकलीफ जाती रहती है। इसको छोड़ कर और भी कितने ही अन्धविश्वास इसके सम्बन्ध में हैं। यह अँगूठी वधू के बायें हाथ में पहनाई जाती है; क्योंकि

दाहिना हाथ पति का हाथ कहलाता है। दाहिने और बायें के सम्बन्ध में यही ख्याल अपने देश का भी है। बायाँ हाथ दाहिने हाथ की अपेक्षा कमज़ोर होता है और स्त्री को कमज़ोर ही दिखलाने की कोशिश हमेशा से इस देश में की गई है। स्त्रियों को बायें तरफ बिठलाने की प्रथा बहुत पुरानी अपने यहाँ की है। स्तुतियों में भी वही रङ्ग है, "वामाङ्के च विभाति भूधर सुता"। स्त्रियों का एक नाम अबला भी है, जैसे कबर में पैर लटकाये हुये सत्तर बरस के दूल्हे को लोग 'लड़का' ही कहते हैं। इसका भी ध्यान रक्खा जाता है कि अँगूठी पर कौन नग जड़ा हो। उनके मतानुसार जनवरी के लिये याकूत, सत्यता और दृढ़ भक्ति-सूचक, फरवरी के लिये फीरोज़ा, निष्कपटता सूचक (अपने यहाँ कहा जाता है कि इसके पहनने से लकवे का डर जाता रहता है), मार्च के लिये माणिक, साहस-सूचक, अप्रेल के लिये हीरा, निर्दोषता सूचक, मई के लिये पन्ना, प्रेम में सफलता सूचक, जून के लिये सङ्ग सुलेमानी, स्वास्थ्य और दीर्घजीवन-दाता, जुलाई के लिये 'कार्नेलियन' (यह एक सुर्ख़ और सफेद रङ्ग का पत्थर होता है जो एशिया और पर्शिया की नमक की खानों में मिलता है) सन्तोष सूचक, अगस्त के लिये गोमेद, दाम्पत्य सुख सूचक, सितम्बर के लिये क्रायसोलाइट (यह एक बादामी रङ्ग का पत्थर होता है) मनमलीनता नाशक, अक्टूबर के लिये दूधिया पत्थर, आशा सूचक, नवम्बर के लिये पुखराज, विश्वस्तता सूचक, दिसम्बर के लिये एक धुमले हल्के हरे और नीले रङ्ग का नग, समृद्धि सूचक। इन नगों का हिसाब उन नगों से पृथक् है, जो जन्म मास को दृष्टि में रख कर पहने जाते हैं, जैसे जिनका जन्म जनवरी में हुआ है उन्हें लहसुनिया पहनना चाहिये, जून मास में पैदा होने वालों को मोती। अपने यहाँ ग्रहों के दुष्ट प्रभाव से बचने के लिये नग पहनने को बतलाया है, जैसे जब सूर्य के अरिष्ट हो तो माणिक, चन्द्रमा के अरिष्ट होने में मोती, मङ्गल के अरिष्ट होने में मूँगा, बुध के अरिष्ट होने में पन्ना, वृहस्पति के अरिष्ट होने में पुखराज, शुक्र के अरिष्ट होने में हीरा, शनिश्चर के अरिष्ट होने में नीलम, राहु के अरिष्ट होने में गोमेद और केतु के अरिष्ट होने में लहसुनिया पहनते हैं। वह लोग मई के महीना को विवाह के लिये अशुभ समझते हैं। जैसे अपने यहाँ अगहन का महीना (अपने यहाँ भी कभी-कभी इस महीने में शादी होती है)। यह इस वजह से वर्जित किया गया है कि इसी महीने में श्री महाराज रामचन्द्र की शादी हुई थी और कितना दुखमय जीवन दोनों का व्यतीत हुआ। उन लोगों के विश्वासानुसार यदि सोमवार को विवाह हुआ तो सम्पत्ति की वृद्धि होगी, मङ्गल के दिन विवाह होने से स्वास्थ्य के लिये अच्छा रहता है। बुध सबसे अच्छा दिन समझा जाता है। वृहस्पति के प्रभाव से चिड़चिड़ापन होगा। शुक्रवार हानिकारक है और शनिवार भाग्य-नाशक समझा जाता है। वहाँ भी अब इन बातों में पुरानापन आ गया है। अब विवाह शुक्रवार ही को ज्यादा होते हैं। अपने यहाँ दिनों का कोई विचार नहीं होता है। शुभाशुभ विचारने का और ही तरीका है।

विवाह के समय वधू के हाथ में फूल लेने का पुराना दस्तूर है। उनका यह कहना है कि फूल प्रकृति की यौवनावस्था के सूचक होते हैं। यह बात कुछ समझ में आने वाली है। मिश्र देश में ऐसे समय में कमल का फूल हाथ में होना बहुत शुभ समझते थे। उनका यह कहना था कि यह संसार की जन्मदात्री का बोधक है। अपने यहाँ कमल के फूल से लक्ष्मी का बोध होता है। खैर, दोनों बातें मिलती जुलती हैं।

अङ्गरेजों में विवाह के बाद वर और वधू के पीछे पुराने जूते फेंकने का दस्तूर है। उनका कहना यह है कि यह प्रथा पूर्वीय देशों से शुरू हुई होगी, क्योंकि वहाँ जूता हुकूमत का चिन्ह समझा जाता है। ख़ूब सूझी, यद्यपि यह सही है कि हिन्दुस्तान में 'बाज़ियों' की धूम है, जैसे कनकौवाबाज़ी और बटेरबाज़ी, वैसे ही बीबी पर जूतेबाज़ी का भी शौक़ है। परन्तु इसका पता कहीं भी अपनी पुरानी किताबों से नहीं चलता है कि कभी भी इस देश में जूते पीछे फेंकने की प्रथा थी। हाँ, मज़ाक में जूते कपड़े में लपेट कर श्वसुरालय में रक्खे जाते हैं और दूल्हे से कहा जाता है कि इनके सामने मत्था टेको। शायद इस प्रथा का यह भी मतलब हो कि

यह कहावत न भूल जाना कि "कभी गाड़ी नाव पर और कभी नाव गाड़ी पर"। ऐसा न हो जो तुम्हारा अस्त्र समझा जाता है उसी से तुम्हारी स्त्री काम ले। फेंकने में बायाँ जूता फेंका जाता है। उन लोगों का यह विश्वास है कि यह प्रथा बड़ी शुभ है।

दुष्ट दृष्टि से सभी देश वाले डरते आये हैं और सब ही का यह विश्वास रहा है कि इसके पड़ते ही कुछ न कुछ अनिष्ट होता है। इसका डर अभी तक नहीं मिटा है। इससे बचने के सब ही देशों में सैकड़ों उपाय किये जाते हैं। तब भी लोगों को डर लगा रहता है। बेचारी मातायें तो टोटके और टोने करते, राई और लोन उतारते थक जाती है। लड़के को चाहे जो बीमारी हुई, बस नज़र का शक होता है। दवा-इलाज तो दूर रहा, झाड़-फूँक होने लगती है। झाड़ने-फूँकने वाला जितना कम पढ़ा-लिखा होगा, उसकी उतनी ही ज़्यादा कदर होगी। सुनने वालों पर सत्यनारायण की कथा का तब तक प्रभाव नहीं पड़ेगा, जब तक अच्छी तरह हिन्दी तक न जानने वाले परिडत जी हर एक बात को 'जो है सो' से न सम्पुटित करते जाँय। एक दफ़ा एक एफ़० ए० पास परिडत जी एक जगह कथा बाँचने गये और नये ढङ्ग से अर्थ कहना शुरू किया। लोग नाक और भौं सिकोड़ने लगे और एक अध्याय के बाद कथा का बाँचना रोक दिया गया और वही परिडत जी बुलाये गये जिनका तकिया क़लाम 'जो है सो' था। लोग ख़ुश हो गये। झाड़ने-फूँकने वाले और देहात में परिडत कहलाने वालों में विद्वत्ता की नहीं, वाक्पटुता की ज़रूरत होती है। एक परिडत जी को अमर-कोष के दो-चार श्लोक याद थे और उन्हीं से विवाह करवा रहे थे। किसी ने टोका तो आपको सूझ गई और फ़ौरन जवाब दिया कि हम तो यही चाहते हैं कि वर और वधू अमर हों और अगर तुम यह नहीं चाहते हो तो मर से विवाह करवाओ। लोगों ने पैर पकड़ लिये और कहा कि नहीं आप ही अमर से विवाह करवाइये। एक लड़की को निमोनिया हो गई थी। झाड़-फूँक होने लगी। बतलाया गया था कि नज़र लग गई है। लड़की मर भी गई और झाड़-फूँक होती रही। यही क्यों, एक अस्पताल में एक रोगी को चीड़ फाड़ करने के लिये क्लोरोफार्म दिया गया। वह महाशय मेज पर ही ठण्टे हो गये, लेकिन चीड़ फाड़ होती रही और पट्टी भी बाँधी गई। जब उनकी तरफ ध्यान गया तब पता चला कि वह ऐसा सोये हैं कि जगना नामुमकिन है। अस्तु।

पुराने जमाने के मिश्र देश वाले, ऐसरिया के रहने वाले, बैबीलोनिया के रहने वाले, ग्रीस और रोम के रहने वाले सब ही दुष्ट दृष्टि से डरते थे। ग्रीस देश के एक लेखक हेलियो डारस ने लिखा है कि किसी अच्छी चीज़ को जब कोई ईर्षा की दृष्टि से देखता है, तो समीप का वायुमण्डल जहरीला हो जाता है। यहूदियों में एक कहावत है कि उसका खाना न खाओ, जिसकी दृष्टि दुष्ट है। कहा जाता है कि बौने, कुबड़े, या जिनकी आँखें रङ्गीन होती हैं, उनकी दृष्टि अहितकर होती है। उनकी भी आँख अच्छी नहीं कहलाती हैं, जो देहात में 'ऐंचा-ताना' कहलाते हैं। जब दो-चार आदमी बैठे हों तब ऐसों से बातें करने में बड़ी दिक्कत होती है। एक महाशय अपने दो मित्रों से बातें कर रहे थे। एक आँख एक की तरफ थी और दूसरी दूसरे की तरफ। उनके प्रश्न का उत्तर दोनों मित्रों में से किसी ने नहीं दिया। वह बहुत बिगड़े और कहने लगे कि कोई भी जवाब नहीं देता है। एक मित्र महोदय तो चुप रहे, परन्तु दूसरे हासप्रिय महाशय ने कहा कि अपराध आपकी आँखों का है, इस वजह से पता नहीं चला कि किससे आपने प्रश्न किया था। नज़र का ज़िक्र कविता में भी आया है। एक उर्दू का कवि कहता है—'लग गई किसकी नज़र जो हो गया यों मुजमहिल, था भला चङ्गा मेरा दिल हाय दिल अफ़सोस दिल'। एक अपनी भाषा का कवि कहता है—'स्वेद के बुन्द डिठौना लसै लट लागि रही जनु लोयन लोन।' अगर नज़र का डर नहीं था तो डिठौने की ज़रूरत क्या थी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कहा है—'बार बार पिय आरसी मत देखहु चित लाय, कोमल सुन्दर रूप पै दीठि न कहुँ लगि जाय।' हाईलैण्ड वालों का विश्वास है कि अनहितकर आँख का प्रभाव आधुनिक समय में भी वैसा ही है जैसा पहले था। यह उनका विश्वास अपने देश के ढङ्ग का

है कि नजर लगते ही गायों का दूध कम पड़ जाता है। दूध की कमी चाहे दाने और चारे की वजह से हो, लेकिन दोष नजर ही का होता है। विदेशों की तरह यह भी अपने यहाँ के किसी-किसी जगहों का दस्तूर है कि औरतें गिरे हुये बालों पर तीन दफे थूक देती है। कहा जाता है कि इससे नजर नहीं लगती है। अगर वह बाल किसी के भी हाथ में पड़ जायँ।

हाथों के सम्बन्ध में भी विदेशियों के भी बहुत कुछ अन्धविश्वास है। उनका कहना है कि मोटा हाथ दृढतासूचक होता है, छोटा और पतला हाथ उनका होता है जो कमज़ोर और कातर होते हैं, लम्बा हाथ और लम्बी उङ्गलियाँ उनकी समझी जाती है, जो हाथ के काम में चतुर होते हे। छोटे हाथ मूर्खता प्रकट करते है। सख्त हाथ उद्दंडता और मूढता सूचक समझे जाते हैं। मुलायम हाथ बुद्धि और स्त्रीत्व प्रकट करते हैं और वह हाथ जिस पर बाल अधिक हों, विलासिता प्रकट करते हैं। लम्बे उँगलियों के जोड़ लोभ प्रकट करते है। यह अपने यहाँ की तरह उनका भी विश्वास है कि अगर दाहिनी हथेली में खुजली होती हो तो रुपया मिलेगा और अगर बाईं हथेली खुजलाये तो रुपया देना पड़ेगा।

सब ही देशों में कवियों और लेखकों ने आँखों की तारीफ में क्या नहीं कह डाला है। सच भी है। अगर मनुष्य के शरीर में कहीं आकर्षण शक्ति है तो आँखों में है। कहा जाता है कि नेपोलियन की ऐसी निगाह रहती थी कि लोग थर्रा जाते थे और यही हाल शिवाजी का भी था और दोनों जब खुश होते थे तो निगाहों में वह आकर्षण आ जाता था कि लोग इनकी इच्छाओं पर नाचने के लिये तैयार हो जाते थे। उनके यहाँ का यह विश्वास है कि दाहिनी आँख का खुजलाना इस बात का सूचक होता है कि जिससे स्नेह करते हो उसे जल्दी देखोगे। अपने यहाँ दाहिनी आँख का फड़कना शुभ माना गया है। फड़कती हुई आँख को अङ्गरेजी में Jumping eye कहते हैं। उन्हीं के यहाँ पहले यह भी कहा जाता था कि दोनों भौंहों का मिलना कपटी हृदय का सूचक होता है। पतली भौंहों की तारीफ हमेशा रही है।

तीन सौ बरस से अधिक हुए जब माइकेल स्काट ने लिखा था कि जिनके कान असाधारण लम्बे होते हैं वह मिथ्याभिमानी, साहसी परन्तु बेवकूफ और किसी भी काम करने के योग्य नहीं होते हैं। गत शताब्दी के एक मस्तिष्क विद्या विशारद ने लिखा था कि छोटे और पतले कान चरित्र की विशुद्धता प्रकट करते हैं और मोटे और बड़े कान विलासिता और निकृष्टता-सूचक होते हैं। पतले और नोकीले कानों के सम्बन्ध में उसकी राय है कि स्वभाव की क्रूरता और निर्दयता प्रकट करते हैं और लम्बे और उठे हुये कान सङ्गीत से प्रेम प्रकट करते है। यह भी लोगों का विश्वास है कि नाक से चरित्र का पता चलता है, जैसे जिनकी नाक की हड्डियाँ उठी होती हैं, उनमें दृढ़ता और बुद्धि होती है और वे विश्वास करने के योग्य होते हैं और इसके बिलकुल प्रतिकूल वह होते हैं जिनकी नाक की हड्डियाँ पीछे दबी होती है। पतली और नोकीली नाक वाले ईर्षालु होते हैं और जिनकी नाक की नोक जरा ऊपर उठी होती है वह प्रसन्न-चित्त होते हैं। कहा जाता है कि नेपोलियन और वेलिंग्टन दोनों नाक से चरित्र का पता लगाने में बड़े अभ्यस्त थे और फौज में उन्हीं आदमियों को रखते थे जिनकी नाक उनको पसन्द आती थी। अपने यहाँ कोई ऐसा विश्वास नहीं है। यह अवश्य है कि यह इज्जत और आबरू की प्रतिनिधि समझी जाती है। एक प्रचलित कहावत अपने यहाँ की है कि "नाक कट गई" अर्थात् इज्जत और आबरू धूल में मिल गई। नाक से खून निकलने के सम्बन्ध में विदेशों में अन्धविश्वास है। उनका कहना है कि दाहिनी नाक से एक बूँद ख़ून निकलना इस बात का सूचक है कि या तो वह स्वयं बहुत बीमार होगा या किसी निकटस्थ की मृत्यु होगी और तीन बूँद ख़ून का निकलना और भी खराब है, परन्तु बाँईं नाक से एक बूँद खून निकलना शुभ समझा जाता है। शेक्सपियर ने अपने नाटक 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' में नाक से खून निकलने को अशुभ माना है। यह अपने यहाँ के किसी अन्धविश्वास से मिलता-जुलता नहीं है। अपने यहाँ

छींकने के सम्बन्ध में इतने अन्धविश्वास हैं कि और किसी देश में शायद ही हों। यहाँ किसी शुभ अवसर पर छींकना अशुभ समझा जाता है और फिर यह भी है कि कितनी दफे छींका, दाहिनी तरफ छींका या बायें तरफ़ छींका, सामने या पीछे छींका। स्काटलैण्ड में कहते हैं कि बच्चा जब तक पहली दफे छींक नहीं लेता है तब तक यह समझा जाता है, कि उसके परियों के फन्दे में पड़ने का भय नहीं गया है। किसी-किसी जगह के लोगों का यह भी कहना है कि वह बच्चे नहीं छींकते हैं, जिनमें दिमाग की कमी होती है और इसी वजह से जहाँ बच्चे ने छींका तो बहुत खुश होते हैं। मिडलैण्ड्स में जब बच्चा छींकता है तब बड़े बूढ़े कहते हैं "ईश्वर तेरी सहायता करे"। अपने यहाँ भी आशीर्वादात्मक शब्द कहते हैं।

तिलों के भी सम्बन्ध में विदेशों में बहुत से अन्ध-विश्वास हैं। एक का कहना है कि किसी स्त्री के हाथों और पैरों पर तिलों का होना यह सूचित करता है कि उसके बहुत से लड़के होंगे और किसी मर्द के दाहिने हाथ और कंधे पर तिल का होना असाधारण बुद्धि प्रकट करता है और उसी जगह बायें हाथ पर तिल का होना झगड़े और बहस का सूचक होता है। पेट पर होना बल बतलाता है, किसी मर्द या औरत के नाक पर होना चरित्र की हीनता बतलाता है। अगर पैर या गट्टे पर हो तो मर्दों में लज्जाशीलता और औरतों में साहस प्रकट करता है और यदि घुटनों पर या उसके नज़दीक हो तो दौलत और गुण, औरत के बाँये घुटने पर बहुत बच्चे और जाँघों पर दरिद्रता सूचक समझा जाता है। अपने यहाँ भी इन्हीं से मिलते जुलते अन्धविश्वास हैं। अपने यहाँ यह भी कहा जाता है कि अच्छे दिनों में शुभ जगहों पर तिल निकल आते हैं और बुरे दिनों में वहाँ से गायब हो जाते हैं। फारसी और उर्दू के कवियों ने तिल पर ख़ूब कवितायें की हैं—जुल्फों को जाल, तिल को दाना और अपने दिल को चिड़िया माना है।

बालों के सम्बन्ध में भी शुभाशुभ की बहुत सी पहचानें कही जाती हैं। कहा जाता है कि बालों से बहुत से टोटके और टोने हो सकते हैं और इसी वजह से औरतें अपने बाल नहीं फेंकती हैं। विदेशियों का विश्वास है कि अगर उन बालों से मैना ने घोंसला बना लिया तो जिसके बाल हैं उसकी एक साल और एक दिन के अन्दर मौत हो जायगी। बहुत जगह यह दस्तूर है कि बालों को आग में फेंक देते हैं और उनके जलने से शकुन विचारते हैं। जैसे कि अगर बाल धीरे-धीरे जले तो समझते हैं कि जल्दी मौत होगी और अगर जलने में ज्वाला निकली तो यह समझते हैं कि बड़ी उमर होगी। अपने यहाँ शकुन और अपशकुन का सवाल नहीं है—यहाँ बाल जलाते ही नहीं हैं। उनके यहाँ यह भी कहते हैं कि जिस मर्द के सर पर बाल ज्यादा होंगे, उसमें बुद्धि की कमी होगी। अपने यहाँ यह कहते हैं कि जिसके सर के सामने के बाल गिर गये होंगे वह निर्धन नहीं होगा। अपने यहाँ बालों के रङ्ग का झगड़ा नहीं है—सबके बाल काले ही होते हैं। उनके यहाँ काले और गहरे बादामी रङ्ग के बाल, बल और दृढ़ता-सूचक समझे जाते हैं और घुँघराले बाल अच्छे स्वभाव की पहिचान है और यहाँ इसकी पहिचान है 'कि जो की हज़रते इश्क ने रहनुमाई, तो कर दी भरे घर की दम में सफाई।' अपने देश में तो लाल बाल होते ही नहीं हैं, परन्तु विदेशी इन्हें क्रोधी स्वभाव का सूचक समझते हैं। प्रखरता, क्रूरता, उद्दण्डता और क्रोध लाल ही रङ्ग से तो प्रकट किया जाता है। वह लोग भी लाल बालों को सुन्दरता का बाधक समझते हैं। संसार का कोई ऐसा नियम नहीं है, जिसका विवर्जन न हो। अद्वितीय सुन्दरी क्लोपैटरा और हेलीन ऑफ ट्रवाय के लाल ही बाल थे और जो उन लोगों पर जान देते थे उनकी निगाहों में वही ख़ूबसूरत होगी। ख़ूबसूरती की अभी तक व्याख्या नहीं हो पाई है और न कभी शायद हो पायेगी। क्वीन एलीज़बेथ, रूस की केथरीन, आस्ट्रिया की ऐन और और भी ऐतिहासिक महिलाओं के बाल लाल थे और यह सब अपने-अपने समय में अपने सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध थीं।

विदेशियों का यह विश्वास है कि शीशे का टूटना अशुभ सूचक है। और की तो कौन कहे, जब नेपोलियन का ऐसा आदमी भी इस पर दृढ़ विश्वास करता था;

एक दफे इटली में वह युद्ध कर रहा था। न मालूम किस तरह से उसका शीशा उसकी स्त्री जोज़फीन की तस्वीर पर गिर करके टूट गया। नेपोलियन पर इसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि तब तक वह खिन्न चित्त रहा जब तक खबर आ नहीं ली कि जोज़फीन सकुशल है। यह कहना ठीक नहीं मालूम होता है कि अन्धविश्वासों का प्रभाव उन पर पड़ता है जो साहसी नहीं होते हैं। यदि नेपोलियन में साहस की कमी थी तो शायद संसार में साहस का नाम व्यर्थ है। बात तो यह है कि अन्धविश्वासों के लिये वही कहा जा सकता है जैसा हाली साहब ने पुराने नुस्खों के लिये कहा है—'चले आते हैं जो कि सीना ब सीना'।

नज़र झाड़ने में, टोटके टोने करने में या इनके बुरे असर को हटाने के लिये सब ही जगह नमक काम में लाया जाता है। नमक के बगैर वास्तव में सब फीका है। जब जीवन से प्रेम जाता रहता है और कोई उत्साह नहीं रह जाता है, तब अङ्गरेज़ी में कहते हैं कि जीवन का नमक जाता रहा 'the salt of life is gone'—मीठे की पहचान ही क्या हो जो नमक न हो। परिवर्तन संसार का नियम है। एक के बाद दूसरे की इच्छा होती है। रहीम जी ने ख़ूब कहा है—'नैन सलोने अधर मधु कहु रहीम घटि कौन, मीठो भावत लोन पै औ मीठे पर लोन।'

जैसे अपने यहाँ रास्ता काट करके सियार के निकल जाने पर लोग अपशकुन समझते हैं, वैसे ही इङ्गलैण्ड में चौगड़े का रास्ता काटना अशुभ समझते हैं। उनके यहाँ बिल्लियों के सम्बन्ध में बहुत से अन्धविश्वास हैं। उनके यहाँ कहते हैं कि काली बिल्लियों का चुम्बन करने से लोग मोटे होते हैं और सफेद बिल्ली के चुम्बन से दुबले हो जाते हैं। अपने देश में बिल्ली बुरी ही समझी जाती है। अपने यहाँ कहते हैं कि इसका पालना ठीक नहीं होता है, क्योंकि इसकी यह इच्छा रहती है कि मालिक अन्धा हो जाय तो यह थाली से खाना चुरा करके उठा ले। अपने यहाँ चोरी के सम्बन्ध में बिल्ली का नाम आता है। फ़ारसी की एक कहावत है कि बिल्ली को पहले ही दिन मार डालो। भावार्थ यह है कि बुरों को पहले ही रोक देना चाहिये। अपने यहाँ बिल्ली को मार डालना पाप समझते हैं। अब तो खोज करके डॉक्टरों ने यह पता लगाया है कि बच्चों को बिल्ली के साथ खेलने से 'डिप्थेरिया' नामक बीमारी हो जाती है। शायद इसी वजह से हमारे यहाँ बिल्ली से दूर ही रहने को लिखा है कि कहीं एक बाल भी उसका मुँह के अन्दर न चला जाय। ऐसी ही किसी बीमारी का डर होगा। खोज बन्द हो जाने से अब तो मालूम होता है कि हम कभी कुछ नहीं जानते थे। पता लगा करके जब विदेशी यह कहते हैं कि अमुक बात उन्होंने भारतवर्ष से सीखा था तो हम चकित हो जाते हैं और उससे भी बड़ा दुःख यह है कि तब भी हमें विश्वास नहीं आता है कि यह बात अपने ही यहाँ की थी। अगर यह कहा जाय कि यह दूसरों ने पता लगाया है तो बहुत जल्दी और बहुत प्रसन्नतापूर्वक उसे मानने के लिये हम लोग तैयार हो जाते हैं।

इङ्गलैण्ड के पुराने लोगों का यह विश्वास था कि रात को कुत्ते का गुर्राना अशुभसूचक होता है, यह भी विश्वास था कि कुत्ते अपने मालिक को मृत्यु के आने के पहले ही जान जाते थे और उस कमरे के दरवाज़े पर आर्तनाद करने लगते थे। अपने यहाँ यह नहीं मानते हैं। यहाँ कुत्ते और घोड़े बड़े स्वामिभक्त जानवर कहलाते हैं। 'चहार दरवेश' में शुरू से आखिर तक कुत्ते की ही तारीफ है। अपने यहाँ यह कहा जाता है कि मालिक पर जब कोई मुसीबत आने वाली होती है तब कुत्ते पर उसका असर पड़ता है और वह पहले मर जाता है। जैसे कहा जाता है कि तबेले की बला बन्दर पर आती है।

अगर विश्वास का नाम संसार में सार्थक है तो वह अन्धविश्वास ही है।*

---

* इस लेख के लिखने में मुझे सी० जे० एस० टामसन की पुस्तक "सुपरस्टीशन इन एवरी डे लाइफ़" से बड़ी सहायता मिली है, जो धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाती है।

ग्रामोन्नति कार्य में स्त्रियों के सहयोग की आवश्यकता

[श्री० शङ्करदयालु श्रीवास्तव]

इस बात को साधारणतः सभी स्वीकार करेंगे कि गाँव के समुचित सुधार और पुनर्सङ्गठन के बिना भारत की वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। गाँवों के सुधार और सङ्गठन का कार्य यों तो पिछले कई वर्षों से कतिपय प्रान्तों में प्रारम्भ हो गया था, किन्तु जब से नया विधान कार्यान्वित हुआ है और सात प्रान्तों में कॉङ्ग्रेसी मन्त्रिमण्डलों की स्थापना हुई है, तब से इसकी ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। पुरानी पञ्चायतों को फिर से स्थापित करने की आवश्यकता भी लोग बहुत पहले ही से स्वीकार कर चुके थे और अनेक प्रान्तों में पञ्चायतों के सङ्गठन के लिए कानून पास हो चुके हैं। पञ्चायतें स्थापित की जा चुकी हैं और भी की जा रही हैं। यदि उनका सङ्गठन लोकसत्ता के सिद्धान्तों के आधार पर किया गया और उन्हें उत्तरोत्तर समुचित अधिकार प्रदान कर दिये गए तो ग्रामीणों की मुकदमेबाजी बहुत कम हो जायगी और उनका बहुत सा धन बरबाद होने से बच जायगा। लेकिन पञ्चायतों की स्थापना कर गाँव वालों के आपसी झगड़ों के निपटारे की व्यवस्था कर देने मात्र से ग्रामोन्नति नहीं होगी। उसके लिए हमें शिक्षा-प्रचार, स्वास्थ्य-रक्षा, आर्थिक उन्नति, घरेलू उद्योग-धन्धों के विकास, मितव्ययता तथा एकता आदि अनेक बातों की ओर ध्यान देना होगा।

सहयोग क्यों आवश्यक है ?

इन प्रश्नों पर एक-एक करके हम आगे चल कर अपना कुछ विचार प्रकट करेंगे। यहाँ हम यह बतला देना चाहते हैं कि ग्रामोन्नति का कार्य महिलाओं के सहयोग के बिना सुचारु रूप से सम्पादित नहीं हो सकता। इस बात को हमारे नेता, ग्राम-सुधार से सम्बन्ध रखने वाले अफसर तथा महिलाओं की कुछ संस्थाएँ और सभाएँ—सभी स्वीकार कर चुके हैं। प्रश्न किया जा सकता है कि ग्राम-सुधार के लिए स्त्रियों के सहयोग की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है, पहली बात तो यह है कि कोई भी योजना तब तक कार्यान्वित नहीं हो सकती, जब तक कि सब आदमी उसके साथ सहयोग न करें। ग्रामोन्नति योजना भी इसी प्रकार सभी ग्राम-निवासियों के—चाहे वे स्त्री हों या पुरुष—सहयोग की अपेक्षा रखती है। यदि स्त्रियाँ इस योजना के प्रति उदासीन बनी रहें और सुधार कार्य में योग न दें तो स्पष्ट है कि ग्राम-सुधार, जिसमें पुरुषों और स्त्रियों दोनों का सुधार सम्मिलित है, पूरे तौर पर नहीं हो सकेगा। जब तक स्त्रियाँ चहारदीवारी के अन्दर बन्द रहेंगी, परम्परागत रूढ़ियों तथा अन्धविश्वास के बन्धनों से जकड़ी रहेंगी, स्वास्थ्य और सफ़ाई के महत्व को न समझेंगी, परदे, लम्बे घूँघट तथा भद्दे गहनों के शौक को न छोड़ेंगी, अशिक्षा और अज्ञान के अन्धकार से आच्छन्न रहेंगी, तब तक चाहे कितने भी सुधार कर दिए जायँ, ग्राम-सुधार पूर्ण नहीं कहा जा सकेगा।

दूसरी बात यह है कि बच्चों का लालन-पालन मुख्यतया स्त्रियों के ही हाथ में रहता है। बचपन में बच्चों को जैसी शिक्षा दी जायगी, उनका आचरण जैसा बनाया जायगा, जैसी आदतें डाली जायँगी, वैसे ही उनका विकास होगा। इन भावी नागरिकों को सभ्य और शिक्षित बनाने का बहुत कुछ उत्तरदायित्व उनकी माताओं पर ही है। अत. जब तक स्त्रियों को अनेक आवश्यक बातों की शिक्षा नहीं दी जायगी, तब तक वे अपने इस पवित्र कर्त्तव्य का पालन ठीक से नहीं कर सकेंगी। इस

प्रकार सिद्ध होता है कि ग्राम सुधार के आन्दोलन में स्त्रियों का सम्मिलित होना और सक्रिय सहयोग प्रदान करना बहुत आवश्यक है।

तीसरी बात यह है कि हमारी पुरानी सभ्यता और परिपाटी के अनुसार स्त्रियाँ गृहस्वामिनी बनी हुई हैं। घर की आन्तरिक व्यवस्था की सारी ज़िम्मेदारी उन्हीं के ऊपर है। घर को किस प्रकार साफ सुथरा रखना चाहिए, चीज़ों को कैसे सँभाल कर रक्खा जाय कि घर आरास्ता दिखाई पड़े, घर का हिसाब किताब कैसे रखना चाहिए, आदि बहुत सी बातें ऐसी है, जिनका ज्ञान प्रत्येक स्त्री को होना चाहिए। गृह-विज्ञान की शिक्षा न मिलने के कारण गाँवों में बहुत से घर कितने गन्दे और अस्वास्थ्यकर अवस्था में रक्खे जाते हैं, इसका पता उन लोगों को अवश्य होगा जो देहात में रह चुके है या जिनका गाँवों से सम्पर्क है। जब तक गृहविज्ञान और स्वास्थ्य-विज्ञान की मुख्य-मुख्य बातों का ज्ञान स्त्रियों को नहीं करा दिया जायगा और वे अपने घरों की आन्तरिक व्यवस्था ठीक से नहीं करने लगेंगी, तब तक ग्राम-सुधार का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकेगा।

चौथी बात यह है कि भूत-प्रेत, टोना टोटका, बाल-विवाह, दहेज, मङ्गलोत्सव पर गन्दे व अश्लील गाने, झगड़ा-प्रपच आदि जो बुराइयाँ और कुरीतियाँ देहातों में फैली हुई हैं उनका दूर होना आवश्यक है। ये सब बातें नारी समाज में अधिक पाई जाती है। और भी बहुत से रस्म-रिवाज ऐसे हैं, जो प्रायः स्त्रियों के ही हाथ में हैं और जिनमें परिवर्तन करने की आवश्यकता है। स्पष्ट है कि ये सब काम महिलाओं के सहयोग के बिना नहीं हो सकते।

पाँचवीं बात यह है कि जीवन के रहन-सहन का मान गृह पर निर्भर करता है और ग्रामोन्नति की योजना घरों की आर्थिक स्थिति को सुधार कर उन्हें अच्छी अवस्था में लाने का प्रयत्न करती है। चूँकि घर की अधिकाश व्यवस्था के लिए स्त्रियाँ ही ज़िम्मेदार हैं, अत यह बिलकुल स्पष्ट है कि उनकी सहायता और सहयोग के बिना यह योजना कभी सफल नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि जब तक स्त्रियाँ ग्राम-सुधार तथा ग्रामोन्नति की आवश्यकता व महत्व नहीं समझेंगी, तब तक वे इस कार्य में सहायक होने के बदले बाधक ही सिद्ध होंगी। इसलिये ग्रामोन्नति का वास्तविक आधार बालिकाओं की शिक्षा तथा नारी-आन्दोलन है। जब तक स्त्रियों को अपनी अधोवस्था तथा संसार की प्रगति का ज्ञान नहीं होगा, तब तक वे आगे नहीं बढ़ सकेंगी।

शिक्षा का प्रचार

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि ग्रामोन्नति के पुण्य-कार्य में भाग लेने वाली महिलाओं को क्या काम करना चाहिए। सब से अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण कार्य है शिक्षा का प्रचार करना। गाँवों में अशिक्षा का जो अन्धकार छाया हुआ है, वह किसी से छिपा नहीं है। तभी तो समाज में यह अन्धकार और भयानक रूप धारण किए हुए है। इस अशिक्षा को दूर करने के लिए न केवल लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने का प्रबन्ध करना होगा, बल्कि विवाहिता और प्रौढ़ा स्त्रियों को भी अक्षर-ज्ञान कराना होगा। इस काम को शिक्षित महिलाएँ ही अधिक योग्यता व सफलता के साथ सम्पादित कर सकेंगी। प्रत्येक बड़े गाँव में अथवा दो तीन छोटे-छोटे गाँवों के बीच एक कन्या-पाठशाला खोलना चाहिए, जहाँ प्रत्येक घर की लड़कियाँ पढ़ने के लिए एकत्रित हो सकें। घर-घर जा-जाकर लोगों को समझाया जाय कि वे अपनी लड़कियों को पढ़ने के लिए स्कूल भेजा करें और अगर वे स्वय अपढ़ हैं तो साक्षर बनाने का प्रयत्न करें। अगर स्कूल दूसरे गाँव में हो तो लड़कियों को पहुँचाने के लिए नगरों की तरह बैलगाड़ी का प्रबन्ध आसानी से किया जा सकता है।

लड़कियों को पढ़ाने के लिए एक योग्य, उत्साही, शिक्षित तथा सच्चरित्र महिला की आवश्यकता है, जो न केवल लड़कियों की बल्कि उनके माता-पिता तथा गाँव के अन्य लोगों की श्रद्धापात्र बन सके, जो सेवा-भाव से प्रेरित हो और जिसे स्त्री-शिक्षा-प्रचार की पूरी लगन हो। देहात में रहने के लिए उसे सब प्रकार की सुविधाएँ मिलनी चाहिए। खर्च की किफायत के लिए छोटी-छोटी लड़कियों तथा लड़कों की सहशिक्षा

की व्यवस्था की जा सकती है किन्तु इस व्यवस्था के के अन्दर भी कम से कम एक महिला शिक्षक का होना अनिवार्य है। स्कूल की इमारत गाँव से बाहर होनी चाहिए, ताकि लड़कियों के खेलने-कूदने और फल, फूल एवं तरकारी की खेती करने के लिए काफी स्थान और सुन्दर जलवायु प्राप्त हो सके। लड़कियों के शारीरिक गठन पर यथेष्ट ध्यान देना चाहिए। बालकों की भाँति उनके लिए भी खेल तथा व्यायाम का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि लड़कियों को किन-किन विषयों की शिक्षा देनी चाहिए। मेरे ख्याल में मातृभाषा के अतिरिक्त इतिहास, भूगोल, सरल गणित, स्वास्थ्य विज्ञान, शिशु-पालन तथा पाकशास्त्र की शिक्षा देना अधिक उपयुक्त होगा। इतिहास पढ़ाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उन्हें भिन्न-भिन्न वंशों के राजाओं के नाम, उनके सिंहासनारोहण तथा शासन-काल की तिथियाँ, युद्धों का वर्णन तथा अन्य साधारण घटना-चक्रों का हाल कण्ठ कराया जाय। इतिहास के नीरस तथ्यों का कण्ठाग्र करना वास्तव में बच्चों के लिए रोचक विषय न होगा। उन्हें एक मनोरञ्जक कथा के रूप में यह बतलाना चाहिए कि किस काल में समाज की स्थिति कैसी थी और उसके आर्थिक, राष्ट्रीय तथा राजनैतिक विकास में कैसे-कैसे योग मिला। समाज में कब कैसे रीति-रिवाज प्रचलित हुए और जनता पर उनका क्या प्रभाव पड़ा। इतिहास के महापुरुषों के चरित्र का ज्ञान भी कराना चाहिए। इसी प्रकार भूगोल का साधारण ज्ञान भी लड़कियों को कराना चाहिए।

नागरिकता की शिक्षा की हमारे देश में अभी तक प्रायः पूर्ण उपेक्षा होती आई है। प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम में इस आवश्यक विषय को कोई स्थान ही नहीं प्राप्त हुआ है। नागरिकता के सिद्धान्तों को शुरू से ही बतलाना चाहिए, ताकि बच्चे समझ सकें कि जिस देश या समाज में वे रहते हैं, उसके प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है। नागरिकता की शिक्षा मिलने से वे अनेक प्रकार के भेदभावों को भूल जाँयगे और सारे भारत को एक राष्ट्र समझने लगेंगे। उनका दृष्टिकोण उदार तथा विस्तृत बन जायगा। वे नागरिक के कर्त्तव्यों का ठीक से पालन कर सकेंगे।

लड़कियों की शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह होगा कि समाज से अन्धविश्वास तथा रूढ़िवाद धीरे-धीरे उठ जायगा और अनेक कुरीतियाँ जो इस समय प्रचलित हैं, दूर हो जाँयगी। ये सब चीजें समाज में तभी तक टिक सकती हैं जब तक कि अशिक्षा का राज्य है। शिक्षा-रूपी प्रकाश के विकीर्ण होते ही सारा अज्ञान-अन्धकार लोप हो जायगा। पुरुष-समाज में शिक्षा का कुछ प्रचार हुआ है, अतः वहाँ अन्धविश्वास कम होने लगा है, किन्तु महिला समाज में वह काफी मात्रा में मौजूद है।

स्वास्थ्य और सफाई

शिक्षा के पश्चात् स्वास्थ्य और सफाई का सवाल आता है। इस विषय का ज्ञान प्रत्येक गृहस्थ पुरुष तथा स्त्री को होना चाहिए। इस विषय का किञ्चित ज्ञान न होने के कारण हमारे गाँवों की आज जो दुर्दशा हो रही है, उसे हम सभी जानते हैं। किसी समय देहात के लोग—पुरुष और स्त्रियाँ—इतने स्वस्थ होते थे कि उनका उदाहरण उपस्थित किया जाता था। किन्तु आज परिस्थिति बिलकुल उलटी हो गई है। मेरा ख़्याल है कि आज देहात में रहने वाली स्त्रियों का स्वास्थ्य नगर की स्त्रियों से भी अधिक खराब हो गया है। स्वयं किस तरह सफाई से रहना चाहिए, अपने घर में कैसे सफ़ाई रखनी चाहिए, अस्वास्थ्यकर चीजों से कैसे बचना चाहिए—इन सब बातों का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। उन्हें भद्दे गहनों का शौक है, किन्तु शरीर को साफ रखने और साफ वस्त्र पहनने का कुछ ध्यान नहीं है। स्कूल की लड़कियों को स्वास्थ्य और सफाई की मुख्य-मुख्य बातें तो सिखानी ही चाहिए। किन्तु इसके अलावा प्रत्येक परगना या तहसील में एक ऐसा स्कूल या केन्द्र स्थापित करना चाहिए, जहाँ पढ़ी-लिखी स्त्रियों को नियमित तथा वैज्ञानिक विधि से प्रथम उपचार की शिक्षा दी जाय, स्वास्थ्य-सफाई से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातें विस्तार के साथ बतलाई जायँ, उन्हें सूतिका गृह के लिए आवश्यक ज्ञान कराया

जाय और उन बहुत सी बातों की शिक्षा दी जाय जो एक होशियार नर्स के लिए जरूरी हैं। इन केन्द्रों में शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाएँ गाँवों में स्वतन्त्र रूप से अपना व्यवसाय कर सकती हैं। ऐसी स्त्रियों का यदि एक दल सङ्गठित होकर गाँव गाँव घूमे और स्त्रियों को एकत्रित कर स्वास्थ्य, सफाई, शिशु-पालन, प्रथम उपचार, सूतिका-गृह आदि के सम्बन्ध में उपदेश करे और प्रकाश की सहायता से परदे पर चित्रों का प्रदर्शन करके समझाए कि गन्दगी से किस तरह बीमारी फैलती है और रोग के कीड़े उसे फैलाने में किस प्रकार सहायक होते है तो निश्चय ही स्त्री-समाज का बड़ा हित हो सकता है। इस प्रकार यदि प्रत्येक गाँव में महीने में एक या दो बार इस दल का दौरा हो जाय तो स्त्रियों का बहुत कुछ अज्ञान दूर हो सकता है। यूरोप के कतिपय उन्नतिशील देशों में ऐसे स्कूल खोले गए हैं, जहाँ विवाह की अवस्था की कन्याओं तथा नव विवाहित वधुओं को नर्सिंग, और शिशु-पालन की शिक्षा दी जाती है और उन्हें बतलाया जाता है कि बच्चों को माँ का दूध कब तक देना चाहिए, उन्हें शुरू-शुरू में कैसे नहलाना चाहिए, दूध किस नियम से और कितने अन्तर पर पिलाना चाहिए आदि, ऐसे स्कूल या दर्जे हमारे यहाँ भी खोले जा सकते हैं।

एक बात और है। जहाँ तक स्वास्थ्य और सफाई का सम्बन्ध है, सरकार, सार्वजनिक संस्थाओं तथा जिला बोर्डों को चाहिए कि देहात में चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करें। गाँवों में चिकित्सा का प्रबन्ध न होने से बहुत सी स्त्रियाँ असमय काल के मुख में पड़ जाती हैं और सैकड़ों जीवन भर रोगी बनी रहती हैं। देहातों में महिला चिकित्सक अथवा नाना अस्पताल का होना भी आवश्यक है, क्योंकि स्त्रियों के अनेक रोग ऐसे होते हैं जिन्हें स्त्रियाँ ही ठीक से समझ सकती और उनका इलाज कर सकती हैं। महिला चिकित्सकों तथा जनाना अस्पतालों के अभाव में स्त्रियाँ अपने इन रोगों को छिपाए रहती हैं और उनकी अवस्था उत्तरोत्तर खराब होती जाती है। इस दिशा में शिक्षित महिलाओं को अब ध्यान देना चाहिए और उन्हें अपनी ग्रामीण बहिनों को हर प्रकार से सहायता पहुँचाना चाहिए। उन्हें नर्स, डॉक्टर तथा उपदेशक बनकर देहातों में प्रवेश करना चाहिए। यह काम स्त्रियों का ही है और जब तक इसकी व्यवस्था न हो जायगी, ग्रामोन्नति का काम पूरा नहीं हो सकेगा।

सूत-कताई और सिलाई

ग्रामोन्नति के लिए यह भी आवश्यक है कि आर्थिक अवस्था सुधारी जाय। हमारे देश में विशेषतः गाँवों के अन्दर उपार्जन करने का भार पुरुषों पर ही रहता है। स्त्रियाँ घर के अन्दर का इन्तज़ाम करती हैं। किसी समय में हमारे घर की स्त्रियाँ रोटी बनाने, बच्चों का लालन-पालन करने के अतिरिक्त नियमित रूप से चरखा चलाती थीं और इस प्रकार जो सूत तैयार होता था उससे गाँव के अथवा गाँव के पास के जुलाहे को कुछ अन्न या पैसा देकर घर भर के इस्तेमाल के लिए कपड़ा तैयार करा लिया जाता था। अब घर पर सूत कात कर कपड़ा बुनवा लेने का रिवाज उठ गया है। हमें वस्त्र के लिए अब पूर्णतया बाजार पर निर्भर करना पड़ता है। एक ओर तो हमारी आर्थिक अवस्था ख़राब हो गई है, दूसरी ओर हमारी आवश्यकताएँ और हमारे ख़र्च बढ़ गये हैं। ऐसी अवस्था में अगर हम आए दिन कष्ट सहते हैं तो फिर आश्चर्य करने की क्या बात है? कपड़े के लिए ही नहीं, बल्कि उसकी सिलाई के लिए भी दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है। सीने-पिरोने का बहुत कुछ काम नियमित रूप से पहले घर ही पर हो जाता था। अब जितना दाम कपड़े के लिए देना पड़ता है, करीब-क़रीब उतना ही कभी-कभी तो उससे भी ज्यादा सिलाई के लिए ख़र्च कर देना पड़ता है। अगर हमें अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारना है तो सूत कताई का तथा घर के कपड़ों की सिलाई का काम फिर शुरू कर देना चाहिए। इसके अलावा छोटे-मोटे घरेलू उद्योग-धन्धों का भी प्रचार होना चाहिए, ताकि स्त्रियाँ अवकाश के समय में कुछ काम करके पैसा पैदा कर सकें। ऐसे अनेक उद्योग-धन्धे हैं, जिन्हें स्त्रियाँ आसानी से कर सकती हैं। उदाहरणार्थ, खिलौनों का रोज़गार है। हमारे देश में खिलौनों की

खपत कम नहीं है। प्रत्येक माता अपने बच्चे को प्यार करती है और उसके लिए बाजार से खिलौना खरीद देती है। अधिकाश खिलौने हमारे यहाँ जापान, चीन, जर्मनी तथा ब्रिटेन से आते हैं। इसमें देश का बहुत सा धन बाहर खिंच जाता है। घर पर खिलौने तैयार करके भारतीय स्त्रियाँ अपने देश का बहुत सा पैसा बचा सकती हैं। खिलौनों की बदौलत वे अपने परिवार की आमदनी में भी कुछ वृद्धि कर सकती हैं। इसी प्रकार साबुन, रोशनाई आदि अन्य उद्योग-धन्धे भी किए जा सकते हैं। सरकार छोटे-मोटे उद्योग-धन्धों का प्रचार गाँवों में कर सकती है। इन चीजों को बनाने का तरीका सिखाने के लिए शुरू में ज़िले-ज़िले में एक स्कूल खोलना होगा, जहाँ लड़कियाँ तथा सयानी स्त्रियाँ जाकर काम सीख सकती हैं। महिलाएँ इस प्रकार उद्योग-धन्धा में कुछ समय लगा कर अपने घर की अवस्था अच्छी बना सकती हैं और ग्रामोन्नति के कार्य में योग दे सकती हैं। अत यह कहना असङ्गत नहीं है कि स्त्रियों के सहयोग के बिना ग्रामोन्नति का कार्य पूरा नहीं हो सकता।

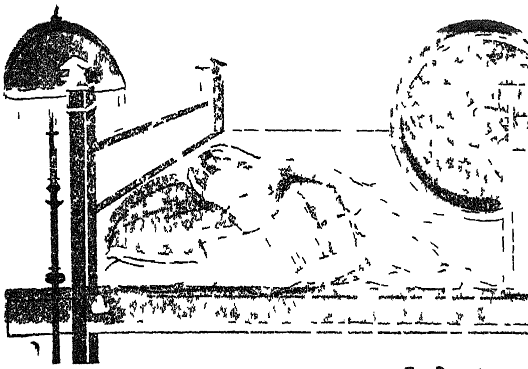
भोजन बनाना

पाक-शास्त्र हमारे यहाँ स्त्रियों का मुख्य विषय माना जाता था। किन्तु अब महिला-समाज उसके महत्व को भी भूलता जा रहा है। यह बात सच है कि हमारा भोजन अधिकाशत. स्त्रियाँ ही तैयार करती हैं, किन्तु अब यह कार्य बहुत सी स्त्रियों को भार प्रतीत हो रहा है। बहुत सी स्त्रियाँ अपने इस कर्त्तव्य का पालन बड़ी लापरवाही के साथ करती हैं। वे रुचि और लगन के साथ भोजन नहीं बनातीं, वरन् ज्यों-त्यों करके किसी प्रकार भोजन प्रस्तुत कर देती हैं। भोजन पकाने में यह उदासीनता, लापरवाही तथा आलस्य हमारे अज्ञान का परिणाम है। हम भूल गए हैं कि मनुष्य का स्वास्थ्य, बल, आयुष्य तथा जीवन मुख्यतः भोजन पर ही निर्भर करता है। अत. उसे बड़ी रुचि, लगन तथा सावधानी के साथ तैयार करना चाहिए। भोजन बनाने वाली स्त्रियों को इतना ज्ञान होना चाहिए कि किस खाद्य पदार्थ का क्या गुण है और उससे क्या हानि हो सकती है, उसे भोजन के लिए किस तरह तैयार करना चाहिए, अधिक गरम मसाले के प्रयोग से क्या नुकसान हो सकता है, सरल और स्वास्थ्यकर भोजन कैसे बनाना चाहिए, रसोई में कितनी सफाई रखने की जरूरत है, बच्चों तथा बीमार आदमियों को कैसा भोजन देना चाहिए—इन सभी बातों का ज्ञान स्त्रियों को होना चाहिए। पाकशास्त्र का कुछ ज्ञान न होने का ही यह फल है कि रोग और बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं। हम खाद्य और अखाद्य में कुछ भेद नहीं कर पाते और जीभ का चाट बुझाने के लिए हानिकर चीजें खा लेते हैं। स्त्रियाँ अपने अज्ञान में खाद्य वस्तु को भी अखाद्य रूप में परिणत कर देती हैं और हम जीभ के स्वाद के लिए उसे ग्रहण कर लेते हैं। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक है कि लड़कियों तथा स्त्रियों को पाकशास्त्र का ज्ञान कराया जाय और उन्हें चतुर पाचिका बनाया जाय।

लड़कियों को सङ्गीत की शिक्षा भी मिलनी चाहिए। सङ्गीत मनोविनोद का एक अति उत्तम साधन है। मनोविनोद का जीवन में क्या स्थान है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। यदि पुरुष अथवा स्त्रियाँ दिन-रात परिश्रम ही किया करें और कभी अपना दिल-बहलाव न करें तो उन्हें अपना जीवन दूभर हो जाय और उनका स्वास्थ्य खराब हो जाय। सङ्गीत का ज्ञान प्राप्त कर स्त्रियाँ अपना तथा घर के अन्य लोगों का मनोविनोद कर सकती हैं। सङ्गीत से चित्त को शान्ति मिलती और थकावट दूर होती है। सङ्गीत का प्रचार स्त्रियों में घर-घर होना चाहिए

प्रौढ़ा स्त्रियाँ

एक बात यहाँ हम और भी कह देना चाहते हैं। शिक्षा-प्रचार आदि का कार्य स्कूल की लड़कियों तक ही सीमित रखना ठीक नहीं है। सयानी तथा प्रौढ़ा स्त्रियों को भी शिक्षित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। रूस तथा टर्की ने अपने यहाँ आन्दोलन करके ऐसी स्त्रियों को भी साक्षर बना दिया है। साक्षर बनाने के इस आन्दोलन में हजारों शिक्षित महिलाओं ने भाग लिया है। देश-सेवा के भाव से प्रेरित होकर इन महिलाओं ने बिना



चीन के आँचल में

[श्री० 'पहाड़ी']

'आप बच गए। हमें बड़ी खुशी हुई।' शोया पास घोड़े को ला चीनी भाषा में बोली।

'आप लोगों की वजह से।'—जनरल ने जवाब दिया।

'चोट ज्यादह लगी है ?'

'नहीं।'

'पीड़ा ज्यादह है क्या ?

'अब नहीं, भला आप लोगों का अहसान क्या भूल सकूँगा।'

रेगिस्तान में उन अजनबी लोगों के 'काफले' के बीच जापानी जनरल सोना ने अपने को पाया। यह लड़की कितनी हमदर्द है। अभी-अभी इसने सब घावों को धोकर, पट्टी बाँधी थी। वह पहचान कर कितने नज़दीक सहजता में आई। पहचान, जैसे इस गुण की वह अवहेलना नहीं कर सकी। बिलकुल जापानी गुड़िया सी लगती थी। काले-काले कटे सुन्दर बाल, नीले फीते से बँधे, बड़ी-बड़ी बादाम सी आँखे, लापरवाही से बच्चों की तरह कपड़े पहिने थी। सुन्दर खाकी ब्रिचेज़, जापानी अफसरों के से लम्बे बूट। एक ओर चमड़े के 'केस' में 'रिवाल्वर' लटक रहा था। चीन के भीतर किसी पर्वतीय देश की वह लगती थी।

ख़ेमें उखड़ चुके थे। शोर-गुल हल्ला बन्द हो गया। सब सामान खच्चरों पर लद चुका था। चालीस-पचास के करीब आदमी, कुछ गधे, कुछ घोड़े, बाक़ी ऊँट पर सवार थे। सबके चेहरों से निष्ठुरता टपक रही थी। इन लोगों का काम लूट-मार करना था। शायद हमला कर जो कुछ हाथ लगे उसी में सन्तुष्ट होने के अलावा मनुष्य की कीमत का ज्ञान भी इनको नहीं होगा।

शोया इनके बीच एक दया की पुतली थी। सरदार की बहिन होने से उसका मान था। उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन न होता, वह उनकी क्रूरता के बीच सारी माया, ममता सिमेटे, परदेशी को पसरने, जगह दिल में दे देने में कजूस नहीं थी। अपने नारी-आँचल के आश्रय में दुखी को देख-भाल तत्पर हो वह करती। कोई उसे जान न पाता, वह उसे अनजान न मानती, उसके व्यवहार में अपने को खो वहीं रह जाती। ऐसी थी शोया जिसको पास पाकर जनरल अपने को एकाएक बिराना अब नहीं मान लेना चाहता था। वह कोशिश कर रहा था कि कमजोरी की वजह से कहीं बेहोश न हो जावे। बार बार आँखों के आगे धूम का काला परदा पड़ता। वह चुपचाप सावधानी से आँखें मूँद लेता। घाव में पीड़ा थी। दिल भारी था। कन्धे के पास से गोली आरपार निकली थी। पाँव पर भी गहरे घाव थे। हाथ उठना न था। बिलकुल फीका लग रहा था। शोया ने सब जान लिया। वह समझ गई। एक ओर लटकती बोतल उठाई और सौंप दी। जनरल ने कुछ 'आसव' पी लिया। जरा जीवन आया। शोया ने एक सजीवता बिखेर सीमा बाँध दी। वह इस सीमा को लाँघ न सकता था। जनरल की पीड़ा मिट गई। शोया और पास आकर बोली—'थक तो नहीं गए।'

'नहीं'। उस खेल को जिन्दगी का आखिरी खेल समझा था। लेकिन...?'

'खे ।' शोया ने आश्चर्य में बात काट आँखें उठा देख, नीचे झुका ली ।

'खेल ही तो वह लगता है। मौत आई। निशाना चूक जाने पर भाग गई। अच्छा, खैर तुमको किस नाम से पुकारूँ ?'

'शो. या—।' धीमे स्वर में वह बाली।

'क्या कहा—शोया, मैं यह कह सकता हूँ।' शोया ने सिर हिलाया।

'शोया !' जनरल फिर बोला।

शोया ने जनरल की ओर कुतूहल से देखा।

'तुम इस गिरोह की देवी हो।'

कुछ घण्टे में ही अथाह दुःख के बाद, सहारा पाकर वह भावुकता में बह गया।

और शोया बात ठीक न पकड़ हँस दी। वह उस गिरोह के अपने गिने चुने साथियों से बाहर इसे पाती। जो कहीं भी उनसे मेल नहीं खाता था! उनसे उठा लगता। इसके नज़दीक एक अज्ञात गुदगुदी क्यों उठती थी ?

'शोया...।' जनरल ने रुक कर धीमे स्वर में पुकारा। शोया नज़दीक आई। जनरल चुप रहा। कुछ कहना चाह कर भी न कह सका। आगे कोई बात नहीं हुई। सब चुपचाप आगे बढ़ रहे थे।

सिर्फ 'तीन दिन' जनरल के दिल में बात उठी और खो गई। वह तीन दिन गहरा घाव बना चुके थे। अब घाव मुलायम पड़ गया था। दुखता नहीं था। लड़ाई की याद आती थी। धुँधली धुँधली बातें, चलचित्र के समान आगे आ, ओझल हो जातीं। आहें, कहरना, विषाद का करुण गीत, वेदनापूर्ण गुञ्जन—अब तक साथ थी। जीवन की धुँधली रेखा फिर चमक उठती। वह जीवित था। वह मौत को धोखा न दे, ख़ुद धोखा बन अब इस नारी की छाया का सहारा पा चल रहा था। अपने से खुद अविश्वास होता। अन्यथा यही नारी तो कहती है—चल। कहीं उसकी ज़रूरत है क्या। वह तो बिलकुल कोरा था। सब कुछ जीवन में इकट्ठा की बातों को भुलाकर, चीन की उस टुकड़ी के आगे खड़ा था। वह उसे मौत का हुक्म सुना चुके थे। फिर अपने विश्वास को ठीक मान वे चले क्यों गए। उसके जीवन के प्रति घृणा के अलावा और कुछ भी उन लोगों के पास नहीं था। असहाय तनी राइफलों के आगे उसने न सोचा था, आगे वह फिर 'गुन-गुन' करेगा। वह मौका भूल सा अब लगता। जिसकी याद प्यारी-प्यारी लगती है, मौत वास्तव न थी। नहीं उसे साथ ले लेती। इस तरह उपेक्षा कर न चल देती। इसी मौत पर वह सब कुछ सोच चुका था। कहीं कुछ भी डर बाकी न था। अपने प्रति सारे खोए विचार एकाएक वह बटोर-बटोर नहीं अब पाता था। सब विचार तो चूक गए थे। एक अन्तिम काला धब्बा मात्र बाकी बचा था। सोचा था कि वह धब्बा उसे ढक लेगा। वहीं वह सो जावेगा, गोली के साथ जीवन बँध जावेगा। किन्तु वह धब्बा सुफेद चिट्टी एक लकीर बना ओझल हो गया। उसे पसरने जगह मिल गई थी। अब सब फिर से सोच लेने को काफी खाली वक्त पास पड़ा था।

घटना भी आई थी, सिलसिलेवार। उनके भीतर वह था। वहीं वह रह गया। छुटकारा नहीं मिला। उस बन्धन का तत्व उसने पा लिया। परिस्थितियों ने उलझन आगे रख दी। वहां एक ठिकाना पा, वह ख़ुद तर्क करता, राय देता, सोचता और अन्त में चुप रह जाता था। वास्तव कुछ भी नहीं लगता था। सन्देह ने उसे खूब ढक लिया था।

पिछली सन्ध्या को वह कैदी था। चीन की उस टुकड़ी के नायक ने फैसला सुनाया था—अगली सुबह सब गोली से उड़ा दिए जावें। झोपड़ी में बिलकुल अँधियारा था। बीच बीच में कहीं-कहीं सूराख थे। वहां से बाहर बारीक नज़र पड़ती थी। अन्दर ज़रा रोशनी भी आती। काले-काले कमरे के अन्धकार में उस ज़रा रोशनी का एक सहारा था। एक ज़रा बड़े सूराख से बाहर उसने देखा, चारों ओर बड़ा रेगिस्तान, सिर्फ झोपड़ी से जरा हटे कुछ डेरे पड़े थे। दूर तक सिर्फ रेत ही रेत नज़र पड़ती थी। कहीं आँखें टिकती न थीं। रेत की कणों की उस बड़ी ढेरी में आँखें बिछ

जातीं। ख्याल कुछ आता कि उसकी आँखों की ओट में ही कहीं और पड़ाव भी तो दुबके होंगे। कौन जाने वहाँ क्या हो रहा हो। यह सब वह जान नहीं सकता। वह तो एक साध्य सा अब जीवित था। जिसका जीवन कोई महत्व नहीं रखता। जिसकी मौत पर भी एक मखौल कल चीनी सिपाही उड़ावेंगे। कौन जाने उसके शव को भी वे कुचल मानवता की गहरी पहेली को कुछ सुलझा दें। जहाँ युद्ध के लिए दिमाग आपस में विद्रोह पैदा करते हैं, अपने को सभ्य कहला निरे असभ्य बर्ताव को सब ही मान लेने तैयार हैं। जहाँ किसी का आदर नहीं। एक दूसरे के प्रति बनाई घृणा से मुँह बिचका चुपचाप चले जाते हैं। एक दूसरे का हाल पूछ लेने की किसी को फ़ुर्सत नहीं है।

सन्तरी बाहर घूम रहा था। इस कैदी की रक्षा उसे करनी थी। उसकी लापरवाही पर रक्षा जरूरी थी। यह सब सिर्फ़ तमाशा लगता। दूसरे के जीवन का मोल आज जान, हिफ़ाज़त कर, कल उसी को ठुकराना नई बात उसे लगती। स्वार्थ भी कहीं छूता नहीं मिलता था। फिर वह सन्तरी बार-बार आँखों के आगे आता। चुपचाप कुछ कदम आगे बढ़ा 'मिलिटरी' के बनाए कायदे से फिर लौट आता। सामने कुछ दूरी पर एक चीन का बूढ़ा, ऊँट के बालों से अपना थैला सी रहा था। अजीब गँवारी हँसी हँसता। वह गन्दे-गन्दे गीत गा रहा था। वह पागल सा लगता। क्यों वह हँसता था। अपने आप हँस जाना यह आदत सबको नहीं पड़ती। और वह बूढ़ा आँखें बोरे पर टिकाए, पास उसे ला फिर सुई और तागे में रह जाता। एक बड़ा लुण्डैक कुत्ता पास आ भू-भू-भू करता, फिर भाग-भाग जाता। कुत्ता उस सिलाई की क्रिया से परे, देखता उस बूढ़े पर, उससे कुछ भी पुचकार न पा 'भू-भू भू' कर डरता दूर हट जाता।

धूल से भरी फर्श, पाँव उसमें डूबते लगते। चुपचाप इधर-उधर टहलता रहा। नींद आती। चाहता सो जावे। कहीं की समस्या न हटती थी। फर्श पर बदबू चल रही थी, मजबूरी थी। वहीं रहना था उसे, अपनी इस शुद्धता से स्पर्धा होती थी। मैला में जगह पाने में हिचक क्यों अब थी, सतरी के पाँवों की आवाज़ उस सुनसान में साफ़ साफ़ सुनाई पड़ती थी। बीच में कभी-कभी कुत्तों का स्वर, रुदन नया, प्रतिध्वनि में फैल जाता। ठण्ड पड़ने लगी। वह जानता था कि रात्रि इसी प्रकार इधर-उधर चल फिर कर काटनी पड़ेगी। नङ्गी धरती पर क्या आज ही उसे सोना बदा था। कल तो फिर यह एक सनातन बात लगेगी। आज उस धूल से भरी धरती से डर वह क्यों रहा है। हल्के पाँव किसी जन्तु से छू गये। उसके खड़े बाल पाँव से लगे, वह हट गया। चूँ-चूँ-चूँ करता वह भाग गया। उसे बड़ी हँसी आई। वह अन्धकार में खिलखिलाया। ठण्ड बढ़ती लगी। कँपकँपी लगने लगी। एक कोने में चुपचाप दुबक कर वह बैठ गया। धीरे-धीरे नींद ने उसे घेर लिया था।

नींद टूटी, दूर कहीं गोलियों की धाँय-धाँय सुनाई पड़ी। उसने बाहर देखा। बिलकुल सन्नाटा था। लगा वह भी ऐसी ही कुछ गोलियों के बीच सुबह को खो जावेगा। ज़मीन पर पड़ा रहेगा। चींटिया इस शरीर पर लगी खेलेंगी। फिर बाहर सन्नाटा चीरती गोलियों की आवाज दूर कहीं हलकी चमकीली रेखा उठती, अस्त हो जाती, वह चुप रहा। गोलियों की आवाज थम गई थी। फिर··· ··

किसी ने ठोकर लगाई। नींद उचट गई। चीनी सिपाही खड़ा था। वह उसे ले गया। उसने देखा, पाँच कैदी—एक दो, तीन, चार··· ··

बीस सिपाही, एक, दो, तीन··· ··

बीस गज़ का फासला··· ···

धाँय—धाँय—धाँय···पहली फ़ायर।

धाँय—धाँय—धाँय ··दूसरी फायर।

धाँय—धाँय—धाँय···तीसरी फ़ायर।

अब उनका अफसर आगे बढ़ा। एक-एक कैदी को उसने जूते से ठुकराया। एक हिलता-डुलता लगा। उसने पिस्टल निकाली, माथे पर निशाना साध कर गोली दाग दी।

पाँच और क़ैदी ·····

फिर······

फिर······

धाँय—धाँय—धाँय ··

धाँय · ·

धाँय··· ·

अब जनरल

सामने छै सिपाही तैयार खड़े।

फासला—बीस गज।

'फायर?'

धाँय, धाँय, धाँय ··

बहुत गरम। उसने आँखें खोलीं। पाया अपने को एक काफले से घिरा।

जनरल अब थक गया था। वह धीरे धीरे आगे बढ़ रहे थे। उनके साथी काफी आगे बढ गए थे। कुछ सुस्ता कर जनरल ने घोड़ा आगे बढाया। बोला—'आप लोगों ने मुझे कैसे पाया?'

'हमें देख कर वे भाग गए।'

'और मेरे साथी?'

'... ..' एक चुप्पी।

'सब मर गए।'

कोई जवाब नहीं।

'केप्टिन भी।'

शोया ने आँखें उठा कुछ समझ लेना चाहा। वह नहीं बोली।

'कब तक हम साथ-साथ थे। पिछले महीने उसकी शादी हुई थी। लड़ाई शुरू होने पर... ...।'

जनरल रुक पड़ा। उसने शोया की ओर देख कर पूछा—'बोतल!'

शोया ने बोतल दे दी। जनरल ने कुछ घूँट 'आसव' पी लिया, फिर बोला—'उसकी बीबी हमें दूर तक पहुँचाने आई थी। उसकी छोटी बहिन.... ....।' वह चुप हो गया। कुछ याद आई, पूछा—'आप लोग मुझे क्यों ले आए?'

यह सवाल कर वह अपने उस वायदे को याद करने लगा, जो उन दोस्तों ने किया था। साथ जिएँगे और मरेंगे भी, लेकिन बात ठीक साबित नहीं हुई। एकाएक दिल में विद्रोह उठा। अपने घोड़े का मुँह फेरते उसने कहा—'मैं लौट कर उसके पास हो आऊँ। उसे बिना देखे मन नहीं मानता।'

शोया आगे बढ़ कर बोली—'तुम बहुत थक गए हो।' वहाँ अब क्या मिलेगा। जानवरों से बची कुछ हड्डियाँ ।'

जनरल रुक पड़ा। यह नारी झगड़ कर केप्टिन के आगे क्यों खड़ी हो रही है। और केप्टिन की उन हड्डियों का वह क्या करेगा। उन हड्डियों को जापान से दूर क्या इस रेत में रखना बदा था। वहीं वे पड़ी हैं। जिन पर कभी मांस था। मांस में जीवन भी था। उसी मांस को कपड़े से ढकना लाज़िम लगता। व्यक्ति से ऊपर था एक देश। जिस देश की जरूरतों के लिए उन हड्डियों को वहीं पड़ा रहना पड़ा। जो अब अहसान न थीं। न उनकी कोई ज़रूरत व्यवहार में थी। यह आपस की लड़ाई। इतनी ढेर सी हड्डियों के बीच आज दुनिया की सभ्यता को चलना है। जहाँ एक दूसरे को धोखा देकर, इसी तरह दूर-दूर कोनों में हड्डियाँ पड़ी रहेंगी। उन हड्डियों के अस्तित्व में कहीं सभ्यता 'भूल' जाना न चाहे। पीछे दूर उसने देखा—कुछ नहीं—'भरा, भारी रेत का मैदान, लगा, वे पड़ी लाशें कुछ उठतीं, दूर हटीं। भ्रम में वह बोला—'तुमने भी देखा शोया।'

'क्या?' शोया नजदीक आई।

'वह देखो'—उसने उँगली उठाई।

शोया उससे टिकी, सिर मिलाए बोली—'कुछ नहीं।'

'वह केप्टिन की 'लाश!'

शोया ने जनरल का हाथ अपने में ले कहा—'नामुमकिन के फेर में पड़ना उचित नहीं, अपने अधीन बात न थी।'

उसके स्पर्श से एक गुदगुदी जनरल के दिल में हुई। शोया उसके दिल में पहुँच चुकी थी।

'आज डेरे पर पहुँच कर तुमको 'अफ़ीम' बना कर खिलाऊँगी।'

'अफीम... . ..।'—जनरल चौंका।

'हाँ'

'तुम क्या करती हो ?'

'अफ़ीम का व्यापार। क़ानून को हम नहीं मानते।'

'क़ानून को ...।'

एकाएक दूर उन्होंने देखा कि कुछ सवार आ रहे थे। शोया बोली—'यहाँ सब एक दूसरे के दुश्मन हैं। हर वक़्त ख़तरा रहता है। भागो—भागो ?'

दोनों ने अपना-अपना घोड़ा बढ़ाया। तेजी से घोड़े जा रहे थे।

दूर गड़गड़ाहट सुनाई दी। दूर कुछ हवाई जहाज़ दीख पड़े। गड़गड़ाहट और नज़दीक आती लगी। फिर बड़ी आवाज़। हवाई जहाज चक्कर लगा रहे थे।

'तुम आगे बढो।'—शोया बोली—'मैं इनको इधर-उधर बहका दूँगी। तुम आगे भागो।'

शोया जानती थी कि अब छुटकारा नहीं। वह ख़ुद ख़तरे में पड़ सकती थी।

'शोया!'—जनरल बोला।

शोया सारी परिस्थितियों से परिचित थी। भागना बेकार लगा। वह चुपचाप जनरल के नजदीक लग कर खड़ी हो गई।

सामने एक बम गिरा। रेत ऊपर उठी। चारों ओर रेत फैल गई।

फिर एक जहाज उनके ऊपर मँडराया। काफ़िले के सरदार ने पास आ घबरा कर कहा—'भागो, वक़्त नहीं है।'

शोया निश्चित खड़ी थी।

सरदार ने फिर कहा—'पगली न बन।' ख़ुद आगे सरपट घोड़ा दौड़ाया।

शोया स्थिर थी। उसने अपनी 'पिस्टल' उठाई और जहाज़ की टङ्की पर निशाना साधा।

जनरल ने कहा—'यह क्या शोया?'

शोया बोली—'छोड़ दो, चुप रहो। हमारे साथ इनको लड़ाई लड़ने का क्या हक है। क्यों ये हमारी स्वतंत्रता कुचलना चाहें?'

शोया समझदार और जानकार उसे लगी। जहाज एक ओर हटा। फिर कुछ बम बरसाए। चारों ओर रेत का गुबार। शोया और जनरल उस रेत में छुप गए।

'शोया।' जनरल ने पुकारा।

देखा, सामने जहाज़ खड़ा था। दो अफसर उसपर से उतरे। शोया ने अपनी 'पिस्टल' उनकी ओर की।

जनरल चौंक कर बोला—'शोया।'

धाँय—धाँय—धाँय—गोली चली। एक उनमें गिर पड़ा। शोया ने देखा, 'पिस्टल' खाली थी। उसने गले से तावीज निकाल खोला, एक गोली निकाल, मुँह में डालने को थी कि जनरल ने टोका—'शोया, ख़ुदकशी!'

शोया ने गोली फेंक दी।

इसी बीच दूसरा अफ़सर नजदीक आकर बोला—'आधीनता।' शोया ने अपनी खाली पिस्टल देते घूरते कहा—'ख़ाली है।'

'आगे बढ़ो।' अफ़सर बोला।

दोनों चुपचाप आगे बढ़े। जहाज़ में चलते एक बार शोया ने रेगिस्तान के चारों ओर देखा। एक सूनी दृष्टि उस पर डाली।

दो घण्टे बाद वह जापानी सेना में पहुँच गए। साँझ होने को थी। जनरल का सारा बदन दुख रहा था। वह उठ नहीं सका। वह उतारा गया। शोया साथ थी, शोया को दो सिपाही ले गए। जनरल आगे बढ़ने को था कि कमाडिंग ने रोक लिया।

कमाडिङ्ग ने अपने मोटे हार्न के चश्मे को अलग हटाते कहा—'बैठ जाओ।'

जनरल बैठ गया।

'तुम दुश्मनों के हाथ पड़ गए थे?'

'हाँ'

'कितने आदमी?'

'चालीस'

'और सब ?'

'मर गए। मुझे शोया ने बचाया। मैं उम्मीद करता हूँ कि उसके प्रति ठीक बर्ताव होगा।'

'तुमको अभी यहाँ रहना होगा। कुछ दिन मेडिकल बोर्ड में रहना ज़रूरी है।'

'एक बात..'

'क्या '

'शोया ?'

'तुम अब जा सकते हो।'

पन्द्रह रोज बाद।'

शोया के ऊपर कमांडिंग हिसोंग, जनरल और एक अफसर के 'ट्रिब्यूनल' ने कुछ चार्ज लगाए।

पहला—

जापान के प्रति उसकी घृणा।

दूसरा—

जापानी वायुयान के अफसर की हत्या।

तीसरा—

भागने की कोशिश करते दो चौकीदारों की छुरी से हत्या।

एक मत से सब ने मौत की सज़ा दी!

जिस टोली ने उसे गोली से उड़ाया, उसका नायक जनरल था।

शोया की लाश भी रेत के खुले मैदान में पड़ी रही।

और उसी रात जनरल कहाँ चला गया। आज तक वह लौटा नहीं है!

❀ ❀ ❀

गीत

[श्रीमती विद्यावती 'कोकिल']

प्रति पल चढ़ता बढ़ता क्यों ?
मैं भूल गई थी पथ अपना
था प्रश्न कि जाऊँ किधर ? उधर ?
महलों मे ?
हाँ, पत्थर की मूक दीवारों मे

अति कोमल मानव हृदय लिए
धन के पट देकर बन्दी-सम
मृदु-जग से नाता दूर किए
सोने का पिंजड़ा औ' नभचर।
मैं भूल... . .
था .. . . किधर ? उधर !

यश के गौरव के पर्वत पर
चढ़ जाऊँ या नेतृत्व लिए
इन रूढ़ि-वनों से टकराऊँ
क्या रोषित, उन्नत भाल किए
हो जाय व्यवस्था तितर-बितर।
या इधर . .

वह गृह, शैय्या, हीन शीत की रातें जहाँ बिताता है
कुहरे की चादर ढक कोई सो जाने को कह आता है
ओसों का सुघर गलीचा नव बुनता बिछता सा जाता है
पर कोई उस दुखियारे का प्रात संदेशा लाता है
या जाड़ा मैं प्रस्तुर सत्वर ?

भारत में सामाजिक प्रजातन्त्र

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल-एल० बी०]

आज अखिल विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में प्रजातन्त्र प्रणाली का अन्त हो चुका है और उसके स्थान पर रूस, जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया आदि राष्ट्रों में अधिनायक-तन्त्र की स्थापना हो गई है। परन्तु विश्व की वर्तमान परिस्थिति में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और इङ्गलैण्ड की प्रजातन्त्र-पद्धति में अविचल श्रद्धा है। इसका प्रमुख और एकमात्र कारण यह है कि अङ्गरेज़ प्रजातन्त्र को केवल मात्र राजनैतिक सिद्धान्त के रूप में ही ग्रहण नहीं करते, उसे सामाजिक जीवन का एक पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त स्वीकार करते हैं।

वास्तव में प्रजातन्त्र का सिद्धान्त केवल मात्र राजनैतिक सिद्धान्त नहीं है, अपितु वह समाज का एक आदर्श सिद्धान्त है। यदि आप संसार के राष्ट्रों की शासन-पद्धतियों का अध्ययन करें तो आपको यह ज्ञात हो जायगा कि प्रजातन्त्र प्रणाली उन राष्ट्रों में ही सफलीभूत हुई है, जिनके समाज ने उसे सामाजिक जीवन का आदर्श स्वीकार किया। प्रजातन्त्र का अर्थ है बहुमत का शासन। जो शासन प्रजा का हो, प्रजा द्वारा हो और प्रजा के लिए हो, वह प्रजातन्त्र कहलाता है। प्रजातन्त्र के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने सर्वतोमुखी विकास एवं उत्कर्ष के लिए समान साधन, समान अवसर, और समान सुविधाएँ प्राप्त होने की व्यवस्था होती है। प्रत्येक व्यक्ति के समानता के अधिकार के आधार पर ही प्रजातन्त्र का जीवन निर्भर है। एकतन्त्र, अधिनायक-तन्त्र और कुलीन शासन प्रणाली अथवा पूँजीवादी प्रजातन्त्र के अन्तर्गत राज्य का लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति के सुख और आनन्द की उपलब्धि नहीं होता। प्रजातन्त्र राज्य बिना किसी प्रकार के भेद भाव के अपने नागरिकों के आनन्द और सुख के लिए समान अवसर और सुविधाएँ प्रदान करता है।

अमेरिका की क्रान्ति के समय पाश्चात्य जगत में यथार्थ प्रजातन्त्र का जन्म हुआ। क्रान्ति के समर्थकों ने सर्वप्रथम प्रजातन्त्र के सिद्धान्त को अपनाया। स्वाधीनता की घोषणा में उन्होंने यह स्पष्टतः घोषित किया कि आनन्द-प्राप्ति सब व्यक्तियों का जन्मसिद्ध अधिकार है। और राज्य का यह ध्येय है कि वह अपनी प्रजा के लिए उपर्युक्त अधिकार को सुरक्षित रखे। वैसे देखने में यह सिद्धान्त सीधा और सरल-सा प्रतीत होता है, परन्तु विचार करने पर यह ज्ञात होगा कि यह सिद्धान्त क्रान्तिकारी होने के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन में अत्यन्त कठिन है। आज हमारे देश में जो सामाजिक विषमता, असमानता और जातिगत भेदभाव दृष्टिगत होता है, उसका प्रमुख कारण है उपर्युक्त सिद्धान्त की समाज द्वारा अवहेलना। हिन्दुओं के वर्तमान सामाजिक सङ्गठन से यह प्रगट होता है कि वह चाहे जो कुछ हो, परन्तु प्रजातन्त्रवादी नहीं। आज के हिन्दू-समाज का सङ्गठन ऐसा है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का बिना किसी भेद-भाव के आध्यात्मिक, सांसारिक अथवा भौतिक सुख-प्राप्ति के लिए समान साधन, अवसर और सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दू समाज में ५ करोड़ से अधिक व्यक्तियों के समुदाय को 'दलित' या 'हरिजन' स्वीकार कर उनके साथ भेद-भाव-पूर्ण व्यवहार करना यह सिद्ध करता है कि समाज में जन्म-मूलक कृत्रिम विषमता की

प्रबलता है और व्यक्ति के लिए आत्म साधन द्वारा समाज में गौरव-पूर्ण पद प्राप्त करना सम्भव नहीं।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वर्तमान समय में प्राचीन वैदिक वर्ण-व्यवस्था का अन्त हो चुका है और यह भी सूर्य के समान स्पष्ट है कि वर्तमान सामाजिक परिस्थिति में प्राचीन वैदिक वर्ण-व्यवस्था के पुनरुद्धार का प्रयत्न व्यर्थ है। वैदिक वर्णव्यवस्था वास्तव में प्रजातन्त्रात्मक संस्था थी। आर्य समाज के संस्थापक, धार्मिक क्रान्ति के अग्रदूत, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस वर्ण-व्यवस्था के पुनरुत्थान के लिए अथक प्रयास किया। परन्तु उन्हे उस दिशा में सफलता नहीं मिली। आज महात्मा गाँधी भी वर्ण व्यवस्था की पुनर्स्थापना का स्वप्न देख रहे हैं। परन्तु वह इस स्वप्न को सत्य सिद्ध कर सकेंगे, इसमें सन्देह है।

जात-पाँत की कुप्रथा ने हिन्दू-समाज के सङ्गठन को अत्यन्त विषैला बना दिया है। जात-पाँत की प्रथा समाज के लिए अनेक विधि हानिप्रद तो है ही, पर साथ-साथ वह प्रजातन्त्र के विरुद्ध भी है। जिस समाज में जात-पाँत की उग्रता इस सीमा तक पहुँच जाय कि जाति ही धर्म, जाति ही राजनीति, जाति ही पुण्य और दया, जाति ही लोकमत, जाति ही मानवता, जाति ही देश-भक्ति और जाति ही समाज का आदर्श हो, तो उस समाज में प्रजातन्त्र कदापि सफल नहीं हो सकता। सच्चे प्रजातन्त्र शासन का विकास एवं उत्कर्ष सच्चे प्रजातन्त्र-वादी समाज में ही होता है। जो समाज प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्तों की अवहेलना करता है, वह राजनैतिक प्रजातन्त्र को अपनी शासन-प्रणाली में स्थान दे सकेगा, इसमें सन्देह है।

यद्यपि आज पर्यन्त काङ्गरेस ने भारतवासियों के लिए 'स्वराज्य' अथवा 'पूर्ण स्वराज्य' की रूप रेखा निर्धारित नहीं की और न स्पष्ट रूप से यही बतलाया कि भारत के स्वराज्य का वास्तविक स्वरूप क्या होगा, तथापि कॉङ्गरेस ने अपने फैजपुर के अधिवेशन में यह तो घोषित कर ही दिया है कि कॉङ्गरेस भारत में पूर्ण प्रजातन्त्रवादी राज्य की स्थापना करना चाहती है।* जब राष्ट्रीय महासभा का लक्ष्य भारत में 'पूर्ण प्रजातन्त्र' की स्थापना करना है, तब यह अत्यन्त वाञ्छनीय ही नहीं, प्रत्युत आवश्यक है कि भारतीय समाज प्रजातन्त्र को समाज का एक जीवित सिद्धान्त स्वीकार करे। समाज का सङ्गठन प्रजातन्त्रवादी बनाया जाय। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह किसी धर्म, मत, जाति या सम्प्रदाय का क्यों न हो, आत्मोन्नति और आनन्द-प्राप्ति के लिए पूर्ण सुयोग मिलना चाहिए।

समानता

प्रजातन्त्र के तीन मूल तत्व हैं—समानता, स्वाधीनता और बन्धुत्व। समानता से यह अभिप्राय नहीं है कि किसी समाज के सब व्यक्ति समान हैं। सब व्यक्तियों का समान होना तो सम्भव नहीं। आप चाहे जिस दृष्टिकोण से विचार करें, समाज के सब व्यक्ति हर दशा में समान हो ही नहीं सकते। तब समानता का क्या अर्थ है। प्रजातन्त्र व्यक्तियों को कुछ विशेष राजनैतिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समान स्वीकार करता है। इसका अधिक स्पष्ट अर्थ यह है कि प्रजातन्त्र के अन्तर्गत समाज के सब व्यक्तियों को समान सामाजिक और राजनैतिक अधिकार एवं सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, जिनके उपयोग से वे सुख प्राप्त कर सकते हैं। सामाजिक अथवा राजनैतिक क्षेत्र में व्यक्तियों को केवल 'व्यक्ति' के रूप में माना जाना चाहिये, उन्हें किसी वर्ग विशेष के सदस्य के रूप में नहीं।

यदि राजनैतिक दृष्टि में शासन, व्यक्तियों को पूँजीवादी और सर्वहारा के वर्गों में विभाजित कर

---

* पं० जवाहरलाल नेहरू ने अध्यक्ष-पद से फैजपुर कॉङ्गरेस में जो अभिभाषण दिया था, उसमें यह स्पष्ट रूप से कहा था कि—"आज कॉङ्गरेस भारत में पूर्ण प्रजातन्त्र की स्थापना चाहती है और प्रजातन्त्रवादी राज्य की स्थापना के लिए युद्ध करेगी।... समाजवाद के लिए नहीं। ..आज हमारे लिए आवश्यक समस्या है राजनैतिक स्वाधीनता और प्रजातन्त्रवादी राज्य की स्थापना।"

पूँजीवादी वर्ग को अधिक विशेषाधिकार, सुविधाएँ और अवसर प्रदान करे और दूसरी ओर सर्वहारा-वर्ग—धन-हीन वर्ग—के लिए वैसे विशेषाधिकार और सुविधाएँ प्रदान न की जायें, तो यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य सब व्यक्तियों को समान अवसर, समान साधन और समान सुविधाएँ प्रदान करता है। यही बात समाज के सम्बन्ध में लागू होती है। जिस समाज में केवल जन्म और जाति के कारण ही कोई व्यक्ति श्रेष्ठ, उच्च और गौरव-पूर्ण पद प्राप्त कर सके और उस कारण समाज उसे विशेषाधिकार, विशेष सुविधाएँ और विशेष साधन प्रदान करे और दूसरी ओर धन-हीन व्यक्तियों एवं तथाकथित 'दलित वर्ग' के व्यक्तियों को केवल निर्धन कुल या जन्म-जाति के कारण समाज में श्रेष्ठ और उच्च पद प्राप्त करने की सुविधाएँ न दी जायँ, तो ऐसी समाज-व्यवस्था प्रजातन्त्रवादी नहीं हो सकती। यह ध्रुव सत्य है कि जब-जब राज्य या समाज व्यक्तियों को, व्यक्तियों के रूप में न मान कर, वर्ग-विशेष के रूप में मानता है, तब ही राज्य या समाज में सामाजिक या राजनैतिक विषमता का प्रादुर्भाव होता है।

एक पाश्चात्य लेखक ने लिखा है —

"यह बात विचारणीय है कि जहाँ राज्य या समाज प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में मानता है—किसी वर्ग-विशेष के सदस्य के रूप में नहीं—वहाँ प्रजातन्त्र और समानता होती है। जहाँ राज्य या समाज व्यक्तियों को व्यक्तियों के रूप में न मान कर किसी वर्ग-विशेष के सदस्य के रूप में मानता है वहाँ असमानता उत्पन्न होती है और उसके साथ एक ऐसी प्रणाली का जन्म होता है जो प्रजातन्त्र की विरोधिनी होती है।"

प्रजातन्त्र का उद्देश केवल इसीसे पूरा नहीं हो जाता कि सरकार प्रत्येक व्यक्ति को वयस्क मताधिकार प्रदान कर देती है। प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को मताधिकार मिल जाना इस बात का प्रमाण नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति को राजनैतिक क्षेत्र में समानता प्राप्त होगई। जब तक मतदाताओं को अपने देश की समाज-नीति और राजनीति का प्राथमिक ज्ञान न हो, जब तक उन्हें राजनैतिक समस्याओं में रस और दिलचस्पी न आवे, तब तक यह सम्भव नहीं कि वे मताधिकार द्वारा युक्त समानाधिकार से लाभ उठा सकेंगे। अत वयस्क मताधिकार से लाभ उठाने के लिए यह अनिवार्य है कि जन-शिक्षा का व्यापक प्रसार व प्रचार हो। प्रजातन्त्र की सफलता का रहस्य जाग्रत और चेतनाशील शिक्षित लोकमत में है। अमेरिका और ब्रिटेन में प्रजातन्त्र को जो सफलता मिली है, उसका कारण है वहाँ का जाग्रत और शिक्षित लोकमत। यद्यपि नवीन शासन विधान के अन्तर्गत भारत में मतदाताओं की संख्या ३½ करोड़ हो गई है, तथापि भारत में घोर निरक्षरता और शिक्षा के अभाव के कारण इस सङ्कुचित मताधिकार का व्यक्तियों द्वारा सदुपयोग नहीं होता।

विगत वर्ष (१९३७) के प्रारम्भ में भारत के ११ प्रान्तों में प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदों के लिए सामान्य निर्वाचन हुये थे। इन निर्वाचनों की गति-विधि से यह स्पष्ट प्रगट होता है कि भारतीय मतदाता भारत के राजनैतिक प्रश्नों से कितने अनभिज्ञ हैं। वे इतने अज्ञान हैं कि उन्हें कोई भी राजनैतिक दल अपने अनुचित प्रभाव, आतंक और प्रलोभन के बल से आसानी से मत प्राप्त कर सकता है। गरीबी और निरक्षरता के कारण भारतवर्ष में राजनैतिक विषमता अत्यधिक उग्रता से समाज की दुर्दशा कर रही है। ज़मींदार, पूँजीपति और व्यापारियों के मुक़ाबिले दीन हीन किसानों, मज़दूरों और शोषित वर्गों को सुविधाएँ और सुयोग कम दिए जाते हैं। हमारे देश में सरकार को सबसे अधिक आमदनी गरीब जनता पर लादे गये करों से प्राप्त होती है परन्तु उनकी सुख सुविधा में सबसे कम धन व्यय किया जाता है।

सामाजिक समानता के मार्ग में एक सबसे बड़ी बाधा है। वह है समाज में आर्थिक विभाजन की व्यवस्था। आर्थिक विभाजन की समस्या को प्रजातन्त्र बड़ी उत्तमता से सुलझाता है, परन्तु प्रजातन्त्रवादी राष्ट्र पूँजीपतियों से मिल कर, षड्यन्त्र रच कर आर्थिक व्यवस्था में घोर असमानता पैदा कर रहे हैं, यही कारण है कि वैभवशाली संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ब्रिटेन में आज हमें आर्थिक विषमता का नग्न नृत्य दिखलाई दे रहा है। वहाँ के पूँजीपति मजदूरों और निर्धन श्रेणी का कैसा शोषणता

से शोषण कर रहे हैं तथा वहाँ बेकारी कैसे भयंकर रूप में मौजूद है, इसे सभी जानते हैं। इस युग में भी कुछेक प्रजातन्त्रवादियों की यह धारणा है कि देश में आर्थिक व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी रहने पर भी राजनैतिक एवं सामाजिक समानता की स्थापना हो सकती है। इन प्रजातन्त्रवादियों का यह विचार है कि मताधिकार देशव्यापी कर दिया जाय। शिक्षा के क्षेत्र में एवं अन्य क्षेत्रों में सामाजिक सुविधाएँ प्रदान कर दी जायें और पूँजीपतियों एवं धनी वर्ग पर गरीबों की अपेक्षा अधिक टैक्स लगा दिया जाय तो प्रजातन्त्र की स्थापना हो सकती है। उद्योगों और व्यापारों की दशा जैसी इस समय है, वैसी ही बनी रहे। जमींदारों की स्थिति जैसी आज है, वैसी ही भविष्य में बनी रहे। किसान अपनी पसीने की कमाई जमींदार को सौंपता रहे। ऐसी स्थिति में सच्चा प्रजातन्त्र पनप नहीं सकता। उपर्युक्त प्रजातन्त्रवादियों का विचार मूलतः गलत है।

आज प्रजातन्त्रवादी अमेरिका और ब्रिटेन में आर्थिक विषमता, भयङ्कर बेकारी, और गरीबी का जो ताण्डव नृत्य हो रहा है उसका एकमात्र कारण यह है कि इन देशों की सरकारों ने सामाजिक समानता की उपेक्षा करके प्रजातन्त्र का पूँजीवाद से सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। फलतः आज का प्रजातन्त्र पूँजीवाद के पापों से पीड़ित है। आज यूरोप में और प्रजातन्त्रवादी देशों में प्रजातन्त्र के विरुद्ध जो भावना विद्रोह का रूप धारण कर चुकी है, उसका कारण यह है कि प्रजातन्त्र की पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था से जनता या प्रजा सन्तुष्ट नहीं है। एक विद्वान अङ्गरेज़ लेखक का यह कथन सत्य है कि —

"आय या सम्पत्ति विभाजन में यह असमानता स्पष्टतः प्रजातन्त्रवादी समानता की किसी भी प्रणाली की स्थापना को कठिन बना देती है।"

नागरिक स्वाधीनता

प्रजातन्त्र का दूसरा तत्व है नागरिक स्वाधीनता। प्रजातन्त्र नागरिक स्वाधीनता की रक्षा के लिए सदैव सन्नद्ध रहता है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रजातन्त्र और नागरिक स्वाधीनता का विकास साथ-साथ हुआ है। इङ्गलैण्ड में पहले सुधार-कानून से पूर्व सिद्धान्त रूप में समग्र नागरिक अधिकारों का आदर किया जाता था। विशुद्ध सिद्धान्त की दृष्टि से प्रजातन्त्र और नागरिक स्वाधीनता दोनों सर्वथा भिन्न हैं, परन्तु व्यवहार में ये दोनों अभिन्न हैं। भाषण-स्वातन्त्र्य, लेखन-स्वातन्त्र्य, सम्मेलन-स्वातन्त्र्य, मत-स्वातन्त्र्य, व्यक्ति स्वातन्त्र्य, सम्पत्याधिकार, आदि प्रमुख नागरिक अधिकार हैं, जो राज्य द्वारा नागरिकों के लिए सुरक्षित होते हैं। प्रजातन्त्र-वादी की नागरिक स्वाधीनता की भावना अति सरल और सीधी-सी है। परन्तु व्यवहार में नागरिक स्वाधीनता की भावना कई असाधारण कठिनाइयाँ प्रस्तुत करती है। प्रजातन्त्र-वादी का यह विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति को, जहाँ तक सम्भव हो, स्वेच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सरकार या समाज को व्यक्ति के कामों में, जहाँ तक सम्भव हो, बहुत कम हस्तक्षेप करना चाहिये। यह तो हुई एक विचारधारा। दूसरी विचारधारा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति को इच्छानुसार कार्य करने के अधिकार का आदर करना चाहिए और इसलिए उसे दूसरे व्यक्ति के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए जैसे व्यवहार की वह उससे आशा करता है। प्रजातन्त्रवादी की यह धारणा है कि नागरिक उस समाज में अधिक सुखी, अधिक विवेकशील और अधिक चेतन एवं सभ्य होंगे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समाज एवं राष्ट्र-निर्माण में योग देने के लिए समान अवसर दिया जाता है और उन्हें राज्य द्वारा यथासम्भव अपने भाग्य-निर्माण के लिए स्वतन्त्रता दे दी जाती है। जिस समाज या राज्य में स्वभाग्य-निर्माण या जीवन में आनन्द-प्राप्ति के लिए स्वतन्त्रता नहीं मिलती, उसके नागरिकों में सर्वश्रेष्ठ मानवी सभ्यता, तेजस्वी व्यक्तित्व और विचार-स्वातन्त्र्य का विकास नहीं होता।

प्रजातन्त्र में नागरिकों की स्वाधीनता के लिए क्या संरक्षण है? वह कौनसी सत्ता है जो नागरिकों को यह आश्वासन देती है कि वे निर्भयतापूर्वक अपनी स्वाधीनत

का भोग कर सकेंगे, अपने गृह को अपना गृह कह सकेंगे। जो चाहेंगे, सो समाचार-पत्र में छाप सकेंगे अथवा अपने इष्ट-मित्रों और बन्धुओं से स्वतन्त्रता से मिल सकेंगे। उन कट्टरपथियों एव हिंसावादियों से, जो हमारे विचारों से सहमत नहीं, हमारी कौन रक्षा करता है? हमारे लेखन एवं साहित्य की रक्षा कौन करता है? हमें बन्दी गृह में जबरदस्ती ठूँस दिए जाने से कौन रोकता है? पुराने युग के विचारों के समर्थक यह तुरन्त कह देंगे—बल और शस्त्र। परन्तु आज के युग का प्रजातन्त्रवादी, जो स्वदेश के कानून तथा अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून में श्रद्धा रखता है, ऐसा कदापि विचार नहीं कर सकता। प्रजातन्त्रवादी का यह विश्वास है कि कानून उसकी रक्षा करता है—शस्त्र नहीं। कहने को यह कहा जा सकता है कि शस्त्र और शक्ति का राज्य बीत गया। आज तो देश में और विश्व में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कानून का राज्य है। परन्तु यह कथन अधिकाश में, व्यवहार में, असत्य सिद्ध हो रहा है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में कानून का राज्य होता तो क्या इटली अबीसीनिया को क्रूरतापूर्वक शस्त्र-बल से गुलाम बना लेता? क्या जापान चीन के प्रान्तों पर अपने साम्राज्यवाद का आतङ्क जमाने का दुस्साहस करता? आज राष्ट्रसङ्घ के प्रति विश्व के राष्ट्रों में इतनी अश्रद्धा पैदा न हो जाती?

देशों के अन्तर्गत भी कानून का राज्य नहीं है—बल और सम्पत्ति का राज्य है। दूसरे देशों की बात जाने दीजिये। अपने देश की न्याय प्रणाली पर ही दृष्टिपात करें। भारत में न्यायालय नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए स्थापित हैं, यह कहा जाता है। परन्तु आज के न्यायालय ऐसे स्थान हैं, जहाँ न्याय का व्यापार होता है। जिसके पास धन है, बल है, जिसका राज्य में कोई गौरव है, उसके लिए न्यायालय में न्याय है। परन्तु गरीबों, मजदूरों, एव किसानों के लिए न्यायालयों में न्याय बड़ी कठिनाई से मिल सकता है।

बन्धुत्व

प्रजातन्त्र का तीसरा तत्व है बन्धुत्व। समाज में सच्चे बन्धुत्व की स्थापना उसी समय हो सकती है, जब कि नागरिक समानता और स्वतंत्रता का भोग करते हों। जिस समाज या राज्य में नागरिकों में समानता की भावना नहीं, जिस राज्य या समाज में नागरिक अधिकार सुरक्षित नहीं, उसमें बन्धुत्व की स्थापना सम्भव नहीं हो सकती। बन्धुत्व समानता एवं स्वतंत्रता से पैदा होता है। शोषक और शोषित वर्ग में बन्धुत्व पैदा नहीं हो सकता। बन्धुत्व समान विचार, समान संस्कृति, सामान्य भावना और सहानुभूति के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। जब तक समाज आर्थिक दृष्टि से पूँजीवादी और निर्धन वर्गों के रूप में विभाजित रहेगा, जब तक प्रत्येक वर्ग के हित और स्वार्थ एक दूसरे के विरोधी रहेंगे, तब तक उनमें बन्धुत्व का भाव सम्भव नहीं।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रजातन्त्र एक श्रेष्ठ राजनैतिक और सामाजिक आदर्श है। परन्तु आज प्रजातन्त्र का जीवन सङ्कट में है। कॉङ्ग्रेस ने, ऐसी स्थिति में, भारत में प्रजातन्त्रवादी राज्य की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित करके भारतवासियों और विशेष रूप से हिन्दू समाज के कन्धों पर एक बड़ा उत्तरदायित्व लाद दिया है। अतः प्रत्येक भारतीय का यह कर्तव्य है कि वह भारतीय समाज को प्रजातन्त्रवादी बनाने के लिए यथाशक्ति चेष्टा करे। जब तक समाज प्रजातन्त्रवादी न बनेगा, तब तक राज्य प्रजातन्त्रवादी नहीं बन सकता।

०

हिन्दू-समाज पर वैवाहिक सङ्कट

[श्री० सन्तराम, बी० ए०]

अहमदगढ़ डकैती अभियोग मे दण्डित राजनैतिक कैदी श्रीयुत शेरजङ्ग ने जेल से निकलते ही लाहौर के श्रीयुत फकीरसिह एडवोकेट की पुत्री कुमारी निर्मला एम० ए० से विवाह करके पञ्जाब के सुशिक्षित नारी-समाज मे एक बड़ा भारी तहलका मचा दिया है। कहते है कि श्रीयुत शेरजङ्ग की पहले से दो पत्नियाँ मौजूद है, इस पर भी आपने कुमारी निर्मला से तीसरा ब्याह किया है। इसी से नारी-समाज उनसे रुष्ट और क्षुब्ध हो उठा है। कई सुशिक्षित देवियो ने लाहौर के हिन्दी दैनिक पत्रो मे लेख लिखकर शेरजङ्ग और निर्मला के इस कर्म की घोर निन्दा की है। और जो कॉङ्ग्रेसी नेता इनके विवाह मे सम्मिलित हुए थे, उनको भी आड़े हाथो लिया है। कॉङ्ग्रेसी नेताओ ने तो यह कह कर कि हमे शेरजङ्ग महाशय के पहले विवाहो का कुछ भी ज्ञान न था, यदि हमे पहले से ज्ञान रहता तो हम कभी सम्मिलित न होते, अपने को बरी कराने का प्रयत्न किया है, परन्तु वर और वधू पर अभी तक भी स्त्रियो की ओर से बाण-वर्षा हो रही है। देशभक्त समझ कर जो कॉङ्ग्रेसी लड़कियाँ पहले श्री शेरजङ्ग के प्रति पूज्यबुद्धि रखती थी वही अब उनसे अतीव घृणा करने लगी है। मेरे पडोस मे एक सुशिक्षिता देवी रहती है। उन्होने श्री० शेरजङ्ग का फोटो चौखट मे जड़वाकर अपने सिङ्गार-भवन मे रख छोड़ा था। कुमारी निर्मला का पाणिग्रहण करने का समाचार पाते ही उन्होने उस फोटो और चौखट को तोड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला है।

श्री० शेरजङ्ग और श्रीमती निर्मला का उत्पन्न किया हुआ संक्षोभ अभी शान्त नही होने पाया था कि वैसा ही एक और सवाद सुनने को मिला। पत्रो मे यह बात प्रकाशित हुई है कि लाहौर के मिशन कॉलेज के कोई प्रोफेसर जिनकी पहली पत्नी जीती है, अपनी एक ग्रेजुएट शिष्या से विवाह करने जा रहे है। इस पर सत्याग्रह करके उनके विवाह को रोकने के उपाय सोचे जा रहे हैं। स्त्रियाँ मारे क्रोध के पत्रो मे प्रोफेसर महोदय और उस लड़की के विरुद्ध विष-वमन कर रही है।

भारत मे यह नारी-स्वातन्त्र्य का समय है। नारियो के अधिकारो की रक्षा के लिए सब कही आन्दोलन चल रहे है। स्त्रियो पर पुरुषो के अत्याचारो का वर्णन करके उनको पुरुषो के विरुद्ध भड़काया जा रहा है। पुरुष को उत्पीड़क और स्त्री को उत्पीड़ित प्रकट किया जा रहा है। नारी के प्राचीन भारतीय आदर्श को निन्दित ठहरा कर नवीन योरोपीय आदर्श उसके सामने रखा जा रहा है। बहुपत्नीत्व की निन्दा करके एक पत्नीत्व का बखान किया जा रहा है। ऐसी दशा मे श्री० शेरजङ्ग और उक्त प्रोफेसर महोदय के प्रति नारी-समाज का रोष-प्रदर्शन स्वाभाविक ही है।

परन्तु पुरुषो की निन्दा या उनके प्रति रोष प्रकट कर देने से ही काम नही चल सकता। हिन्दू-समाज पर जो इस समय वैवाहिक सङ्कट आया है उसको दूर करने के लिए उसके मूल कारण पर विचार करना होगा। उपर्युक्त दो केस तो नमूना

मात्र है, जो ज़ोर के साथ जनता के सामने आ गये है, अन्यथा ऐसी घटनाएँ तो आए-दिन होती ही रहती है।

पहले हम श्रीयुत शेरजङ्ग के केस को लेते है। जहाँ तक मैने सुना है, उनकी शिक्षा मेट्रिक्यूलेशन से अधिक नही और न उन्हे कुँवर-कन्हैया ही कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ उन पर गोपियो की तरह लट्टू हो। दर्शन-शास्त्र की परीक्षा मे पञ्जाब-विश्वविद्यालय के एम० ए० के समस्त परीक्षार्थियो मे प्रथम आने वाली लडकी का, उनकी पहली दो स्त्रियो के रहते हुए भी स्वेच्छा से तीसरी पत्नी बनने के लिए लालायित हो उठना विशेष कारण के बिना नही हो सकता। बात यह है कि स्त्रियो को, विशेषतः पढ़ी-लिखी स्त्रियों को पुरुष का केवल शारीरिक सौन्दर्य ही नही, वरन् उससे भी बढ़ कर उसकी वीरता और ख्याति आकर्षित करती है। जिन दिनो फ्रान्स का मराक्को के साथ युद्ध हो रहा था, मराक्को के विद्रोही नेता अब्दुल करीम की वीरता और रण-कौशल के समाचार बडे आकर्षक और सुन्दर शब्दो मे फ्रान्सीसी सवाद-पत्रो मे छपा करते थे। उन वर्णनो को पढ कर बीसियो फ्रेञ्च सुन्दरियो ने अब्दुल करीम को पत्र लिखे थे और अपने से विवाह करने की प्रार्थना की थी, यद्यपि वह फ्रान्स का कट्टर शत्रु था। इसी प्रकार, जान पड़ता है, श्रीमती निर्मला देवी को भी श्री० शेरजङ्ग की उस ख्याति ने, जो उन्हे राजनैतिक कैदी बनने से प्राप्त हुई है, आकर्षित किया है। एक बार मन में कामना उत्पन्न हो जाने पर स्त्री के लिए अपने को सँभालना कठिन हो जाता है। वह जाति, कुल, राष्ट्र, धर्म और मर्यादा को ठुकरा कर, वरन् अपने सारे भविष्य को सङ्कट मे डाल कर अवाञ्छनीय पुरुष का भी पाणिग्रहण कर लेती है। निर्मला और शेरजङ्ग की जैसी अवस्थाओ को एकदम रोक देना सम्भव नही। ऐसी घटनाएँ थोड़ी बहुत होती ही रहेगी। आवश्यकता केवल इस बात की है कि ऐसे लोगो को नेता के पद पर प्रतिष्ठित नही होने देना चाहिए। ऐसे लोग समाज में सदा रहते ही है। परन्तु अनिष्ट का कारण ये तब बनते है, जब इनकी नेता के रूप मे पूजा होने लगती है। हम लोगो की भूल यह है कि जो व्यक्ति एक बात मे नेता या निपुण होता है, हम उसे दूसरी सभी बातो मे भी नेता और निपुण मान लेते है। श्री० जवाहरलाल जी राजनीति के पण्डित है, इसलिए वे विज्ञानाचार्य और वेद के पारङ्गत पण्डित भी है, ऐसा मान लेना जितना हास्यजनक है, उतना ही श्री० शेरजङ्ग जैसे व्यक्तियो को, केवल जेल चले जाने के कारण, नेता मान लेना भी है। इससे समाज की घोर हानि होती है।

अब दूसरा प्रोफेसर महोदय का केस लीजिए। एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री करना इसलिए बुरा है कि इससे सामाजिक जीवन मे गड़बड़ फैलने का डर रहता है, अन्यथा यह धर्म-शास्त्र की दृष्टि से कोई पाप नहीं। प्राचीन इतिहास मे हमे अनेक ऋषि-महर्षियो और राजा-महाराजो के ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनके एकाधिक पत्नियाँ थीं और जो समाज मे प्रतिष्ठित माने जाते थे। याज्ञवल्क्य और दशरथ का कभी इसलिए अपमान नही हुआ कि उनकी एक से अधिक पत्नियाँ थी। यह ठीक है कि सामान्य नियम एकपत्नीत्व का ही था, परन्तु इसके अपवाद भी बहुत थे। उद्देश्य यह था कि कोई ऐसा कर्म न होने पाये जिससे समाज की शान्ति और व्यवस्था भङ्ग होने का डर हो। इसलिए किसी स्त्री का बलात् या उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी पुरुष से विवाह कर देना सामाजिक पाप है। यदि स्त्री-पुरुष परस्पर सहमत हों और किसी दूसरे की हानि भी न होती हो तो उनका विवाह, चाहे वे युवा हो चाहे वृद्ध, कभी पाप नही कहला सकता। योरप मे बुड्ढे-बुढ़ियो से वरन् बालाओं तक से विवाह कर लेते है और आनन्द से रहते है। इससे उनके

समाज को भी कोई हानि नही होती। हम लोगो ने ईसाइयो की एकपत्नीत्व की प्रथा तो लेली, परन्तु उसके साथ 'तलाक' लेने को तैयार नही हुए। 'तलाक' की प्रथा प्रचलित किए बिना एक पत्नीत्व प्रथा कभी चल ही नही सकती। ईसाइयो मे यदि पति-पत्नी की नही पटती, तो वे तलाक द्वारा विवाह-सम्बन्ध विच्छेद करके नये साथी ढूँढ लेते है। परन्तु हिन्दू-समाज मे ऐसा नहीं हो सकता। इसका स्वभावतः परिणाम यह होता है कि परस्पर कलह के कारण दोनो का वैवाहिक जीवन दुःखमय हो जाता है, या वे एक दूसरे की मृत्यु की कामना करने लगते है, या व्यभिचार आरम्भ हो जाता है। रोग के कारण अशक्य स्त्री की अवस्था मे सब पुरुषो से हम आजन्म ब्रह्मचारी रहने या पुत्रदर्शन का मोह संवरण करने की आशा नही कर सकते। प्रत्येक व्यक्ति से इतने सयम और त्याग की आशा करना बुद्धिमत्ता नही। इसलिए सब लोगो को एक ही लाठी से न हॉक कर प्रत्येक मनुष्य की अवस्था पर अलग-अलग विचार होना चाहिए। फिर जो अवस्थाएँ ऐसी हो कि उनको दूसरी पत्नी करने की अनुमति देने मे समाज की कोई हानि न हो, उन्हे अनुमति देने मे कोई आपत्ति न होनी चाहिए। यदि ऐसा नही किया जायगा तो समाज मे घोर अनाचार और अत्याचार फैलेगा। अवस्था और समय के अनुसार सामाजिक नियमो मे संशोधन और परिवर्तन होता रहना आवश्यक है, तभी समाज स्वस्थ रह सकता है। वैवाहिक जीवन की अशान्ति का 'तलाक' कोई राम-बाण औषधि नही। इसमे भी बहुत सी खराबियाँ है। इसमे भी पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को ही अधिक हानि है। इसलिए यदि हिन्दू-समाज अभी 'तलाक' को स्वीकार करने को उद्यत न हो तो अच्छा यही है कि सामाजिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए, व्यक्तिगत अवस्था पर पृथक् पृथक् विचार करके, सच्ची दशाओ मे बहुपत्नीत्व की भी अनुमति दे दी जाय। इससे समाज मे उतनी खराबी नही फैलेगी जितनी कि 'तलाक' को स्वीकार न कर के एकपत्नीत्व पर ज़ोर देने से हो रही है। योरप या किसी दूसरे का अधानुकरण करने से लाभ नहीं हो सकता। लाभ इसी मे है कि हम दूसरो की अच्छी बातो को अपनी आवश्यकताओ और अवस्थाओ के अनुसार ढाल ले। न एकपत्नीत्व प्रत्येक अवस्था मे अमृत है और न बहुपत्नीत्व प्रत्येक अवस्था मे हलाहल। शिमला के पहाड़ी प्रान्त मे मैने एक स्त्री के पॉच-पॉच पति देखे है, और उनके घर मे इस प्रथा के कारण किसी प्रकार अशान्ति नही। इसलिए किसी बात को अच्छा या बुरा ठहराने के लिए अवस्थाओ पर विचार करना परमावश्यक है।



युवक कब और किससे विवाह करें ?

[श्री० प्रेमनारायण अग्रवाल, एम० ए०]

इन दोनों प्रश्नों पर सलाह देना ज़रा कठिन कार्य है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक ही बात ठीक उपयुक्त और उपयोगी नहीं हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निजी समस्यायें होती हैं, निजी दिक्कते और सुविधायें। दो व्यक्तियों की स्थिति एक सी होना बड़ी कठिन बात है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत बातों के हिसाब से प्रत्येक बात पर विचार करना चाहिये। जो बात एक के लिये लाभदायक है, दूसरे के लिये उतनी उपयोगी नहीं हो सकती और तीसरे के लिये वही बात बहुत खतरनाक साबित हो सकती है। ऐसी परिस्थिति में हम कुछ जनरल बाते लिखने का प्रयत्न करेंगे, जो ज्यादातर लोगों के मामले में लागू हो सकें।

हमारा निश्चित विचार है कि युवकों को शादी करने के पहिले शादी के लिये तैयारी करने का मौका मिलना चाहिये। इस मौके में वह अपने विवाहिक जीवन की ज़िम्मेदारियों को समझने का प्रयत्न करें और उनको निभाने के लिये तैयारी करे। बिना इनके जाने इस जीवन में प्रवेश करने से शायद उनको कुछ परेशानियाँ उठानी पड़े। जब वह इनके लिये अपने को तैयार कर चुके होंगे तब इनको विवाहिक-जीवन की दिक्कतों से हतोत्साह नहीं होना पड़ेगा। वह बाते एकाएक न होंगी, वरन् उनको वह जानते होंगे और उनको निभाने के लिये तैयार। तब इनको अपने कार्यों के लिये पश्चात्ताप करने की जरूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि वह तो इस सम्बन्ध में आने से पूर्व ही उनके बारे में सब कुछ जान चुके थे। वह उनकी उम्मीद में हो थे। अधिक से अधिक उन घटनाओं के होने में समय का अन्तर पड़ सकता है। यदि इस जीवन में दिक्कतें आईं तो उनसे वह विचलित न होकर उनका बहादुरी से मुकाबिला करेंगे और यदि वह न आईं तो इसकी उनको चिन्ता भी न होगी।

तैयारी के इस समय में वह अपने को भी प्रेमी समझ सकते हैं। उनको अपनी शक्तियों, कार्य-शैली पर भरोसा हो सकता है। अपनी रुचि का पता चल सकता है कि कौन सी चीज उन्हें पसन्द है या नापसन्द। अपनी समस्त परिस्थिति को वह इस समय समझ सकते हैं और इसके अनुकूल अपने भावी जीवन की कल्पना कर सकते हैं। अपनी इन बातों को जानकर वह यह भी निश्चय कर सकते हैं कि वह अपने लिये कैसी स्त्री चुनें, उसमें क्या-क्या गुण, विशेषतायें होनी चाहिये, और क्या-क्या बातें उसमें बिल्कुल न होनी चाहिये, जिससे उनका विवाहिक जीवन अधिक सफल तथा सुखी हो सके।

जिन प्रश्नों पर उन्हें इस समय विचार करना चाहिये वह प्रत्येक की परिस्थिति के अनुसार कम-ज्यादा, थोड़े-बहुत हो सकते हैं। पर उनको अपनी अवस्था, आर्थिक परिस्थिति, महत्वाकांक्षाओं, स्वास्थ्य आदि बातों पर अवश्य ही विचार कर लेना चाहिये। इन सब बातों को ध्यान में रखकर उनको अपनी शादी के प्रश्न पर विचार करना चाहिये। इन पर खूब विचार कर ही उन्हें यह तय करना चाहिये कि वह कब शादी करेंगे, कैसी लड़की से करेंगे, आदि अनेक बाते हैं। इन पर विचार करते समय उन्हें यह भी न भूलना चाहिये कि उनके इन कार्यों का प्रभाव समाज पर कैसा पड़ेगा, क्योंकि वह समाज के एक अङ्ग हैं। उनका समाज से घना सम्बन्ध है, बिना उनके समाज को हानि होगी और बिना समाज के वह रह नहीं सकते।

हम यह नहीं चाहते हैं कि स्कूल-कालिज से निकलते ही किसी युवक को शादी कर दी जाय, या उसी समय जब वह पढ़ रहा हो। इस हालत में शादी होने से वह इनकी ज़िम्मेदारी से अपरिचित रहता है, और इनको सम्हालने के लिये अपने को तैयार नहीं कर पाता। इस समय युवक अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं सोच सकते है। यदि सोचते भी हैं तो दुनिया में आकर। कालिज के वातावरण में सोची हुई बातों में भारी अन्तर का अनुभव करते हैं। उनको संसार का अनुभव हो, उसको बातें समझें, इसके लिये भी कुछ समय चाहिये। स्कूल कालिज में या इससे निकलने पर तुरन्त ही शादी हो जाने से इनके ऊपर यह नवीन ज़िम्मेदारी आने लगती है और वह प्राय उनसे परेशान होकर जिन्दगी की लड़ाई में उतने सफलतापूर्वक नहीं टिक पाते। आजकल के अनिश्चित संसार में उन्हें ज़िम्मेदारियों से लाद कर तैरने के लिये भेजना खतरा से खाली नहीं है। जब वह कुछ तैरना सीख लें, तब लादने से शायद पार लग भी जायँ। अतएव हम इस बात के पक्षपाती हैं कि युवकों को अपने अध्ययन के वातावरण को छोड़ने के बाद, दो-एक साल तक संसार के रुख को परख कर ही विवाह की ज़िम्मेदारियों के बोझ को सँभालने के लिए आगे बढ़ना चाहिये। जो लोग खूब तैरना सीख कर इसे सँभालते हैं, अन्यों की अपेक्षा अवश्य अच्छे रहते हैं। बीतती तो उनपर है जो तैरना सीखने से पहिले ही इसकी ज़िम्मेदारी के बोझ से दबने लगते हैं और बाहर आते-आते ख़ूब दब जाते हैं। इस समय इनकी सहायता भाग्य के सिवाय कोई नहीं कर सकता। यदि तकदीर चेत गई तो वह सँभल गये, नहीं तो पिसेंगे तो अवश्य ही।

इस प्रश्न के बाद दूसरा प्रश्न है कि शादी किससे की जाय। इस सम्बन्ध में भी हम अपनी वही बात दुहरायेंगे जिसे हम इस लेख के प्रारम्भ में कह आये हैं कि प्रत्येक मामले पर अलग से विचार होने की ज़रूरत है। युवकों को अपनी परिस्थिति, रुचि के अनुकूल इस बात पर निर्णय करना चाहिये। यह प्रश्न प्रथम प्रश्न से कम महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि कुछ अधिक ही महत्वपूर्ण है। सब बात ठीक होने पर भी यदि पत्नी का चुनाव ठीक नहीं हुआ है तो जीवन भर इसके लिये सबको भुगतना होगा।

युवक लोग उसी से विवाह करना चाहते है, जो बहुत खूबसूरत हो। सभी चाहते हैं कि उनकी पत्नियाँ परी के समान हों। पर यह नहीं सोचते कि दुनिया में सभी तो परी नहीं बन सकती। बहुत खूबसूरत तो थोड़े ही युवक युवती होते हैं, बाकी सब मामूली तरह के होते हैं। फिर उनको अपनी शक्ल भी तो देखनी चाहिये कि वह स्वयं कैसे हैं। यदि स्वयं अच्छे हैं तो एक अच्छी लड़की उनको अवश्य मिल जायगी। पर यह सम्भव तथा क्रियात्मक नहीं मालूम पड़ता कि एक बदसूरत लड़के को इन्द्र की अप्सराएँ मिल जायँ। ख़ूबसूरत, बदसूरत सभी लड़कों की शादी होती है और उसी तरह युवतियों की भी। जैसी जिसे मिल जाय उसी से उसे सन्तुष्ट रहना चाहिये। यह अवश्य है कि उसे अच्छी की तलाश करनी चाहिये, पर अच्छी न मिलने पर यह ठीक नहीं है कि वह उससे विरक्त बन जाए। ख़ूबसूरत लड़कियों की भी तो बदसूरत लड़कों से शादी हो जाती है, पर वह प्राय निभा ले जाती हैं। खूबसूरती के प्रश्न पर विवाद उठाना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना अन्य बातों पर। सौंदर्य का नशा विवाह के बाद दम्पतियों पर थोड़े दिनों ही रहता है, वह स्थायी चीज़ नहीं होती। उन्हें तो स्थायी चीज़ों पर अधिक ध्यान देना चाहिये, जिनपर उनको वैवाहिक जीवन की सफलता मिलती है। इस प्रश्न ने इस समय युवक-समाज में जो रूप धारण कर लिया है, हमारी राय में, वह इतना आवश्यक नहीं है। रूपवती स्त्रियों को पाकर भी युवकों के वैवाहिक जीवन असफल ही हैं, और कुरूपों को पाकर सफल। वास्तव में इस प्रश्न पर साधारण तौर पर विचार करने की जरूरत है। शादी करने, न करने, या अमुक से करने न करने का प्रश्न सिर्फ इसी बात पर तय नहीं होना चाहिए। कितनी ही अन्य अधिक आवश्यक बातें हैं, हमें तो उनपर पहिले विचार करने की आवश्यकता है। सबसे पहिले उनपर विचार होना चाहिये और उन्हीं के आधार पर यह निर्णय होना

चाहिए कि अमुक लड़की से अमुक व्यक्ति विवाह करे या न करे। इसके बाद उसके सौंदर्य पर भी विचार कर ले। यदि वह कुरूप है, प्राय लड़कियाँ कुरूप नहीं होती, तो भले ही वह उससे शादी न करे। पर उसमें इन्द्र की अप्सराओं का सौंदर्य भी न ढूँढ़े।

हमारा ख्याल है पत्नी में सबसे आवश्यक वस्तु है उसका स्वस्थ होना। इसी बात पर सबका सबसे पहिले ध्यान जाना चाहिये। बिना स्त्री के स्वस्थ हुये, पति का सारा जीवन निरानन्द हो जायगा। बीमार रह कर वह भार स्वरूप बनी रहेगी। घर का काम-काज आदि ठीक तरह से न करके पति का साथ न दे सकेगी। उसके अच्छे स्वास्थ्य के बिना वैवाहिक जीवन का मज़ा किरकिरा हो जायगा। जब शरीर ही चुस्त, स्वस्थ नहीं है तो उसे मनुष्य-जीवन का क्या आनन्द आ सकता है। स्वस्थ मनुष्य ही संसार के मजे उठा सकता है।

स्वस्थ से हमारा मतलब पत्नी के मोटे या पतलेपन से नहीं है, वरन् इससे कि वह किसी बीमारी के चगुल में तो नहीं फंसी है और अक्सर अस्वस्थ तो नही रहती। अच्छे स्वास्थ्य के मानी हैं कि अपने काम को करने में तबियत लगना, चित्त सदैव प्रसन्न रहे, देह में फुर्ती और चुस्ती हो।

इसके बाद दूसरी बात है उसके स्वभाव की, कि वह कड़ुवा, मृदुल, सहनशील अथवा कैसा है। चिड़-चिड़ी स्वभाव की लड़कियाँ घर में कोलाहल मचाये रहती हैं। वह न पति की बात सहन कर सकती हैं और न घर के अन्य किसी व्यक्ति की। लड़की के लिये जरूरी है कि उसका स्वभाव सीधा, सरल और सहनशील हो, ज़रा-ज़रा सी बात पर भभक न उठे, वह अपनी ज़िम्मेदारी को समझे, उसके अनुकूल कार्य करे, अपने स्वभाव पर नियन्त्रण हो। उसका स्वभाव एक दूसरे को समझने का, दूसरों की कमज़ोरियों के प्रति सहानुभूति दिखाने का और उनकी गलती को क्षमा करने का होना चाहिये। जीवन में सफलतापूर्वक आगे चलने के लिये अपने घर वालों, अड़ोसी-पड़ोसी के स्वभाव को समझ कर उनसे मिल कर चलना होता है। लड़ाई-झगड़े करके उनका उलटा नुक़सान होता है। घर की शान्ति, कलह, आदि का दारोमदार पत्नियों के स्वभाव पर निर्भर करता है। उनको घर में रह कर घर के व्यक्तियों आदि से ही बर्तना पड़ता है, जिनसे बिगाड़ करना उचित नहीं होता। बाहर वालों से बिगाड़ होना इतना हानि-कारक नहीं होता, जितना अपने निकट के सम्बन्धियों से या रोज़ काम आने वाले व्यक्तियों से।

तीसरी बात में हम उसका घर के कार्यों से परिचय होना, उनको सफलता तथा परिश्रमपूर्वक करना आदि बातें शामिल कर सकते हैं। घर के समस्त कार्यों को करने का भार उसी के ऊपर होता है। स्त्रियों का प्रधान कार्यक्षेत्र घर के अन्दर है। जब वह घर के काम काज नहीं कर सकती तो वह एक ज़बरदस्त कमी है, जिस पर विचार करने की आवश्यकता होती है। उनको स्वयं करना या नौकरों से उन्हें करवाना ही पड़ेगा। यदि वह इसे नहीं जानती तो वह कुछ नहीं जानती। वह अपने कार्य-क्षेत्र में कैसे सफल होगी। क्या पति महाशय को उन कामों को स्वय करना या कराना होगा? यदि ऐसा हुआ तो स्त्रियाँ फिर किस मर्ज़ की दवा होंगी?

इन बातों के बाद लड़कियों की शिक्षा का तथा सुन्दरता का प्रश्न आना चाहिये। शिक्षित लड़कियाँ अपने कार्यों को अधिक उत्तमता से कर सकती हैं, संसार का उनको ज्ञान अच्छा होता है। उनकी आदतें सम्हली होती हैं और उनका out Look प्रायः विस्तृत होता है। वह अपढ़ स्त्रियों की तरह कूप-मण्डूक नहीं होतीं और उनमें समझ भी होती है। वह अच्छी-बुरी बात को समझ सकती हैं, उनके अनुकूल अपने कार्य चला सकती हैं, समय पर वह अपने पतियों की अच्छी सलाहकार बन सकती हैं और उनके कार्यों को भी समझ कर उनमें कभी-कभी सहायक सकती हैं। बिना पढ़ी-लिखी लड़कियाँ प्राय बड़ी मूर्ख होती हैं, न तो उनकी समझ में कोई बात आसानी से आती है और न वह इसके लिये प्रयत्न ही करती हैं। संसार की वर्तमान परिस्थिति में शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। जहाँ तक हो युवकों को शिक्षित लड़कियों से शादी करना चाहिये। वह अधिक सफल पत्नियाँ साबित होती हैं। इसका मतलब यह नहीं कि सभी अपढ़ लड़कियाँ बेवकूफ़ या त्याज्य हैं।

उनमें भी कोई-कोई लड़कियाँ बड़ी होशियार, व्यवहार-कुशल होती हैं। उनको पाकर भी बहुतेरे पति अपने को धन्य समझते हैं। पर प्राय कुपढ़ लड़कियाँ पतियों की परेशानियों को बढाती है और पढ़ी-लिखी उनको कम करती हैं। शिक्षा के प्रश्न पर विचार करते समय यह भी विचार करना है कि युवक कितनी पढ़ी लिखी लड़की से शादी करें। इसे वह अपनी परिस्थिति, रुचि के अनुकूल स्वय तय कर सकता है और करना चाहिये।

उनकी सुन्दरता के सम्बन्ध में हम ऊपर काफी लिख चुके है कि यह सर्वप्रथम स्थान पाने योग्य चीज नहीं है। इसे अपने स्थान पर रख कर ही विचार करना उपयुक्त होता है।

इन बातों के अतिरिक्त कितनी ही अन्य बातें भी हैं, जिन पर विचार करना प्रत्येक युवक के लिये आवश्यक है। और फिर हर एक की हालत के अनुसार उसकी अपनी बातें कम या ज़्यादा होती ही हैं। हम एक बात और लिख कर इसे समाप्त करना चाहेंगे। वह है लड़कियों के माता-पिता की सभ्यता, खानदान, रहने-सहने का रङ्ग-ढङ्ग से सम्बन्ध रखने वाली बातें। जैसे जिसके माता-पिता होंगे, वैसी ही उनकी सन्तान होगी। ज्यादातर यही बात होती है, इक्के-दुक्के अपवादों से हमें मतलब नहीं है। यदि उनको पालने में उन्होंने दिलचस्पी ली है, तो वह लड़कियाँ अच्छी साबित होंगी। उनकी अन्य आदतें, जीवन का दृष्टिकोण आदि सुधरा हुआ होगा अथवा उनमें न सभ्यता होगी और न वह व्यवहार-कुशलता ही। समय तथा परिस्थिति के अनुसार वह अपने को मोड़ सकती हैं। उनके बात चीत के ढङ्ग में, चलने-फिरने में, उनके खानदान की सभ्यता टपकेगी। उनमें एक अजीब तरह की भलमनसाहत होगी। इन बातों का गार्हस्थ्य-जीवन में विशेष स्थान होता है। अच्छे खानदानी घरों की लड़कियाँ गम्भीर, समझदार, चतुर स्वभावत होती हैं। इनको इन बातों के समझाने की जरूरत नहीं पड़ती। तुच्छ और ऐसे-वैसे खानदानों की लड़कियों में अनेक नीचता की आदतें पाई जाती हैं, जो उनके जीवन में कितनी ही दिक्कतें अनायास ही उत्पन्न कर देती है। उनमें न तो वह Dignity और न वह gracefulness होती है। उनकी क्षुद्रता उनकी बाहरी आदतों से ही प्रकट हो जाती है। समय-कुसमय में अच्छे खानदान की लड़कियाँ प्राय खरी उतरती हैं, उन्हें अपने खानदान की मर्यादा का नाज़ होता है, छोटी-छोटी बातों में वह प्रकट होती मालूम देती है। और वह अपने इस मर्यादा की रक्षा करने के लिये प्रयत्नशील होती हैं।

हमारी राय में युवकों को कब और किससे शादी करें—इस प्रश्न पर विचार करते समय उपर्युक्त बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये। और सम्भवत. उनको वह अपने लिये अधिक लाभदायक हो पावेंगे। हो सकता है कि शुरू में वह इनकी परवाह न करके शादी-विवाह के पवित्र सूत्र में बँध जायँ, पर जब उनका यौवन का उष्ण रक्त ठण्डा होगा, दुनियाँ का अनुभव होगा, तब इनको शायद वह अवश्य पसन्द करेंगे। और शायद इनका ख़्याल न करने के लिये पश्चात्ताप भी।



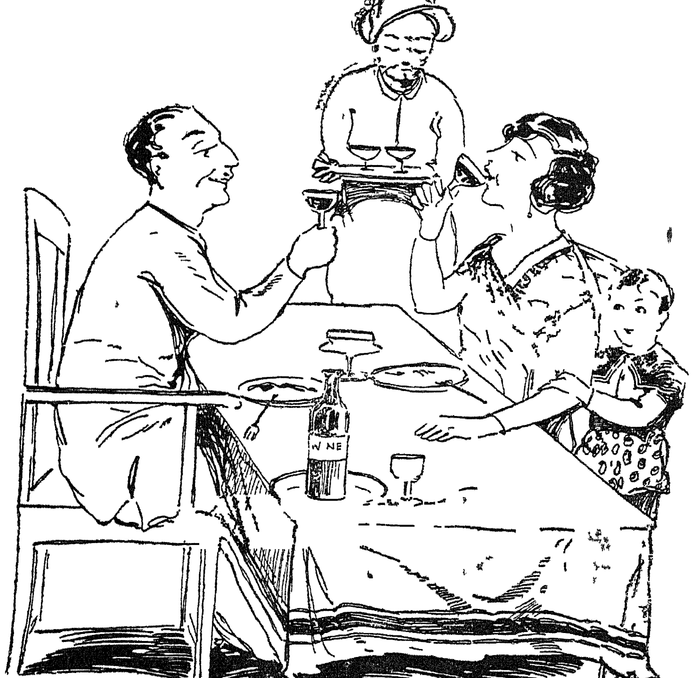
सभ्यता



पितृ-सम्मान



सभ्यता की साख



सभ्यता का आदर्श .



आदर्श वात्सल्य

विवाह के पूर्व

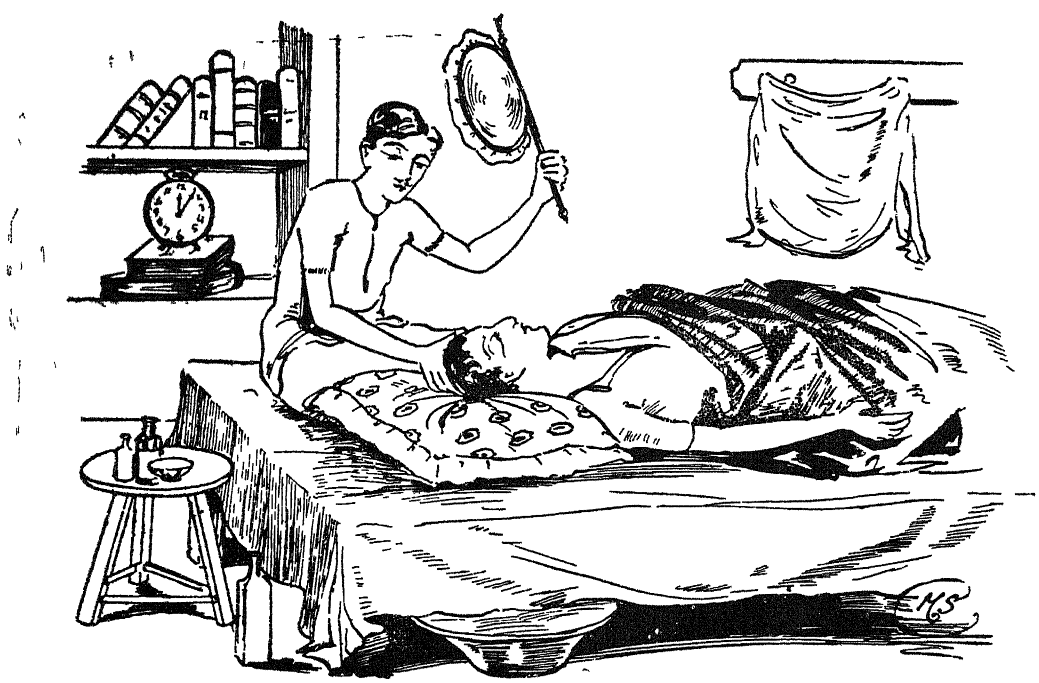


अविवाहित अवस्था में गृह-कार्यों के झञ्झट में
व्यस्त-जीवन ।

विवाह के पश्चात्



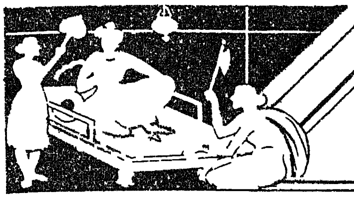
विवाह के पश्चात् गृहस्थी के भार से व्याकुल जीवन



होस्टल में मित्र के बीमार पड़ने पर—



डिप्टी-कलेक्टर होने पर—



भयानक 'क्यों ?'

कहानी

[श्री० 'अमृत']

हाँ बालजक की एक कहानी थी। मै उस वक्त अपने मे नही बालजक मे था। मै अपने को क्यो भूल गया था, यही मेरी गलती थी।

नीना कितना प्यारा नाम है। नीना ने.... .आप जानना चाहते है यह नीना आखिर है कौन। नीना बारह साल की लड़की है। बड़ी भोली। बड़ी-बड़ी आँखें है। अपने नाम की-ही तरह वह भी बहुत प्यारी है। आपने मेमना देखा है न ? हाँ, तो बस वैसी ही। उसे बात बनाना नहीं आता, इसलिए उसे सभ्य नही पुकारा जा सकता। वह बात मे झूठी शकर नही घोल सकती, इसलिए वह मिष्टवादिनी भी नही पुकारी जा सकती। पर फिर भी. उसकी बात मे अगर शकर नही तो कुछ ऐसा है जो उससे भी कही मीठा है। वह बरबस मन अपनी ओर खीच लेती है, क्योकि उसमे कोई छिपाव-दुराव नही है। पड़ोसी की लडकी है। मै भी सोलन आया हूँ, वह भी। कुछ महीने तब से बीत गये है। हम साथ-साथ रहे हैं। अपनापन आ गया है। वह मुझे स्नेह से पुकारतो है "भैया" और मैं उत्तर देता हूँ "नीना" बस।

हाँ, तो नीना ने दबे पैरो आकर धीमे से पुकारा—भैया, तुम भी कितने बुरे हो। जब देखो, किताब के उन्ही सड़े पन्नो मे आँख गड़ाये रहते हो। यह भी कोई बात है। बाहर आओ।

यह आदेश कुछ योही न था और शायद मै कभी इसकी अवहेलना भी न कर सकता। पर मैने कह दिया—"नही नीना, तुम जाओ खेलो"। इस नही के भीतर कितनी उमस, कितना दैन्य, कितनी कठोरता, कितना अवसाद और कितनी निर्ममता छिपी हुई है, इसे आप योही न समझेंगे। नीना को मै कितना और कैसा प्यार करता हूँ, यह प्र न उतना आसान नही है, और न मै छोटे बच्चे को तरह अपने दोनो हाथो को एक दूसरे से अलग दूर-दूर और दूर करके बताऊँगा ही—उपहास होगा। यह उदास सुख है, और इस उदास सुख को मैने आज तक कभी मापने की कोशिश न की—अवकाश न था। यदि अवकाश मिलता भी और मैं चेष्टा भी करता तो कोई नही जानता, मैं अपने उस प्रयास मे सफल भी होता या नही।

इतना आप जान ले कि उसकी माँग और इच्छा, मेरी माँग और इच्छा है। मै चैन नहीं पा सकता, जब तक वह मेरी ओर प्यार और सन्तोष से देख न ले। मेरा मन न जाने कैसा होता रहता है—कुछ अनमना-सा हो पड़ता हूँ, बिलकुल अनायास और मूर्खतापूर्वक। एक तूफान सा उठ पड़ता है जो मेरे किये शान्त नही होता।

पर मै यह क्या कह ले गया। नीना जाने को हुई, पर जाने के पहले, उसकी दृष्टि कमरे के कोने मे रखे हुए एक सङ्गमर्मर के हंस के जोड़े पर पड़ी। आज, जब मै अपने को अधेड़ हो जाने से नही रोक सका हूँ और मेरी दाढ़ी भी आधी सफेद और आधी काली हो पड़ी है, सोचता हूँ कि मै वे अपने तुच्छ हंस नीना को क्यो नही दे सका, तो उनका अलग का इतिहास मेरे सामने आ खड़ा होता है। मेरा एक मित्र था—अभिन्न-मित्र हमारा

दोनो का यौवन था, जैसा कि सबके जीवन मे एक बार आता है। और जब आँधी बहती थी, तो कहती थी प्रेम, बरसात की नदी दौडी जाती, अंधी, ठोकर खाती, गिरती पड़ती, तो वह भी अपने उन्माद का कारण गिनती प्रेम। बादल प्रेम का सँदेसा लिए हुए सिर्फ हमारे लिए आकाश मे दौड़ते होते। हमे जो कुछ भी दीख पड़ता, वह प्रेम का गीत गाता। जब दिन भर का थका-माँदा किसान अपनी बैलगाड़ी पर अपने थके-माँदे बैलो के थके कन्धो पर लौटता और अपने विस्मृत प्रिय के लिए बिरहा अलापता तो हमारे रोंगटे खड़े हो जाते और हम अपने को और सबको भूल जाया करते। हम लोगो ने प्रेम करना शुरू किया। पर प्रेयसी एक थी। ज्यादा दिन बात न चल सकी और हमारी दोस्ती पर जङ्ग लगने लगा। मै अपने उस मित्र की ओर से उदासीन हो ही रहा था, कि एक दिन वह आया और बोला—देखो, मै जाता हूँ, तुम्हारा कौर नही छीन सकता। यदि पूनो तुम्हे कभी मिले और तुमसे सच्चा प्रेम कर सके, तो लो यह हंस का जोड़ा है। उसे यह मेरी धरोहर दोगे, तो शायद उसके किसी पुराने, बीत-चले कोने की याद दिला दोगे।

मेरे कान मे यह बाते आईं, क्योकि मै बहरा नही हूँ। पर इसके पूर्व कि मै या और कोई कुछ निर्णय कर सके, वह अपने भारी पैर उठाकर थप-थप करता हुआ चला गया। मैने सुना उसके आखिरी शब्द रुँधे हुए गले से घुटकर निकले है, और मैने देखा, उसकी आँखो मे आँसू छलके आ रहे है।

...तो ये हंस उसकी धरोहर थे, जिसे पूनो को दे देने का आदेश था। समय की कसौटी ने परखा कि वह ओछी वेश्या है, जिसके लिए प्रेम का अर्थ चाँदी के दो निर्जीव सिक्को मे समा जाता है। आज मै पूनो को भूल-सा गया हूँ और उसे और भी भूल जाने की कोशिश कर रहा हूँ। सोचता हूँ, उस काली, भयावनी तसवीर पर जितनी जल्द पर्दा पड जाय उतना ही अच्छा। अपने मित्र को न मै भूल पाया हूँ, और एक दिन आवेगा जब मुझे उसे भूल जाना ही पडेगा, तो यह अरुचिकर मालूम पड़ता है। उसकी धरोहर को देखता हूँ, आँख मे पानी आ जाता है। अभी तक वह मेरी सन्दूक मे था, आज बाहर आया है कि शायद उस जोडे को सदा आँख के सामने पाकर मै कुछ ऊँचा हो सकूँ।

नीना ने उस जोडे को हसरत की निगाह से देखा और पूछा—भैय्या, मै इसे ले लूँ? अपने कमरे मे हिफाजत के साथ रक्खूँगी, दोगे?

मै इस 'दोगे?' का ठीक उत्तर न दे सका। हमारा प्यार, किसी की नही पूनो और कुछ एक भूली बात, सब एक भयावना पिशाच बन कर मेरी आँख के सामने नाचने लगा। पहले मै सिहर उठा, फिर वह सिहरन पानी हो गई और मेरी आँखे उमड़ आईं। पर मै नीना को आँसू नही दिखला सकता। मैने उन्हे, कमीज की आस्तीन से दूसरी ओर मुँह करके पोछ दिया। मै जानता हूँ कि यह माँग नीना की है। पर उस वक्त उस पिशाच ने मेरी ओर से बोल दिया—'नही।' मै सब कुछ जानकर भी इस 'नही' को निकल जाने से न रोक सका।

नीना चली गई। वह रोई नही, उसने मुझे कुछ बुरा-भला भी नही कहा। पर आज मुझे मालूम हो रहा है कि कुछ न कह सुनकर ही तो उसने वज्रपात किया है और सब कुछ कह डाला है। कुछ न कह कर ही उसने सब कुछ कह डाला है, और कुछ न समझकर भी मै सब कुछ समझ रहा हूँ।

वह चली गई और मै बैठा ही था। फिर मै अपनी कहानी मे तनिक भी आँख न डाल सका। किताब एक ओर थी, आँख कही और मन कही और। बार-बार मै चेष्टा करूँ और बार-बार मै खिंच जाऊँ उन हंस की ओर। किताब रखी रह जाय, एक बूँद ढुलक ढुलक पडे।

मै कब तक उस हालत मे कमरे मे बैठा रहा, मैं नही जानता। पर हॉ, जब भी मै उस जोड़े की ओर ऑख करूॅ, वे मुझसे कहने लगते—क्यों, तुमने हमे न देकर एक .भोली बच्ची का .. दिल दुखाया ? क्यो ? क्यो ?.. क्यो ? बोली क्यो ? बोली बोली बोली ।

इन आवाजो से कमरा गूॅजने लगा। और जिस किसी को मै देखता, वही मुझे उलाहना देता—ऐसा क्यो ..सब मुझे चिल्ला-चिल्ला कर गाली देने लगी—पापी पापी एक निरीह प्राणी की उससे भी निरीह इच्छा का घातक निर्मम पापी।

मेरा दम घुटने लगा। मुझे लगा कमरा धुऍ से भरा हुआ है। आज मुझे लग रहा है कि वह धुआॅ 'क्यो पापी बोलो ?…' का था। मेरे ही पाप का प्रतिशोध। मुझे याद है, मैं भाग निकला था जहॉ मुझे ये क्रूर पापो 'क्यो ?' राक्षस बनकर न घूर सके। रास्ते मे मेरे कान फट रहे थे …ओफ, क्यो ? क्यो ? मै दौड़ा। दौड़ा-दौडा। दौड़ता गया। पर वे पिशाच मुझसे भी तेज मेरा पीछा कर रहे थे। और वे मुझे मुक्ति देना न चाहते थे। मै दौड़ता ही गया। मालूम नहीं मैं कितना सफर दौड़ गया हूॅगा। पर मै लस्त होकर करीब के एक बाग मे घास पर गिर पड़ा, और कुछ समय बेहोशी की हालत मे पड़ा रहा, क्योकि उस समय का मुझे कुछ भी याद नही है। जब उठा तब भी गले मे फॉसी थी। कुछ समझ न पड़ना था। हॅसते बेले की कली को मैने देखा—आशा की एक चितवन थी। मेरे दिन बिगडे थे। उसने भी अपनी सहज, स्वाभाविक, सरल हॅसी छोड़ दी और मुझे चिढ़ाने की नीयत से जोर से, ऑख मटका कर उॅगलियॉ नचाकर हॅस पड़ी। मै रो पडा। फिर मैंने अपने चारो तरफ देखा। प्रकृति के हर एक पदार्थ अपदार्थ को। सब की ऑखे गुस्से से चढ़ी हुई थी और लाल लाल थी, माथे पर शिकन थी, चेहरा तमतमाया हुआ। सबके मुॅह से आग की बौछारे हो रही थी और सब मुझपर थू-थू कर रहे थे। 'पाप' 'निर्मम' 'विकार' आदि कुछ शब्द कितनी बार मेरे कान मे आये और गये, इसका लेखा मेरे पास नही है। पर मै पसीना-पसीना हो रहा था, घबड़ा उठा था और मेरी शकल पागलो-सी हो रही थी। मुझे सिवाय 'क्यो ?' के और कुछ याद नही है।

मै घर लौट कर आ गया हूॅ। मेरा मस्तिष्क भी खाली है और पेट भी खाली है, पर भूख नही मालूम पड रही है। मै खाने पर बैठा हूॅ। फिर 'क्यो ?' का तूफान उठ रहा है और मै दो एक कौर तोड़ने के बाद ही कमरे की ओर बेतहाशा भागता हूॅ। मेरी मॉ शायद मुझे रोकती ही रह जाती है—तूने आज क्या खाया रे ? मुझे लगता है, कोई उसका जवाब दे रहा है—'बहुत खा लिया है, अब न खायेगा।'

'क्यो-क्यो ? …क्यो ? …क्यो ? …।' तूफान। अर्द्ध-विक्षिप्तावस्था। मेरा हाथ बढ़ा वेग से। हंस मेरे हाथ मे उड़े। और ऊपर से उठकर गिरे तड़ाक से और चकनाचूर हो गये।

अब 'क्यो ?' का तूफान बन्द हो गया। मेर घुटा दम खुला और मुझे योही हॅसी आ गई।

कवि का स्वप्न

यामिनी नीरव है। नील नीरव गगन मे नक्षत्रगण रुपहले नीहार वन मे मन्दार पुष्प से जगमगा कर मधुर-मधुर सौरभ-सुषमा बरसा रहे है। प्रभजन मर्मर गीत गाता हुआ बह रहा है। छाया सघन वृक्षो या प्राचीर तले विश्राम कर रही है।

कवि की स्वप्निल पलके सरसिज सी मुँदी जा रही है। मधुर सुनहले स्वप्न रिम-झिम का मधुर शब्द करते हुए प्रवालो से पलको पर बरस रहे है। गुलाब की पखुरियो से कवि के गुलाबी सुकुमार अधरो पर इस गीत को गीति ध्वनि आनन्दमयी लहर सी लहरा रही है :—

तुम हिम अधरो से झुक कर
भर देना चुम्बन मृदुतर
अयि प्राण गगन जीवन मे
तुम मधुर ज्योति बन आना

बादल भीषण गर्जन कर अट्टहास कर उठे। कवि ने देखा, कक्ष का दीपक बुझ चुका है, केवल दीपक की अभिलाषाएँ धूम बनकर अदृष्ट को जा रही है।

सरिता के उस पार एक समाधि पर एक दीपक झलमला कर जल रहा है। कवि को कोई भूली बात याद आ गई। उसकी स्वप्निल पलको के सम्मुख अङ्गूरी सारी वाली रजनी गन्धा सी रमणीक, तुहिन कण सी मधुर एक सुषमा आकर अश्रु वर्षण करने लगी। कवि कम्पित कठ से अस्फुट स्वर मे बोला उठा—"मेरे मानस मन्दिर की सौन्दर्य-मयी प्रतिमे इन्दि तुम ?" कहकर मूर्छित भी हो गया। नक्षत्र रजनी की सारी की आँचल से ताकने लगे उस विहग से कवि को। रजनी नीरव होकर अश्रु बरसाने लगी।

कवि की खुली आँखें कोई मधुर स्वप्न देखने मे तल्लीन थी। हृदय स्पन्दनहीन तथा नीरव था। समाधि पर का दीपक झलमला कर बुझ चुका था। जूही की सुरभित सुमन-पंखुरियाँ झर-झर कर समाधि पर बरस पड़ी और कवि की कल्पना सौरभ के साथ-साथ समाधि पर उड़ने लगी।

[प्रो० रवीन्द्रकुमार, एम० ए०]

स्त्रियाँ क्यों न सोचें ?

वर्तमान समय भारतीय नारी के जीवन मे सक्रान्ति का काल है। समाज अपनी प्राचीनता को छोड़ नवीनता की ओर अग्रसर हो रहा है। उसका प्राचीन रूढ़ियो पर स्थित जीवन का ढर्रा धीरे-धीरे बदल रहा है और इसके साथ ही स्त्रियो के जीवन मे भी जाग्रति आ रही है। शताब्दियो पुराने आदर्शों पर स्थित समाज, जिसके निर्माण करने मे मुख्यतः पुरुषो का ही हाथ था, अब आधुनिक विचारो के धक्के खाकर नीव तक हिल उठा है। वह आदर्श और विचार जिन्हे हम शताब्दियो से मानते चले आये थे अब हमे अपूर्ण जान पड़ते हैं और कभी तो अपनी प्रगति के अवरोधक।

इस जागृति का मुख्य कारण हमारा पश्चिमी सभ्यता के संसर्ग मे आना है। प्रथम जब हम इस सभ्यता के ससर्ग मे आये तो यह हमे भयानक लगी और इसी कारण एक सघर्ष पैदा हो गया जो १८५७ के विप्लव के रूप मे अवतरित हुआ। इसके पश्चात् हमारा पश्चिमी सभ्यता से कुछ निकट का सम्बन्ध हुआ और हमने वहाँ की बहुत सी बातें अपनाई। यहाँ तक कि हमारी वर्तमान राजनैतिक हलचल भी वहाँ के जन-सत्तात्मक विचारो तथा राष्ट्रीयता के कारण उपजी है। परन्तु वर्तमान युग मे अब फिर पश्चिमी विचारों के प्रति एक प्रतिक्रिया की भावना उपजी है, जिसे हम गाँधीवाद के रूप मे देख रहे है।

इन सब अवस्थाओ और विचारो ने हमारे समाज पर गहरी छाप डाली। हमने अपनी अवस्था की वहाँ की दशा से तुलना की। वहाँ को स्वतत्रता, समानता ने हमारा ध्यान आकर्षित किया। और उन्हे हमने अपने जीवन मे स्थान देने का प्रयत्न किया। भारतीय नारी भी इस लहर के साथ-साथ बहने लगी। कुछ अग्रगण्य स्त्रियो ने पश्चिमी शिक्षा और विचारो को पाकर दूसरो मे फैलाया। परन्तु इस क्षेत्र मे स्त्रियो का आगमन बहुत देर से हुआ।

भारतीय नारी की अङ्गरेजी के आगमन-काल से पहले क्या स्थिति थी, यह किसी से छुपी नहीं है। वह सन्तानोत्पत्ति का यन्त्र तथा पुरुष की परछाहीं से अधिक कुछ न थी। यहाँ तक कि पति की मृत्यु हो जाने पर उन्हे जीवित रहने का भी अधिकार नही रहता था। यह दशा उस समय एक आदर्श अवस्था के रूप मे देखी जाती थी, और पतिपरायणा साध्वी स्त्री उस समय समाज की एक उच्चतम विभूति मानी जाती थी। पर हमने जब इस पर से भावना का आवरण उठा कर देखा तो हमे वास्तविकता का ज्ञान हो गया। यह कहना ठीक ही है कि पश्चिम के विचारो ने आकर स्त्री की अवस्था मे परिवर्तन शुरू कर दिये। सबसे प्रथम लार्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा कानूनन बन्द करा दी। यह पश्चिमी सभ्यता का सीधा प्रभाव हुआ। परन्तु इसका प्रभाव दूसरे रूप मे भी पहुँचा। पुरुषो ने जब पश्चिमी शिक्षा ग्रहण की तथा वहाँ के आदर्श अपनाये तब उन्होने इन्हे अपने सामाजिक जीवन मे भी ढालने का प्रयत्न किया। चाहे प्राचीन काल मे पुरुषो के गढ़े हुये नियमो के ही कारण स्त्री को

अन्याय और अत्याचार सहना पडता था, परन्तु आधुनिक युग मे तो स्त्रियो की जागृति का अधिक श्रेय पुरुषो को ही है। सबसे पहले उन्होने ही स्त्रियो के ऊपर होने वाले अन्यायो पर जनता का ध्यान खीचा तथा विधवाओ के पुनर्विवाह के लिये प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानन्द ऐसे ही अग्रगण्य व्यक्तियो मे से थे।

इसके उपरांत जिस तत्व ने स्त्रियो की जागृति मे भारी काम किया वह पुरुषो की पश्चिमी ढग की शिक्षा थी। इसका प्रभाव धीरे-धीरे स्त्रियो पर भी पड़ने लगा। पढ़े-लिखे लड़के अपढ स्त्रियो से विवाह करके सतुष्ट न होते थे और इसलिए शिक्षित लडकियो की मॉग बढ़ने लगी। आरभ मे स्त्री शिक्षा इसलिए नही शुरू हुई थी कि स्त्रियॉ समझदार बन सकें, या अपने स्वत्वो को समझें, वरन् इसलिए कि उनके विवाह मे आसानी हो। पर इस शिक्षा के बढ़ने पर कुछ स्त्रियॉ ऐसी भी निकली जिनकी ज्ञान-पिपासा बढी और जिन्होने अपने स्वत्वो को जानना चाहा। जब उन्होने खुली ऑखो से समाज को देखा तो उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो इस समाज मे उनके लिए कोई स्वतंत्र स्थान ही नही है। ऐसी स्त्रियो ने अपने स्वत्वो की चर्चा चलाई, परन्तु वह इस क्षेत्र मे पुरुषो से ५० वर्ष पीछे आई तथा वह अपने स्वत्वो की चर्चा चलाने योग्य भी इसी कारण बन सकी कि पुरुषो को शिक्षित स्त्री की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस समय भी स्त्रियो के स्वत्वो के पोषक तथा उनकी जागृति के प्रेरक पुरुष ही है। कौन स्त्री, श्रीयुत कर्वे की, सर हरीसिंह गौड़ की तथा ऐसी ही दूसरे स्त्री-हलचल के नेताओ की सेवाओ के सामने नतमस्तक न होगी? स्त्रियो का तो इस क्षेत्र मे आना हाल की बात है, और इसे एक युग भी न हुआ होगा। परन्तु चाहे स्त्रियॉ इस क्षेत्र मे आ गई हो, परन्तु न तो उनकी कोई अपनी विचार-धारा है और न कोई विशेष कार्यक्रम ही है। अभी तक की विचार-धारा तथा कार्यक्रम तो पुरुषो की देन है।

परन्तु कब तक स्त्री दूसरो की पूॅजी से, दूसरो की दया और सहायता के बल पर अपना व्यापार चलायेगी? यहॉ कोई वर्ग-विग्रह की ओर संकेत करने की मशा नही है और न यही है कि जिस समाज को स्वतः स्त्री अपने अनुकूल समझे उसके निर्माण मे पुरुष का सहयोग प्राप्त न करे। परन्तु यदि वास्तव मे उसे किसी ऐसे समाज की रचना करनी है जिसमे वह पुरुष की प्रगति के साथ अपनी प्रगति भी साध सके, तब उसे भी पुरुष के साथ ऐसे समाज के निर्माण करने वाले सिद्धांतो की खोज करनी पड़ेगी। परन्तु अभी तक स्त्रियॉ अपनी भीरु वृत्ति को नही छोड़ सकी है, वह नेता नही बन सकी है, पीछे चलने वाली परछाही के समान ही रही है। यदि कमला देवी चट्टोपाध्याय या सरोजिनी नायडू जैसी एक-दो स्त्रियॉ नेतृत्व गृहण कर सकी है तो इसका कारण यह है कि उनकी विद्वत्ता और क्षमता साधारण स्त्रियो को नही है। और न उनका जीवन ही भारतीय नारी के जीवन से कोई सम्बन्ध रखता है। वह तो भारतीय स्त्री के रूप मे अमेरिकन या यूरोपियन पढ़ी-लिखी महिला की एक प्रतिलिपि है।

साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियो मे अपने भविष्य के विषय मे विचार करने की कितनी क्षमता है, यह लेखक का अनेक बार का अनुभव है। चाहे वह किन्ही भी कारणो से अपने भविष्य के निर्माण के विषय मे न सोचना चाहती हो, परन्तु इसमे तो सन्देह नही कि भारतीय नारी ने अपने भविष्य के विषय मे नही के बराबर सोचा है। और यदि कुछ सोचा भी होगा तो उसने कभी प्रकट करने का साहस नही दिखाया। इस विषय मे एक-दो उदाहरण दे देने अनुचित न होगे। १९३६ मे दिल्ली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' मे इस विषय

पर एक विवाद चल रहा था कि शिक्षित स्त्रियाँ सिनेमा-पात्री बने या नही। यह विवाद पुरुषो मे ही था। एक पक्ष इस बात का समर्थन करता था कि सिनेमा मे काम करने मे कोई दोष नही है, और दूसरा पक्ष इसका विरोध करता था। इस विरोध का मुख्य कारण यह था कि सिनेमा कम्पनी के दूषित वातावरण मे स्त्रियाँ अपने सतीत्व को नहीं बचा सकेगी, जो कि भारतीय नारी के जीवन का अनमोल रत्न है। इस सम्बन्ध मे लेखक ने भी लिखा और इस बात का प्रतिपादन किया कि यह बात केवल पुरुषो के निश्चय करने की नही, है, क्योकि वास्तव मे सारा विवाद तो इस प्रश्न पर केंद्रित था, कि 'स्त्रियो का समाज मे क्या स्थान हो।' और इस प्रश्न के निकास का केवल पुरुषो को क्या अधिकार है ? इसके साथ ही लेखक ने महिलाओ, को इस विषय पर अपने विचार प्रकाशित कराने की सलाह दी। परन्तु इस विषय पर एक भी महिला ने अपने विचार भेजने की कृपा नहीं की। और बाद मे जब उस पत्र के संपादक ने इस विवाद को समाप्त करते हुए अग्रलेख लिखा तब उन्होंने स्त्रियो की इस अभिरुचि पर कटाक्ष किया। इस सब पर से जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि प्रथम तो स्त्रियो ने अपने प्रश्नो के विषय मे भली प्रकार सोचा नही, और यदि कुछ सोचा भी है तो उन्हे समाज मे आगे बढ़ कर कहने मे संकोच होता है। अपने प्रश्नो पर निर्भीकता से विचार करने मे सङ्कोच का सामना करते हुए तो लेखक ने ऐसी स्त्रियो को देखा है, जो बड़ी-बड़ी संस्थाओ का सञ्चालन करती है।

साधारणतः स्त्री सम्पत्ति, कानूनी अधिकार और अब तो जीविका के विषय मे कभी-कभी कुछ कहने का साहस कर जाती है। परन्तु सबसे अधिक सङ्कोच तो उन्हे विवाह तथा जातीय सम्बन्ध के विषय मे विचार प्रगट करने मे होता है। आज तक लेखक ने एक भी स्त्री का लिखा हुआ कोई ऐसा लेख नही पढ़ा जिसमे विवाह पर स्वतत्रता से विचार प्रकट किये गये हो। एक बार एक लेख पढ़ा भी था, परन्तु बाद मे पता लगा कि यह कि वह किसी स्त्री नामधारी पुरुष का लिखा हुआ ही था। परन्तु शिक्षित स्त्री सामाजिक जीवन मे विवाह का महत्व जाने बिना अपने जीवन की स्थिति नही समझ सकेगी, क्योकि मुख्यत हमारे समाज की नीव तो विवाह संस्था पर ही पडी है। इसी सस्था के द्वारा उन्हे सम्पत्ति के रूप मे पुरुष को सौप दिया जाता है और फिर उसका स्वतत्र व्यक्ति का रूप लुप्त हो जाता है। इसी सस्था द्वारा उसे सिखाया जाता है कि पुरुष से अलग उसका मूल्य शून्य के समान है। इसी सस्था के कारण उसे उतने पर ही सन्तोष कर लेना पड़ता है जो उसे मिल जाय। इसी संस्था द्वारा उसे सिखाया जाता है कि सतीत्व उसके जीवन का अनमोल रत्न है और जीवन देकर भी इसकी रक्षा करनी चाहिए।

अब शिक्षित स्त्री इस विवाह संस्था को किस दृष्टि से देखती है। पुरुष (लेखक) कैसे कह सकता है ? कई बार उनके जानने के लिए प्रयत्न किया भी गया, परन्तु इसमे सफलता मिलना दुष्कर था। हाँ, अशिक्षित स्त्रियो का मत इस विषय मे मिल सकता है, परन्तु उनका मत तो वही है जो पुरुषो का। उनके विचार से तो विवाह करना स्त्री का धर्म है और उन्हे विवाह मे कुछ खराबी भी नही दिखाई देती। परन्तु अशिक्षित स्त्रियो के इस मत का कितना मूल्य है ? यह मत तो शताब्दियो से उन्हे पुरुषो द्वारा सिखाया गया है। पुरुषो का आधुनिक विवाह के विषय मे क्या मत है, यह तो हमे अनेक जगह जानने को मिल जायगा, इसलिए उसके ऊपर कुछ कहने की तो कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती।

शिक्षित स्त्रियो का विवाह के विषय मे क्या मत है, यह तो लेखक नही जानता, परन्तु इतना

अवश्य जानता है कि उनके मत मे तथा साधारण स्त्रियो के मत मे कोई भारी अन्तर न होगा। और इसका मुख्य कारण यह है कि न तो साधारण स्त्री ही विवाह के ऊपर कुछ विचार करती है और न शिक्षित स्त्री ही। अब भी समस्त भारतीय स्त्रियो मे से ९९ ९ प्रतिशत स्त्रियाँ विवाह को जीवन का लक्ष्य समझती है। और स्त्रियो की शिक्षा मे भी अभी तक कोई ऐसा परिवर्तन नही हुआ जिससे वह विवाह के अतिरिक्त किसी दूसरी बात को जीविका का साधन बना सके। अर्थस्वातन्त्र्य की भावना स्त्री मे जगी आवश्य है, परन्तु उसका श्रीगणेश हुये अभी अधिक वर्ष नही हुये।

यह ठीक है कि प्रत्येक समाज मे अधिकतर स्त्रियों को विवाह कर ही जीवन बिताना पडेगा, फिर चाहे उस समाज मे विवाह का कोई भी रूप क्यो न हो। माता बनने के कार्य को तो हम स्त्री से अलग नही कर सकते, और इसके लिये किसी न किसी रूप मे विवाह आवश्यक है, चाहे वह धार्मिक विवाह हो या रूस जैसा 'रजिस्टर्ड' विवाह। स्त्री-पुरुष का यह सम्बन्ध तो हर हालत मे ही रहेगा। केवल प्रश्न यह है कि समाज मे इसका क्या रूप हो ? जातीय सम्बन्ध को नियमित बना देना तथा सन्तान के लालन-पालन के लिये उपयोगी हो सकना यही विवाह के दो मुख्य काम है। परन्तु धार्मिक विवाह के विरुद्ध भी बहुत आवाजे उठ रही है और सदा से उठती आई है। स्त्री की दृष्टि मे तो पुरुष की अपेक्षा इस विवाह मे और भी कमजोरियाँ हो सकती है। विवाहित स्त्री का कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नही होता, एक तरह से वह पुरुष की सम्पत्ति होती है। अर्थ-विभाजन मे उसके साथ अन्याय होता है। उसके कोई क़ानूनी स्वत्व नही, और इसके अतिरिक्त कुछ मनोविज्ञान के विद्यार्थियो का विचार है कि आजकल का विवाह कोई स्वास्थ्यकर सम्बन्ध नही है। कुछ भी हो, परन्तु ऊपर के कथन मे कहाँ तक सत्यता है, यह सब स्त्री को अपनी आँखो से देखना होगा, पुरुष की आँखो से नही। आजकल की व्यवस्था पुरुष के तो अनुकूल ही है और उसी के द्वारा गढ़ी गई है। अब स्त्री को स्वतत्र रूप से विचार कर देखना होगा कि यह उसके अनुकूल है या नही।

इन बातो पर स्वतंत्र रूप से विचार करने मे भारी कठिनता होगी। स्त्री का सङ्कोच, जिसे हमने गुण मान लिया है, उसे ऐसा न करने देगा। फिर वह हमारे वर्तमान नैतिक बन्धनो के तारो को कहाँ तक सुलझायेगी और समझेगी कि वास्तव मे पाप पुण्य की खरी परिभाषा क्या है ? क्या वह अपने अनमोल रत्न सतीत्व को किसी ऐसी कसौटी पर परख सकेगी, जो यह बता सके कि वास्तव मे यह अनमोल रत्न ही है, या पुरुषो द्वारा रचा हुआ एक भ्रमजाल ? ऐसे ही अनेक प्रश्नो पर उसे अपनी बुद्धि की विषमता के उजाले मे विचार करना होगा।

इन सब तथा ऐसे ही अनेक प्रश्नों का उत्तर पा लेना स्त्रियो के लिये आवश्यक है। क्योकि जब नये समाज की नीव रखी जायगी और उस समय वह विचारने बैठेगी तब तो यह आग लगने पर कुआँ खोदने के समान होगा। उस समय तो जो विचार-धारा तैयार होगी उसी पर कार्यक्रम बनाया जायगा और उसी के अनुसार समाज का निर्माण होगा। क्या सदा के संकोच और भीरुता के कारण इस बार भी स्त्री, पुरुष के साथ एक ऐसे समाज का निर्माण करने मे सहयोग न देगी जिसमे दोनो का विकास हो सके, और दोनो सुखी होकर उस समाज रूपी नौका को अनंत काल तक खे सकें।

नवयुवतियों और नवयुवकों के विवाह-सम्बन्धी कर्तव्य

[श्री० आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव]

भारतवर्ष की नवयुवतियाँ और नवयुवक राजनैतिक कार्य में अधिक भाग लेना चाहते हैं और सामाजिक कार्यों में कम। क्या इसका यह कारण है कि राजनैतिक क्षेत्र में यश प्राप्त करने की अधिक सम्भावना रहती है और सामाजिक क्षेत्र में कम। बहुधा समाज-सेवा मौन सेवा हुआ करती है, क्या इसीलिये हमारी नवयुवतियाँ और हमारे नवयुवक समाज सेवा से विरक्त रहते हैं? कारण चाहे जो हो, हमें तो उपरोक्त कारण ही सत्य जान पड़ता है। हम आज अपनी नवयुवतियों और अपने नवयुवकों के विवाह सम्बन्धी सामाजिक कर्तव्यों के बारे में कह कर उनसे समाज-सेवा में अधिक भाग लेने का अनुरोध करेंगे।

पहले हम नवयुवतियों के कर्तव्य के बारे में विचार करेंगे। हमारा पहला ध्येय है कि भारत की प्रत्येक नवयुवती सुशिक्षित हो। पर शिक्षा के बाद वे क्या करती है, यह देखना चाहिये। हमारा जहाँ तक अनुभव है, शिक्षा के पश्चात् भी हमारी नवयुवतियों में सच्ची सेवा का भाव नहीं रहता। वे लोग अधिकतर विलासिता की ओर झुकती हैं। बढ़िया भोजन (चाहे वह हानिकर ही क्यों न हो), अप-टु डेट पहनाव (चाहे वह उनकी हैसियत से अधिक ही हो), अपनी सङ्गिनियों के साथ मनोविनोद, सिनेमा देखना आदि उनको प्रिय होते हैं। संयत होने पर ये बातें बुरी नहीं हैं, परन्तु उनके साथ जीवन का कोई ऊँचा आदर्श होना चाहिये। इन बातों के अतिरिक्त वे व्याख्यान देने की, लेखादि लिखने की रुचि रखती हैं। कहना नहीं होगा कि ये दोनों बातें भी समाज की बड़ी सेवाएँ नहीं हैं। इनसे कुछ समाज-सेवा होती भी है, तो वह सेवा के उद्देश्य से नहीं की जाती, वरन् नाम कमाने के उद्देश्य से की जाती है। हम जहाँ तक देखते हैं, यदि नवयुवती इण्टरमीजियट पास हुई तो वह बी० ए० या एम० ए० पति चाहती है और बी० ए० या एम० ए० पास हुई तो उसे आई० सी० एस० से कम वर पसन्द नहीं आता। यह भी कोई बुरी बात नहीं है। यदि वे बहिनें जो धनहीन हैं, जिनकी आय पर्याप्त नहीं है, ऐसा चाहें तो कोई हानि नहीं है, परन्तु वे बहिनें जो धनवान घरानों की हैं, जिन्हें अपने पिता के घर से विवाह में पर्याप्त धन मिलने वाला है, यदि ऐसा न चाहें तो अच्छा है। उनके लिये हम विशेष मार्ग दिखलाना चाहते हैं, जो आशा है, उन्हें भी पसन्द आवेगा।

बड़े या धनवान घरानों की सुशिक्षित या सुशिक्षा प्राप्त करती हुई बहिनों से हमारा अनुरोध है कि वे धनवान घरानों के नवयुवकों को छोड़ कर गरीब घरानों के नवयुवकों से विवाह करें। हम यह नहीं कहते कि वे कुरूप और गरीब मूर्खों के साथ विवाह करें! हमारा कहना यह है कि कालिज-जीवन में ही अत्यन्त तीक्ष्ण-बुद्धि एवं सुन्दर विद्यार्थी चुन के उससे विवाह करें और उसे आगे पढ़ा लें। उसे आई० सी० एस०, आई० एम० एस० या चाहे जो बना लें या वैसा विद्यार्थी चुन कर उसे शिक्षा दिला कर तब उससे विवाह करलें। हमें ज्ञात है कि कुछ विचारशील धनी पिताओं ने ऐसा किया है। उन्होंने गरीब घराने के तीक्ष्ण-बुद्धि सुन्दर विद्यार्थियों को चुना है। पर हम यह अनुरोध करेंगे कि हमारी सभी सम्पन्न शिक्षार्थिनियाँ अपने पिताओं से ऐसा ही करने का हठ करें, वे धनवान घरानों के लड़कों से विवाह करने से दृढ़तापूर्वक इनकार कर दें। ऐसा करने से गरीब किन्तु योग्य विद्यार्थियों का भला होगा, अनेक व्यक्ति

अपनी वर्तमान या भावी पत्नियों द्वारा उन्नति के मार्ग पर ले जाये जायँगे, धन धनवानों में ही न रह कर गरीबों में जायगा और बहुत से गरीब अधिक धनार्जन के योग्य बनेंगे या यों कहिये कि अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार उचित धन वितरण होगा—समाज में समता उत्पन्न होगी। जो गरीब से अमीर होते हैं उनको गरीबों के प्रति सहानुभूति होती है, वे दीनों की सेवा करते है। ऐसे विवाह होने से सम्भव है, ऐसे दम्पति पैदा हों, जो आगे चल कर गरीबों की सेवा करें, ऐश्वर्य का भोग करते हुये भी दीन जनों पर कृपा रक्खे।

इसके विपरीत जब अमीर घरानों की लड़कियाँ अमीर ही घराने के लड़कों के साथ विवाह करती हैं, तो उनको अधिकतर घमण्डी और विलासी पति मिलता है और दम्पति का जीवन विलास में ही बीतता है, धन अमीरों में ही रह जाता है। उनके पतियों को उनके धन की परवाह न होने से, उससे उनका कोई हित नहीं होता और धन का अपव्यय मात्र होता है।

हमारी धनिक घरानों की बहनें कह सकती हैं कि कदाचित् उनके पिता इससे सहमत न हों कि वे गरीबों के साथ ब्याह करें। हम कहते हैं कि वे सहमत होंगे क्यों नहीं, केवल हमारी बहनों में सत्य आग्रह का भाव होना चाहिये, समाज सेवा की लगन होनी चाहिये।

हमारा दूसरा अनुरोध अपनी गरीब और सम्पन्न दोनों प्रकार की बहनों से यह है कि उनको चाहे क्वाँरी रह जाना पड़े, परन्तु वे उनसे विवाह न करें जो उनके पिताओं से दहेज माँगे। यदि इस बात में उन्हे अपने पिताओं के विरुद्ध भी चलना पड़े तो चलें।

हमने 'सरस्वती' के किसी पिछले अङ्क में एक घटना पढ़ी थी। एक बहन की एक साड़ी में स्याही का छोटा सा धब्बा पड़ गया था। उनके पास दो साड़ियाँ और थीं, परन्तु वह उन्हे पिछले दिनों पहन कर गई थीं, अतएव उन्हें पहनना नहीं चाहती थीं। बस उन्होंने कालिज जाने से इनकार कर दिया। उनकी माता जी उनसे अनुरोध करके हार गई, परन्तु वे नई साड़ी न मिलने से कालिज नहीं गई। जब ऐसी छोटी सी बात पर माता-पिता की आज्ञा का उलङ्घन हो सकता है तो विवाह के मामले में आज्ञा भङ्ग करने में कौन हानि है? जहाँ आज्ञा भङ्ग नहीं करनी चाहिये वहाँ वे करती हैं और जहाँ करनी चाहिये वहाँ नहीं। विवाह के मामले में ऐसा करना समाज सेवा एव गौरव का विषय है।

उनके इस हठ के कारण विवाह न हो तो भी कोई हानि नहीं है। विवाह करने से जन्म भर अविवाहित रह कर किसी ऊँचे उद्देश्य के लिये काम करना बहुत अच्छा है। यदि नवयुवतियाँ प्रण करले कि चाहे उनका विवाह न हो, वे दहेज माँगने वालों या उनके लड़कों के साथ विवाह न करेंगी तो दहेज की प्रथा टूट जावेगी। इस प्रथा से कितनी हानि है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। न जाने कितनी स्नेहलताएँ इस प्रथा पर बलिदान हो चुकी और हो रही हैं। इस प्रथा के कारण भारत-वासियों का गृहस्थ जीवन श्मशान हो रहा है। इसका तोड़ना नवयुवतियो से ही हो सकता है। नवयुवतियों—विशेषकर शिक्षित नवयुवतियों का दहेज माँगने वालो के विरुद्ध प्रण बहुत कारगर होगा। शीघ्र ही शिक्षित नवयुवक बिना दहेज माँगे विवाह करने पर विवश होंगे और उनके दहेज माँगने वाले अभिभावक लज्जावनत होंगे।

हमारी गरीब शिक्षित नवयुवतियों को स्नेहलता की भाँति मरने की आवश्यकता नहीं है। उन्हे केवल विवाह करने से इनकार करके किसी कार्य में लग कर कमाने का भार लेना चाहिये और अपने पिताओं को अपने भार से मुक्त कर देना चाहिये। वे सम्भव है, थोड़ा ही कमा सकें, पर जितना कमावें उतने ही में अपनी गुजर करें। विलासिता से दूर रहें, मितव्ययिता से काम लें। उनकी यह दृढ़ता समाज में जादू का सा परिवर्तन ला देगी, वह कुछ का कुछ हो जावेगा।

अब लीजिये नवयुवकों को। शिक्षित होने के पश्चात् उन्हें यश-प्राप्ति की आकांक्षा होती है। इस आकांक्षा को पूर्ण करने के लिये वे राजनैतिक क्षेत्र में काम करना चाहते हैं। इस कार्य को वे अपने कालिज के जीवन में हड़ताल आदि से आरम्भ कर चुकते हैं। वे सामाजिक क्षेत्र में काम करने की कम इच्छा करते हैं, या बिलकुल नहीं। वे देश सेवा को महान कार्य समझ कर उसको

तो करना चाहते हैं, पर समाज-सेवा की ओर कम ध्यान देते हैं। यदि वे समाज सेवा की ओर ध्यान देते तो दहेज की प्रथा भारत में अब तक बनी न रहती। जब उनके पिता दहेज माँगते हैं, तब वे चुपचाप देखा करते हैं। गरीब कन्यायें अविवाहित रह जाती है, उन्हें दुष्ट लोग बहका ले जाते है, पर उनके कानों में जूँ तक नही रेंगती। क्या कारण है कि वे समाज-सेवा से उदासीन रहते हैं? क्या वे समाज सेवा को छोटा कार्य समझते हैं और देश-सेवा को बड़ा कार्य। यदि वे ऐसा समझते है तो उनकी भूल है। जिनसे समाज-सेवा नहीं हो सकती, वे देश-सेवा क्या करेंगे? वे देश सेवा का ढोंग रचकर नाम प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे और कुछ नहीं।

नवयुवतियों के समान हमारे नवयुवकों का भी कर्तव्य निश्चित है। हमारे अमीर घराने के शिक्षित नवयुवकों का पहला कर्तव्य है कि गरीब कन्याओं से विवाह करके उनकी रक्षा करें। वे कन्याये शिक्षित न हों तो विवाह के बाद ऊँची से ऊँची शिक्षा दें। सच्ची सेवा का अर्थ है एक या अनेक व्यक्तियों को उन्नति के पथ पर चलाना। एक कन्या को, जो अल्प शिक्षित है, धर्मपत्नी बना कर उसको उच्च शिक्षा देना सच्ची सेवा का कार्य है और ससार के किसी कार्य से भी कम नहीं। यदि वह अल्प शिक्षित कन्या या अशिक्षित कन्या ही बहुत गरीब है तो बहुत अच्छा है। उन्हें चाहिये कि वे अपने पिता के धनी परिवार में ब्याह करके धन प्राप्त करने के विचार के विरुद्ध सत्याग्रह कर दें।

हमारे नवयुवक धनिक परिवार में विवाह करके सिवाय विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने के और कुछ नहीं करते हैं। विलासी होकर वे देश-सेवा का ढोंग रचते हैं और नाम कमाने का प्रयत्न करते हैं। अपनी स्थिति विषयक झूठे विचार, और धन-प्राप्ति का लोभ उन्हें समाज सेवा से पराङ्मुख रखता है।

हम यह नहीं कहते कि वे कुरूप तथा गँवार लड़की से ब्याह कर लें। वे कन्या सुन्दर और तीक्ष्ण बुद्धि की चुनें, पर हो वह गरीब घराने की। कहना न होगा कि गरीब घरानों में ऐसी कन्याओं की कमी नहीं है। इससे एक गरीब कन्या का भला होगा, धन अमीर से गरीब के यहा जायगा अर्थात् समाज में समता उत्पन्न होगी।

सुना है कि आजकल के नवयुवक सत्याग्रह और त्याग करने को उत्सुक रहते हैं—कम से कम वे कहते ऐसा हो हैं। यदि वे सत्याग्रह करने के लिये तैयार हैं तो वे तब क्यों नहीं सत्याग्रह करते जब उनके पिता उनके विवाह में दहेज माँगते हैं? वे तब त्याग क्यों नहीं करते जब उनके पिता विवाह की आड़ में उन्हे बचते हैं? वे इस गृहस्थ-जोवन-सहारिनी दहेज-प्रथा के विरुद्ध सत्याग्रह क्यों नहीं करते? स्पष्ट है कि ऐसा करने मे जोवन सङ्कट में पड़ने की सम्भावना है, जो वे नहीं चाहते। यदि उनमें कुछ भी साहस होता और गरीब कन्याओं पर तनिक भी दया होती तो भारत में यह प्रथा आज तक न रह जाती। यह जो सच्ची समाज-सेवा और वास्तविक देश-सेवा है उससे वे दूर भागते हैं।

यदि हमारे नवयुवक अपने पिताओं से स्पष्ट कहें कि हम गरीब घरानों की कन्याओं से विवाह करेंगे और विवाह में दहेज कदापि न लेंगे, तो उनके पिता क्या करेंगे? यही करेंगे न कि उन्हे घर से निकाल देंगे। इसके लिये उन्हे तैयार रहना चाहिये। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनकी सेवा करने की उत्सुकता ढोंग के सिवाय और कुछ नहीं है। उन्हे अपने ऊपर निर्भर होना चाहिये और पिताओं को दिखा देना चाहिये कि समाज की गरीब कन्याओं का दुख दूर करके चैन लेंगे।

समाज की यह सेवा व्याख्यान देते फिरने से कहीं बढ कर है। यह मौन त्याग पहले कष्टकर होगा, पर अन्त में उनके नाम को अमर कर देगा, जो इस कार्य में अग्रसर होंगे। यही तो सच्ची देश-सेवा है।

भारत को जितना दुख परतन्त्रता से है, कम से कम उतना दुख सामाजिक बुराइयों से भी है। भारत स्वतन्त्र भी हो जाय और इन बुराइयों के विरुद्ध राज-नियम भी बन जावें, तो भी ये बुराइयाँ बनी ही रहेंगी। बाल-विवाह के विरुद्ध शारदा एक्ट ने क्या काम किया। न ये सामाजिक बुराइयाँ सामाजिक सभाओं के प्रस्तावों से ही दूर हो सकती हैं। इन बुराइयों का दूर होना केवल

भारतीय स्त्रियाँ और उद्योग-धन्धे

[श्रीमती ललिताप्रसाद]

भारतवर्ष की नारियों के जीवन में इस समय दो विकट और अत्यन्त ही जटिल समस्याएँ आ उपस्थित हुई हैं—एक तो समाज में एक सबल एव विशिष्ट स्थान प्राप्त कर अपने स्वत्वों एव मानुषिक अधिकारों को प्राप्त करना और दूसरा, आर्थिक स्वतन्त्रता के द्वारा अपनी बिगड़ी हुई दशा को सुधारना। वस्तुतः बड़े-बड़े और कठिन प्रश्न हैं ये, पर इनके सुलझने पर ही उनके भविष्य जीवन का समस्त सुख, विकास, उन्नति और पूर्णत्व निर्भर करते हैं। अस्तु, इन्हें तो मैं स्त्रियों के लिए जीवन-मरण की समस्या कहूँगी। मेरा तो क्या, यह आधुनिक जगत् के सभी भावुक तथा दूरदर्शी नेताओं का भी मत है कि जब तक स्त्री जाति स्वतन्त्र हो अपने जीवन को अपनी ही इच्छानुसार निर्मित न कर सकेगी और दूसरों की—चाहे वह पति की हो या पुत्र की—अधीनता से अलग अपनी सत्ता स्वय कायम न कर सकेगी, तब तक न तो स्वयं वे कुछ अपनी उन्नति कर सकती हैं और न अपनी जाति अथवा मातृ-भूमि की ही। किन्तु ये समस्यायें सुलझायी जाँय किस प्रकार? मेरा तो विश्वास है कि इन दोनों में सबसे महत्वपूर्ण बात है आर्थिक स्वातंत्र्य की। आर्थिक स्वतंत्रता होते ही समाज में अपना अधिकार पाना किसी तरह भी असम्भव नहीं है। धन की प्राप्ति के साथ ही साथ एक ऐसी शक्ति का सग्रह होता है, जिसके द्वारा हमें आजादी के युद्ध में भाग लेने में कोई कठिनाई नहीं होती। अस्तु, यदि स्त्रियाँ सर्वप्रथम आर्थिक आज़ादी हासिल कर सकें तो उनके लिए सामाजिक स्वत्वों को प्राप्त करना एकदम सहज होगा।

किन्तु विश्व के वर्तमान वातावरण में और पूँजीवाद, साम्राज्यवाद एव राष्ट्रीय झञ्झटों से जकड़ी हुई जीवन प्रणाली में दुर्बल अबलाओं की नसों में इतनी शक्ति आवे कहाँ से, जिसके द्वारा वे आर्थिक सङ्कटों पर विजय प्राप्त कर सकें? हममें से बहुत तो ऐसी निराश हैं जो केवल यही कहा करती कि इस समय तो अर्थ सम्बन्धी आजादी का प्रश्न उठाना ही फिजूल है। पर मेरी दृष्टि में यह धारणा बिलकुल ही निरर्थक है। दुनिया में कुछ अपना हो या नहीं, पर आत्म-शक्ति और आत्म-विश्वास तो जरूर ही अपने हैं। अपनी ही मदद और दृढ़ता के भरोसे हम आश्चर्यजनक काम कर दिखा सकती हैं। तब अशेष बाधाओं के रहते हुए भी स्त्रियों के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना उतना कठिन नहीं। हाँ, यदि यह बात हमारे हृदय-पटल पर अङ्कित हो तो शीघ्र ही यह सहज भी दीख पड़ने लगेगा। अतएव यदि वे कुछ पैसे कमाने लगीं, अथवा यदि अपने परिश्रम से परिवार के या अपने खर्च के लिए कुछ मदद पहुँचा सकीं तो अवश्य उनके हृदय से दासत्व का भाव तो जरूर ही मिट जायगा और हिन्दू अथवा मुसलिम समाज में जो उन्हें एक अत्यन्त निम्न स्थान प्राप्त है, उसमें तरक्की होगी। इतना ही नहीं, वे स्वय स्वाधीनतापूर्वक जीवन व्यतीत कर धर्म तथा नीति के द्वारा, आदर्श की प्राप्ति के द्वारा समाज और देश की बड़ी सेवा कर सकेंगी।

इस प्रकार का भाव यदि भारतवर्ष की समस्त स्त्री-जाति में जाग उठे और इसे कार्यरूप में परिणत करने को वे मजबूती से आगे बढ़ें, तो अवश्य है कि इस देश की १६ करोड़ स्त्रियों की एकत्रित शक्ति और प्रबलता के सम्मुख समाज के ठेकेदारों की अत्याचार-भरी रीतियाँ तो क्या, कोई भी बाधाएँ कदापि नहीं टिक सकेंगी। यदि ऐसा हो तो हमारे मृतप्राय समाज की धमनियों में पुन: तेजपूर्ण रक्त का प्रवाह होगा और राष्ट्रीय जीवन के अङ्ग-अङ्ग पुष्ट हो उठेंगे।

पर स्त्रियों के लिए धनोपार्जन के कौन से उपाय हैं ? आजकल की बेकारी की बढती बीमारी के युग में स्त्रियों को कहाँ से काम धन्धे मिल जायँगे, जिनके द्वारा वे कुछ पैसे अपने परिश्रम से पैदा कर सकें ?

इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है—एक ही मार्ग है, और वह है उद्योग-धन्धों में लग जाना। मेरा तो विश्वास है कि भारत की नारियाँ यदि तन-मन-धन से इस कार्य में जुट जायँ तो अवश्य ही उनकी बहुत कठिनाइयाँ शीघ्र ही दूर हो जायँगी और उनका जीवन उज्ज्वल और सुखमय हो जायगा।

उद्योग धन्धों से कौन से लाभ है, यह बताना मेरा ध्येय यहाँ नहीं है। मै तो इतना ही कह देना चाहती हूँ कि भारतवर्ष के अग्रगण्य सूत्रधार गाँधी जी के कथन के अनुसार भारत का उद्धार जितना शीघ्र इसके द्वारा हो सकता है, उतना न तो व्याख्यान देने से न राजनैतिक क्षेत्र में भाग लेने से। यही मत इस देश के और-और नेताओं और विद्वानों का भी है। अस्तु, भारतीय स्त्रियों को बिना हिचकिचाहट के इस ओर झुक जाना चाहिए।

हिन्दुस्थान की निम्न श्रेणी की औरतों के लिए यह कठिन काम नहीं, पर भले घर की स्त्रियों को भी जरूर ही बेखटके इस कार्य में लग जाना चाहिए। मिल, फैक्टरियों में तो नीच जाति की स्त्रियाँ बहुत नजर आयेंगी, परन्तु वहाँ शायद ही प्रतिष्ठित घराने की नारियाँ काम करें। कारण यह है कि हजारों की संख्या में काम करने वाले अनपढ़, शराबी, और गँवार मजदूरों के बीच अथवा कारखानों के मालिकों के साथ कुछ पैसे कमाने के ख़याल से वे शायद कभी काम न कर सकें। अस्तु, भले घरों के लिए एक ही मार्ग खुला हुआ है, या तो उद्योग-धन्धों का अवलम्बन करना या पढे-लिखे लोगों के उपयुक्त कहीं नौकरियाँ करना, जो वस्तुत: बड़ी कठिनाई से मिलती है।

इस समय इस देश में ऐसी करोड़ों स्त्रियाँ है जो किसी कार्य में अपना-अपना समय बिता अपनी आत्मा या जीवन को विकसित कर पाती हैं। उनमें से अधिकांश तो घर की चहारदिवारी में पर्दे की ओट अपने बहुमूल्य समय को नष्ट करती हैं। कुछ ऐसी भाग्यवती अवश्य हैं, जिनकी जिन्दगी पैसे की तङ्गी के नहीं रहने के कारण आराम से कट जाती है, पर वे अधिक वे और कुछ न कर पातीं। पर शेष गरीब बहनों का पूछना ही क्या ? उनके सामने कोई उपाय नहीं दीख पड़ता, जिसके द्वारा वे अपनी आर्थिक समस्याओं को हल कर सकें। यहाँ की स्त्रियों में प्रतिशत १५.५ विधवाएँ है, जिनकी अवस्था और भी दर्दनाक है। पति-हीन हो, दूसरों की मुहताज हो दाने-दाने को तरसने वाली, इन्हें नरक की भीषण से भी भीषण यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। जीवन की घड़ियाँ उन्हें खून का घूँट पी-पी कर बितानी पड़ती हैं। ऐसी ही औरतों के लिए घरेलू उद्योग-धन्धों की विशेष आवश्यकता है। इनके द्वारा इन्हे कुछ रुपये ज़रूर ही मिल जायँगे और जीवन में कुछ न कुछ आराम अवश्य ही मिलेगा।

घरेलू धन्धों के विषय में बहुत लिखा और कहा जा चुका है। और अब तो भारत के सात प्रान्तों की कॉङ्ग्रेसी सरकारों का यह एक प्रधान कर्तव्य ही हो गया है कि वे इनकी वृद्धि के लिए जनता को अधिक से अधिक उत्साह, ज्ञान और सहायता प्रदान करें।

इन धन्धों में सबसे प्रमुख है—खद्दर का कातना और बुनना, रस्सी बनाना, कपड़ा सीना और पिरोना, फल फूलों की खेती करना, लच्छे बनाना, दरी बनाना, कम्बल, परदे आदि तैय्यार करना, टोकरियाँ और तरह-तरह की जरूरी चीजें बनाना, मधुमक्खियाँ, मुर्गी, सुअर, भेड़, बकरी और गायें पालना।

पर ये काम एकदम ही सहज नहीं हैं। सरकार अथवा जनता के सहयोग के बिना स्त्रियाँ पूर्णरूप से इन धन्धों को चलाने में सफल नहीं हो सकतीं। अतएव भारतवर्ष की सभी प्रान्तीय सरकारों को इस ओर समुचित ध्यान देकर स्त्रियों को विशेष रूप से उत्साहित करना अत्यावश्यक है। यदि प्रत्येक प्रान्त की गवर्नमेन्ट निम्नलिखित उपायों का अवलम्बन करे तो वस्तुत स्त्री जाति एव समस्त देश का महान् उपकार होगा, क्योंकि इनके द्वारा केवल दरिद्रता ही बहुत कुछ दूर न हो जायगी, वरन् अबलाओं के रोगग्रस्त अङ्गों में सजीवता

और शक्ति का सचार होगा और राष्ट्रीय जीवन उन्नत। अस्तु, इन उपायों को शीघ्र ही कार्य रूप में परिणत [illegible]री है, जैसे —

(१) स्त्रियों के लिए श्रमिक विभाग खोलना।
(२) उद्योग धन्धों को सिखाने और चलाने के निमित्त श्रमिक शिक्षा कैम्प का स्थापित करना।
(३) सस्ते दर पर उधार रुपया देकर स्त्रियों की पूँजी की कमी को दूर करना।
(४) स्त्रियों के श्रमिक सहयोग समिति की व्यवस्था करना।
(५) जरूरी ट्रेनिङ्ग के लिये, यात्रा पार्टियों के लिए इन्तजाम करना।

परन्तु केवल ये ही युक्तियाँ यथेष्ट नहीं हैं। आज-कल के मशीनों युग में घरेलू वस्तुओं को बेच कर उचित दाम पाना कठिन है; क्योंकि यन्त्र द्वारा पूँजीपति थोड़े ही समय और थोड़े आदमियों से बहुत अधिक वस्तुएँ प्रस्तुत कर लेते हैं, पर यह घरेलू उद्योग-धन्धों के क्रम में सम्भव नहीं। अतएव देश और सरकार को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि स्त्री या पुरुष द्वारा बनाई हुई हाथ की चीजें बाज़ार में अनुचित या कम दाम पर न बिकें, बल्कि उनकी खपत इस प्रकार हो कि उनके बनाने वालों को किसी प्रकार घाटा न लगे। अस्तु।

बाज़ार में ख़रीद-बिक्री के लिए भी उचित प्रबन्ध की बड़ी आवश्यकता है गवर्नमेन्ट को ऐसे इन्सपेक्टर एवं आफिसरों को नियुक्त करना चाहिये जो स्वय इस कार्य में काफी दिलचस्पी रख इसे उत्साहित कर सकें।

यदि ऐसी ही बात हो तो मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक भारतीय स्त्री की निजी आमदनी अवश्य ही कुछ अच्छी होगी और वे स्वावलम्बन की अमूल्य शिक्षा आप ही आप सीख लेंगी।

यह तो हुई उन लोगों की बात, जो घर पर ही तरह-तरह की वस्तुएँ बना कर पैसे कमा सकें। पर वे स्त्रियाँ जो मिलों अथवा कारखानों या अन्य स्थानों में मजदूरी करती हैं, उनके आराम के लिये भी सरकार को काफी इन्तज़ाम करना उचित है।

पर इतने ही से क्या हमारी सभी बहनों की विकट आर्थिक समस्याएँ हल हो जायँगी? हममें से बहुत ऐसी हैं, जिन्होंने स्कूल-कालिजों में उच्च शिक्षा पाई है और जो कोई भी ऐसा काम पसन्द नहीं करतीं जो उनकी उन्नत संस्कृति के उपयुक्त न हो। ऐसी स्त्रियों के लिए दो कार्य बहुत ही उत्तम हैं—(१) शिक्षण का और (२) डाक्टरी का। हमारे देश में स्त्रीशिक्षक और स्त्री डाक्टर इतनी कम संख्या में हैं कि यह अभाव हमें बड़ा ही अखरता है।

इन कार्यों में स्त्रियाँ बहुत मदद कर सकती हैं और अपने परिश्रम के अनुसार कुछ धनोपार्जन भी कर सकती हैं। प्राइमरी शिक्षा के प्रचार के लिये एवं नर्सों के लिये तो बहुत स्त्रियों की ज़रूरत पड़ेगी, जिसके लिये स्त्रियों को अभी से प्रस्तुत होना चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिये सबसे उपयुक्त स्त्रियाँ ही हो सकती हैं। अतएव सरकार को उन्हीं को नियुक्त करना उचित है।

रोज़गार के द्वार और भी अनेक हैं, जैसे सरकारी आफ़िस में किरानी का काम, वकालत, स्कूल कालिजों की नौकरी, पुलिस का काम आदि, पर वे सभी के लिए नहीं। कुछ ख़ास-ख़ास स्त्रियाँ ही इनके योग्य हो सकती हैं। पर जिनमें इन कामों की योग्यता हो तो उन्हें मौका मिलने पर अपने मस्तिष्क और जीवन के विकास के निमित्त अवश्य ही उनमें जुट जाना चाहिए।

यदि उपर्युक्त सभी मार्गों का अनुसरण कर हमारी बहनें अपनी-अपनी आर्थिक कठिनाइयाँ हल कर सकें तो अवश्य ही उनमें एक नूतन शक्ति का प्रादुर्भाव होगा, जिससे वे केवल अपनी ही पराधीनता की शृङ्खला न तोड़ सकेंगी, बल्कि अपने भाइयों की और अपने देश की भी।

लोक-परलोक

सिनेमा-नाटक

[श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल-एल० बी०]

[तीसरी धारा]

दृश्य ३२

यमलोक का एक स्थान

[दो यमदूत दो मृत आत्माओं को, उनकी टाँगों में अलग-अलग बँधी हुई रस्सियों को अपने-अपने कन्धों पर रखे हुए खींचते जा रहे हैं। जिनमें से एक भगुआ भङ्गी है और दूसरा ढबढब पाण्डे। दोनों अचेत दशा में हैं। मगर बजाय ज़मीन पर घसिटने के हवा में लहराते हुए खिंचते जाते है।]

यमदूत नम्बर १—(रास्ता चलते) —'जब दुनिया वाले जीते ही आप से आप यमलोक में पहुँचने लगे तो जो न हो जाए वही थोड़ा है।'

यमदूत नम्बर २—(रास्ता चलते)—'मुझे तो उसके मनुष्य होने में सन्देह है। मनुष्यों में भला कहाँ ऐसी शक्ति हो सकती है?'

यमदूत नम्बर १—'अरे भाई, वह मनुष्य काहे को मनुष्यों का गुरूघण्टाल है गुरूघण्टाल। अवश्य ही कोई बड़ा ही बेढब महापुरुष है तभी तो उसकी शक्ति देवताओं से भी बढ़ कर है।'

दृश्य ३३

यमलोक का एक ऊँचा टीला

क़ानूनीमल—[टीले पर अकेले मौज में बैठे हुए]—'अब ज़रा अपनी जीती हुई ताकत की आजमाइश करनी चाहिये। मगर किस पर! .. [इधर-उधर देख कर एक तरफ ध्यान से देखते हुए]—ओहोहो! क्या मजे में वह दोनों यमदूत अपने-अपने मुर्दे खींचे लिये जा रहे हैं। अच्छा।'—[अपनी जेब से रूमाल निकाल कर झटकता है।]

दृश्य ३४

फिर बत्तिसवाँ दृश्य दूसरी बार

[दोनों मुर्दों के पैरों से आप से आप रस्सी खुल कर गिर जाती है और दोनों यमदूत खाली अपनी रस्सियाँ ज्यों की त्यों खींचते आगे बढ़ते जाते हैं]

यमदूत नबर १—'और सुना? हमारे सरदार का कहीं पता नहीं है।'

यमदूत नबर २-'आश्चर्य्य तो मुझे भी है परन्तु ..।'

[बातें करते दोनों दृश्य से बाहर चले जाते हैं]

[दृश्य फिर पिछली तरफ़ हट जाता है, जहाँ भगुआ और ढबढब पाँडे है]

भगुआ—(आँखें मलकर गौर से देखते हुए) 'को आये? ढबढब पाँडे? अरे! तूहूँ मर गयो? बाप-किरिया?'

ढबढब—'कौन, भगुआ भङ्गी?'

भगुआ—'हाँ, पाँडे जी हम ही होई। तू मर गैयो यू बड़ा नीक भवा, जाने गुसइयाँ।'

ढबढब—'हाँ हाँ, अबे दूर हट। घुसा क्यों पड़ता है?'

भगुआ—'का करी पाँड़े जी। हम नहाते में डूब गएन। गउदान तक करे के मौका नहीं मिला। तब्बे तो तोहरे मरे से हम निहाल होए गएन निहाल। जाने गुसइयाँ। अब हमार बेड़ा पार होए जाई।'



अर्घ्य-दान

ढबढब—'तो क्या हमसे यहाँ गउदान कराना चाहता है ?'

भगुआ—'का बताई हीयाँ कहूँ गाय दिखाई नाही पड़त है। ऊल हाँ तूही एक बाजी कहेयो रहा कि गऊमाता और बामन देवता का एक समझे के चाही।'

ढबढब—'अच्छा। परन्तु तनिक दूर रह।'

भगुआ—'तो हमरे करम में गऊ माता नाही है नाहीं सही। बामन देवता तो मिल गये। तू ही आपन पूँछ पकड़ाय के हमें बैतरनी नदी पार कराय दो। बस अब तोहरे भरोसा है। नाहीं हमार मुक्ति न हुई।'

ढबढब—(चौंक कर) 'पूँछ ? तू भङ्गी होकर हमारी पूँछ पकड़ेगा ? इतना साहस ? परन्तु...ओहोहो ! हमारे तो पूँछ ही नहीं। तू पकड़ेगा क्या, अपना सर ? भाग यहाँ से चाण्डाल।'

भगुआ—'अरे भूल गएन। 'पूँछ नाहीं' गोड़। हाँ तोहार गोड़ पकड़ के हम बेतरनी पवर जाबे। बस तनिके सहारा चाही। दोहाई पाँड़े जी। भागो न। देखो जनम भर तोहार मैला साफ कीन है। अब तनि तुहूँ हम पर दया करो। बड़े भाग से और बड़े जून पर मिले हो। अब तोहें पाय के हम कहूँ छोड़ सकित है ?'

[पाँड़े जी पीछे हटकर एकबारगी प्राण लेकर भागते हैं और भगुआ भी जी छोड़कर उनके पीछे दौड़ता है।]

दृश्य ३५

यमलोक का दूसरा स्थान

[दोनों यमदूत उसी तरह अपनी अपनी रस्सी खींचते हुये आ रहे हैं।]

यमदूत नम्बर १—'अब तो यार यहाँ कुछ दम ले लेना चाहिये।'

यमदूत नम्बर २—'वाह ! दोस्त, क्या बात कही है। यही तो मैं भी कहने वाला था। मगर भाई, हमारी रस्सी न जाने क्यों कुछ ढीली मालूम होती है। [घूम कर] अरे ! यह क्या ? मुर्दा गायब ?'

यमदूत नम्बर १—(घूम कर)—'अरे ! हमारा भी मुर्दा लापता है ! हाय ! भगवान यह कैसा अनर्थ ?'

यमदूत नम्बर २—'रस्सी खुल जाने से कहीं रास्ते में टपक पड़ा।'

[दोनों लौट कर दौड़ते हुए इधर उधर ढूँढ़ते हैं।]

यमदूत नम्बर १—'कहीं पता नहीं।'

यमदूत नम्बर २—'ऐसा अंधेर ? अब क्या करें ? अच्छा तुम उधर देखो और मैं इधर।'

दृश्य ३६

यमलोक का एक मैदान

[ढबढब पाँड़े प्राण लिये भागते चले आते हैं और भगुआ 'दोहाई, पाँड़े जी दोहाई, पाँड़े जी' चिल्लाता हुआ बेतहाशा पीछा कर रहा है।]

दृश्य ३७

यमलोक का एक अँधेरा स्थान

[दोनों यमदूत अपने-अपने मुर्दों को ढूँढ़ते हुए अलग अलग रास्तों से आकर अँधेरे में टकराते हैं। और दोनों एक दूसरे को अपना-अपना मुर्दा समझ कर पकड़ लेते हैं और चिल्लाते हैं।]

दोनों यमदूत—'पकड़ लिया। पकड़ लिया। हत तेरे मुर्दे की ऐसी-तैसी ! अब कहाँ जाता है ?'

[दोनों यमदूत आपस में गुथे हुए खड़े रहते हैं, वैसे ही ढबढब पाँड़े दौड़ते हुए आकर ऐसी छलाँग मारते हैं कि एकदम दोनों की गर्दन पर सवार हो जाते हैं।]

दोनों यमदूत—'हाय बाप ! यह सर पर कैसा पहाड़ फट पड़ा ?'

[ढबढब पाँड़े को अपनी गर्दनों पर लिये हुए दोनों यमदूत घबड़ा कर एक साथ सरपट भागते हैं और छुटे हुए मैदान में निकल आते हैं। वहाँ भगुआ बड़े जोरों से दौड़ता हुआ आकर पीछा करता है।]

भगुआ—(पीछा करता हुआ)—'वह ला, वह ला जोड़ी हाँके निकसा जात है। हाय ! दादा ! अब का करो ? जै हनुमान सामी की !'

[भगुआ इस जोरों से छलाँग मारता है कि उचक कर एकदम ढबढब पाँड़े की गर्दन पर सवार हो जाता है। दोनों यमदूत चिल्ला कर और तेज भागते हैं।]

दृश्य ३८

फिर तैंतीसवाँ दृश्य दूसरी बार

कानूनीमल—(ताली बजाकर हँसते हुए) 'भाई वाह ! यह खूब रहा ! वाहरी ! मेरी ताकत !'

दृश्य ३९

कलयुग महाराज का विलास-भवन

[कलयुग महाराज सुन्दरियों के बीच में मखमली गद्दे पर, तकिये की जगह पर एक सुन्दरी के सहारे एक हाथ में शराब का गिलास लिये लेटे-लेटे दूसरे हाथ से जुआ खेल रहे हैं। दो सुन्दरियाँ उनके पैर दबा रही हैं। एक चँवर हिला रही है और एक पङ्खा झल रही है।]

एक सुन्दरी—'देखिये कलयुग महाराज, यह मेरा दाँव है।'

दूसरी सुन्दरी—'चल झुट्ठी, यह मेरा दाँव है।'

तीसरी सुन्दरी—'तुम दोनों शराब के नशे में अन्धी हो रही हो। यह मेरा दाँव है। देख सात पड़े हैं सात।'

पहली—'झूठ उसपर बेईमानी ? छै के दाँव को बदल कर अभी तूने सात कर दिया।'

कलयुग—'यह किसी का नहीं मेरा दाँव है।'

[दाँव पर की बाजी के साथ सबके सामने के रुपये समेट लेता है]

सब सुन्दरियाँ—'हाय ! हाय ! आप मेरे रुपये क्यों समेट ले गये ?'

कलियुग—'चुप रह। जिसकी लाठी उसकी भैंस।'

सब सुन्दरियाँ—'ऐसी बेईमानी ?'

कलयुग—'तो कलयुग के पास सिवाय झूठ, मक्कारी, चोरी, बेईमानी, शराब, जुआ, और व्यभिचार के और क्या धरा है ?'

[रेडियो के समान एक विचित्र रूप के यन्त्र का आप से आप घनघना उठना]

कई सुन्दरियाँ—अरे ! चुप चुप ! आकाशबाणी।'

यन्त्र की घनघनाहट के बाद उसमें से आवाज—'जै ! कलयुगीनाथ की ! जैकलयुगीनाथ की !'

कलयुग—'यह कौन मेरा जै-जैकार कर रहा है। [यन्त्र के पास जाकर] तुम कौन हो ? कहाँ से बोल रहे हो ?'

यन्त्र का आवाज—'मृत आत्माओं के पड़ाव से यमदूतों का सरदार नम्बर २। आपने संसार में पाप का बोझ बढाने का ठेका लिया था।'

कलयुग—'अच्छा तुम अपना मतलब तो कहो।'

यन्त्र की आवाज—'परन्तु जान पड़ता है, आपने अपने काम की ओर उचित ध्यान नहीं दिया।'

कलयुग—'अजी यह भूमिका रहने दो। साफ-साफ बताओ मामला क्या है।'

यन्त्र की आवाज—'संसार का एक आदमी जो अपने को वहाँ का गुरुघण्टाल बताता है, न जाने किस पुण्य प्रताप से जीता हो यहाँ पहुँच कर ऐसा ऊधम मचाए हुए है कि नाक में दम है। आप फौरन उसको अपने पाप जाल में फँसा कर ऐसा जकड़िये कि उसकी शक्तियाँ सब नष्ट होकर वह मुर्दा हो जाए। नहीं तो आपको इस बात की जवाबदेही देनी पड़ेगी कि आपके होते हुए मृत्युलोक पुण्य-प्रताप में इतना कैसे बढ़ गया।'

कलयुग—'हूँ ! यह बात ? अच्छा (सुन्दरियों से) मेरी कलयुगी अप्सराओ आज अपनी-अपनी कलाओं के इम्तहान के लिये तैयार हो जाओ।'

दृश्य ४०

एक खुला स्थान

[हर तरफ दूर पर कई यमदूत अपने-अपने मुर्दे रस्सियों में बाँध कर खींचते हुए लिए जा रहे हैं। और एक तरफ से यमदूत नम्बर १ और २ एक साथ अपनी गर्दनों पर ढबढब पाँडे को और उसकी गर्दन पर भगुआ को लादे चिल्लाते हुए आते हैं।]

दोनों यमदूत—'दोहाई है, दोहाई है ! कोई हमें इस सङ्कट से उद्धार करो।'

[अन्य यमदूत अपने-अपने मुर्दों को खींचते हुए इन दोनों के पास दौड़ आते हैं]

अन्य यमदूत—'क्या है भाई ? यह कैसा अन्धेर ?'

दोनों यमदूत—'अरे भाई, पहिले हमारे सर से यह पहाड़ उतारो, तब कोई बात करो।'

भगुआ—(ऊपर से) 'नाहीं दादा। हम बड़े मजे में हन। हमका न उतारो। नाहीं बामन देवता हमका फिर न मिलिहैं। हम बिलाय जाब।'

अन्य यमदूतों में से एक—'अरे भाई, आप कौन महात्मा हैं जो इतने ऊँचे आसन पर विराजमान हैं?'

भगुआ—'हमका महात्मा कहत हो? बाप किरिया? आहाहाहा!—'

ढबढब 'अरे! यह ...अरे! हाय! हाय! मेरा मुँह भी भ्रष्ट '

भगुआ—(ढबढब पाँडे का मुँह अपने हाथ से बन्द करता हुआ ढबढब पाँडे से) 'अरे! चुपान रहो। यह साइत आबरू न लेयो, नहीं हमार का? तूही बिलाय जाबो, तोहार छुआ फिर कोई पानी न पीहे।'

अन्य यमदूतों में से दूसरा—'हाँ महात्मा जी, बताइए, आप कौन हैं।'

भगुआ—'मने हमीं से पूछत हो न? आहाहाहा! अब जाने न फुरे हम महात्मा होई, बाप किरिया। काहे बसते कि हम होई गाँधी महात्मा के हरीजौन।'

एक यमदूत—'हरीजान कौन?'

दूसरा यमदूत—'गुलाबजान के बड़े माँमू तो नहीं?'

दो-तीन यमदूत—'ओहो? तब तो यह महताबजान के सगे नाना हैं नाना।'

[भगुआ मारे शेखी के ढबढब पाँड़े के मुँह पर से अपना हाथ हटा कर अपनी मूँछें ऐंठता है, बैसे ही ढबढब पाँडे बोल उठता है।]

ढबढब पाँडे—'अरे! यह चाण्डाल भगुआ भङ्गी है भङ्गी।'

भगुआ—'और यह महराज ढबढब पाँडे हैं। बाभन देवता। (ढबढब से) अब कहो। हमहू बताय दीन।'

दोनों यमदूतों में से एक—'भगुआ कौन मेरा मुर्दा?'

दोनों यमदूतों में से दूसरा—'और ढबढब पाँडे मेरा मुर्दा?'

अन्य यमदूत लोग—'अरे! यह मुर्दे हैं? तब तो भई यह अच्छा तमाशा है। आहाहाहा?'

दोनों यमदूतों में से एक—'खी खी खी खी पाछे करना, पहिले इन दुष्टों को मार कर हमारे सर से उतारो तो।'

अन्य यमदूतों में से एक—(हँसते हुए) 'आहाहा! अरे भई तुम लोगों को अपने-अपने मुर्दों को अपनी खोपड़ियों पर सवार कराने का कब से शौक पैदा हुआ, यह तो बताओ। आहाहाहा!'

[वैसे ही सब मुर्दे सचेत और बन्धन-मुक्त होकर अपने-अपने यमदूतों पर चड्ढी गाँठ लेते हैं। और तब सब यमदूत अपने-अपने मुर्दों को अपनी गर्दनों पर सवार कराये चिल्ला कर इधर-उधर भागते हैं]

दृश्य ?

फिर पैंतिसवाँ दृश्य तीसरी बार।

कानूनीमल—(अकेले हँसते)—'आहाहाहा! Good! अब यहाँ Noncoopration भी करा दूँ तब मज़ा आए।'

[एक लिफाफा हवा में तैरता हुआ आकर कानूनीमल के सामने रुक जाता है।]

कानूनीमल—'यह क्या? [लिफाफा लेकर उसमें से निमन्त्रण काड निकाल कर पढ़ने के बाद] ओहो! मिस्टर कलयुगीनाथ का Invitation! समझा!' खैर, यह भी अच्छा है। वह कलयुग तो मैं कलयुग का गुरूघंटाल, ठठेर-ठठेर अच्छी बदलाई होगी।'

[चार परियाँ उड़ती हुई आकर सामने हाथ जोड़े खड़ी हो जाती हैं।]

एक परी—'श्रीमान को खातिर से लाने के लिये कलयुग महाराज ने हम लोगों को भेजा है।'

कानूनीमल—'बड़ी मिहरबानी की। बड़ी मिहरबानी की।'

दृश्य ४२

आकाश

[कुर्सी के समान एक विचित्र आसन पर कानूनीमल को बिठा कर चारों परियाँ उड़ाए लिये जा रही हैं।]

दृश्य ४३

फिर उन्तालिसवाँ दृश्य दूसरी बार

कलयुग—(बड़े तपाक से क़ानूनीमल की आव-भगत करते हुए) 'आइए आइए, आपने, हमारा निमन्त्रण स्वीकार करके सचमुच बड़ी कृपा की।'

क़ानूनीमल—'सच पूछिये तो आपने मुझ पर मिहरबानी की, क्योंकि मुझे तो आप से मिलना ज़रूरी था ही।'

कलयुग—'सच कहिये मिस्टर गुरुघन्टाल।'

क़ानूनीमल—'बिल्कुल सच है मिस्टर शैतान।'

कलयुग—'शैतान।'

क़ानूनीमल—'क्यों, आप इस नाम पर चौंके क्यों? यह विलायती और अप टु डेट टाइटिल तो हम लोगों ने आपको दे रखा है। क्यों, कलयुगीनाथ का नाम बिल्कुल हिन्दुस्तानी था और पुराना भी बहुत हो गया था। और यह शैतान का नाम दुनिया में इतना मशहूर है कि घर-घर आप इसी नाम से पूजे जाते है। वहाँ ईश्वर का नाम तो खाली जबान पर होता है, मगर दिल में बसते हैं आप।'

कलयुग—'हाँ? आहाहाहाहा!'

[अप्सराओं का दृश्य में यकायक आकर नाचना और गाना]

गाना और नाच

सुन्दरियाँ—'चढ़ी भउवे कमान,
चले नयनो का बान,
बचे रहियो जवान॥
रङ्गीले रसीले अलबेले जवान॥
नजरियो मे मोरी है स्वर्गो नरक।
चितवन मे अमृत व विष को छलक।
जिसे चाहूँ जिलाऊँ मै मारूँ, निगाहो को तान॥
चढ़ी भउवे कमान।'

× × ×

[दृश्य छोटा होकर केवल कलयुगी नाथ और कानूनीमल दिखलाई पड़ते हैं]

कलयुग—'परन्तु ऐसे आनन्द की घड़ी में आप इतने चिन्तित क्यों हैं?'

कानूनीमल—'नहीं तो।'

[दृश्य बड़ा होकर नाचने वालियों के साथ दिखाई पड़ता है। नाच ज्यों का त्यों जारी है, मगर, बिला गाने के और सबके हाथ में शराब का गिलास है।]

कलयुग—'तो फिर यह दौलत की चकाचौंध, यह शराब का दौर, यह परियों का नाच आपको पसन्द क्यों नहीं आता?'

कानूनीमल—'आता क्यों नहीं। ख़ूब है। क्या कहना है। मौज से रहना और मज़े करना तो सिर्फ आप ही जानते हैं। इसीलिये तो दुनिया में सौ में सवा सौ आपके पुजारी हैं और ऐसे कि आपके आगे ईश्वर तक को भूले हुए हैं।

नाच के साथ फिर गाना

सुन्दरियाँ—'लाई सुधा रस भर भर प्याला।
दुख सन्ताप को हरने वाला।
पीले जी भर बन मतवाला।
पाप पुण्य सबका मुँह काला।
मौज से रहना, कुढ़-कुढ़ मरना,
यही स्वर्ग नरक है जान।
चढ़ी भउवें कमान॥'

[दृश्य फिर छोटा हो जाता है]

कलयुग—'आखिर बात क्या है कि आपकी सुस्ती दूर नहीं होती। कुछ न कुछ इसकी वजह होगी ज़रूर।'

कानूनीमल—'यही कि राजा को ताकत प्रजा से और देवता की ताकत उसके पूजनेवालों से। मगर आप-के इतने पुजारी होने पर भी आपकी यहाँ ऐसी बेइज्ज़ती?'

कलयुग—कैसे?'

कानूनीमल—'आपका यहाँ कुछ भी अख्तियार नहीं। धर्मराज की कचहरी में आपकी पैठ तक नहीं। आपको यह भी पता नहीं कि धर्मराज आपके पूजनेवाले और वालियों को कैसी ज़लील निगाहों से देखते हैं।'

कलयुग—'सच?'

कानूनीमल—'यही दिखाने के लिए तो मैं दुनिया से ७३ करोड़ ७४ लाख ७२ हजार ७८ मील का सफ़र करके यहाँ आया हूँ।'

[दृश्य फिर बड़ा हो जाता है और नाच बिला गाने के जारी है]

कानूनीमल—'आपकी भक्ति कैसी प्यारी और कितनी ख़ूबसूरत है। आहाहा। एक-एक चितवन एक-एक अदा पर लाखों दिल निसार हो रहे हैं। फिर भी जिनके हाथ में यहाँ अख्तियार और हुकूमत है, अफसोस! वह इन्हें क्या समझते हैं और किन निगाहों से देखते हैं, आप खुद देख लीजिये।'

[कानूनीमल रूमाल झटकता है और वैसे ही सब सुन्दरियाँ यकायक चुड़ैलें बन जाती हैं।]

कलयुग—'अयँ! एकदम चुड़ैल!'

[फिर दृश्य छोटा हो जाता है]

कानूनीमल—'और आपके पुजारी जो आपको पूजने के नाते सब आप ही की तरह रँगीले रसीले छैल छबीले हैं, मगर उनकी नज़र में क्या है, ज़रा शीशे में अपनी सूरत अपनी आँखों से देख लीजिये।'

[क़ानूनीमल रूमाल झटकता है और कलयुगीनाथ यकायक घृणित रूप में बदल जाता है।]

कलयुग—'हाय! गज़ब! यह क्या, साक्षात् चाण्डाल!'

कानूनीमल—'तभी तो वह बेचारे आँख मूँदे सीधे जहन्नुम को ढकेल दिये जाते हैं।'

कलयुग—'उफ़! सचमुच यह मेरी बड़ी बेइज़्ज़ती है।'

क़ानूनीमल—'तभी तो दुनिया वालों ने आपको धर्मराज की कुर्सी दिलवाने के लिये मुझे यहाँ भेजा है। जिससे आपके पूजने वालों पर धाँधली न होने पावे और आपकी शान में बट्टा न लगे। अख्तियार है तो शान, इज्ज़त, क़दर, सब कुछ है, वरना कोई कम्बख्त फूटी आँख से भी नहीं देखता।'

कलयुग—'सच है, बिल्कुल सच है। अब याद आया। अख्तियार ही न होने की वजह से तो एक मामूली यमदूत सरदार ने भी मुझे जवाबदेही देने की धमकी दी थी। बस अब यह अपमान नहीं सह सकता। आज मेरी आँखें खुलीं। मगर हाँ, क्या मुझे धर्मराज की कुर्सी मिल सकती है?'

क़ानूनीमल—'जिसके नाम पर सौ में सवा सौ पर्चा डालने वाले हों, उसके लिये क्या मुशकिल है? आप किसी बहाने सिर्फ चित्रगुप्त बाबा को धर्मराज से अलग अटकाए रखिये, फिर देखिये, मैं आपके लिये क्या कर दिखाता हूँ।'

कलयुग—'मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। मगर मेरी सूरत ..'

कानूनीमल—'अभी ठीक हुई जाती है।'

[कानूनीमल रूमाल झटकता है और कलयुग अपने असली रूप में बदल जाता है।]

दृश्य ४४

धर्मराज की कचहरी

[धर्मराज अपने इजलास पर विराजमान है और कई यमदूत अरदली की वर्दी में मौजूद हैं।]

धर्मराज—'आज अभी तक चित्रगुप्त महाराज नहीं पधारे।'

एक अरदली—'धर्मावतार, आज उनकी त्रिलोकदर्शी ऐनक गुम हो गई है। उसी के ढूँढ़ने में लगे हैं।'

धर्मराज—'यह तो बड़ा अनर्थ हुआ। जाओ सब लोग मिलकर जल्दी उसे ढूँढ़ निकालो, नहीं सब काम बन्द हो जायेगा।.........परन्तु हाँ, सुनो, क्या सचमुच संसार का गुड़घण्टाल यहाँ आप से आप जीता ही आ गया है?'

[वैसे ही यकायक कानूनीमल आकर मौजूद हो जाते हैं]

कानूनीमल—'जी हाँ your honour! खिदमत में हाज़िर हूँ।'

धर्मराज—'आप? आप? अरे! आपही गुरु-घण्टाल हैं? कैसे-कैसे ..यहाँ कैसे पधारे?'

क़ानूनीमल—'रेडियो के ज़रिये से।'

धर्मराज—'अयँ! रेडियो से? मृत्युलोक ने यहाँ तक उन्नति करली। समाचार और चित्र भेजने के अति-

रिक्त समूचा आदमी भी भेजने लगे और यहाँ तक ? तब सचमुच वह देवलोक के बराबर होगया ।'

कानूनीमल—'बल्कि उससे भी बढ़ गया ।'

धर्मराज—'यह कैसे ?'

कानूनीमल—(एक कागज देकर), 'इसीसे सब मालूम हो जायेगा और मेरे यहाँ आने का भेद भी खुल जायेगा ।'

धर्मराज—(कागज पढ़ते हुए) हम दुनिया वाले एकमत होकर मिस्टर गुरूघण्टाल को परलोक के लिये अपना मुखिया चुनते है । ताकि वह वहाँ जाकर श्री धर्मराज और चित्रगुप्त महाराज को पचपन-साले के कानून के मुताबिक अब पेनशन लेकर आराम करने को कहें, क्योंकि उनकी अक्ल का वह हिस्सा, जिससे हिन्दुस्तान का सरोकार है, करोड़ों बरस से लगातार इन्साफ करते-करते अब बिलकुल घिस गया है। अगर न मन्जूर करें तो अच्छी तरह जाँच करके उनकी गलतियाँ उन्हे दिखावे । इस पर भी न मानें तो अपने मुआइने की रिपोर्ट ईश्वर के सामने पेश करके धर्मराज जी की कुर्सी श्रीमान कलयुग महाराज उर्फ बाबू कलयुगोनाथ उर्फ मिस्टर शैतान को, जिनका उस पर इस कलयुग के जमाने में पूरा हक हासिल है, दिलवावे और चित्रगुप्त जी के सगे वारिस होने के नाते उनकी कुर्सी खुद लें

[कागज़ फेंक कर] यह क्या ? ऐसी धृष्टता ? बेशक तुम्हारा संसार घमण्ड में बहुत बढ़ गया है। उसके गर्व को शीघ्र नाश करना चाहिये ।'

कानूनीमल—(अपने पाकेट-बुक पर कुछ नोट करते हुए) 'yes ! और कुछ ?'

धर्मराज—'यह क्या लिख रहे हो ?'

कानूनीमल—'आपकी बात । मैं पहिले ही बता चुका हूँ कि मैं यहाँ मुलजिम नहीं, बल्कि Inspector की हैसियत में मौजूद हूँ । जो कुछ आप कहेंगे या करेंगे, वह सब मेरी रिपोर्ट में शामिल होकर ईश्वर के सामने पेश होगा ।'

दृश्य ४५

एक विचित्र स्थान

कलयुग—(अकेले ऐनक लगाए हुए) 'वाह भई ! यह चित्रगुप्त जी की ऐनक तो खूब है। यहीं से बैठे कचहरी के भीतर का हाल सब दिखाई दे रहा है । ओहोहो ! धर्मराज जी कैसे दबसट में पड़ गए। शाबाश मिस्टर गुरूघण्टाल शाबाश !'*

(क्रमशः)

(Copyright)

---

* आगामी अङ्क में देखिये कानूनीमल नर्क और स्वर्ग की जाँच-पड़ताल करके धर्मराज जी के फैसलों पर कैसे झाड़ू फेरते हैं कि धर्मराज जी स्वयं ही अपना पद त्यागने को तैयार हो जाते हैं। नई विचार-धारा और अत्यन्त ही मनोरञ्जक ।



महाकवि विद्यापति तथा उनके पद

[श्री० हरेश्वरीप्रसाद, बी० ए०, विशारद]

मैथिल-कोकिल कवि कण्ठहार, विद्यापति हिन्दी के महान् कवियों में से हैं। यह शोक की बात है कि हम लोगों ने बहुत दिनों तक हिन्दी साहित्य के कवियों में इन्हें समझा ही नहीं और अभी हाल तक इन्हें बङ्गला भाषा-भाषी ही जाना। वास्तव में विद्यापति ने ऐसे मधुर और कोमल पदों में अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं कि यह निर्णय करना बहुत ही कठिन है कि आपने मैथिली भाषा का व्यवहार किया है अथवा बङ्गला का, लेकिन यह बात सिद्ध हो चुकी है और इसके बहुत से प्रमाण भी पाये जाते हैं कि कवि-कुल-कुमुद-कलाधर विद्यापति का जन्म दरभङ्गा जिला-अन्तर्गत विसपी गाँव में सन् १३५० ईस्वी में हुआ था। आप मैथिल ब्राह्मण थे। आपके पिता पण्डित गणपति ठाकुर तथा माता हंसिनी देवी सरस्वती के कृपा-पात्रों में से थे।

सुगाँव राजघराने के राजा शिवसिंह तथा उनकी स्त्री लखिमा देवी इनके प्रधान आश्रयदाताओं में से थे। इन धनवान गुण-ग्राहकों ने कवि को प्रचुर सम्पत्ति देकर इन्हें सरस्वती की आराधना में अधिक सलग्न रहने का सुअवसर दिया और बदले में कवि ने अपनी कविताओं में उनका नाम देकर उन्हें अमर बना दिया है।

विद्यापति की भाषा, वर्णन-प्रणाली, और भाव स्वयं उनके हैं। उनकी कविता अपना परिचय आप देती है। उनके पदों का आदर अमीर-गरीब सब करते हैं। विद्यापति की अधिकाश रचनाएँ श्रृङ्गार रस से ओत-प्रोत हैं। प्रसाद और माधुर्य इनके पद-पद से टपकते हैं। स्वाभाविकता उनका प्रधान गुण है। मनोविज्ञान के पण्डित विद्यापति ने मनुष्य-प्रकृति का इतना सूक्ष्म अध्ययन किया था कि आपका हृदय उस दर्पण के समान हो गया था, जिसमें मनुष्य मात्र के भाव प्रतिबिम्बित होते थे। शैशव और यौवन का मनुष्य शरीर में जब मिलन तथा वियोग होने लगता है, तो भावों में भी एक अभूत-पूर्व परिवर्तन होता है।

वय सन्धि का वर्णन करते हुए आपने लिखा है—

सुनइत रस कथा थापए चीत।
जइसे कुरगिनी सुनए सङ्गीत।

अर्थात् नव-यौवना श्रृङ्गार-सम्बन्धी बातें इतना तन्मय होकर सुनती है, मानों कुरङ्गिनी सङ्गीत सुन रही हो।

हिरदय-मुकुल टेरि हेरि थोर।
खने आँचर दए खने होय भोर।

नव-उदित वक्षस्थल पर कभी आँचर देना और कभी भूल जाना बहुत ही स्वाभाविक वर्णन है। शारीरिक सौन्दर्य वर्णन में भी अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। विद्यापति की नायिका की आँखें .—

लोचन-जुगल भृङ्ग अकारे।
मधुक मातल उडए न पारे।

अर्थात्—भौंरे के समान हैं, जो मुख-कमल का मधु पीकर मस्त होने से उड़ नहीं सकते।

मुख का वर्णन करते हुए आपने लिखा है .—

चाँद सारलए मुख घटना करु
लोचन चकित चकोर।
अमिय धाये आँचर धनि पोछली
दह दिसि भेल उँजोरे।

अर्थात् चन्द्रमा का सार भाग लेकर विधाता ने चकोरों के लोचन चकित करने वाले मुख की रचना की

और सुन्दरी ने अपना मुख जब आँचल से पोंछ कर अमृत धो बहाया तो दशो दिशाओं में शुभ्र ज्योत्स्नाएँ खिल पड़ीं। कितना सुन्दर वर्णन है। कवि ठाकुर की "सोने सो सुरङ्ग लै, सवाद लै सुधा को, बसुधा को सुख लूट के, बनायो मुख तेरो है" वाली कविता इसके सामने फीकी पड़ जाती है।

भला उन नयनों का मारा हुआ कैसे कोई बच सकता है, जिन्हें —

तिन वान मदन तेजल तिन भुवने
अवधि रहल दओ वाने।
विधि वड दारुन वधए रसिक जन
सोपल तोहर वचाने।

निष्ठुर ब्रह्मा ने कामदेव के पाँच बाणों में से दो बाण सौंप दिया है।

परस्पर-विरोधी पदार्थों को एक स्थान पर बसाने में आप अद्वितीय हैं :—

चिकुर-निकर तम सम
पुनु आनन पुनिम ससी।
नयन पङ्कज के पतिआ आते
एक ठाम रहु बसी।

अन्धकार के समान केश, राकेश के समान मुख और कमल के समान नेत्रों का एक जगह रहना वास्तव में गज़ब ढाने वाला है। किसी को उसके गुण तथा विक्रम की याद दिलाकर प्रोत्साहित करने का तरीका विद्यापति को अच्छी प्रकार विदित था। आप कहते है कि 'ऐ सुन्दरी, तुम क्यों नहीं मुझसे बातें कर जाती हो? तुम किससे डरती हो?'

अरे,

कवरी भय चामरि गिरि कन्दर
मुख भय चाँद अकासे।
हरिन नयन भय, स्वर-भय कोकिल
गति-भय गज बनवासे।

अर्थात—तेरे केश के भय से चँवर वाली गौ पहाड़ के कन्दरा में, मुख के भय के चाँद आकाश में, नयन के भय से हरिन, स्वर के भय से कोकिल और गति के भय से हाथी जगल में निवास करते हैं। भला जिससे संसार डरे, उसे भय से वास्ता? महाकवि कालिदास की शकुन्तला काँटों में आँचल फँस जाने से दुष्यन्त को देखने के लिये ठहर गयी थी और विद्यापति की राधा—

तही पुन मोति-हार तोरि फेकल
कहइत हार टुटि गेल।
सब गन एक-एक चुनि सचरू
श्याम दरस धनि लेल।

हार तोड़ के फेंक डालना, सबों की दृष्टि उधर लगा कर श्याम को निरखना, यह निश्चय राधा का ही काम है।

आपके सारे विचार सूक्ष्म अध्ययन पर निर्धारित हैं।

आध आँचर खसि आध वदन हसि
आधहि नयन तरङ्ग।
आध उर जहेरि आध आँचर भरि
तव धरि दगधे अनङ्ग।

किसी उर्दू कवि ने भी क्या ठीक ही कहा है:—

जमाना हो गया बिस्मिल तेरी सीधी निगाहों से
खुदा नाख्वास्ता तिरछी नजर होती तो क्या होता।

'आड़ बदन कए मधुर हासदए
सुन्दरि रहु सिर नाई।

विद्यापति के विचार 'अकबर' साहब से बहुत पहले के हैं।

कानु हेरब छल मन बड़ साध।
कानु हेरइत भेल अत परमाद।

कृष्ण को एक बार देखने के बाद पागलपन हो गया। वह मलाल नहीं है 'कि तमन्ना निकल गई।'

पुनु फिरि सोइ नयन जदि हेरवि
पाओव चेतन नाह।
भुजगिनि दंस पुनहि जदि दंसए
तवही समय बिष जाह।'

कितनी सुन्दर सूझ है। फिर उन्हीं नयनों से देखने पर ही नयनों का मारा जीवित होगा। साँप अगर

काटने के बाद उस स्थान पर फिर काटे तो विष अवश्य उतर जायेगा। प्रकृति-निरीक्षण में भी आप सर्वदा तन्मय रहते थे। आपका बसन्त वर्णन मानो एक चित्र है, जिससे बसन्त-कालीन मिथिला भूमि अङ्कित है।

नव वृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव विकसित फूल ॥
नवल बसन्त नवल मलयानिल
मातल नव अति फूल ॥

के साथ झूमते रहने में वास्तव में बसन्त की मस्ती आ जाती है। विरह-वर्णन में ही कवि की अलौकिक प्रतिभा, गाढ़ अनुराग और व्यथित हृदय का पता लगता है। शङ्का है कि :—

वन ही गमन करु होयेति दोसर मति
विसरि जायब पति मोरा।
शोक है कि —
जखन गमन करु नयन नीर भरु
देखहुँ न भेल पहु ओरा।
और भय है कि :—
पहुँ सग कामिनी बहुब सोहागिनी
चन्द्र निकट जइसे तारा ॥
भला यह जवानी किस काम की—
सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज
कि सरसिज बिनु सूरे।
जौवन बिनु तन तन बिनु जौवन
की जौवन पिय दूरे ॥

वह तालाब क्या जिसमें कमल नहीं, वह कमल क्या जो तालाब में नहीं है और जो सूर्य्य को अनुपस्थिति में मुर्झाया सा है। वह शरीर क्या, जो बिना जवानी के है और वह जवानी किस काम की, जब प्रिय दूर बसे हों। कितने अछूते विचार हैं!

मगर प्रेम किस गहराई तक पहुँचा हुआ है :—

जत औ तरनि जल सोखए सजनी
कमलन ते जए पाक
जे अन रतल गाहीसौ सजनी
कि करती वहिभए बाँक ॥

ब्रह्मा भी अलग नहीं कर सकते, शिकायत करने वालों की क्या हस्ती? तालाब कितना भी सूख क्यों न जाए, कमल उसे नहीं छोड़ सकता। कैसी शुभ कामना है —

जुग जुग जीवथु वसथु लाख कोस।
हमर अभाग कुनक नहि दोस ॥

जो निम्न-लिखित संदेशा कृष्ण के पास भेजा है वह एक ऐसे व्यथित हृदय की आह है, जिसे सुन पत्थर का भी कलेजा पानी हो जाता है।

सजनी कानुक कहब बुझाई।
रोपिपेभक विज अकुर भूडलि
वाचव को न उपाई ॥
तेल बिनु जैसे पानि पसारिए
ऐसन मोर अनुराग।
सिकता जल जैसे छनहि सूखए
तैसन मोर सुहाग ॥
कुल कामिनी छलो कुलटा भए गैलो
तिनकर वचन लोभाई।
अपने कर हम मूँड मुडाएल
का तुसे प्रेम बढ़ाई ॥
चोर रमनि गनि मन मन रोअई
अम्बर बदन छिपाई।
दीपक लोभ सलभ जनि धायल
सेफल भुजइत चाई ॥
भनइ विद्यापति इहकल जुगरित
चिन्ता करह न कोइ।
अपना करम दोष आँपहि भुनइ
जे जन परबस होई ॥

अर्थात्—हे सखी, जरा कृष्ण को समझा कर कहना कि प्रेम का बीज रोप कर अगर उन्होंने अङ्कुर ही काट दिया तो कौन उपाय से बच सकती हूँ?

पानी पर फैले हुए तेल के समान मेरा प्रेम विस्तृत और मिला हुआ है, परन्तु गरम बालू पर शीघ्रातिशीघ्र सूख जाने वाले जल के समान मेरा सौभाग्य है।

पहले मैं कुलवती थी। परन्तु उनसे प्रेम करके कुलटा हो गई। हाय! उनसे प्रेम करके अपने पैरों में कुल्हाड़ी

मारा। अब यह हाल है कि चोर की स्त्री के समान कपड़े में मुख छिपा कर रोती हूँ। दीपक पर दौड़ने वाले पतङ्ग स्वय ही जलकर खाक हो जाते हैं। विद्यापति क्या खूब ही कहते हैं कि जो अपना दिल दूसरों को दे देते हैं, उनको ऐसी ही हालत होती है। इससे चिन्ता की कोई बात नहीं है। यह भी लिख दिया है कि—

सखी अनकर दुख दारुन रे जग के पतिआय

सच ही है—

घायल की गति घायल जाने
और न जाने कोय।

धीरज देने वाले उनकी नायिका के इस उत्तर से चुप हो जाते हैं—

अङ्कुर तपन ताप जदि जारब
किकरब वारिद मेहे।
इहनव जौबन विरह गमाओब
किकरब से पिया गेहे।

हाय! इस सुन्दर वसन्त में भी नयनों को—

विपत अपत तरु पाओल रे
पुन नव नव पात।
बिरहिन नयन विहल विहरे
अविरल बरसात॥

बरसात ही है। और बरसात की उन भीगी रातों में भी विरहियों का हृदय जलता रहता है। अपने इन गुणों के ही कारण कवि को अभिनव-जयदेव, कविरञ्जन, कविशेखर इत्यादि उपाधियाँ मिली थीं।

आशा है, आपके पद युगान्त तक प्रेमियों को शान्ति प्रदान करते रहेंगे?

❀ ❀

साधना

[श्री० शिवनन्दनप्रसाद]

जल रे जल रे जीवन प्रतिपल!
धधक-धधक बन प्राण समुज्ज्वल!!

गहन निशा है—इंगित पर चल!
जग के चकाचौंध से अविचल!
नक्षत्रों की ओर प्रगति पथ,
पथिक! चलो।पर बढ़ते अविरल!
पाने को संसृति-स्नेहाज्ज्वल!
जल रे जल रे जीवन प्रतिपल!!

ले वेदना-भार उर अन्तर,
अश्रु-हार ले सजल मृदुल कर,
खोजो खोजो निज प्रियतम को
निज प्राणों का दीप जलाकर,
यौवन-मन्दिर मे, ओ पागल!
जल रे जल रे जीवन प्रतिपल!!

साधक कर ले आत्म-समर्पण,
पाओगे तबही जीवन-धन!
तप-ज्वाला मे जलकर तेरे
हो जाए निर्मल जग जीवन!
रे उन्मादी मन! हो न विकल!
जल रे जल रे जीवन प्रतिपल!!

सीमित! तेरे आज विरह मे
विश्व-साधना हो प्रतिविम्बित!
तेरे उच्छ्वासो मे होवे
विश्व-हृदय का कम्पन विलसित!!
उस असीम के इंगित पर चल
जल रे जल रे जीवन प्रतिपल!!

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली और स्त्रियाँ

[श्री० ज्योतीन्द्रनाथ]

इस पुनर्जागृति के समय में भारतीय नारी-समाज की जैसी दशा है उसे हम आश्चर्यजनक कह सकते हैं। भारतीय नारियाँ, एक ऐसे युग से गुज़र रही हैं, जब उनके सामने अपने भविष्य के लिए न कोई निश्चित मार्ग दीख पड़ता है, न उपयुक्त आदर्श। आज देश के चारों ओर से आवाज़ उठती है कि स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन मिलना चाहिये। आज इस बात के हिमायतियों की कमी नहीं है कि लड़के और लड़कियों में किसी प्रकार का भेद न मान कर माता-पिता को दोनों की शिक्षा में समान रूप से ध्यान देना चाहिये और तभी देश की यथार्थ उन्नति होगी। लेकिन स्कूल कॉलेज की शिक्षा प्राप्त लड़कियों को दूसरी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कितने लोगों की राय में वे अच्छी पत्नी नहीं बन सकतीं और यही कारण है कि मध्य श्रेणी के दूरदर्शी नवयुवक डिग्री-धारी पत्नियाँ नहीं पसन्द करते। ऐसा करना उनका उचित भी है। पाश्चात्य ढंग से शिक्षा प्राप्त लड़कियाँ सच्चे अर्थ में सहधर्मिणी और अर्द्धांगिनी नहीं बन सकतीं। जीवन-नौका के खेने में पति की सहायता करने की अपेक्षा वे भारस्वरूप बन जाती हैं। और आजकल जब तूफान और मँझधार के बीच नवयुवकों के लिये नौका को सुचारु रूप से चलाना ही अत्यन्त मुश्किल है, तब इस भार को सँभालना तो उनके लिए असम्भव सा हो जाता है। ऐसी दशा में विवाह के बाद जब दूसरे ही लोक के सपने देखने वाली शिक्षित नवयुवतियों को यथार्थता का ज्ञान होता है, तो उन्हें अपना भविष्य अंधकारमय मालूम होता है। परिस्थितियों के अनुकूल बनने की कोशिश में उन्हें अधिकतर असफलता ही मिलती है और इसका परिणाम यह होता है कि उनका गार्हस्थ्य जीवन दुखमय हो जाता है। वे ही युवक ऐसी युवतियों के संग सफल जीवन बिता सकते हैं जिन्हें उच्च सरकारी पद अथवा किसी अन्य रूप से काफी रुपये मिलते हों, पर वर्तमान भारत में ऐसे बहुत कम लोग हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो सजी-धजी, पढ़ी-लिखी और फैशनेबुल पत्नियाँ पाना सौभाग्य की बात समझते हैं। उन्हें तो बाद के जीवन में गहरी असफलता मिलती है।

लेकिन इसमें दोष लड़कियों का नहीं, वरन् वर्तमान शिक्षा प्रणाली का है। जिस ढङ्ग से आजकल शिक्षा दी जाती है, लड़कियों का घरेलू काम-काज के अयोग्य और फैशन तथा पाश्चात्य सभ्यता की पुजारिन होना स्वाभाविक है। पाश्चात्य देशों की महिलाओं के लिये वैसी शिक्षा हानिप्रद नहीं, वे स्वयं कमाती हैं और अपने पतियों को मदद देती हैं। फिर यदि वे देखती हैं कि पति के साथ ठीक निभ नहीं रही है तो सम्बन्ध-विच्छेद कर देती हैं और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि वे अधिक सम्पन्न, साहसी और परिश्रमी हैं।

पर देश के कोने-कोने से आवाज़ आती है कि भारतीय स्त्रियाँ बहुत अवनत हैं, उन्हें शिक्षा देने की आवश्यकता है, जिससे वे उन्नति कर सकें। ऊँचे विचार वाले माता-पिता भी महसूस करते हैं कि यह उनका धर्म है कि लड़कियों की ओर भी उतना ही ध्यान दें जितना लड़कों की ओर देते हैं, क्योंकि सन्तान के प्रति उनके कर्तव्य की इति श्री केवल लड़कों पर ही नहीं हो जाती। पर जरूरत है इस बात को महसूस करने की कि स्त्री तथा पुरुष का कार्यक्षेत्र भिन्न भिन्न है, इसलिये दोनों की शिक्षा-प्रणाली का एक होना भी

हानिप्रद है। नवीन भारत अभी उन्नति की उस सीमा पर नहीं पहुँचा है, जब स्त्री और पुरुष अपने-अपने कार्यक्षेत्र में प्रवीणतापूर्ण पूरी दक्षता दिखलाने के बाद एक दूसरे के कार्यक्षेत्र की ओर झुकें और आपस में विभिन्न क्षेत्र के कार्यों में हाथ बटाने की कोशिश करें।

इसलिये पहले यह आवश्यक है कि भारत के पुरुष और भारत की महिलायें अपना अपना कर्तव्य पहचान लें और उसके बाद एक निश्चित आदर्श सम्मुख रख कर कार्य आरम्भ करें।

वर्तमान प्रचलित प्रणाली के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने का ध्येय नवयुवकों को अधिकार रूप में कमाना ही होता है। साथ-साथ उनके मस्तिष्क और बुद्धि का विकास अवश्य होता है। और इस प्रकार अवसर मिलने पर और संस्कार रहने पर भविष्य में विभिन्न क्षेत्रों में उन्नत्ति कर सकते हैं।

पर स्त्रियों के लिये केवल इतना ही आवश्यक नहीं है। सब से अधिक जरूरी गुण जो भारतीय नारियों को चाहिये उससे आजकल की प्रणाली द्वारा शिक्षा पाकर वे वंचित रह जाती है। वह है एक आदर्श माता बनाने का गुण। इस वक्त हिन्दुस्तान को आदर्श माताओं की सबसे ज्यादा जरूरत है। स्त्रियाँ स्कूल तथा कालेजों में जो शिक्षा पाती हैं, उसके द्वारा उनके मस्तिष्क का विकास होता है जरूर, उनके ज्ञानक्षेत्र की व्यापकता बढ़ती है अवश्य, और इसमें भी सन्देह नहीं कि उन्हें देश की सच्ची परिस्थितियों का यथार्थ ज्ञान होता है, यह भी सम्भव है कि देश की जरूरतें और कमियों को वे महसूस करती हों, पर सब से अधिक महत्वपूर्ण बात कि उन जरूरतों और कमियों की पूर्त्ति का जहाँ तक उनका सम्बन्ध है वह किस तरह से की जा सकती है, यह वे न जान सकती हैं और अगर जानती भी है तो उन जरूरतों की पूर्त्ति करने में वे अपने को असमर्थ पाती हैं। इसका कारण हो सकता है कि उन जरूरतों को पूरी और कमियों को दूर करने का मार्ग वे जान ही न पाती हों। अगर इन बातों से वे अभिज्ञ भी रहीं तो शिक्षा प्राप्त करने के समय जिस प्रकार उनके दिन बीतते थे उसके बिल्कुल प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच से होकर जिन्दगी बिताना उन्हें असम्भव सा मालूम होता है। और कितनी इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकती है कि वैसा जीवन वे बिता सकेंगी। वैसे जीवन से मेरा मतलब महान त्यागपूर्ण और घोर दुःखमय जीवन नहीं है। भारतीय नारी समाज का एक बड़ा भाग आज जिस रूप से जीवन व्यतीत कर रहा है उसमें तनिक सुधार को आवश्यकता है। उसके बाद उनमें कुछ कमी रह जाती है, उसी के लिये शिक्षा की जरूरत है। शिक्षा उन्हें इसीलिये दी जाये कि वे सफल और योग्य गृहिणी बन सकें। पर यह उचित नहीं है कि स्त्रियों का कार्यक्षेत्र सकुचित रखा जाये और अन्य दिशाओं में उन्नति करने का मार्ग रोक दिया जाय। देश का यह अभाग्य है कि आज कितनी ही सस्कारित आत्माओं की महान भावनायें केवल अनुकूल परिस्थितियाँ और अवसर न मिलने के कारण दब कर रह जाती हैं और देश उसके लाभ से वञ्चित रह जाता है। मस्तिष्क का यथोचित विकास न होने के कारण अनेकों मनुष्यों की प्रतिभा विकसित नहीं होती है। इसलिये यह जरूरी है कि स्त्रियों के मस्तिष्क का इतना विकास हो जाय जिससे उनकी प्रतिभा को प्रस्फुटित होने का मौक़ा मिले। पर इससे हमारी बात में कोई फर्क नहीं होता है और न वर्तमान शिक्षा प्रणाली का समर्थन होता है, जिसके द्वारा शिक्षा-प्राप्ति का एकमात्र ध्येय रुपये कमाना और नौकरी करने के लायक बनना है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के समर्थक एक तर्क दे सकते हैं कि उस रूप से शिक्षा प्राप्त महिलायें स्वावलम्बी बनकर रह सकती हैं। यह बात कुछ अंशों में हो सकता है ठीक हो, पर सामूहिक रूप से कोई जातीय लाभ हमें है या नहीं, इस प्रश्न पर विचार करने से निराशा होती है। स्वावलम्बी होना उसी अर्थ में हो सकता है कि वे इस योग्य हो जाती हैं कि खुद नौकरी कर जीविका निर्वाह कर सकें। पर एक तो सभी जगह नौकरी का मार्ग उनके लिये खुला हुआ नहीं है और अगर रहे भी तो उनमें इतना साहस और बल नहीं है कि अत्यधिक संख्या में इस ओर अग्रसर हों। इस विषय में मर्दों के साथ उनकी प्रतियोगिता का परिणाम

भी दोनों के लिये बुरा होगा, क्योंकि इस बेकारी के जमाने में नौकरी इतनी सस्ती नहीं है। हाँ, लड़कियों के स्कूल और कॉलिजों में उनके अनुकूल स्थान अवश्य है। किन्तु अगर शिक्षा-प्रणाली में कोई परिवर्तन हुआ तो लड़कियों के शिक्षा-केन्द्र अवश्य रहेंगे, अत यह सुविधा तब भी वर्तमान रहेगी।

अब यह तो स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली स्त्रियों के लिये केवल व्यर्थ नहीं, बलिक हानिप्रद भी है। कुछ लोग पाश्चात्य देशों की दुहाई देते हैं, जहाँ परिस्थितियाँ बिलकुल यहाँ से भिन्न हैं। पाश्चात्य देशों में स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ी हैं, यह बात यहाँ के लोगों में उत्तेजना पैदा करता है। उन लोगों ने घर के बाहर भी अपना क्षेत्र विस्तृत किया, पर घर के भीतर के अपने प्रधान कार्यक्षेत्र को बिसार कर उन्होंने ऐसा नहीं किया। पहले वे एक आदर्श माता हैं, फिर और कुछ। यह ठीक है कि वहाँ का सामाजिक बन्धन बहुत ढीला है, फिर भी एक आदर्श गृहिणी और पत्नीत्व के भाव का उनमें वर्तमान रहने से इनकार करना भूल होगी। जो ख़ुद इङ्गलैण्ड से हो आये हैं, उन्हें मालूम होगा कि सामान्य श्रेणी के मध्यम वर्ग के लोगों की स्त्रियों को यहाँ की अपेक्षा कितना कठिन काम करना पड़ता है। रसोई बनाना, बर्तन साफ करना, कपड़े धोना, उनमें इस्तरी देना, घर साफ करना आदि वहाँ की स्त्रियों का काम है। पर हम तो यहाँ भारत में रहने वाले अङ्गरेज़ों की नकल करना चाहते हैं, जो यहाँ शासक बने हुये हैं।

इसलिये वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन होना आवश्यक है। नई शिक्षा-प्रणाली का रूप क्या हो, यह तो अलग विषय है, पर इतना जरूर हो कि भारतीय स्त्रियाँ फ़ैशन की पुजारिनी न हो राष्ट्रीयता की पुतली बनें, वे फलानो और ढिकानी मिसों का रूपक बाँधने में अपना गौरव न समझें, वरन् जीजाबाई के समान आदर्श माता, रानी दुर्गावती के समान वीर, लक्ष्मीबाई के समान साहसी और देवी मैना के समान कष्ट-सहिष्णु होने में गौरव और अभिमान का अनुभव करें। पति के ऊपर भारस्वरूप नहीं, उनकी सबसे बड़ी सहायक सिद्ध हों, और अवसर मिलने पर तथा प्रतिभा रहने पर विभिन्न क्षेत्रों में दक्षता दिखला देश का मुखोज्ज्वल करें।



कनौजिया समाज

[श्री० त्रि० द० त्रिपाठी

प्रत्येक वस्तु जन्म के समय सुन्दर उत्पन्न होती है, अनन्तर क्रमिक ह्रास को प्राप्त होती हुई असुन्दर बन जाती है। यह प्रकृति का प्राय नियम है। अतएव किसी वस्तु को अनावश्यक या उसके निर्माता को बुरा कहना भूल है। किन्तु मनुष्य की एक वह भी अवस्था होती है, जिसमें वह औचित्यानौचित्य का ज्ञान खो बैठता है। यह अवस्था प्राय तब होती है, जब उसपर आपत्ति के घन घिर आते हैं। इसके अतिरिक्त असुन्दर वस्तु को नष्ट करने के लिये उसके निर्माता के प्रति द्वेष एवं अनादर का भाव आवश्यक हो जाता है। आधुनिक सामाजिक ढाँचे के परिवर्तन के लिये जो प्रयत्न किया जा रहा है, उसके मूल में भी यही भावना है।

अपने सम्बन्ध में कुछ कहना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। कनौजिया समाज से मेरा आशय उस ब्राह्मण समुदाय से है, जिसमें ऊँच और नीच का मापदण्ड विश्वा प्रथा है। अस्तु।

नाम

प्राचीन इतिहास में पञ्चगौड़ एवं पञ्च-द्राविड़ नाम से ब्राह्मणों के दश भेदों का उल्लेख मिलता है। कदाचित् पञ्चगौड़ आर्यकुल में एवं पञ्च द्राविड़ द्राविड़ों में, वे सम्मिलित ब्राह्मण जाति का नाम पड़ा है।

आर्य लोग जब भारत में आये तो कार्य-सञ्चालन के लिये अपने को चार भागों में बाँटा जिसमें ब्राह्मण जाति भी एक है। विजित जाति का सर्वांश में नाश तो किया नहीं जा सकता वह अपने में मिलाई अवश्य जा सकती, है। अस्तु। पञ्च द्राविड़ विजित द्राविड़ जाति की ही यादगार हैं। यहाँ पर इस ऐतिहासिक विवाद को अधिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। अस्तु। वही दशभेद विभिन्न देशों में रहने से विभिन्न नामों से याद किये जाने लगे। कनौजिया समाज भी 'कान्यकुब्ज' देश में रहने के कारण कान्यकुब्ज या कनौजिया कहलाने लगा।

विश्वा प्रथा

जाति की उच्चता और नीचता उसके सद्गुणों और सत्कर्मों पर निर्भर है। प्रत्येक जाति में कुछ ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुआ करते हैं, जो समयोचित सद्गुणों एवं सत्कार्यों से विशेष प्रतिष्ठा पैदा कर लेते हैं। इसी प्रकार यह विश्वा प्रथा भी तत्कालीन सत्कार्यों की सूचिका मात्र है। इसके पूर्व गोत्र प्रवर आदि ही जाति-चिह्न थे। त्रिपाठी, त्रिवेदी, शुक्ल आदि उपाधियाँ विश्वा प्रथा के पूर्व भी थीं, जिसका निदर्शन कान्यकुब्जेतर ब्राह्मणों में प्राप्त ऐसी ही उपाधियाँ हैं। इन सत्कार्यों के स्थान, करने वाले पुरुषों के नाम आदि भी सम्बद्ध किये जाते हैं। जैसे लखनऊ के बाजपेयी, खाले के टीका चूरा वाले। इसका आशय यह हुआ कि टीकाराम एवं चूड़ामणि नामक एक सत्पुरुष के पिता ने लखनऊ में वाजपेय यज्ञ किया था, और वह खाले (नीचे) रहते थे। इस प्रकार जब इस प्रथा का जन्म हुआ था, तब इसकी उपयोगिता निःसन्दिग्ध थी। अतएव इस प्रथा का उत्पादक निन्दनीय नहीं अपितु प्रशंसनीय था। किन्तु आज यह अनुपयोगी एवं अनावश्यक है। यदि सत्य कहा जाय तो इसे हानिकर ही नहीं, अपितु घातक भी कहा जा सकता है। किन्तु स्वार्थों से अभिभूत होने के कारण हम इसे छोड़ना नहीं

चाहते, यह है गर्व । क्या एक वकील का लड़का केवल इसीलिए वकील कहा जायगा कि उसका पिता वकील था। किसी की भी उच्चता जिन बातों से पैदा होती है, उनके नष्ट हो जाने से नष्ट हो जाती है। पर इसमें न जाने कौन सी शक्ति है कि यह मिटाने से भी नहीं मिटती। यद्यपि इससे पैदा हुई बुराइयों की सूची एक बड़ी सी पुस्तक के आकार की हो सकती है, पर हम लोग इससे ऐसे चिपके हुये हैं कि इसे छोड़ने या इसमें सुधार करने में जरा भी दिलचस्पी नहीं लेते। जो लोग इसके द्वारा बड़े बनकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं वे तो हैं ही, किन्तु आश्चर्य तो यह है कि जिन्हें यह पददलित बनाती है, वे भी इसे छोड़ना तो दूर, उलटे प्रश्रय दे रहे है। मेरा आशय यह नहीं कि लोग पूर्वजों की स्मृतियाँ भुला दें, किन्तु उच्चता का मापदण्ड यही नहीं हो सकता कि इसकी मर्यादा बीस बिस्वा है। इस उच्चता से लोग अनुचित लाभ उठाते जरा भी नहीं हिचकते। इस समाज में केवल इस प्रथा के आशीर्वाद से एक ही व्यक्ति १०-१२ विवाह करने का अधिकारी माना जाता है। ऐसे व्यक्तियों की कमी भी नहीं है, जो अधिकारों को व्यर्थ खोना पसन्द नहीं करते। उनके जीवन का व्यवसाय यही होता है कि वे विवाह करना अपनी जीविका का साधन मानें।

दहेज

पिता की उपार्जित सम्पति में पुत्र और कन्या दोनों का समप्राप्य ही न्याय्य है। किन्तु पुत्र से कुछ अधिक आशाएँ होने के कारण एवं कन्या से कम, सम्पत्ति विभाजन में भी पक्षपात किया जाता है। अतएव कन्या को दहेज रूप में कुछ देना ही पर्याप्त समझा जाता है। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करने के बाद समावर्तन संस्कार होता था, जो उपनयन का ही एक अङ्ग था। आज भी इस संस्कार आविष्कृत रूप उपनयन संस्कार के अन्त में 'कहाँ जाते हो ?' पूछने पर 'विवाह करने' कह कर ब्रह्मचारी परिचय देता है। प्राचीन काल में प्रत्येक पुरुष के लिये स्वावलम्बी बनना अनिवार्य था। अतएव विवाहोपरान्त गृहस्थ-कार्य-सञ्चालनार्थ कुछ वस्तुओं की आवश्यकता होती ही है, उसके लिये दहेज देना आवश्यक समझा जाता था। इसकी कोई मिति न थी। किन्तु उक्त विस्वा-प्रथा के प्रादुर्भाव-काल में ही इसके भी कुछ नियम स्थिर कर दिये गये थे। जो कि बराबर में बीस बिस्वा वाले के यहाँ बीस बिस्वा वाले को ३, ४, ५ सौ रुपयों के रूप में ही दिया जाता था। इसमें भी ६० फीसदी नकद एवं ४० फीसदी असबाब दिया जाता था। इन रुपयों में भी नियम है कि किस कार्य में कितने दिये जायँ। जैसे कलेवा में ५) रु० फीसदी, टीका में ६) रु० मात्र। प्रति आगत व्यक्ति को भेंट में २) रु० मात्र, आदि-आदि। यह नियम इसलिये कायम किये गये थे, ताकि किसी किस्म की झंझट न हो और सभी कार्य सुचारु रूप से चले। परन्तु आगे चल कर इसमें अनेक खराबियाँ आ गई। अब तो कन्या-पक्ष वालों के सामने लड़के की शिक्षा-दीक्षा में व्यय हुये रुपयों का बिल भी पेश कर दिया जाता है, मानो लड़के के प्रति इनका कोई कर्तव्य ही नहीं था। बधुओं का बध मात्र इसलिये कि आगामी विवाह में पुनः दहेज मिलेगा तो आये-दिन की बात हो गई है। कन्याओं के लालन-पालन में जो उदासीनता दिखाई जाती है, उसे जितना उपेक्ष्य समझा जाता है, उनके प्रति जो दुर्व्यवहार किये जाते हैं, उनका वर्णन करते निर्जीव लेखनी भी दहल उठती है। संक्षेप में इस प्रथा की वेदी पर जितने मूक बलिदान हुये, हो रहे एवं होंगे, उनके संस्मरण मात्र से ही हृदय काँप उठता है। किन्तु खेद इस बात का है कि इस प्रथा के नष्ट होने के निकट भविष्य में कोई भी लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे है। यही नहीं कि इसके द्वारा स्त्रियों का ही सर्वनाश किया जा रहा है, पुरुषों का भी महान अपकार इसी के द्वारा किया जा रहा है। बच्चे स्कूल भेजे जाते हैं, किन्तु तभी तक जब तक उनका विवाह नहीं होता। बाद में उनसे स्पष्ट तो नहीं कहा जाता कि स्कूल छोड़ दो, पर उन्हें व्यय नहीं दिया जाता और जब वे पढ़ना छोड़ देते हैं, तो उन्हें वधू में आसक्त होने का दोष दिया जाता है। जिससे वे बेचारे अशिक्षित, लाञ्छित एवं अप-

मानित होकर अपने जीवन को नष्ट-प्राय बना डालते हैं।

खान-पान

खान-पान की सख्त पाबन्दी में वैज्ञानिक कारणों के साथ ही साथ कुछ ऐतिहासिक कारण भी हैं। यों तो यदि एक स्वस्थ व्यक्ति एक सक्रामक रोग के रोगी के सङ्ग भोजन करता है, तो उसके शरीर में उस रोगी के रोग वाले कीटाणुओं का सक्रमण अनिवार्य हो जाता है। अतएव सर्वोत्तम यही है कि स्वपाकी हो बना जाय। पर वह अधिक सहज नहीं है। अतएव स्वच्छ व्यक्तियों के साथ भोजन-व्यवहार में क्षति नहीं। भारत का प्राचीन इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि प्राचीन युग में खान-पान में इतनी कठोरता कभी नहीं थी। शास्त्रीय प्रमाण मानने वाले निम्न स्मृति-वाक्य को न जाने क्यों भूल जाते हैं—

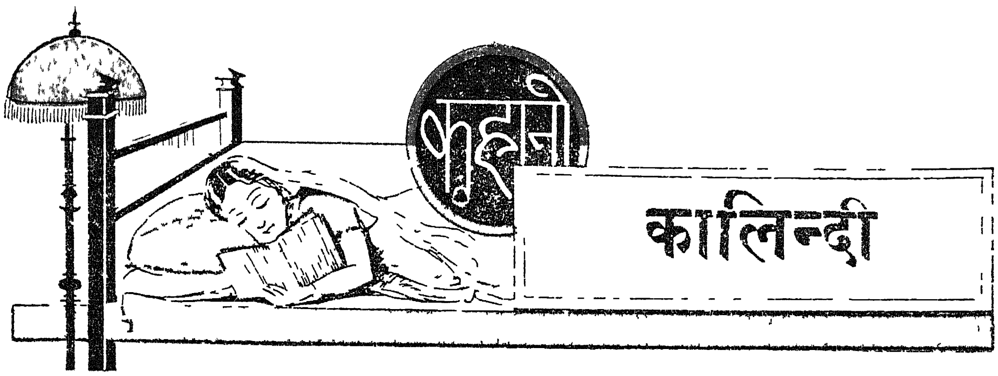
"ब्राह्मणस्यसदाश्नीयात् क्षत्रियस्यचपर्वसु,
प्रकृतेष्वेव वैश्येषुनशूद्रस्य कदाचन।"

इसके अतिरिक्त कश्यप, विश्वामित्र आदि ऋषियों के कार्यों से भी स्पष्ट है कि द्विजाति मात्र में रोटी-बेटी का सम्बन्ध था। इतना ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर शूद्र और अन्त्यज भी ग्राह्य माने जाते थे। किन्तु आज तो ब्राह्मण, ब्राह्मण के ही घर पर खाना धर्म-भ्रष्ट हो जाना मानता है। ससार की ब्राह्मण मानी जाने वाली जातियों के गोत्र-प्रवर आदि का मिलान करने से सभी एक ही श्रेणी में आ जाती हैं। फिर न जाने क्यों हम एक दूसरे को गैर समझे बैठे हैं। मुस्लिम-काल से हिन्दुओं में खान-पान की सख्ती का प्रचार, परदा प्रथा आदि कुप्रथाएँ प्रविष्ट हुईं, पर आधुनिक युग में इन बातों की चर्चा, जो कि एकदम अशास्त्रीय, अनावश्यक एवं असामयिक है, करना अपने को अल्पज्ञ सिद्ध करने के साथ ही साथ हानिकर भी है। किन्तु आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवकों में इसके प्रति द्रोह की भावना अनुदिन उग्र होती जा रही है। यह सुलक्षण है।

उपसंहार

इसके अतिरिक्त परदा प्रथा, अशिक्षा आदि तो सार्वत्रिक हैं, अतएव उनका जिक्र अनावश्यक है। अस्तु। अन्त में हमें इतना ही कहना है कि यदि ससार में हमें रहना है तो कुछ करना होगा। इस प्रकार अन्धकार के गह्वरे गर्त में पड़ कर कब तक रह सकेंगे, यह विचारणीय है। जो समाज में एकदम प्रतिगामी हैं, उनकी उन्नति त्रिकाल में भी सम्भव नहीं।





कालिन्दी

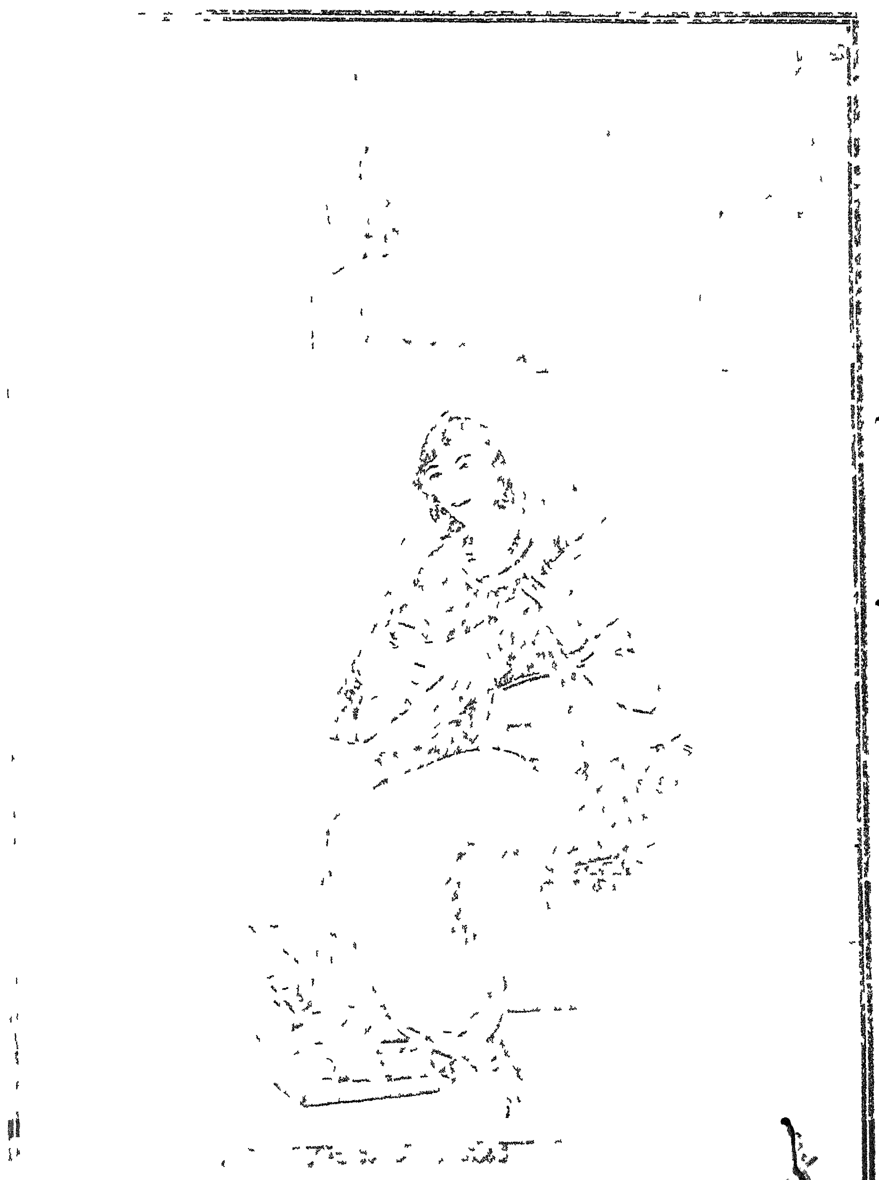
[श्री० लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी, "चन्द्र"]

तो क्या कालिन्दी गृहलक्ष्मी है ? हाँ, गृहकार्य में दक्ष, कुशल स्त्री को हिन्दू समाज में गृहलक्ष्मी ही कहा जाता है । परन्तु ऐसा भी क्या ? वह गृहलक्ष्मी कैसे हो सकती है ? वह तो विधवा है—विधवा ! इस समाज में उसके लिये कहीं भी स्थान नहीं है । तो क्या वह वेश्या हो जाय—नर्तकी ? अपने जीवन—तीर्थ रेणु-से पवित्र जीवन को कलुषित कर डाले ? मैं नित्यप्रति दिन-रात देखता हूँ, वह शान्तचित्त एक स्थान पर खड़ी भी नहीं होने पाती । ये समाज-सुधारक, लम्पट, कुत्ते उसके विपुल सौन्दर्य स्रोत से अपनी काम-पिपासा सन्तुष्ट करना चाहते हैं । उसके मुखरित जीवन-उद्यान में प्रवेश कर, थोड़ी देर के लिये, उसकी कोमल गोद में सुखनिंदिया लेने की अनधिकार चेष्टा कर रहे हैं । आँखें फाड़-फाड़ कर उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से फूट-फूट कर बह रहे सौन्दर्य को देखते हैं । नीच, दुष्ट सभी के माँ-बहिनें होती हैं । किन्तु क्या कालिन्दी इनमें से एक भी नहीं है—न माँ है, न बहिन ? माना, आज वह विधवा है । समाज की अतिशय क्षुद्र वस्तु है—उपेक्षित अङ्ग ! समाज और देश का उससे किसी प्रकार का, कोई भी, सम्बन्ध नहीं है और यह भी माना, वह हेय है, निन्द्य है, किन्तु ऐसा भी क्या कि ये समाज के विषैले कीटाणु चुपके-चुपके, लुक-छिप कर उसके कमनीय कलेवर पर पदाघात करें, उसके सौन्दर्य से अपनी पिपासा शान्त करें ? अब तो उसके हाथ में काँच की चूड़ियाँ भी नहीं हैं और न उसके उन्नत मस्तक के बीच में, सघन केश-राशि को चीरती हुई सौभाग्य-सिन्दूर की रेखा ! उस कालिन्दी का मुख-मण्डल, जो सदैव ही प्रातःकाल की शेफालिका की तरह शुभ्र था, कान्ति की आभा से उद्दीप्त था, म्लान हो गया है—कान्तिहीन ! फिर ये इन्द्रिय-लोलुप निशाचर उसकी ओर क्यों आकृष्ट होते हैं ? वह किसी पर अपनी दृष्टि भी नहीं डालती और यदि संयोगवश उसकी दृष्टि किसी पर जा टिकती है, तो वह शीघ्र ही उसी समय अपना मस्तक नत कर, दूसरी ओर घूम जाती है । क्योंकि आज उसे विदित हुआ है, वह एक विधवा हिन्दू नारी है । उसे तो यावज्जीवन तपश्चर्या ही करनी है । उसके लिये मनोरम प्रकृति की रङ्गस्थली एक मरुस्थल है । वह अन्धकाराच्छन्न है और उसे विश्व की विभूति पर आँख नहीं उठानी चाहिये । उसे हँसना नहीं चाहिये, अपितु रोना चाहिये, खूब जी भर कर, अच्छी तरह रोना चाहिये । यही उसकी अपनी निधि है—वह किसी पुरुष से हँस कर बात नहीं कर सकती । अपने जीवन की अनन्त वेदनाओं को दूसरों से नहीं कह सकती । ऐसा करने से उसके दुःख का बोझ कुछ हलका जो हो जाता है ।

हाँ, उस दिन की बात है । कालिन्दी के शिशु शरत् ने खेलते-खेलते विनोद के फूल के गमले को छू भर दिया था । विनोद उसी मकान में, जिसमें कालिन्दी रहती है, तीसरी मञ्जिल पर रहता है । कालेज का विद्यार्थी, धनी माँ-बाप का बेटा । आवश्यकता से अधिक खर्च पाता है । सिनेमा, सिगरेट और शराब में पानी की तरह पैसा बहाता है । एकमात्र पुत्र को,

माता-पिता भी, स्नेह के वशीभूत हो कुछ नहीं कह सकते। उसके आवास में अभिनेत्रियों के सुन्दर चित्र लगे हैं। बढ़िया कैलेण्डर कमरे की रूप-छटा को और भी द्विगुणित कर रहे हैं। बाल्यावस्था से ही विनोद को पुष्पों से शौक रहा है। अतएव आज भी उसके कक्ष के सामने सकड़ों विलायती पुष्पों के गमले शोभायमान हैं। नौकर है, पानी छोड़ता है। सींचता है, शरत् को उन पुष्पों की महत्ता का ज्ञान ही क्या? वह तो अभी शिशु जो है। उसे अपने निकट के गमले में हिलते-डुलते पुष्प अच्छे लगे और उसने अपने अतिशय सलोने हाथों से उन्हें छू लिया। बस, यही बहुत था। हल्दी घाटी का रणक्षेत्र बनने के लिये। विनोद बड़बड़ाता, अशिष्ट गाली बकता, कमरे से बाहर आ गया। त्योरियाँ चढा कर उसने शरत् के नङ्गे, कोमल शरीर पर तड़ाक् से बेंत रसीद कर दिये। उसमें इतनी शक्ति कहाँ, जो विनोद के वज्र प्रहार सहन करे। वह बेहोश होकर गिर गया—धड़ाम्! उसके शरीर पर बेत के लम्बे-लम्बे निशान छलछला आये थे। कालिन्दी शरत् की चीख सुन कर ऊपर गई। देखा, शरत् संज्ञाहीन पड़ा है। उसकी हृदय-वीणा के एक-एक तार, बारी-बारी से, झंकृत हो गये। विद्रोहाग्नि हृदय के अन्दर प्रज्ज्वलित होकर निमेष मात्र में शान्त हो गई। वह अपलक दृष्टि से विनोद की ओर देखती रही, जैसे क्षुब्ध सिंहनी अभी उसे निगलने को समुद्यत हो। किन्तु दूसरे ही क्षण उसे स्मरण हो आया, अरे! वह तो विधवा है। गरीब विधवा कहीं लड़-झगड़ भी सकती है? उसे ऐसा करने का कोई भी अधिकार नहीं! यदि वह झगड़ती है, चिल्ला कर शोर मचाती है और अपने निर्दोष बालक के पीटने का कारण विनोद से पूछती है, तो समाज उसे 'डायन' कहेगा और वह अपने स्त्रियोचित आदर्श से गिर जायगी। हिन्दू-समाज में विधवायें एक शब्द भी नहीं बोल सकतीं, भले ही उन्हें कोई काट डाले, उनका सर्वस्व अपहरण कर ले। कालिन्दी ने अपने शरत् को छाती से लगा लिया। क्रोध के वेग को उसने अपने अँसुओं के घाट से निकाल दिया। अपनी काली कोठरी के अन्दर वह रोई—खूब जी खोल कर! उसका सारा जीर्ण अञ्चल आँसुओं से भीग गया था। दीर्घ लोचन आशा से अधिक रोने के कारण सूज गये थे। वह सताई हुई हिरणी की तरह भयभीत थी। और जब दूसरे दिन मैंने इसका रहस्य जानना चाहा, तो वह जैसे दुख से अधीर हो गई हो। छल-छल, उसके नेत्र तरल हो गये। सैकड़ों अश्रु-मुक्ता, मेरे देखते-ही-देखते, टप् टप् कर उसके फटे गन्दे अञ्चल में जा विलीन हुये। वह एक शब्द भी न बोल सकी, जैसे उसकी घिग्घी बँध गई हो। किन्तु उसके अन्दर चल रहे द्वन्द्व की अभिव्यक्ति नेत्रों में थी। उसने और न कुछ कह, अपने शरत् की पीठ मेरे सामने बढ़ा दी और उसी बेत की लाल-लाल लकीर की ओर संकेत किया, जिसके कारण आज भी बालक बेहोश था। खून छलछला आया था और बेत का आघात कुछ श्याम वर्ण धारण किये हुये था। कालिन्दी सतत् चेष्टा करने पर भी न बोल सकती थी और न रो ही सकती थी। उसके समस्त दुख का अथाह सागर उमड़ा रहा था। उसी की उत्तुङ्ग लहरियों में वह डूबती-उतराती थी।

लेकिन क्या कालिन्दी एक स्त्री के अन्दर जो पिपासा होती है, उसे शान्त कर सकी है? बारह वर्ष की आयु में उसका विवाह कर दिया गया था। तत्पश्चात् वह चार वर्ष तक अपने माँ-बाप के घर में ही क्रीड़ा करती रही। क्योंकि उसके घर की ऐसी ही प्रथा है। सत्रहवें वर्ष वह अपने पति के घर आई। यहाँ यद्यपि वह दो वर्ष रही, तथापि उसे अपने पतिदेव के पादपद्मों की सेवा करने का एक वर्ष का ही समय प्राप्त हुआ। एक वर्ष में वह अपने पति को अच्छी तरह, भली-भाँति समझ भी नहीं पाई कि किसी कारण-वश उन्हें एक वर्ष के लिये बाहर जाना पड़ा और वहीं उनकी मृत्यु हो गई। उसका सौभाग्य-सिन्दूर सदैव के लिये लुट गया। उसके जीवन का प्रचण्ड मार्तण्ड सदैव के लिये अस्तमित हो गया। एक साल का समय भी कितना होता है? रङ्ग बिरङ्गे पंखों को लगा कर दिन आये और चले गये। उस पर वज्रपात हुआ। वह विधवा हो गई। कुन्दन सा रङ्ग, काली केशराशि, यौवनपूर्ण शरीर और



स्वर-साधन

इन तारो मे आज जगेगा, सोया हुआ सरस गाना।
जिस प्रकार मेरे प्राणो मे होगा प्रिय का आ जाना !!—'कुमार'

मदपूर्ण आँखें प्रखर नाखून बनकर, उसी के हृदय को विदीर्ण कर रही थीं। उसका रूप-यौवन उसी को खाये सा जाता था। उसकी सभी आशायें, अभिलाषायें उसी में, उसी के हृदय के अन्दर, केन्द्रीभूत थीं।

* * *

जेठ की कड़ाके की धूप! मनहूस बयार हू हू करती, चीत्कार छोड़ती, अज्ञात दिशा की ओर बढ़ जाती थी। सड़क पर कोई भी, चलता फिरता, दृष्टिगोचर नहीं होता था। बैङ्क से लौटा, तो प्यास से व्याकुल हो उठा। कण्ठ सूख रहा था। एक पग भी आगे बढ़ना दुश्वार था। एक परिचित मकान को देखकर रुक गया, इस भावना से कि यहीं कालिन्दी के घर में पानी पी लूँ। अन्दर गया। देखा, कालिन्दी अपने नवजात शिशु शरत् को बार-बार चूमती, पुचकारती है। तोतली बोली में बातें भी करती है। सहसा मुझे देखकर, सारी आत्मीयता बिखेरते हुये उसने कहा—"आइये आइये, बैठिये!" मुझे जल्दी थी। अतएव पानी पीकर मैं चलने लगा, किन्तु उसने मुझे पुकारा, मैं मुड़कर उसकी ओर आगे बढ़ा। देखा, जैसे कालिन्दी को विषैली, काली नागिन ने डस लिया हो, जिसके फलस्वरूप उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग में कालिमा छा गई हो। मेरे हृदय में धक्का लगा। मैंने पूछा—"कालिन्दी कहो क्या है?" और बस, उसके नेत्रों से गङ्गा-जमुना उमड़ चली। सिसकियाँ लेती बोली—"देखिये, यदि आप भी इस विधवा की सहायता नहीं करेंगे, तो मेरी क्या दशा होगी? मुझे तो शान्त चित्त से कहीं बैठने का स्थान भी नहीं मिलता। मैं तो विधवा हूँ ग़रीब! मुझमें सौंदर्य नहीं है। पर थोड़े समय के लिये मैं मान लेती हूँ कि ईश्वर ने तो मुझे सौंदर्य दिया है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि समाज मेरी ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखे, मुझे पथ-भ्रष्ट करने की चेष्टा करे। मैं हिन्दू नारी हूँ। मेरा पति ही मेरे लिये सब कुछ है। उनकी मृत्यु के बाद यावज्जीवन मैं अपने हृदय मन्दिर में किसी और भी व्यक्ति की मूर्ति प्रतिष्ठित नहीं कर सकती। मैं समाज के कड़े अनुशासनों पर चलती हूँ—अपना कर्तव्य समझती हूँ। यह भी जानती हूँ, इस विधवा का जीवन तमसाच्छन्न है, वहाँ प्रकाश की एक किरण भी नहीं पहुँच सकती। अब मैं अपने इसी शरत् में निखिल विश्व को पा लेती हूँ। इसी पर जीती हूँ। यही मेरी एकमात्र आशा-वल्लरी है। किन्तु आप से कहती हूँ, यदि अब मैं भविष्य में अधिक सताई गई, तो आत्महत्या . .।" इसके आगे शायद वह यह कहने वाली थी—'तो आत्महत्या कर लूँगी!' लेकिन अपनी विषम परिस्थिति से वह इतनी जकड़ गई थी कि इसके आगे और कुछ भी नहीं बोल सकी।

"आत्महत्या? क्या कहती हो कालिन्दी, आत्म-हत्या कर लोगी? नहीं, ऐसे कैसे हो सकता है? जब तक मैं हूँ,... ।" सान्त्वना देते हुये मैंने कहा।

टप्-टप्-टप्-टप्!

और मैंने देखा, उसके नेत्रों से आँसुओं की निर्बाध धारा प्रवाहित है। मैं सोचने लगा, एक विधवा नारी अपने नियम-संयम की कितनी पक्की है! मान-मर्यादा के लिये, समाज की वेदी पर, अपनी आत्म-हत्या करने को तैयार है। कितना विशाल, कितना शान्त और कितना गम्भीर है समाज की इस विधवा देवी का हृदय। इसके हृदय में कलुषित भावना का प्रवेश ही नहीं और इसके विपरीत वे इन्द्रिय लोलुप पुरुष इसे सताते हैं—पथभ्रष्ट करते हैं। मैंने कहा—'कालिन्दी, तुम मेरी हो। हाँ, मेरी ही बहिन। रोने की बात ही क्या? मैं देख लूँगा सबको। भगवान् इस शरत् को बनाये रक्खें, बस! चलो, आज ही चलो। मेरे ही साथ रहो। जो रूखो सूखो मैं खाता हूँ, सो तुम भी खाना। किन्तु रोने की कोई बात नहीं।'

"नहीं भइया, बस इतनी कृपा बहुत है। मुझे तो भय है कि यदि मैं आपके भी घर चल दूँ, रहने लगूँ, तो··· ·।"

* * *

रात्रि को अपनी खुली छत पर लेटा था। चाँदनी थी, हवा थी और मेरी पत्नी! मैं आज शीघ्र ही, अन्य दिनों की तरह, जैसी मेरी आदत है, न सो सका। चुपचाप, स्थिर गति से कालिन्दी की जटिल समस्या को

ग्रन्थि को सुलझाने लगा। मेरा क्या कर्तव्य है, मुझे क्या करना चाहिये यही दो प्रश्न मेरे हृदतल में तरङ्गित हो रहे थे। फिर मेरा ध्यान यकायक कालिन्दी के चरित्र की ओर चला गया। सोचने लगा, आज उसका समाज में कोई भी मानवगत स्थान नहीं है। एक पुरुष जब चाहे तब अपने प्रेम का प्रस्ताव किसी भी स्त्री से कर सकता है—चोरी से। किन्तु एक विधवा स्त्री, जब उसे दो बातें करने की आवश्यकता है, वार्तालाप करना तो दूर रहा, उसकी ओर देख भी नहीं सकती। पति की मृत्यु के पश्चात् साफ सुथरे वस्त्र भी अपने शरीर पर नहीं धारण कर सकती। और यदि वह ऐसा करती है, तो उसका नैतिक पतन है। वह दुष्ट और व्यभिचारिणी क़रार दी जाती है। यह भी न्याय है? आज कालिन्दी के पति नहीं रहे, उसके भोजन वस्त्र का प्रबन्ध कौन करे? कौन ऐसा समाज-सुधारक है, जो उसके बेटे को शिक्षा दे? उस शरत् को—अभागिनी विधवा के बेटे को—सभी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। आज जब उसकी जर्जरित जीवन नौका दुःख के अपार-पारावार की ओर द्रुत गति से प्रवाहित है, कोई सान्त्वना भी नहीं देता। उसके सहायतार्थ कोई भी निकट नहीं जाता, अपितु सभी उसे देख-देख कर हँसते है, उसका उपहास करते हैं। हाँ, ठीक है, मुर्दे पर सभी प्रहार कर सकते हैं, किन्तु क्षुधित सिंहनी के सामने आने वाले बिरले ही होते हैं। यदि वे कालिन्दी की सहायता नहीं कर सकते, तो हँस भी नहीं सकते—उसे देख कर! वे इसके अधिकारी भी कैसे हो सकते हैं? न कोई उसका अपना है और न वह स्वयं किसी की है। वह कालिन्दी आज, अपने हृदय में कितनी वेदना, कसक छिपाये है, इसे कौन जान सकता है? और सच तो यह है कि सभी हँसने की, उपहास करने की चेष्टा करते हैं, परन्तु वस्तुस्थिति समझने की कोई भी चेष्टा नहीं करते। किसी को यह बात जानने की आवश्यकता ही क्या? ऐसी दशा में बड़े से बड़ा धैर्यवान् पुरुष भी किंकर्तव्यविमूढ़ हुवे बिना नहीं रह सकता। परन्तु कालिन्दी हतप्रभ हो-होकर भी अपने को निरा तमसाच्छन्न नहीं देखती। कर्तव्यनिष्ठा ही में उसका स्वरूप जाग्रत है। उसकी आज की दुनिया कंटकाकीर्ण है, किन्तु जैसे उस पर चलने का उसे अभ्यास हो। वह अपने पथ से विचलित नहीं होती—चलती है और बराबर चलती रहती है। आँधी-पानी और समाज के प्रलयङ्कर झञ्झावातों से डटकर लोहा लेना उसके जीवन का मुख्य विषय बन गया है।

उफ! उस नीच विनोद ने उसके शिशु पर उसके गुलाब-पुष्प जैसे कोमल शरीर पर बेतों की वर्षा की! नीच कहीं के, पशु होता तो अच्छा होता। . .. तू और पढ़ा-लिखा पशु! तूने उस कोमलाङ्ग शिशु पर अपनी पशुता, बबरता और उद्दण्डता का प्रहार किया। माना, तू धनी है। तेरे लिये सभी क्षम्य है और सभी तुझे क्षमा कर सकते हैं, किन्तु वह भगवान् तुझे क्षमा नहीं कर सकता। गरीबों, दीन दुखियों को सताना तुझे शोभा नहीं देता। कभी यदि तूने उस बच्चे के हाथ एक पैसा धरा होता, तो मैं भी जानता कि हाँ, तेरे हृदय है, तू भी कुछ है। उस नारी को, जो अनाथ है, निष्कपट है और गऊ है, तूने सताया? जिस अपने बच्चे के बल पर वह जीवित है, उसी पर तूने आक्रमण किया? अरे, तुझे पता है कि उस बच्चे की क्या दशा है? उसका सारा शरीर लाल-लाल होकर सूज गया है। वह ज्वराक्रान्त हो-होकर विकराल काल के गाल में जाने को उद्यत है। और विनोद! क्या तू यह भी जानता है कि यदि वह बालक न रहा, तो उस अभागिनी विधवा की क्या गति होगा?

आज उसकी सहायता के लिये, उसके बच्चे के दवा-पानी के लिये कोई भी निकट नहीं फटकता!

इसी बीच मेरी पत्नी ने कह दिया—"सुनते हो, कालिन्दी क्या से क्या हो रही है!" इस वाक्य को सुनकर मैं उबल पड़ा। मेरे क्रोध का पारा ऊँचा हो गया। मेरे हृदय में अपनी पत्नी के प्रति घृणा-भाव उत्पन्न होने लगे। मैं सोचने लगा, जो विधवा अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के निमित्त आत्महत्या तक करने को उद्यत है, पथ भ्रष्ट होने की अपेक्षा विषपान कर मर जाना श्रेयस्कर समझती है, अपनी कल्पना में अपने पति की मूर्ति के अतिरिक्त और किसी पुरुष को देखना

पाप समझती है, उसी के चरित्र पर ऐसी आशङ्का ! अपने क्रोध को दबा कर मैंने पूछा—"क्या बात है ?"

"अरे ! तुम्हे इस सम्बन्ध में इतना भी ज्ञान नहीं ?"

"दिन भर काम में जो लगा रहता हूँ।"

"वह कालिन्दी, जिसे तुम अपने यहाँ लाने की बात सोच रहे थे और जिसके चरित्र पर तुम्हें पूर्ण विश्वास था, चरित्रहीन है ?"

"चरित्रहीन ?" जैसे मेरे ऊपर तुषार-पात हुआ हो। लेकिन फिर भी मैं दृढ बना रहा।

"हाँ, हाँ, क्यों ?" उसने अपने प्रस्ताव की पुष्टि की।

मैं कालिन्दी के चरित्र के सम्बन्ध में, इसके आगे और कुछ भी नहीं सुनना चाहता था। क्योंकि मैंने उस पवित्र प्रतिमा को अच्छी तरह पहचान लिया था। मैं जानता था उसके चरित्र को। मुझे अपनी पत्नी पर यत्किञ्चित भी विश्वास नहीं हुआ। कारण, उसने भी इस उड़ती खबर को पड़ोसिन से सुन लिया था।

मन-ही-मन मैंने कहा—जिस कालिन्दी का चरित्र दुग्ध-सा श्वेत, गङ्गाजल-सा पवित्र और धर्मग्रन्थ-सा महान् है, उसे सम्भवत मेरी पत्नी ही क्या, कोई भी समझ नहीं सका है। उत्तर देते हुये मैंने अपनी पत्नी से कह दिया—'अच्छा होगा, जाने भी दो। यह तो दुनिया है।' और इस सम्बन्ध में मेरी उदासीनता देख कर वह शान्त हो गई।

* * *

तीसरे दिन—

मैंने देखा, कालिन्दी के घर के सामने भीड़ लगी है। लोग उसकी विकृत मुद्रा को बड़े ध्यान से देख रहे हैं। फूँक-फूँक कर समाज के पथ पर चलने वाली कालिन्दी अर्द्धनग्नावस्था में पड़ी थी। लज्जा, भय और समाज का डर आज उससे कोसों दूर जा चुका था उसका जीर्ण अञ्चल अस्त व्यस्त दशा में था। कालिन्दी का शरत् मर चुका था। अपने शरत्—निर्जीव शरत्—के शरीर को पकड़-पकड़ कर, ताकत के साथ झकझोरती थी, हिलाती थी। कहती थी—'ले, इसे ले जा ! मार डाला न ? अब तो खुश है ? ह. .ह...ह, यह देखो, यह मेरा शरत् मर गया। ऐ ! हँसता है—हँसता है। शरत् ! शरत् ! मेरे बेटा, मेरे लाल शरत् ! तू मर गया ? नहीं, नहीं, ले ना इसे नोच ! यह मर गया है ह ह ह। समाज ले इसे मे . ..तेरी भेंट करती हूँ .ह .ह .ह भेंट ! और क्या चाहिये ह ..ह...ह।

शायद कालिन्दी पागल हो गई थी।

बिखरे फूल

देवनागरी लिपि में सुधार

इस देश को एक सर्वसाधारण लिपि और एक सर्वसाधारण भाषा की कितनी आवश्यकता है, यह किसी से छिपी नहीं है। भारत पूर्णतया एक राष्ट्र नहीं, जब तक उसे एक सर्वसाधारण भाषा नहीं, एक सर्वसाधारण लिपि नहीं। देश की यह कमी बहुत ज़माने से राष्ट्रीयता को धक्का देती आ रही है और समय-समय पर इसके परिणाम अति भयानक सिद्ध हो चुके हैं। भाषा की विभिन्नता तो हममें भेद उत्पन्न किये ही हुये है, लिपि-भेद तो उसे और बढ़ा रहा है। इसकी गहरी खाई जो कई प्रान्तीय सीमाओं पर पड़ी हुई है, हमें एक दूसरे से पृथक् कर रही है। इसलिये यह आवश्यक है कि पहले इस लिपि-भेद को मिटाया जाय। हर्ष की बात है कि अब लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। यह विषय बड़े महत्व का हो रहा है और जहाँ-तहाँ इसकी चर्चा होने लगी है।

भारतवर्ष ऐसे विशाल देश में, जहाँ अनेक लिपियों का प्रचार है, कौन सी लिपि सारे देश के लिये उपयुक्त हो सकती है, यह एक कठिन समस्या है। इस पर बहुत वाद-विवाद हो चुका है और प्रायः सबकी नजरों में देवनागरी ही इसके उपयुक्त जँच रही है। परन्तु कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनका झुकाव रोमन लिपि की तरफ़ है और जो उसके गुणों के कायल हैं।

यह बात ठीक है कि रोमन लिपि की अपनी कुछ खास विशेषतायें हैं, पर यह कहना पक्षपात नहीं है कि देवनागरी ही राष्ट्रलिपि के पद को सुशोभित कर सकती है। रोमन लिपि जिस रूप में है, अगर वैसी ही रखी जाय तो हिन्दुस्तानी भाषा उसमें शुद्धतापूर्वक नहीं लिखी जा सकती। इस कमी की पूर्ति के लिये इसमें अनेकों संशोधन करने पड़ेंगे। उस हालत में यह इतनी जटिल हो जायगी कि उसके प्रचार की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। इसमें लिखने और छापने के अक्षरों में विभिन्नता है, जिसके फलस्वरूप हर एक अक्षर के तीन-चार रूप हो जाते है। इसके विपरीत नागरी वर्णमाला रोमन वर्णमाला की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और सरल है। जैसी बोली जाती है, प्राय. वैसी ही लिखी भी जाती है और जैसी लिखी जाती है वैसी ही पढ़ी जाती है। नागरी इस देश की व्यापक लिपि है और इसके प्रचार का क्षेत्र विस्तृत है। अतएव नागरी रोमन की अपेक्षा अधिक उपयोगिनी, सरल तथा प्रान्तीय भाषाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अधिक उपयुक्त है।

यद्यपि ऊपर बतलाये हुये गुणों का देवनागरी में समावेश है, फिर भी यह सर्वथा निर्दोष नहीं है। इसमें कुछ दोष ऐसे हैं, जिन्हें सुधारे बिना हम इसे आगे नहीं बढ़ा सकते। ये दोष कुछ अक्षरों की बनावट में, मात्राओं को लगाने की पद्धति में, संयुक्ताक्षर बनाने में और अक्षरों की ज्यादा संख्या होने में है।

इस कल-पुर्जे के ज़माने में लिखने-पढ़ने

की सुविधा के साथ ही प्रेस और टाइपराइटर की सुविधा का भी ख़्याल करना होगा। रोमन लिपि के विश्वव्यापी प्रचार का एक ज़बरदस्त कारण उसका ज़माने के अनुकूल होना ही है। अतएव नागरी लिपि में इतना सुधार अवश्य होना चाहिये जिससे वह प्रेस और टाइपराइटर के उपयुक्त हो जाय। परन्तु यह सुधार कैसे किया जाय, इस पर अब तक पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला गया है। यद्यपि यह काम शीघ्र होने का नहीं, फिर भी यह जितने महत्व का विषय है उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा है। मैंने इस तरफ़ जो प्रयत्न किया है और जिस नतीजे पर पहुँचा हूँ, आपके सामने रखता हूँ। आप इस पर विचार करें और अपनी मूल्यवान सम्मति दें, जिससे यह ज़्यादा से ज़्यादा उपयोगिनी बनाई जा सके।

सुधार-योजना

मेरी इस प्रस्तावित योजना में निम्नाङ्कित बातों पर ध्यान दिया गया है —

(१) प्रेस और टाइपराइटर की सुविधा के ख़्याल से अक्षरों की संख्या में यथासम्भव कमी करना।

(२) कुछ अक्षरों की बनावट में कुछ ऐसे सरल परिवर्तन करना, जिस से वे अधिक सुन्दर, सुगम और संक्षिप्त हो सकें।

(३) बगल में लगने योग्य नवीन स्वर-चिन्हों का निर्माण करना।

(४) अक्षरों से शिरोरेखा का हटा लेना।

(५) संयुक्ताक्षर बनाने के लिये हलन्त् का प्रयोग करना।

(६) पूर्णविराम के लिये पाई न रख कर अङ्गरेज़ी की तरह बिन्दु रखना।

(७) अङ्कों के रूप में भी यथासम्भव सुधार करना।

अक्षरों में कमी

पहले यह कहा जा चुका है कि अक्षरों में कमी की आवश्यकता है। अब यह देखना चाहिये कि यह कमी कैसे की जाय और कहाँ तक बिना हानि के सम्भव है। देवनागरी के कुल अक्षरों की संख्या मात्राओं को लेकर ६२ है। इसमें क्ष, त्र, ज्ञ और श्र संयुक्ताक्षर हैं। वर्णमाला में इनका कोई स्थान नहीं। इनको निकाल देने से इनका काम संयोग द्वारा चल जायगा। बाकी ५८ में से ऋ को निकाल दीजिये, क्योंकि इसका काम रि से चल जायगा, भेद क्या है जान नहीं पड़ता। अब बचे ५७, इनमें १० स्वर और ६ मात्रायें हैं। अ में मात्रा लगा कर बाकी सब स्वरों को बना लेने से उनके स्वतन्त्र रूप की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। इस प्रणाली को जारी करने से ६ अक्षरों की कमी होती है। अब रहे ४७ अक्षर। इनमें च, छ, ख इत्यादि १० अक्षर महाप्राण हैं। अगर इनका भी स्वतन्त्र रूप हटा दिया जाय और इनका काम किसी तरह के सङ्केत द्वारा लिया जाय तो ६ और अक्षरों की कमी होकर ३७ रह जायँगे।

पर इतनी ही कमी काफ़ी नहीं है। सफल टाइपराइटर बनाने के लिये और भी कमी की आवश्यकता है। यह इस तरह हो सकती है—प्रचलित वर्णमाला में ड़ और ढ़ क्रमश: ड और ढ के नीचे बिन्दु लगाकर बनाये गये हैं। इसी सिद्धान्त पर यदि कुछ और अक्षरों का निर्माण किया जाय तो कोई हर्ज नहीं होगा, वरन् अभीष्ट सिद्ध होगा। जिन अक्षरों के साथ ऐसा करना सम्भव हो सका है, उनके बारे में कुछ उल्लेखनीय बातें दी जाती हैं—(१) ञ और ङ हिन्दी में सदा संयुक्त ही लिखे जाते हैं। उसमें भी इनका काम अधिकतर अनुस्वार ही से निकल जाता है। इसलिये इनके स्वतंत्र रूप का कोई महत्व ही नहीं है। सिर्फ़ नाम के लिये वर्णमाला में पड़े रहेंगे। प्रचलित। ङ, ड के आगे बिन्दु रख कर बनाया गया है। ऐसा न कर यदि हम च के नीचे बिन्दु लगा कर बना लें तो यह कार्य उसी बिन्दु से चल जायगा जिससे ड से ड़ बना है। (२) इसी तरह य के नीचे बिन्दु लगा कर ञ बना लिया जाय। (३) अब ढ़ को देखिये। यह ढ से बनाया जाता है, पर अब तो इस योजना में ढ ख़ुद ड में महाप्राण का सङ्केत लगा कर बनाया गया है। इसलिये ढ़, ट के नीचे बिन्दु

लगाकर बना लिया जाय (४) इसी तरह न से ण और और ब से व बना लिया जाय। ब और व का यह सम्बन्ध तो कैथी में चलता भी है। (५) अब श, ष और स, को देखिये। इन तीनों का काम भी एक ही अक्षर से चल सकता है। स में महाप्राण का संकेत लगा कर श और नीचे विन्दु लगाकर ष बना लिया जाय। मगर स का जो प्रचलित रूप है वह नहीं रखा जाय। श को ही स समझा जाय, क्योंकि जब इन तीनों में दो अपने रूप को खो रहे हैं तो जो सरल है उसी को क्यों न रखा जाय। इस तरह इस बिन्दु प्रयोग द्वारा ८ अक्षर और कम हुए और बढ़ा एक विन्दु का टाइप।

अक्षरों में कमी की समस्या इस तरह हल हो जाने से अब केवल ३१ अक्षर रह जाते हैं। नागरी लिपि को जो कार्य सम्पादन करना है उसे ध्यान में रखते हुए यह कोई बड़ी संख्या नहीं है। इस कमी से और लाभ भी हुए हैं। पहला तो यह कि ख, ध, ण, झ और भ का वर्तमान रूप जो बहुत ही असंतोषजनक था और जिनमें सुधार की माँग थी, वह आप से आप पूरी हो गई। दूसरा यह कि विन्दु का जो टाइप इन अक्षरों को बनाने का काम करेगा वही क, ख, ग, ज और फ आदि अक्षरों के नीचे लगा कर उन्हें, फारसी के शब्दों के उच्चारण योग्य बना देगा।

—यदुनन्दनलाल

* * *

गढ़वाल की एक समस्या

भारतवर्ष के उत्तरीय पार्श्व में नागाधिराज हिमालय का लगभग पन्द्रह सौ मील का विस्तार है। उसकी विभिन्न पर्वतमालाओं में प्रकृति ने अपने यौवन की होली खेली है। उन्हीं की कन्दराओं में बैठ कर सृष्टि के प्रथम स्वर्ण विहान में कपिल, कणाद आदि महानुभावों ने प्रकृति के ऊपर आत्मा की विजय का शङ्खनाद सुनाया था। उसी हिमालय के एक कोने में गढ़वाल का जिला स्थित है, जहाँ पाँच लाख आबादी में से एक लाख डोम (अछूत) हैं, जो कि कोली, लुहार, औजी, रूड़िया, तमोटा, भूल आदि उपजातियों में बँटे हुए हैं। सारे जिले में उन सबको "डूम" नाम से पुकारा जाता है। लगभग ढाई लाख क्षत्रिय जाति के लोग हैं। वे बिष्ट, भण्डारी, नेगी, रावत, गुसाईं, ठाकुर आदि जातियों में विभक्त हैं। डेढ़ लाख के करीब ब्राह्मण जाति के हैं, वे सरोला, गङ्गाड़ी आदि में बँटे हैं। किन्तु गढ़वाल प्रदेश के पाँच हजार गाँवों की संख्या में से कुछ गाँवों में एक विचित्र जाति निवास करती है। प्रकृति के शक्तिशाली प्रभाव ने इन जातियों पर इतना आधिपत्य स्थापित कर रखा है कि वे अपने आपको किसी एक निश्चित स्थान का न कह सकें। इनके विषय में किञ्चित् भी परिचय रखना महान् दुष्कर है। इनको नाथ, जोगी, डलिया, ओलिया आदि के नाम से पुकारते हैं। इनके जीवन का संक्षिप्त वर्णन आज हम अपने पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं।

नाथ लोग भिक्षा माँगने के लिये देश-देशान्तरों में भ्रमण करते हैं। कुछ नाथ लोगों के लिये पूर्वजों की अन्धपरम्परागत नाली की प्रथा अभी तक कायम है। इसका खास उद्देश्य यह है कि प्रत्येक फसल पर इनको एक नाली मवासी के हिसाब से नाज दिया जाता है, इससे इनको नालिया भी कहते हैं। जोगी इसलिये कहते हैं कि भिक्षाटन के अवसर पर यह जाति वेष-भूषा बदल देती है और जटूठा, लँगोटी, चिमटा हाथ में रख कर तमाम शरीर पर विभूति मल देते हैं। काश्तकारी का काम भी करते रहते हैं। यहाँ की प्राकृतिक दशाओं ने इनको विवश कर दिया है कि वे स्थायी जीवन को त्याग दें। इसका कारण पाठकों को आगे चल कर स्वयं ज्ञात हो जायेगा। ग्रीष्म काल में यह लोग गढ़वाल के उत्तर भाग की ओर चले जाते हैं और महर्षि शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित हिन्दुओं के चतुर्धामों में एक महान प्रसिद्ध स्थान बदरीनाथ के निकट एवं टिहरी राजधानी के ग्रामों में भिक्षाटन कर पुनः अपने-अपने निवास स्थानों में

आते हैं। इस जाति में रीति-रस्म वैसी है जैसे उच्च वर्णीय हिन्दुओं में है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की तरह यह लोग अपने को उच्च मानते हैं और गढ़वाल के एक लाख हरिजनों (डोमों) में भी इनकी गणना नहीं होती, तथापि यहाँ के उच्चाभिमानी जाति विठ लोग (ब्राह्मण-क्षत्रिय) इस जाति को अछूत मानते हैं। और इनका छुआ पानी नहीं पीते तथा इनको मकानों तक नहीं लगने देते हैं। ये लोग विठों की भाँति षोडश संस्कार भी करते हैं। गढवाल के पुरोहित ब्राह्मण लोग इनके घरों में पूजा, पाठ गोदान आदि शुभ संस्कार करते रहते हैं और इनके मरने पर भी दशकर्म संस्कार उसी भाँति होता है जैसे विठों के यहाँ। इतना होने पर भी गढवाल के विठों ने इन्हें अछूत मान कर इनका उत्साह घटा दिया है। ये लोग अपने को नीच समझकर विद्याध्ययन करने में भी सकुचित रहते हैं। सन् १९३० की बात है कि पट्टी खाटली के मौजा काँडा में नाथों की शुद्धि कुछ स्वार्थी लोगों ने की थी, किन्तु कुछ दिन बाद ही ब्राह्मण-क्षत्रिय जो शुद्धि करने गये थे उनका स्थानीय जनता में जातीय वहिष्कार होने लगा और उन लोगों ने हरिद्वार और बदरिकाश्रम स्थानों की तीर्थयात्रा कर अपना प्रायश्चित्त किया, तब विठ लोगों के समाज में सम्मिलित हुए हैं। अतः हिन्दू महासभा तथा सनातन-धर्म महामण्डल से प्रार्थना है कि वर्तमान देश सुधार के अवसर पर इन दो हजार अल्पसंख्यक जाति की शुद्धि कर उच्च वर्णीय हिन्दुओं के साथ मिला देने की कृपा की जाय। यदि दिन प्रतिदिन इनको अछूत ही माना जायेगा तो यह जाति शीघ्र ही दूसरे धर्म में प्रविष्ट हो जायगी। यहाँ की पाठशालाओं में इनके बालक शिक्षा प्राप्त करने आते हैं, तो उनके नाम दर्ज करने में अध्यापकों को असमंजस हो जाता है कि इनको डोम जोगी लिखा जाय तो यह मान-हानि का दावा करेंगे और विठ जोगी लिखा जाय तो उच्च वर्णीय ब्राह्मण-क्षत्रियों की ओर से जातीय वहिष्कार का भय प्रतीत होता है। अब स्कूलों के अध्यापकों को कौनसा मार्ग ग्रहण करना चाहिए। इनके विषय में गढ़वाल नवयुवक-समाज शीघ्र ही इस ओर ध्यान आकर्षित कर इस कठिन जातिभेद-समस्या को सुलझाने की कृपा कर, नाथ-सम्प्रदाय के लोगों को अछूतपन से शीघ्र मुक्त करेंगे।

—शंकरसिंह नेगी

* * *

श्रीमती रुक्मणी लक्ष्मीपति

मुझे बड़े लोगों के हस्ताक्षर एकत्रित करने का शौक है। उन दिनों, जब पं० जवाहरलाल नेहरू के निवास-स्थान, आनन्द-भवन में राष्ट्रीय काँग्रेस की कार्यकारिणी समिति की बैठक हो रही थी, मैं भी घण्टों आनन्द-भवन के दरवाजे के चक्कर काटा करता था। इतना अच्छा मौका बार-बार तो मिलता नहीं। पं० जवाहरलाल जी के प्राइवेट सेक्रेटरी, श्री उपाध्याय, मुझे कुछ पहचान से गये थे। मैं उनके पास ही खड़ा था, उन्होंने बुलाकर नाटे कद की, दक्षिणी तर्ज की साड़ी धोती पहन एक महिला की तरफ़ इशारा करके मुझसे कहा—'इनके दस्तखत क्यों नहीं ले लेते?' इतना सुनते ही वे तो अन्दर चली गईं, और मैं उपाध्याय जी की तरफ़ देखने लगा। उन्होंने बताया, वे श्री रुक्मणी लक्ष्मीपति थीं। दो बार और प्रयास करने पर मुझे उनके हस्ताक्षर मिल गये। हस्ताक्षर देते वक्त उन्होंने मुझसे कहा—'मेरे हस्ताक्षर लेकर क्या करोगे, किसी बड़े आदमी के लो।' दो-चार मिनट उनके पास खड़े रह कर ही मैं उनको बड़ों की श्रेणी में रखने को तैयार हो गया। उनकी सादगी, सरलता और ज्यादा चर्चा में न आने की इच्छा ने मुझे उनमें श्रद्धा करने के लिये तैयार कर लिया।

श्रीमती जी आज मद्रास एसेम्बली के डिप्टी-स्पीकर के पद को सुशोभित कर रही हैं, और वे इस बात का जीता-जागता प्रमाण हैं कि अवसर मिलने से भारतीय स्त्रियाँ भी ऊँचे से ऊँचा काम कर सकती हैं। आपके जीवन पर एक दृष्टि डालने से मालूम होगा कि आपकी इतनी अधिक सर्वप्रियता का कारण आपकी सरलता, त्याग-शीलता, विशाल हृदयता,

और आपकी धुन है। आप महात्मा गाँधी और मद्रास-सरकार के प्रधान-मन्त्री, माननीय श्री राजगोपालाचार्य की सच्ची और दृढ़ अनुयायिनी हैं।

श्रीमती लक्ष्मीपति तैलगू ब्राह्मण घराने की महिला-रत्न हैं। आपके चाचा, श्री पट्टाभी रामाराव कोचीन-सरकार के दीवान थे और वे सदा अपने बच्चों को ऊँची से ऊँची शिक्षा दिलाने के पक्षपाती थे। इसीलिये उन्होंने श्री रुकमणी को भी उच्च शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध कर दिया। इसके पहले कि श्री रुकमणी ने अपनी कालेज-शिक्षा समाप्त की, उनकी शादी मद्रास के प्रसिद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक, डा० लक्ष्मीपति से हो गई। आप डाक्टर साहब की द्वितीय पत्नी हैं और आपकी सौतेली पुत्री भी योग्य डा० हैं। आपके भी कई सन्तान हैं। आपके पति आपको सदा ही हर तरह का प्रोत्साहन दिया करते है, कदाचित इसीलिये आप बी० ए० की डिग्री पाने वाली प्रथम आन्ध्र-प्रदेश-निवासिनी हैं।

आपको इतिहास और अङ्गरेजी साहित्य से विशेष प्रेम रहा है और इसीलिये आपको राजनीति की ओर आकृष्ट होते देर न लगी। आपने Women's Indian Association की सदस्या होकर स्त्रियों के लिये भारतीय एसेम्बलियों के चुनावों में वोट देने का अधिकार प्राप्त करने के लिये प्रबल और सफल आन्दोलन किया था। लाहौर-काँग्रेस के अवसर पर हुई स्त्री-महासभा की आप ही अध्यक्षा थीं। आप वीणा बजाने में प्रवीण हैं।

सन् १६२६ में आप भारतीय स्त्रियों की प्रतिनिधि होकर पेरिस में हुई International women's Sufferage Alliance में गई। यहाँ पर आपका परिचय अनेक स्वतन्त्र राष्ट्रों की स्त्रियों से हुआ, जिसका प्रभाव यह हुआ कि आप स्वतन्त्र भारत का स्वप्न देखने लगीं। वैसे तो आप यूरोप जाने के पहले ही कोई संकुचित विचारों की न थी, पर वहाँ से लौटने पर तो आप पीड़ितों और नीची श्रेणी वालों के लिये अत्यधिक उदार और सहानुभूति-पूर्ण हो गई। कहा जाता है कि आपका परिवार उन प्रथम ब्राह्मण परिवारों में से है, जिसने अपने गृहकार्य के लिये अछूत सेवकों की सेवायें स्वीकार कीं।

आप मद्रास की यूथलीग की मन्त्राणी और उसकी ओर से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्र की सम्पादिका भी रही हैं। १६२६ से आप काँग्रेस कार्य में जी जान से जुट गई हैं। आप नमक कानून तोड़ कर नमक बनाने के कारण एक साल के लिये कारावास का दण्ड पाने वाली प्रथम भारतीय महिला हैं। आप ही काँग्रेस की ओर से खड़ी होने वाली प्रथम महिला हैं, जिसे मद्रास लेजिस्लेटिव काउन्सिल के लिये चुना गया था। यह चुनाव अप्रेल १६३५ में हुआ था और आप भारी बहुमत से जीती थीं। आपकी इस विजय ने यह सिद्ध कर दिया था कि स्त्रियाँ भी, पुरुषों के समान ही, ऊँचे और जिम्मेदारी के पदों पर योग्यता से कार्य कर सकती हैं।

ऐसा लगता है कि श्री रुकमणी लक्ष्मीपति के हिस्से में सभी काम सर्वप्रथम करना पड़ा है, पर इस सबसे यह समझने की गलती न होना चाहिये कि आप कोई बहुत अधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व रखती हैं, या कोई चोटी की वक्ता हैं। जैसा मैंने कहा, आप चर्चा में आने से परहेज़-सा करती हैं। पर आपके विचार सुलझे हुए होते हैं, और उनको लोगों के सामने रखने का ढङ्ग भी आपका बहुत अच्छा होता है। इसीलिये ऐसी आशा की जा सकती है कि जब आप को भाषण देने ही पड़ेंगे, तब आप किसी से पीछे नहीं रहेंगी।

—राजेन्द्रशंकर भट्ट

* * *

कुरीतियाँ तथा भारतीय समाज में उनका स्थान

प्रायः हम देखते हैं कि भारतीय समाज कुरीतियों से भरा पड़ा है। कहीं भी हमें कोई सुरीति दृष्टिगोचर नहीं होती। जब कोई इसका सुधार करना

चाहता है तो उसके सामने ऐसे ऐसे विघ्न उपस्थित होते हैं कि उसकी बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है। कभी-कभी तो उसे अपनी सद् इच्छायें मन ही मन में दबा लेनी पड़ती है। भारतीय समाज तथा यहाँ के साम्प्रदायिक बन्धन हमारे बहुत से सुधारों को स्थान ही नहीं लेने देते। हममें से कुछ लोग जब अपना पद सुधारों की ओर बढ़ाते हैं तो उनके पीछे असख्यों आदमी पड़ जाते हैं। इस कारण कभी-कभी उन्हें अपनी सभी इच्छायें धूल में मिला देनी पड़ती है। इधर तो यह हालत है उधर ससार के दूसरे देश एक दूसरी ही ओर जाते हुये दृष्टिगोचर होते हैं। वे उन्नति के शिखर पर चढ़ रहे हैं। पर हमारा समाज आज अवनति के कूप में गिरा चला जा रहा है।

"यथा राजा तथा प्रजा" यह एक हिन्दी की प्रचलित कहावत है। अर्थात् जिस देश में जैसा राजा होगा वैसी ही वहाँ की प्रजा भी होगी। यदि राजा नेक, सदाचारी, बुद्धिमान है, यदि उसमें राज्य को सुचारु रूप में सञ्चालन करने की शक्ति है, तो निश्चय ही उसके राज्य की प्रजा नेक, सदाचारी और बुद्धिमान होगी। यदि वही राजा नीच, कुकर्मी और मूर्ख है, यदि उसमें राज्य-सञ्चालन की शक्ति नहीं है, तो वहाँ की प्रजा भी उसी रङ्ग में रञ्जित हो जाएगी। उसके राज्य के प्रत्येक खण्ड में उपद्रव मच जाएगा। राज्य विद्रोहियों का केन्द्र हो जायेगा और धीरे-धीरे राज्य विध्वस हो जायेगा।

इस प्रकार जब जैसे राजा हुये तब वैसी उनकी प्रजा हुई और वैसे ही कानून भी बने। जब राजा खराब हुए तो सभ्य प्रजा ने अपना हक कायम रखने के लिये, अपनी मान मर्यादा की रक्षा के लिये तथा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये कुछ ढङ्ग निकाले। वे ही ढङ्ग कुछ समय के बाद स्वभाव में परिणत हो गये। वे ही आदतें कई पीढ़ियों के बाद रीति-रिवाज के नाम से पुकारी जाने लगीं। आजकल के कानून ही जो हम अपने लिये बनाते हैं, आजकल के ही ढङ्ग जो हम अपनी रक्षा के लिये निकालते हैं, शायद हमारी आदत बन जायँ और हमारी आगामी इन्हे पुरान रीति-रिवाज कह कर पुकारने लगें।

अब सवाल यह उत्पन्न होता है कि क्या हमारे पुराने रीत-रिवाज बिल्कुल बुरे थे? अथवा क्या वे रीत-रिवाज बिलकुल बुरे हैं? हम कदापि ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि उनमें से कई तो अब भी जनता को अत्यन्त आवश्यक हैं तथा उनके बिना अब भी हमारी सभ्यता में धब्बा लग सकता है, पर सभी रीति-रिवाज हमारे लिये कदापि आवश्यक नहीं हैं।

जिस समय वे रीति-रिवाज बनाये गये थे, उस समय सचमुच उनकी बड़ी आवश्यकता थी। जिस प्रकार आजकल के प्रचलित किसी भी रीति-रिवाज को ले लीजिये। आप अपने समय में उसे समझते हैं कि वह रीति-रिवाज बहुत ही अच्छा है। कारण यह है कि आपको इस समय वे बहुत ही लाभदायक प्रतीत होते हैं। पर यह सम्भव है कि ऐसा समय आवे जब कि ये रिवाज उसके लिये उपयुक्त न हों और लोग कहने लगें कि ये रीत-रिवाज खराब हैं। यह भी सम्भव है कि उस समय भी कुछ लोग ऐसे हों जो कहने लगें कि हमारे पूर्वजों ने तो इसे बनाया है। ये खराब कैसे? यदि खराब होता तो वे बनाते ही क्यों? वे बेवकूफ नहीं थे, आदि। उस समय वे कितनी बड़ी गलती करेंगे तथा अपने सहबन्धुओं के उन्नति के मार्ग में किस प्रकार रोड़ा होंगे, आप स्वय सोच सकते हैं।

जिस समय रीति-रिवाज बने वह समय आजकल के समय से अवश्य बहुत भिन्न रहा होगा। संसार के परिवर्तन ने आपको इस सूरत में परिवर्तित कर दिया है। आज से कई हजार वर्ष पहले आदमी वृक्षों पर रहते थे, छाले पहनते थे। धीरे-धीरे उनको ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने लाभ के लिये अनेकों उपायों से काम लिया, जिसके कारण आज हम संसार को फले-फूले रूप में देखते हैं। बाल ही बनवाने को लीजिये। पहला मनुष्य जिसने बाल बनाने का आविष्कार किया होगा अवश्य जनता में उपहासास्पद हुआ होगा। पर जब उन्होंने देखा कि इससे हमें लाभ

है तो बाल बनवाना तथा बनाना रीति-रिवाज में दाखिल हो गये। और उसके बाद जो मनुष्य बाल बनवाना नहीं चाहता रहा होगा, अवश्य ही हँसी का पात्र बना रहा होगा। अतएव वही रीतियाँ जो एक समय सुरीतियाँ थीं तथा जिनकी उस समय एक बहुत बड़ी आवश्यकता थी, आजकल कलचक्र के कारण कुरीतियाँ मालूम होती हैं।

जब लोगों ने देखा कि ये कुरीतियाँ हमें अधिक हानि पहुँचा रही है, तो हम लोगों में से बहुतों ने उनको दूर करने का प्रयत्न किया। कुछ को तो वे आसानी से दूर कर सके, पर कुछ को तोड़ने में कई ऐसी रुकावटें पड़ जाती हैं कि उनका हटाना बड़ा कठिन है। आधुनिक बहुत सी कुरीतियों के दूर करने में हमें प्राय निम्नलिखित चार बड़ी रुकावटें मिलती हैं।

१—हमारी अज्ञानता तथा शिक्षा का अभाव २—हमारी साम्प्रदायिक तथा धार्मिक अन्धाधुन्धी। ३—पुरानी लकीर का फकीर होना। ४—हमारे पुरोहित महाराज।

भारत में जब से धीरे-धीरे विद्या का प्रचार बढ़ने लगा है, तब से लोगों को अपनी कुरीतियाँ दृष्टिगोचर होने लगीं। वे कुरीतियों के नष्ट करने में लग से गये। राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, रानडे, गोपालकृष्ण गोखले आदि देश के उद्धारक पैदा हुये। उन्होंने एक अद्भुत क्रान्ति देश में पैदा कर दी। आर्य-समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी ने लोगों को एक दूसरे ही ढाँचे में ढाल दिया। काँग्रेस ने लोगों की बुद्धि को बदल सा दिया। लोग अपनी बुराइयाँ समझने लगे हैं और अब उनके नाश करने में आगे बढ़ रहे हैं। अब लोग कुरीतियों को नाश कर रहे हैं, पर उपर्युक्त कारणों से कभी-कभी असफल भी हो रहे हैं।

—अम्बिकासिंह

में परस्पर विचार-विनिमय होने लगा। इस मार्ग में जो अनेकों महान बाधायें है, उन पर भली-भाँति विचार किया गया। अन्त में महात्मा जी ने कुछ ऐसे सिद्धान्त प्रकट किये, जो समग्र देश के लिये लागू हो सकते है। उनका साराश नीचे दिया जाता है —

(१) किसी न किसी राष्ट्रोपयोगी उद्योग को केन्द्र में रख कर ही सारी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।

(२) प्राथमिक शिक्षा को ही राष्ट्र की सर्वसामान्य और सम्पूर्ण शिक्षा का रूप दिया जाय।

(३) विद्यार्थियों के उद्योग से शिक्षकों के वेतन का खर्च निकालने का प्रयत्न किया जाय, अर्थात् उद्योग द्वारा अपनी पढ़ाई की गुरु दक्षिणा देने का मार्ग राष्ट्र के युवकों और युवतियों को सुझाया जाय।

(४) प्राथमिक शिक्षा का माध्यम शुरू से आखीर तक विद्यार्थी की मातृ-भाषा या प्रान्तीय भाषा ही रहे। इस प्राथमिक शिक्षा में अङ्गरेज़ी को कहीं भी स्थान न दिया जाय।

(५) प्राथमिक शिक्षा के अन्त में राष्ट्रभाषा हिन्दी, हिन्दुस्तानी नागरी या उर्दू लिपि के द्वारा अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाय।

(६) यदि पाठशाला में बनने वाली चीजें स्थानीय बाजार में न बिक सकें तो उन्हें उचित कीमत देकर खरीद लेने की ज़िम्मेदारी सरकार की मानी जाय।

(७) सरकार की दूसरी जिम्मेदारी यह हो कि जो नवयुवक प्राथमिक शिक्षा पूरी करके निकलें, उन्हें कम से कम १५) मासिक का काम वह दे।

महात्मा जी की उपर्युक्त योजना दो बातों को प्रधानतया दृष्टि में रख कर प्रस्तुत की गई है। प्रथम है हमारे देश की दरिद्रता और दूसरे शिक्षित नवयुवकों की बेकारी की समस्या। अगर इस देश की ३५ करोड़ की जनसंख्या को शिक्षित बनाने का भार पूर्णतया सरकार पर छोड़ दिया जाय और वह वर्तमान प्रणाली के अनुसार ही काम करती रहे तो इसकी पूर्ति किसी भी काल में हो सकनी, असम्भव सी है। इस देश की दरिद्र जनता के लिये टैक्सों का वर्तमान बोझा ही असह्नीय है, अगर उस पर शिक्षा विस्तार की इस नई व्यवस्था का बोझा भी डाल दिया जाय तो उसका कचूमर ही निकल जायगा। धनवान श्रेणी के लोगों पर टैक्स लगा सकने की थोड़ी बहुत गुंजायश अवश्य है और उससे काफी रुपया प्राप्त किया जा सकता है, पर इसमें भी दो बाधायें है। एक तो अभी तक लगाये गये कुछ टैक्स ऐसे अनीतिपूर्ण और देश के लिये घातक हैं कि उनका बन्द करना अनिवार्य है। उदाहरण के लिये शराब और अन्य नशे की चीजों के टैक्स का नाम लिया जा सकता है। अभी तक की सरकारी नीति के अनुसार इसी टैक्स की आय से शिक्षा का खर्च चलाया जाता था। कांग्रेस के प्रोग्राम में शराबख़ोरी और नशेबाज़ी को बन्द करने का प्रमुख स्थान है। इस प्रकार शिक्षा-प्रचार के लिये आय के वर्तमान साधन का समाप्त हो जाना बनी बनाई बात है और इस कमी को पूरी करने के लिये सरकार का कोई नया मार्ग ढूँढ़ना अनिवार्य है। दूसरी बाधा सरकार के सम्मुख यह भी है कि उसे और भी बहुसंख्यक सुधार-कार्यों को साथ ही साथ करना है, जैसे किसानों की दुरवस्था का सुधार, देश के स्वास्थ्य की सार्वजनिक रूप से उन्नति, मजदूरों की स्थिति को उच्च करना आदि। इसलिये अगर वह नये टैक्सों से कुछ धन प्राप्त कर भी सके, तो उसे सबका सब शिक्षा-विभाग में ही खर्च नहीं कर सकती।

इस अवस्था को हृदयगम करके महात्मा जी ने सब से अधिक जोर शिक्षा-प्रणाली के पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से स्वावलम्बी बनाने पर दिया है। उनका मत है कि जिस प्रकार प्राचीन भारत के गुरु लोग शिष्यों को निःशुल्क शिक्षा देते थे, अनेक समय उनको अपने पास से भोजन-वस्त्र भी देते थे और अपनी संस्था का सञ्चालन शिष्यों से शारीरिक श्रम कराके पूरा करते थे, वही प्रणाली सुधरे रूप में फिर से स्वीकार की जाय। प्राथमिक शिक्षालयों में विद्यार्थियों का कुछ समय साधारण पढ़ाई-लिखाई के लिये खर्च किया जाय और शेष समय में किसी उद्योग की शिक्षा के रूप में उनसे शारीरिक

श्रम कराया जाय। इस उपाय से दोहरा लाभ होगा, विद्यार्थीगण अपना व्यय स्वयम् उत्पन्न करके समाज और राज्य पर भार-स्वरूप न बनेंगे और साथ ही किसी विषय की ऐसी कार्यकरी शिक्षा प्राप्त कर लेंगे, जिससे शिक्षालय से निकलने के पश्चात् कम से कम अपना पेट भर सकने में समर्थ हो सकें।

ये ही दो मुख्य उद्देश्य महात्मा जी की शिक्षा-योजना के आधार हैं, और हम कह सकते हैं कि अगर इनको उपयुक्त व्यावहारिक विधि से कार्य रूप में परिणत किया जाय तो इससे देश का अमित उपकार हो सकता है। आलोचकगण इसमें बहुत सी त्रुटियाँ ढूँढ़ कर निकाल सकते हैं, वे कह सकते हैं कि इस मशीन के युग में इस तरह की हाथ की दस्तकारी व्यावसायिक दृष्टि से कैसे सफल हो सकती है? सीखने वाले विद्यार्थियों द्वारा बनाई गई मामूली दर्जे की चीजें अच्छे कारीगरों की चीजों के मुकाबले में बाज़ार में कैसे बिक सकती हैं? इस योजना को देश भर में सार्वजनिक रूप से प्रचलित करने का खर्च कहाँ से मिलेगा, आदि और भी बहुत सी कठिनाइयाँ इसमें बतलाई जा सकती हैं, तो भी हमको कहना पड़ता है कि वर्तमान स्थिति को देखते हुये इसके सिवा दूसरा मार्ग बतला सकना कदाचित् ही सम्भव हो। हम इसको मध्ययुग की चीज़ कह सकते हैं, आगे बढ़ने के बजाय पीछे की ओर लौटने के नाम से पुकार सकते हैं, पर इसके मुकाबले में अधिक व्यवहारिक और फलदायक प्रणाली बतला सकना कठिन ही नहीं, असम्भव सा है।

इस सम्बन्ध में एक बहुत ख़ास बात हमको यह भी ध्यान में रखनी चाहिये कि महात्मा जी ने यह शिक्षा-प्रणाली विशेष रूप से भारत के देहातों को दृष्टि में रख कर तैयार की है। क्योंकि शहरों में तो शिक्षा का प्रचार थोड़ा बहुत हो चुका है, और वैसे गाँवों की अपेक्षा उनका परिमाण भी कम है। इसलिये किसी सार्वजनिक कहलाने वाली प्रणाली में प्रथम स्थान यदि गाँवों को दिया जाय तो कुछ भी अनुचित नहीं। अगर हमारे गाँवों का सुधार नहीं होता, हम उनको किसी उपाय से शिक्षित नहीं बना सकते, तो हमारा देशोन्नति का प्रयास व्यर्थ का एक स्वप्न मात्र है। वर्तमान शिक्षा देहात की दृष्टि से कैसी निरर्थक है, इस सम्बन्ध में महात्मा जी का कथन है —

"मेरा ख्याल है कि आजकल देहाती मदरसों में लड़कों को जो कुछ पढ़ाया जाता है, उससे देहात वालों का नुकसान ही होता है। लड़के कुछ समय के लिये मदरसे जाते हैं, मगर वहाँ जाकर भी उन्हें असन्तोष रहता है। उनमें से अधिकतर या तो शहरी बन जाते हैं, या गाँव के प्रति अपना कर्तव्य भूल जाते हैं, और कुछ तो बदमाशी वगैरह भी सीख लेते हैं। इसलिये अपने अब तक के अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि हमारी मौजूदा प्रायमरी तालीम से गाँव वालों को कोई फायदा नहीं पहुँचता।"

आगे चलकर अपनी प्रस्तावित प्रणाली के स्वरूप के विषय में आपने इस प्रकार ख़ुलासा किया है:—

"तो सवाल होता है कि इस प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप क्या हो? मेरा जवाब यह है कि किसी उद्योग या दस्तकारी को बीच में रख कर उसके जरिये ही यह सारी शिक्षा दी जानी चाहिये। ....लड़कों को जो कुछ सिखाया जाय किसी उद्योग या दस्तकारी के जरिये ही सिखाया जाय। आप कह सकते हैं कि मध्ययुग में हमारे यहाँ लड़कों को सिर्फ धन्धे ही सिखाये जाते थे। मैं मानता हूँ। लेकिन इन दिनों धन्धों के जरिये सारी तालीम देने की बात लोगों के सामने न थी। धन्धा सिर्फ धन्धे के ख़याल से सिखाया जाता था। हम तो धन्धे या दस्तकारी की मदद से दिमाग को भी आला बनाना चाहते हैं। आज हालत यह है कि लुहार का लड़का लुहारी नहीं जानता और सुनार का सुनारी छोड़ बैठा है। उन्होंने किताबी तालीम तो पाई, पर अपने पेशे को भूल गये, उससे मुँह फेर लिया, अब गाँव छोड़ कर शहर में बसते हैं और मुहर्रिरी करते हैं। अगर वे पढ़-लिख कर भी अपने पुश्तैनी धन्धे को न छोड़ते और उनमें तरक्की करके दिखलाते, तो आज हिन्दुस्तान की जैसी बुरी हालत हो गई है, न हो पाती। आज देहात में कहीं भी चले जाइये, अच्छे बढ़ई, लुहार या कारीगर के दर्शन नहीं होते। मेरे जो साथी गाँवों में बैठ कर

काम कर रहे हैं, उनका भी यह तजरबा है कि वहाँ जो बढ़ई वगैरह हैं, वे अपने धन्धे के लिहाज़ से नाकामयाब से हैं। दूर क्यों जाइये, इस चर्खे को ही ले लीजिये, जो सारे हिन्दुस्तान में फैला हुआ था। मगर अङ्गरेज़ इसे इङ्गलैण्ड में ले गये और इतनी तरक्की कर दी कि बड़ी-बड़ी मिलें खड़ी हो गईं।"

अपनी उद्योग-धन्धे द्वारा शिक्षा देने की प्रणाली के सम्बन्ध में महात्मा जी ने तकली की मनोरञ्जक मिसाल पेश की है:—

"तकली को ही ले लीजिये। इस तकली का सबक हमारे विद्यार्थी का पहला सबक होगा, जिसके जरिये वह कपास का, लङ्काशायर का, और अङ्गरेजी सल्तनत का बहुत कुछ इतिहास सीख सकेगा। मैं ख़ुद भी यही कर रहा हूँ। मेरा पोता छः साल का है। वह लिखता तो बहुत मामूली है और लिखना मैं अभी उसके लिये जरूरी समझता भी नहीं, पर वह ज़्यादातर मेरे साथ हवाखोरी को जाता-आता है, और घर पर तकली चलाना भी सीखता है। इस तकली में आज उसे जो दिलचस्पी है और इसके जरिये वह जो इल्म हासिल कर रहा है, वैसा हमारे पुरखा शायद नहीं करते थे। यह तकली कैसे चलती है, इसका क्या उपयोग है और इसके अन्दर क्या-क्या ताकत भरी पड़ी है, सो सब खेल ही खेल में बालक जान लेता है। इसी के जरिये थोड़ा गणित का ज्ञान भी उसे मिल जाता है। क्योंकि तकली पर जो सूत वह कातता है, अगर उस सूत के तार उससे गिनवाये जायँ और पूछा जाय कि कितने तार कते तो धीमे-धीमे इसके अन्दर से उसे गणित का भी काफी ज्ञान कराया जा सकता है। और खूबी यह है कि उसके दिमाग पर इस सबका ज़रा भी बोझ नहीं पड़ता। सीखने वाले को तो पता भी नहीं चलता कि वह कुछ सीख रहा है। वह अपने आप खेलता-कूदता और गाता रहता है, तकली चलाता रहता है और इसी में बहुत कुछ सीख लेता है।"

जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, देश के शिक्षा-विशारद इस योजना को सर्वसम्मत से स्वीकार नहीं कर सकते। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। हमने आज तक शिक्षा-प्रणालियों के सम्बन्ध में जो कुछ सुना और सीखा है, यह उससे इतनी अधिक, अद्भुत और क्रान्तिकारी है कि हमारा चौंक पड़ना और तरह-तरह की शकायें करना स्वाभाविक ही है। इस सम्बन्ध में कुछ शंकाओं का ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। अन्य शंकाओं का साराश इन शब्दों में दिया जा सकता है:—

(१) इस योजना को हम कहाँ तक स्वावलम्बी कह सकते हैं?

(२) विद्यार्थियों के परिश्रम से सात साल में भी अध्यापकों का खर्च निकल सकता है या नहीं?

(३) जब देश के करोड़ों बालक एक आदर्श स्थिति में काम करेंगे तो देश के दूसरे कारीगर उनकी होड़ में कहाँ तक ठहर सकेंगे?

(४) मदरसों में तैयार होनेवाले माल को सरकार कहाँ तक खरीद सकेगी?

(५) बाज़ार भाव से ज़्यादा मज़दूरी देने की ताकत राज्य में कैसे आयेगी?

(६) किसी एक 'उद्योग' को बीच में रख कर शिक्षा के सब विषयों को उसके इर्द-गिर्द बैठाया जा सकेगा या नहीं?

(७) विद्यार्थियों की मजदूरी के साथ शिक्षक के वेतन को जोड़ देना कहाँ तक ठीक होगा?

(८) अगर अपना पूरा वेतन निकलवाने के लिए शिक्षक विद्यार्थी से सिर्फ मजदूरी ही मजदूरी कराये तो उसका प्रतिकार कैसे किया जा सकेगा?

(९) भूखे छात्रों से कोई काम नहीं लिया जा सकता। उनकी इस भूख का इलाज हम कहाँ तक कर सकेंगे?

(१०) सात वर्ष से छोटे बालकों को अर्थात् शिशुओं की शिक्षा का क्या प्रबन्ध किया जायेगा?

इस तरह के बहुत से ऐतराज़ और शङ्काएँ इस सम्बन्ध में लोगों ने प्रकट की हैं और कर रहे हैं। हम यह कहना नहीं चाहते कि वे सब निस्सार हैं अथवा उनके उठाने वाले अनजान व्यक्ति हैं। पर हम इतना

समझ सकते हैं कि हमारी वर्तमान स्थिति में कोई ऐसी प्रणाली व्यवहारिक नहीं हो सकती, जो विशेष तो क्या साधारण रूप से भी व्ययसाध्य है। इसलिये कुछ भी हो, हम यदि समस्त देश को थोड़े समय में शिक्षित बनाना चाहते हैं तो हमको किसी न किसी प्रकार की स्वावलम्बी शिक्षा का ही आश्रय लेना पड़ेगा। हमारे देश और विदेशों में भी ऐसी कुछ शिक्षा-संस्थाएँ आजकल चल रही हैं और पहले भी चलाई जा चुकी हैं। अन्तर इतना ही है कि वे एक छोटे रूप में थीं और यह प्रस्ताव इस प्रणाली को देशव्यापी तथा राष्ट्रीय रूप देने के लिये है। हम यह भी नहीं कहते कि प्रस्तावित प्रणाली में कोई भी सुधार या वृद्धि न की जाय। पर इसके मूल सिद्धान्त हमारे देश के लिये व्यवहारिक और तत्काल फलदायक हैं, ऐसा हमारा विश्वास है। भारत के परम मनीषी और शिक्षा-प्रचार के एकान्त भक्त वैज्ञानिक-प्रवर आचार्य प्रफुल्लचन्द राय ने भी इस योजना को इसी दृष्टि से देखा है। उन्होंने कहा था —

"स्कूलों और कॉलेजों की डिग्रियाँ तो आजकल नौकरी की पर्यायवाची बन गई हैं। एम० एस-सी० और पी० एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त करने के बाद भी हमारे नवयुवक आज बेकार घूम रहे हैं, उनकी विद्या का कोई उपयोग नहीं हो रहा है। फिर भी वे उपाधियों का मोह छोड़ नहीं सकते, क्योंकि अभी तक उनका ख़्याल है कि उपाधियों से उनका 'कैरियर' बनता है। लेकिन वे नहीं सोचते कि कितना गलत उनका यह ख़्याल है। राम्जे मैकडोनल्ड ने, जो बाद में इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री बने, किस विश्वविद्यालय की डिग्री पाई थी? बेचारे कोयले की खानों में काम करते थे। रूस का अधिनायक स्टैलिन मोची का काम करता था। जर्मनी के तानाशाह हिटलर ने कभी किसी यूनीवर्सिटी की देहली पर कदम नहीं रखा। बेचारा कूड़ा-कर्कट ढोया करता था। इस तरह दुनिया के बड़े से बड़े आदमी सब गरीबी से निकल कर अपने पुरुषार्थ और अपनी मेहनत से आगे बढ़े हैं। लेकिन हमारे नौजवान आज मेहनत मजदूरी से दिल चुराते हैं, काम को वे अपनी शान से हलका समझते हैं। ..हमारे नवयुवकों की इस सुकुमारता का परिणाम उनके स्वास्थ्य पर भी हो रहा है। बेकारी अलग से सवार है। पेट कैसे पाला जाय, यह भी एक विकट समस्या है।"

निस्सन्देह महात्मा जी ने जो प्रणाली स्थिर की है, वह हमारे देश के लिये कल्याणजनक है। चाहे हममें से कुछ उसे नापसन्द करें या अन्य मुल्कों के मुकाबले में घटिया दर्जे की समझें, पर अपनी परिस्थिति से विवश होकर हमको उसके अनुसार ही चलना पड़ेगा। अन्त में एक बात स्मरण रखनी आवश्यक है कि महात्मा जी ने उक्त योजना प्राथमिक शिक्षा को दृष्टिगोचर रखकर ही तैयार की है। ऊँचे कामों के लिये—जैसे इञ्जिनियर, डॉक्टर, यन्त्र-विद्या-विशारद, वैज्ञानिक—देश को कुछ कॉलेज में शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होगी और उसकी व्यवस्था पृथक् से की जायगी।

पाठकों की चिट्ठियाँ

१

श्रीमती सम्पादिका जी,

आप अपने प्रसिद्ध पत्र 'चाँद' में सदैव दीन-दुखी स्त्री-पुरुषों के पत्र छाप कर तथा उन्हे सद्‌परामर्श देकर सान्त्वना प्रदान किया करती हैं। इसी कारण मैं भी यह पत्र आपकी सेवा में भेज रहा हूँ। आशा है, आप इसे स्थान देने की कृपा करेंगी।

इस पत्र के द्वारा मैं आपको सरयूपारीण ब्राह्मण-समाज की एक अबोध बालिका की दयनीय तथा हृदय-वेधक कहानी सुनाना चाहता हूँ। इस लड़की के माता-पिता ....जिले के रहने वाले हैं। इसका विवाह हो चुका है। परन्तु गौना नहीं हुआ। विवाह के कुछ समय पश्चात् जब लड़की वयस्क हुई और उसके गौने का समय आया, तो गाँव के कुछ दुश्मनों ने झूठ-मूठ ही लड़की की आचरण सम्बन्धी बुराई करना शुरू किया। उन्होंने उसे चारों तरफ़ बदनाम कर दिया और यहाँ तक कि लड़की की ससुराल वालों को भी इसकी खबर कर दी। बदनामी की बात सुन कर ससुराल वालों ने लड़की को अपने यहाँ ले जाने से साफ इनकार कर दिया। यद्यपि उन्हे बहुत कुछ समझाया बुझाया गया और लड़की का निर्दोष होना सिद्ध किया गया, परन्तु उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। परिणाम यह हुआ कि ससुराल वालों के त्याग देने के कारण अब लड़की के पिता ने भी उसे अपने घर से निकाल दिया है। वास्तव में लड़की बिलकुल निरपराध तथा निर्दोष है। व्यर्थ ही में दुश्मनों के बदनामी फैला देने के कारण, उसके ऊपर यह भीषण अत्याचार किया गया है। आज जब सब जातियाँ उन्नति की ओर बढ़ रही हैं, तब हमारे सरयूपारीण ब्राह्मण समाज की यह दशा है!

अब प्रश्न है लड़की के जीवन का। माता-पिता से बहिष्कृत कर दिये जाने पर वह एक प्रतिष्ठित सज्जन के यहाँ रहती है, जो कि अपनी पुत्री की भाँति उसका भरण-पोषण कर रहे हैं। यदि सरयूपारीण ब्राह्मण समाज का कोई स्वावलम्बी, सुशिक्षित तथा उदार युवक साहसपूर्वक इस लड़की को अपना कर, उसका जीवन सुधार सके तो उसकी बड़ी कृपा होगी। लड़की भी इसके लिए तैयार है। उसकी आयु इस समय १५ वर्ष सुन्दर, स्वस्थ तथा सुशील है। जो सज्जन इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार करना चाहें, उन्हें पूरे विवरण के साथ "श्री० द्विवेदी, c/o चाँद प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद" के पते से पत्र भेजना चाहिये।

—एक सरयूपारी

❀ ❀ ❀

२

श्रीमती सम्पादिका जी, नमस्ते!

आपके 'चाँद' में बहुत से पाठक पत्र द्वारा अपने हृदय के उद्‌गार प्रगट किया करते हैं और आप उन्हें यथोचित उत्तर देकर सान्त्वना प्रदान किया करती हैं। इसलिये मैं भी यह पत्र सेवा में भेजती हूँ, आशा है, आप मेरी त्रुटियों को न ख़्याल कर इसे छाप कर उचित राय देंगी।

मैं केशरबानी वैश्य जाति की लड़की हूँ। जब मैं ६ साल की थी, तभी मेरी माता का स्वर्गवास हो गया। मेरे पिता मेरी कुछ देख भाल न करते थे, क्योंकि वे अपने शहर के मशहूर गुण्डों तथा शराबियों में से थे। इस बुरी बात के कारण वे जल्दी ही प्रकृति के शिकार हुये। इस तरह मैं बचपन में असहाय हो गई। पिता की मृत्यु के बाद चाचा मेरी देख-भाल करने लगे। तेरह साल की उम्र में मै एक आर्य युवक के शुद्ध प्रेम में पड़ गई। उस युवक ने मेरे बाबा से मुझसे शादी करने की इच्छा जाहिर की, किन्तु उसको फटकार सुननी पड़ी। इस बात से मुझे बड़ा रंज हुआ, खास कर यह सुन कर कि मेरी शादी एक वृद्ध महाशय से होने वाली है। इस तरह १४ साल की उम्र में मेरी शादी ४८ साल के वृद्ध के साथ मेरे बाबा और चाचा ने, जिन्हें २५० रु० मास की आमदनी सिर्फ मकान किराये की है, रुपयों के लोभ से वृद्ध महाशय से २१०० रुपये लेकर जबरदस्ती कर दी। यह वृद्ध देहात के रहनेवाले हैं, शहर में रोजगार करते हैं। जब मैं इनके घर पर आई तब घर में इनके सिवा और कोई स्त्री-पुरुष नहीं था। मैंने इन्हें बहुतेरा समझाने की कोशिश की, कि हिन्दू बालिका एक दफ़े वर चुनती है, जिसे मैं चुन चुकी हूँ। आप मेरे पिता तुल्य हैं, मुझ पर अत्याचार न करें। किन्तु इन्होंने कुछ भी न माना और अपनी इच्छाओं की दासी समझ कर मुझ पर मनमाना अत्याचार किया, जिसके कारण मुझे बहुत से रोग हो गये हैं। यह महाशय कट्टर सनातनधर्मी हैं। मैं इनके अत्याचारों को दुखित हृदय से सहती आती हूँ। मेरा स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता जाता है। अगर मेरा छुटकारा इन वृद्ध महाशय से न हुआ तो वह दिन बहुत दूर नहीं है कि मेरा अन्त हो जावेगा।

—समाज की ठुकरायी हुई एक दुखिया





[संग्रहकर्ता—"बिस्मिल" इलाहाबादी]

मुझको निदाएँ[1] आती हैं कुछ माँगता नहीं,
अल्लाह का है घर, किसी मुहताज का नहीं।
पहले तो पूछता था ज़माना हमारी बात,
अब है यह हाल कोई हमें पूछता नहीं।

* * *

तमाम उम्र बसर यूँ ही जिन्दगी होगी,
ख़ुशी में रंज, कहीं रंज में ख़ुशी होगी।
किसी की सई[2] से मिलता है फल किसी को कभी,
कोई नसीब से खाता है, कोई बोता है।

* * *

न करते ही बन आती है न रखते ही बन आती है,
हमारे दिल ही दिल में फिर रही हैं आरज़ू क्या-क्या।

—'दाग़' देहलवी

* * *

अगर नहीं मिला मिलने का आसरा तो है,
हमें इसी में है तस्कीने[3] दिल ख़ुदा तो है।
अजल[4] को देख के ज़ेरे फलक[5] करार आया,
मुसीबतों की बिलाखिर एक इन्तहा तो है।

* * *

दिन गुज़रते ही चले जाते हैं,
लोग मरते ही चले जाते हैं।
जानते हैं कि यह गफ़लत के हैं काम,
फिर भी करते ही चले जाते हैं।

* * *

हँस के दुनिया में मरा कोई, कोई रोके मरा,
ज़िन्दगी पाई मगर उसने, जो कुछ हो के मरा।
जी उठा मरने से वह जिसकी ख़ुदा पर थी नज़र,
जिसने दुनिया ही को पाया था वह सब खो के मरा।

—'अकबर' इलाहाबादी

* * *

क्या रञ्ज जहाँ में हो रहे हैं,
दो हँसते हैं चार रो रहे हैं।
पहुँची है हमारी अब यह हालत,
जो हँसते थे वह भी रो रहे हैं।

* * *

रोएँगे हमें रुलाने वाले,
डूबेंगे वह जो डुबो रहे है।
दुनिया का यह रञ्ज और हमको,
कुछ होश नहीं है, सो रहे है।

—'अमीर' लखनवी

* *

यह इज्ज़त कोई कम है शेख़ साहब जिसपे मरते हैं
'कलक्टर' भी जब उनसे मिलते हैं 'शेकहैंड' करते हैं।

* * *

पढ़के अङ्गरेज़ी दिमाग उसका फलक[6] पर हो गया
जानता है ख़ुद को बावरची कि 'बटलर' हो गया।
अगर गोरे का हमसर[7] एक काला हो नहीं सकता
तो ज़ाहिर है कि इन्साफ़ आदमी का हो नहीं सकता

१—आकाशवाणी, २—कोशिश, ३—तसल्ली, ४—मौत, ५—आकाश के नीचे।

६—आकाश, ७—बराबर,

हमें इन मदरसों से जो मिलेगा हम समझते हैं,
मगर यह है तुम्हें कुर्सियों का ट्टा हो नहीं सकता।

* * *

साहब बहादुरों से बहुत भागता है दिल
सब इसको 'डैम फूल' का खूसर[८] बनाएँगे
तहजीब[९] मग़रबी[१०] का इशारा यह मुझसे है
हम आदमी से अब तुझे बन्दर बनाएँगे

—'अहमक' फफूँदवी

* * *

शरारे[११] आह से उड़ते हैं जब आँसू निकलते हैं,
इधर बरसात होती है, उधर जुगनू निकलते हैं।
बजाओ तालियाँ हमसे नई तहजीब कहती है,
जहाँ 'स्पीच' देने रात को उल्लू निकलते हैं!

—'ज़रीफ़' लखनवी

* * *

हक़ शिनासी नाम उसी का है कि दिल भर आए जब
दैर[१२] को बर्बाद या मसजिद को वीराँ देखिए।

—'शफ़ी' लखनवी

* * *

दिल को तड़पाती है आकर आशियाँ[१३] की याद भी
क्या कफ़स[१४] में आके फिर सूए गुलिस्ताँ[१५] देखिए।

—'तबीब' इलाहाबादी

८—आदी, ९—सभ्यता, १०—पश्चिमी, ११—चिनगारियाँ, १२—मन्दिर, १३—घोंसला, १४—पिञ्जड़ा, १५—बाग की तरफ़,

तुझे जिसने कुछ समझा उसी पर बेखुदी छाई
करिश्मा[१६] है तेरा हर बाख़बर को बेख़बर करना।
वह इन बातों को क्या जानें कि यह सब किसको कहते हैं
ख़बर लेना, ख़बर देना, ख़बर रखना, ख़बर करना

* * *

मिटता नहीं नसीब का लिखा मिटाने से
होगा जो होने को है जो होने को था हुआ।

* * *

ज़माने से निराले तुम ज़माने में नज़र आए
नहीं तो साथ देता है ज़माना भी ज़माने का।

—'कुशता' गयावी

* * *

अहले बातिन[१७] की निगाहों से तो मस्तूर[१८] नहीं
वह रगे जाँ से भी नज़दीक है कुछ दूर नहीं।
मैं हमेशा रहूँ दुनिया का यह दस्तूर नहीं
ऐसा जीना है, तो जीना मुझे मञ्ज़ूर नहीं।
क़ाबिले क़द्र ज़माने में है उसकी हस्ती[१९]
अपनी हसतिये दो रोज़ा पे जो मग़रूर नहीं।
सबको हसरत है कि मिल जाय हयाते अबदी[२०]
आपके हाथ से मरना किसे मञ्ज़ूर नहीं।
हज़रते 'नूह' ने 'बिस्मिल' को बनाया शायर
कौन कहता है ज़माने में यह मशहूर नहीं।

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

१६—तमाशा, १७—देखने वाले, १८—छुपा हुआ, १९—जीवन, २०—अमर होना।

गृह-विज्ञान

स्त्री-शिक्षा कैसी हो ?

इस समय हमारे देश में स्त्री-शिक्षा के अधिकाधिक प्रचार की माँग बड़े ज़ोरों से उठायी गई है। क्या पुराने और क्या नये, सभी तरह के विचार वालों ने इसकी आवश्यकता और उपयोगिता को स्वीकार कर लिया है। अब ऐसे लोग, जो सर्वथा स्त्री-शिक्षा का विरोध करते हैं और उसे एकदम त्याज्य अथवा हानिकारक बतलाने का साहस करते हैं, ढूँढ़ने पर भी कठिनता से मिलेंगे।

पर जितना ही अधिक लोग स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं, उतना ही अधिक इस विषय में मतभेद बढ़ता जाता है कि यह शिक्षा किस प्रकार की हो। सच पूछा जाय तो अभी तक लोग इस विषय में किसी निर्णय पर पहुँच ही नहीं सके है और एक विचित्र प्रकार की उलझन में पड़े हैं। इसका मुख्य कारण योरोपियन और अमरीकन महिलाओं के सम्बन्ध में हमारी धारणा है। एक तरफ हम उन देशों को संसार का अगुआ, समृद्धिशाली और उन्नति की चोटी पर विराजमान देखते है, जिससे हमको यह अभिलाषा होती है कि हम भी उनका अनुकरण करें। दूसरी तरफ उनके यहाँ पाये जाने वाले, कम से कम हमारे विचारानुसार सामाजिक दोषों पर दृष्टि जाती है और हम डरने लगते हैं कि स्त्री-शिक्षा के प्रभाव से कहीं हमारे देश की भी ऐसी गति न हो। इस तरह हम यह निश्चय नहीं कर पाते कि हम इस विषय में पश्चिमीय देशों के अनुभव के आधार पर आगे बढ़े अथवा अपने लिए कोई स्वतंत्र मार्ग ही खोज निकालें।

पाठकों को शायद यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह समस्या केवल हमारे ही देश में नहीं है। जापान, चीन, ईरान आदि और भी अनेक देशों की ऐसी ही स्थिति है। जापान के विद्वानों ने कुछ समय पहले इस विषय में काफी विचार और जाँच-पड़ताल की थी। वहाँ की महिला यूनीवर्सिटी के निर्माताओं ने आरम्भ में जो घोषणा की थी उससे इस अवस्था का पूरा आभास मिलता है। उसका एक अश नीचे दिया जाता है।

"न तो हमारा उद्देश्य अमेरिका और योरोप की उच्च शिक्षा-संस्थाओं की नकल करना है और न अपने देश की पुरुषों की यूनीवर्सिटियों का मुकाबला करना। हमारा उद्देश्य ऐसा पाठ्य-क्रम प्रस्तुत करना है जो वर्तमान काल में स्त्रियों की मानसिक और शारीरिक दशा के अनुकूल हो। इससे उनकी उन्नति होगी और धीरे-धीरे उनका दर्जा भी ऊँचा हो जायगा।

बहुतेरे लोग स्त्री को केवल घर का काम करने वाली अथवा वंश-परम्परा को स्थिर रखने वाली एक मशीन अथवा यन्त्र ही समझते हैं। इस प्रकार की अनुचित भावना के विरुद्ध हम स्त्रियों को मनुष्यों के समान शिक्षा देने की आवश्यकता अनुभव करते हैं, जिससे उनमें भी अपने व्यक्तित्व की भावना जागृत हो।

पर हम उस आन्दोलन का समर्थन कर सकने में असमर्थ है, जो आजकल स्त्रियों के उद्धार के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बजाय हम इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि स्त्रियों के जीवन का प्रमुख अङ्ग गृहस्थ-आश्रम ही है। वही पत्नी और माता के रूप में उनका उपयुक्त स्थान है। यह सच है कि घर में स्त्रियों को एक यन्त्र अथवा

अलङ्कार सदृश नहीं समझा जा सकता। उसे मानवीय और राष्ट्रीय भावना से युक्त समझना चाहिये। हमारा उद्देश्य स्त्रियों को इस प्रकार की शिक्षा देना है, जिससे वे अपने को जापानी-साम्राज्य की स्वतन्त्र सदस्य समझें और इस रूप में अपने जीवन का एक विशेष उद्देश्य अनुभव करें। ऐसा होने से वे अपने पत्नी और माता के कर्तव्यों का अधिक उत्तम रीति से पालन कर सकेंगी।

पर इसके साथ ही हमको यह भी समझना आवश्यक है कि कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी अवश्य होंगी, जो अनेक कारणों से अविवाहित ही रह जायँगी। इनके लिये हमको ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि अपने जीवन के उद्देश्य को समझ सकें और अपनी शक्ति का अपनी रुचि के अनुकूल उपयोग कर सकें। हमको उनके कार्यक्षेत्र को वैध मानना होगा। उनका जीवन भी राष्ट्र और समाज के लिये महत्वपूर्ण है।"

उपर्युक्त यूनीवर्सिटी के निर्माताओं की सम्मति अधिकांश में भारत पर भी लागू हो सकती है। यद्यपि जापान आज राजनैतिक दृष्टि से पश्चिमीय राष्ट्रों की समानता कर रहा है, पर सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से अब भी वह एक पूर्वीय देश ही कहा जा सकता है। यह तो स्पष्ट ही है कि पश्चिमीय स्त्री-शिक्षा प्रणाली में सद्गुणों के साथ अनेक त्रुटियाँ भी हैं, जो हमारी सामाजिक अवस्था की दृष्टि से अव्यवहार्य हैं। इसके सिवा यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भिन्न-भिन्न देशों की शिक्षा-प्रणाली पर देश-काल का प्रभाव पड़ना भी अनिवार्य है। योरोप और अमरीका वालों की कुछ बातें प्राकृतिक रूप से हमसे भिन्न हैं और इसलिये हमारी और उनकी आवश्यकताओं में भेद होना भी स्वाभाविक है। इसलिये हमको किसी के पीछे पड़ कर अपनी जातीय विशेषताओं को भी खो देना बुद्धिमानी न होगी। ऐसा करने से हम न इधर के रहेंगे न उधर के। हमारा कल्याण इसी में है कि हम पक्षपात-शून्य होकर नये और पुराने का ख़्याल छोड़ कर अपनी वर्तमान स्थिति और देश-काल का ख़्याल रखते हुये अपने लिये उपयुक्त शिक्षा-प्रणाली का निर्माण स्वयं ही करें।

—एन० जी०

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास ने निम्न-लिखित दो पुस्तकें समालोचनार्थ भेजी हैं :—

(१) चुने हुये फूल—पृ० सं० १०३, मूल्य ॥)

(२) सच्ची कहानियाँ—पृ० सं० १०३, मूल्य ।≈)

पहली पुस्तक में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवियों की १६ कविताओं का संग्रह है। कुछ उर्दू कवितायें और कबीर, तुलसी आदि के कुछ दोहे भी संग्रह किये गये हैं। पुस्तक दक्षिण के विद्यार्थियों के उपयोग के लिये प्रस्तुत की गई है। दूसरी पुस्तक में विभिन्न पुस्तकों से ऐतिहासिक घटनायें एकत्रित की गई हैं। भाषा की दृष्टि से सब कहानियाँ अत्यन्त सरल चुनी गई हैं, और जहाँ पर मूल में कुछ स्थल कठिन थे, उनको सुगम कर दिया गया है।

हिन्दी शिक्षण विधि—लेखक, श्री० जम्मुनाथन, अध्यापक मैसूर विश्वविद्यालय, प्रकाशक एम० वि० शेषाद्रि एण्ड कम्पनी, वलेपेठ, बेङ्गलोर सिटी, पृ० सं० २८, मूल्य ≡)

Modern Girls Guide to Home making—लेखिका, श्रीमती फ्रेडावेदी, प्रकाशक, माडर्न गर्ल्स कार्यालय, मोहिनी रोड, लाहौर, पृ० सं० १५०, मूल्य ३)

इस पुस्तक में पश्चिमीय गृह-व्यवस्था का वर्णन भारतीय नवयुवतियों के दृष्टिकोण से किया गया है। इस कार्य के लिये इस पुस्तक की लेखिका सर्वथा उपयुक्त है। वह जन्म से योरोपियन हैं, पर इस समय एक भारतीय से विवाह करके इस देश के अनुकूल रहन-सहन रखती हैं। इसलिये उन्होंने उन्हीं पश्चिमीय बातों को इस पुस्तक में सन्निवेशित किया है, जो यहाँ के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। पुस्तक के पहले भाग में घर की सजावट का वर्णन किया गया है। दूसरे में स्वच्छता और सफाई के सम्बन्ध में तथा अन्य उपयोगी बातों के विषय में उपयोगी बातें बतलाई गई हैं, तीसरे में भोजन के सम्बन्ध में आवश्यक बातों को समझाया गया है। प्रत्येक विषय चित्रों द्वारा समझाया गया है, जिससे पुस्तक की रोचकता और उपयोगिता बढ़ गई है।

धन्यवाद—लेखक, बाबू चन्द्रिकाप्रसाद वर्मा, प्रकाशक, आदर्श पुस्तक एजेन्सी ७ चितपुर रपर, कलकत्ता, पृ० सं०, १६५ मूल्य १।)

इसमें लेखक की दस कहानियों का संग्रह है, जो प्रायः सभी सामाजिक विषयों पर हैं। 'कहानी का कहानी' शीर्षक में कहानी-कला का विवेचन किया गया है, उसे इन कहानियों में रखकर संग्रहकार ने अपनी अद्भुत रुचि का परिचय दिया है।



स्वरकार—
प्रो० एस० डी० आपटे
सङ्गीत-प्रवीण

खमाज—तीनताल

शब्दकार—
श्री सूरदास

इस राग मे दो निषाद और आरोह मे रिषभ वर्जित है। वादी—गंधार, संवादी—निषाद। जाति—षाडव सपूर्ण, समय—रात का दूसरा प्रहर।

आरोहावरोह

सा ग म प ध नी सा। सा नि॒ ध प म ग री सा।

पकड़

गमपधनि॒ध, मपध, मग।

गीत

सब जग तजे प्रेम के नाते।
चातक स्वाति बूँद नहिं छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते॥
समुझत मीन नीर की बातैं, तजत प्रान हठि हारत।
जानि कुरंग प्रेम नहिं त्यागत, जदपि व्याध सर मारत॥
निमिष चकोर नैन नहि लावत, ससि जोवत जुग बीते।
ज्योति पतङ्ग देखि बपु जारत, भये न प्रेम-घट रीते॥
कहि अलि, क्यो बिसरति बातैं, सङ्ग जो करि ब्रजराजैं।
कैसे सूर श्याम हमैं छाँड़ैं, एक देह के काजैं॥

स्थायी

प	ध	सा	नी	ध	प	ध	म	ग	म	प	ध	पध	सांनी	ध	—
स	ब	ज	ग	त	जे	ऽ	प्रे	ऽ	म	के	ऽ	नाऽ	ऽऽ	ते	ऽ
२				०				३				×			

—	—	—	—	म	नी	ध	नी	प	ध	म	ग	—	म	ग	म
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	चा	ऽ	त	क	स्वा	ऽ	ति	बूँ	ऽ	द	न	हि
२				०				३				×			

री	ग	नी	सा	सा	म	ग	म	प	ध	नी	सां	नीसा	रींसा	धनी	पध
छा	ऽ	इ	त	प्र	ग	ट	पु	का	ऽ	र	त	ताऽ	ऽऽ	तेऽ	ऽऽ
—२				०				३				×			

अन्तरा

												ध			
म	म	ध	नी	सा	—	सा	नी	—	नी	सां	—	सा	नी	ध	—
स	मु	झ	त	मी	ऽ	न	नी	ऽ	र	की	ऽ	बा	ऽ	तैं	ऽ
०				३				×				२			

ध	नी	ध	प	ध	म	ग	म	गम	पध	नीसा	नी	सा	—	—	—
त	ज	त	प्रा	ऽ	न	ह	ठीं	हाऽ	ऽऽ	ऽऽ	र	त	ऽ	ऽ	ऽ
०				३				×				२			

													रीं		
सां	मं	गं	मं	रीं	गं	सां	नी	—	नी	सां	रीं	नी	सां	नी	ध
जा	ऽ	नि	कु	र	ऽ	ग	प्रे	ऽ	म	न	हि	त्या	ऽ	ग	त
०				३				×				२			

सां	नी	ध	नी	ध	प	ग	म	गम	पध	नीसा	नीध	प	ध	मा	नी
ज	द	पि	व्या	ऽ	ध	स	र	माऽ	ऽऽ	रऽ	तऽ	स	व	ज	ग
०				३				×				२			

तानें

(१) स	ब	ज	ग	त	जे	ऽ	ऽ	साग	मप	गम	पध	नीध	पम	गरी	सा
२				०				३				×			
(२) ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	गम	पध	नीध	पध	सांनी	धप	मग	रीसा
२				०				३				×			
(३) ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	गम	पध	नीसा	नीध	पम	धप	मग	रीसा
२				०				३				×			
(४) ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	सांनी	धप	मग	नीध	पम	धप	मग	रीसा
२				०				३				×			
(५) ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	साग	मप	धप	मग	गम	पध	नीध	पम	सांनी	धप	मग	रीसा
२				०				३				×			
(६) ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	सांग	मंग	रीसां	नीध	पम	गम	पध	नीध	सांनी	धप	मग	रीसा
२				०				३				×			



वातायन

कुत्ते ने बच्चे की जान बचाई

उन्नाव में एक कुत्ते के भूँकने से ६ महीने का एक बच्चा एक बन्दर के हाथ से बच गया। माता बच्चे को घर के बरामदे में छोड़ कर उसे नहलाने का टब लाने नीचे गयी। घर का कुत्ता वहाँ बैठा था। इतने में एक बड़ा बन्दर वहाँ आया और बच्चे को उठा ले जाना चाहा। कुत्ते ने बन्दर की पूँछ में काटा, मगर बन्दर के पञ्जा मारने से वह दूर हट गया और वहीं से भूकने लगा। इस पर माता दौड़ी हुई आई और बच्चा बच गया।

*　　　*　　　*

तलाक का अधिकार मुसलमान स्त्रियों को हो

लखनऊ में बुधवार की शाम को अमीनाबाद के जनाना पार्क में मुसलमान स्त्रियों की एक बड़ी सभा हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि मुसलमान स्त्रियों को 'खाबी' (तलाक) का अधिकार हो जाना चाहिये और इसके लिये एक कानून बनना चाहिये। यह सभा अंजुमने इत्तिहाद मुसलमीन के उद्योग से हुई थी और बेगम ए० हाफ़िज ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया था।

*　　　*　　　*

विज्ञान के करिश्मे

लन्दन का समाचार है कि भविष्य में रोगी के विषाक्त पैर को काट कर अच्छा कर पुनः रोगी के शरीर में सिलाई कर देना कठिन न होगा। विश्वविख्यात उड़ाके कर्नल लिंडबर्ग तथा फ्रेञ्च वैज्ञानिक डॉक्टर अलेक्सिस केरल वर्षों से इस सम्बन्ध में अनुसन्धान कर रहे थे। उनके सफल होने में विशेष विलम्ब नहीं मालूम होता है। कर्नल लिंडबर्ग के कृत्रिम हृदय ने इस अनुसन्धान में बहुत सहायता दी है। लिंडबर्ग से भेंट होने से वर्षों पूर्व डाक्टर केरल पशुओं तथा मनुष्यों की पेशियों को शरीर से पृथक् रख रक्त द्वारा प्रस्तुत तरल खाद्य द्वारा पोषण कर रहे थे।

*　　　*　　　*

बालक गड्ढे में फेंका गया

झरिया में एक अति कौतूहलपूर्ण घटना हो गयी है। बारह वर्ष का एक बालक उठा कर बहुत दूर तक ले जाया गया और बाद में कोयले की एक पुरानी खान में फेंक दिया गया। गत सोमवार के सवेरे बलिहारी खान के कर्मचारी का बालक हाथ-मुँह धोने के लिये तालाब के निकट गया था। अचानक दो व्यक्ति जो काले कलूटे प्रतीत होते थे, पीछे से निकल आये। बालक की आँखें बाँध दी गयीं और उसे उठा कर लगभग पौन मील के फ़ासले पर ८० फ़ीट गहरी एक खान में फेंक दिया गया।

साधारण जनता की धारणा है कि यह भूतों की करतूत है।

*　　　*　　　*

साठ व्यक्ति डूबे

चौबीस परगना के बरुल गाँव के पास हुगली नदी में एक नाव के उलट जाने से ६० व्यक्ति डूब कर मर गये, जिनमें कितने ही स्त्रियाँ और बच्चे थे। नाव में करीब १०० व्यक्ति सवार होकर नदी को पार कर रहे थे कि बीच में ही तूफान आ जाने से यह दुर्घटना हुई।

*　　　*　　　*

सरकारी कर्मचारियों की पोशाक

बिहार असेम्बली में प्रश्नोत्तर के समय श्रीकृष्ण-बल्लभ सहाय ने सूचित किया कि दफ्तरों में कुर्त्ता और धोती पहनकर आने का निषेध नहीं है। किन्तु यह उत्सव की पोशाक नहीं है, अर्थात् समारोहों के अवसर पर पहनने के लिये निर्दिष्ट पोशाकों में से यह नहीं है। सरकारी अफ़सरों को गवर्नर द्वारा निर्दिष्ट समारोह पोशाक सम्राट के प्रतिनिधि की हैसियत से पहननी होती है, स्थानीय सरकार के रूप में नहीं। जो अफसर इसके अधिकारी नहीं हैं, उनसे आशा की जाती है कि वे सफेद अथवा काले पाजामे पर काली अचकन पहनेंगे और शिर पर चोगा या झब्बा धारण करेंगे।

* * *

२६ इञ्च का बौना

नाहन (पञ्जाब) के एक बाज़ार में एक दूकानदार के रूप में एक बालखिल्य ढूँढ निकाला गया है। इस दूकानदार की आयु लगभग ३२ साल है और क़द केवल २ फीट २ इंच। वह अपने इस बौने शरीर को ईश्वर की देन और अपना सौभाग्य समझता है, क्योंकि उसको देखने ही के लिये एक बहुत बड़ी भीड़ लगी रहती और इससे उसका व्यापार बहुत जोरों पर चल रहा है। वह अभी अविवाहित है और अपने जैसी बौनी स्त्री ढूँढ कर उससे शादी कर लेने की उसे आशा है।

* * *

ईरान मे जवाहरात का खजाना

कुछ समय पूर्व ईरान से खबर मिली थी कि वहाँ के बादशाह रजाशाह पहलवी उन जवाहरातों को बेंच डालेंगे, जो उनके पास निकले हुये पड़े हैं और उनकी बिक्री से प्राप्त धन का उपयोग राष्ट्र-निर्माण में करेंगे। ईरान के शाह के पास जवाहरातों का संसार में सब से बड़ा खज़ाना बतलाया जाता है। ईरान के भूतपूर्व शाह मुजफ्फरउद्दीन जब यूरोप गये थे, तो लन्दन के एक मशहूर जौहरी ने उनकी पोशाक को देख कर कहा था कि यदि यह पोशाक ८ लाख गिन्नियों में भी बेची जाय तो सस्ती होगी। ईरान के खज़ाने में अमूल्य हीरे, लाल, पुखराज, जमुर्रद, मोती बदख़शानी और याकूत हैं और उनकी संख्या समय के साथ-साथ बढती ही जाती है। इन्हें रखने का विशेष प्रबन्ध है।

* * *

अश्लील चित्र लगाने पर सजा

कसूर (पंजाब) में दूकान में स्त्री पुरुष की नङ्गी तसवीर लगाने के अपराध में अदालत ने एक सिख को एक महीना क़ैद और दूसरे को १०) रुपये जुर्माने की सज़ा दी है।

* * *

सात साल की क़ैद से बच गया

रावलपिंडी में योगराज नामक एक हिन्दू युवक को स्थानीय मैजिस्ट्रेट ने इस अपराध में सात साल सख्त क़ैद की सज़ा दी थी कि उसने भामादेवी नामक एक नर्स पर हमला किया। अपील पर हाईकोर्ट ने योगराज को बरी कर दिया।

* * *

हाथ का बना कागज़

मालूम हुआ है कि युक्तप्रान्तीय सरकार के उद्योग विभाग ने निश्चय किया है कि मन्त्रियों, पार्लामेण्टरी सेक्रेटरियों और असेम्बली तथा कौंसिल के अध्यक्षों को भविष्य में लिखने के लिये सिर्फ हाथ का बना कागज दिया जाय और सरकार के दूसरे अफसर हिन्दुस्तानी मिलों में बना कागज़ इस्तेमाल करें। गवर्नर की मर्ज़ी पर यह बात छोड़ दी गयी है कि वे चाहे जो कागज़ इस्तेमाल करें।

* * *

जनवासे से बारात लौटी

काशी के सिटी मजिस्ट्रेट श्री चाँदमल के इजलास में काशी आर्यकुमार सभा के मन्त्री श्री ज्वालाप्रसाद की सूचना पर चेतगञ्ज के श्री कन्हैया ने हाजिर होकर बयान दिया कि मेरी लड़की शान्ती की उम्र ११ वर्ष की है। मैं शादी नहीं करना चाहता, लेकिन मेरे ससुर नरोत्तम और मेरी सास उसकी शादी कर रहे हैं। शादी

आज ही होनेवाली है। इसपर मजिस्ट्रेट ने श्री नरोत्तम को नोटिस दी कि शादी रोक दो और कल अदालत में हाजिर हो। रात को करीब ७ बजे जब नोटिस श्री नरोत्तम के घर पर पहुँची, उस समय द्वार-पूजा होकर बारात जनवासे में थी और शादी होने जा रही थी। श्री नरोत्तम ने कहा कि मैं शादी रोक देता हूँ और बारात लौटा देता हूँ।

* * *

घर मे कान्स्टेबल घुसा

कटनी में एक मुसलमान हेड कान्स्टेबिल एक हिन्दू विधवा स्त्री के घर में घुसा। स्त्री को यह पता लगते ही कि कोई उसके घर में घुसा है, उसने बाहर से जंजीर चढ़ा कर मुहल्ला वालों को आवाज दी और पुलिस में रिपोर्ट की। पुलिस कर्मचारियों ने आकर घटनास्थल की जाँच की और हवलदार साहब को बाहर निकाला। स्त्री की वीरता सराहनीय है!

* * *

स्त्रियो का व्यापार

जबलपुर में स्त्रियों के अपहरण और अवैध व्यवसाय सम्बन्धी एक मामले में मुंशीसिंह जाट और सूरज-नारायण को चार वर्ष सश्रम कारावास तथा विश्वनाथ नामक अभियुक्त को नौ मास सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया है। अभियुक्तों के विरुद्ध यह अभियोग था कि वे रामकली और रामप्यारी नामक स्त्रियों को बहका कर उड़ा ले गये और उन्हें पञ्जाब में बेच दिया। कई दिन बाद रामकली उस व्यक्ति के यहाँ से, जिसके हाथ वह बेंची गयी थी, भागकर जबलपुर चली गयी।

* * *

हरिजनो का वाचनालय-प्रवेश

इन्दौर में महाशय खण्डेलवाला ५-६ मेहतरों को साथ लेकर महेश वाचनालय में घुस गये, जिससे रूढ़िवादियों में बड़ी सनसनी फैल गई। कहा जाता है कि छोटे सराफे के वैष्णव पंथी कुछ महाजन बहुत दकियानूसी ख्याल रखते हैं। इन्दौर आर्य समाज की स्वर्ण जयन्ती के समय जुलूस, जिसमें मेहतर भी थे, जब छोटे सराफे से गुजर रहा था, तब इन दकियानूसों ने गाली-गलौज की थी और पत्थर फेंके थे। तभी से महेश वाचनालय के दर्वाजे पर मन्दिर का बोर्ड लगा दिया गया और ज़ाहिर किया गया कि कोई भी अछूत अन्दर न आये। कुछ सुधारक विचार वाले महाजन भाई इसे सहन न कर सके। उन्होंने इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई तो उन्हें जाति से बाहर करने की धमकी दी गयी।

* * *

दहेज पर कन्या की बलि

पाली (राजपूताना) में पुष्करणा जाति में अत्यन्त निन्दनीय विवाह हुआ है। वर की उम्र इस समय पचास साल है और कन्या की उम्र केवल ८ साल। लड़की की मँगनी एक युवक के साथ की गई थी, परन्तु गरीबी के कारण लड़की का पिता अपने समधी की इच्छा पूरी नहीं कर सका।

* * *

सीतामऊ के राजकुमार की शुद्धि

जोधपुर की खबर है कि राजपूताना और मध्य-भारत के कुछ नरेशों में इस आशय का गुप्त पत्र व्यवहार चल रहा है कि सीतामऊ के द्वितीय राजकुमार गोविन्दसिंह को फिर से शुद्ध करके हिन्दू बना लिया जाय। शायद राजकुमार की शुद्धि किसी राजपूताने के राठौर वंश की राजधानी में होगी और शुद्धि कार्य का सम्पादन हिन्दू महासभा का एक प्रमुख ब्राह्मण नेता करेगा। यह स्मरण रहे कि यह राजकुमार सन् १९३६ की अगस्त में ईसाई बनाये गये थे।

* * *

इङ्गलैण्ड मे बेकारी

ब्रिटेन में इस समय बेकारों की कुल संख्या १७,७८,००० है। यह ४ मई की संख्या से ३१,००० ज्यादा है। यह कुछ कोयले और औद्योगिक कारखानों के बन्द हो जाने के कारण हुई बताई जाती है।

डेनमार्क की महारानी को कुत्ते ने काट खाया

कोपेनहेगेन का समाचार है कि समुद्र-तट पर घूमते हुये डेनमार्क की महारानी अलेक्जड्रिना को एक कुत्ते ने बुरी तरह काट खाया। स्थानीय अस्पताल में मरहम-पट्टी करने के बाद महारानी को बिलटगार्डन के राज-प्रासाद में भेज दिया गया।

* * *

कराची की रक्षा के उपाय

पता चला है कि कराची में सैनिक, नागरिक तथा वायुयान विभाग के अफसरों की एक महत्वपूर्ण बैठक होने वाली है। पेश किये जाने वाले विषय अत्यन्त गुप्त रक्खे गये हैं। किन्तु पता चला है कि बैठक में यह भी विचार किया जायगा कि यूरोप में युद्ध छिड़ जाने पर कराची में कौन से उपाय ग्रहण करना उचित होगा। कराची की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए अधिक सतर्कतापूर्ण व्यवस्था करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

* * *

हिन्दू माली को हटाया जाय

कलकत्ता की शाहीजमी मस्जिद में मुसलमानों की एक सभा हुई, जिसमें इस बात की माँग की गई कि मुसलमानों की कब्रगाह में से हिन्दू माली तथा अन्य गैर-मुस्लिम नौकरों को फौरन हटा दिया जाय। कब्रगाह बोर्ड के मन्त्री को बरखास्त करने और गैर-मुस्लिम प्रधान की जगह मुस्लिम प्रधान नियत किए जाने की माँग की गई।

* * *

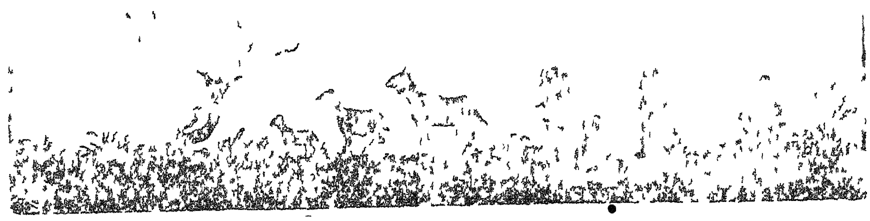
मिस्र-सम्राट की बहिन की शादी

मिस्र के सम्राट फरूख की बड़ी बहिन फौजिया का विवाह ईरान के राजकुमार मुहम्मद रिजा से होना तय हुआ है। राजकुमारी की आयु इस समय १७ और उक्त राजकुमार की १९ साल है। लगभग २०० साल के पश्चात् यह पहला अवसर है कि दो मुस्लिम सम्राटों में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया जा रहा है। सबसे आखिरी मिसाल नादिरशाह के पुत्र और दिल्ली के उस समय के सम्राट की पुत्री के विवाह की थी।

* * *

अमरीका का युद्ध-प्रबन्ध

अमरीका में समुद्री-शक्ति-बल निर्माण के लिये ३५८०२००० डालर से कार्य प्रारम्भ किया जायगा। फिलहाल १९ नये जहाज और दो बड़े जहाज ३५००० टन के वजन के बनेंगे।





[सम्पादकीय]

बहु-विवाह निषेध बिल

श्रीमती सुब्बरायन भारतीय महिला-आन्दोलन की एक सुप्रसिद्ध नेत्री हैं। आप बहुत समय से भारतीय स्त्रियों की उन्नति के लिये चेष्टा कर रही हैं। कुछ महीने पूर्व आप केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की सदस्या चुनी गई थीं और तभी से आपने स्त्रियों की भलाई की चेष्टा के लिये प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया है। आपने हिन्दू बहु-विवाह विरोधी बिल को पेश करने की सूचना दी है, जिसके अनुसार कोई हिन्दू पुरुष एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री से शादी नहीं कर सकेगा। इस बिल के प्रस्ताव में आपने कहा है कि बहु-विवाह से पारिवारिक जीवन अत्यन्त दुखमय हो जाता है, और ऐसे विवाह के फलस्वरूप पहली स्त्री के साथ प्राय अत्यन्त क्रूर और असभ्य व्यवहार होने लगता है। इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त बिल हिन्दू-समाज की वर्तमान स्थिति और धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से अत्यन्त विवाद-ग्रस्त है। पाठक इसी अङ्क में श्री० सन्तराम जी का एक लेख पढ़ेंगे, जिसमें इस समस्या पर विचार करते हुये विशेष अवस्थाओं में बहु-विवाह का समर्थन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी विवाह-परिपाटी इतनी खराब हो गई है कि पूर्ण-सुखी दम्पतियों की संख्या पाँच प्रति सैकड़ा भी मिल सकना कठिन है। शेष लोग किसी न किसी कारणवश अपने दाम्पत्य-जीवन से असन्तुष्ट और दुखी ही देखने में आते हैं। इसके सिवा सन्तानोत्पत्ति का भी एक बड़ा सवाल हिन्दुओं के सामने रहता है। उनके हृदय में सन्तान द्वारा पितरों को पानी-पिण्डा देने का अन्धविश्वास इतना ठूँस कर भर दिया गया है कि जब तक उनके एक पुत्र उत्पन्न नहीं हो जाता, उनके हृदय को शान्ति ही प्राप्त नहीं होती। अब कुछ लोग अपनी स्त्रियों के अशिक्षित, कुरूप अथवा अन्य प्रकार से अयोग्य होने का कारण पेश करके भी दूसरा विवाह करने लगे हैं। फिर ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जिनके दूसरा विवाह करने का कारण केवल विलासिता का भाव है। इस तरह दूसरा विवाह करने वाले व्यक्ति अपने कार्य का कोई न कोई कारण बतला सकते हैं, और कुछ बुद्धिमान कहलाने वाले लोग तर्क और क़ानून से उनका समर्थन भी कर सकते हैं, पर हम यह कहने को बाध्य हैं कि उनका कार्य किसी भी तरह न्यायपूर्ण अथवा प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। इस बात का समर्थन कौन पक्षपातहीन व्यक्ति कर सकता है कि पुरुष तो दूसरा विवाह करके अपने कष्टों अथवा असुविधाओं को दूर करने का मार्ग खोज निकाले और स्त्री पूर्ववत् दुर्दशा में ही पड़ी रहे। यदि पुरुष को इस बात का अधिकार है कि वह अपनी पहली पत्नी से किसी भी कारण-वश असन्तुष्ट होने पर दूसरा विवाह करके अपने जीवन को सुखी बनाने का प्रयत्न करे तो स्त्री को इस अधिकार से कैसे वंचित किया जा सकता है। इस प्रकार हम श्री संतराम जी के इस निष्कर्ष पर जा पहुँचते हैं कि यदि हिन्दू-समाज में एकपत्नीत्व का विधान प्रचलित किया जाय तो उसके साथ ही तलाक का क़ानून होना भी ज़रूरी है। हम इस युक्ति की सचाई को स्वीकार करते हैं और हिन्दू-समाज की वर्तमान अवस्था में उपयुक्त दोनों नियमों को आवश्यक समझते हैं। पर साथ ही हमारा यह भी मत है कि अगर तलाक़ के क़ानून बनने में कुछ देर

लगती है तो उसके लिये बहु-विवाह निषेधक कानून को रोकना उचित नहीं, क्योंकि यदि पुरुषों को उसके कारण किसी तरह की असुविधा प्रतीत होगी, तो वे स्वयं ही तलाक के कानून को प्रचलित कराने की चेष्टा करेंगे। हमको पूर्ण आशा है कि पुरानी स्मृतियों के जीर्ण-शीर्ण नियमों की ओर ध्यान न देकर व्यवस्थापिका सभा के सदस्य वर्तमान स्थिति का आँखें खोल कर देखेंगे और उसीके अनुसार उक्त बिल के सम्बन्ध में निर्णय करेंगे। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि बहु-विवाह की प्रथा के कारण इस समय बहुसंख्यक स्त्रियों को नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है, जिनमें अधिकांश अवस्थाओं में तो उनका कुछ दोष भी नहीं होता। ऐसी घोर अन्यायपूर्ण प्रथा का जल्दी से जल्दी अन्त करना ही श्रेयस्कर है।

* * *

जापान की भर्त्सना

जापान ने इस समय अपने पड़ोसी और प्राचीन काल के गुरु चीन पर आक्रमण करके जिस कृतघ्नता और निम्नकोटि की स्वार्थपरता का परिचय दिया है, उससे उदार विचार वालों को दुःख हुआ है। इस सम्बन्ध में महाकवि रवीन्द्रनाथ ने एक आशा और उत्साहपूर्ण सन्देश चीन-निवासियों के पास भेजा है, जिसमें जापान के इस कृत्य की निन्दा की गयी है और उसे गहरी फटकार बतलाई गई है। चीन के अधिनायक चाँग काई शेक ने इस सन्देश को समस्त देश में बेतार के तार द्वारा प्रचारित करा दिया है। सन्देश में कहा गया है :—

"आपके पड़ोसी राष्ट्र ने, जो आपके सांस्कृतिक सम्पत्ति के दान का विशेष रूप से ऋणी है और अपने ही कल्याण के लिये आपके साथ बन्धुत्व स्थापित करना जिसका कर्तव्य था, आज अचानक पश्चिम से आयी हुई साम्राज्य-लोलुपता के वशीभूत होकर पूर्व के भाग्य को सुन्दरता से गठित करने के विशेष अवसर को नष्ट कर दिया है। उन लोगों के मदमत्त गर्जन-तर्जन, निष्ठुर और निर्विचार नरमेध, शिक्षा-केन्द्रों के मटियामेट करने और मानव-सभ्यता के साधारण नियमों के प्रति उदासीनता और अवज्ञा दिखाने में एशिया का आधुनिक भाव कलंकित हो गया है। एशिया आज नये युग का अग्रदूत होने के लिये प्रयत्नशील है। अधिक दुःख की बात यह है कि पश्चिम का कोई-कोई गर्वित राष्ट्र बढ़ी हुई सम्पत्ति के बोझ से पतनोन्मुख होकर अपनी सुप्रसिद्ध सभ्यता के वाहकों के रक्त से कलंकित राजनीति का निन्दा डरते डरते कर रहे हैं। मनुष्यों के बहुत से पवित्र अधिकार जहाँ निरापद थे, उसको नष्ट करने की कलंकमय सफलता के सामने वे घुटना टेक रहे हैं। इस समय को इस गम्भीर नैतिक विश्रृंखलता में हमारे लिये यही आशा करना स्वाभाविक है कि मनुष्य के इस ऐतिहासिक काल में जिस महादेश में बुद्ध और ईसा मसीह जैसे दो महापुरुषों ने जन्म लिया था, वही महादेश विज्ञ मनुष्यों की वैज्ञानिक उद्दण्डता में भी चरित्र के निर्मल विकास के सम्बन्ध में अपने दायित्व का पालन करेगा। सदियों की अवज्ञा के इतिहास में गाँधी का आविर्भाव क्या हमारी इस आशा की पूर्ति की पहली उज्ज्वल रेखा नहीं है। जो हो, जापान ने अपने विराट भविष्य को बिगाड़ दिया है।

जापान ने अपने 'बुशिदो' के इतिहास को कलंकित किया है। उसकी निन्दनीय युद्ध यात्रा ने जिस प्रकार हमारे स्वप्न को तोड़ा है, वह बड़ा ही कष्टदायक है। जापान ने इस समय जो विजय पाया है, वह पराजय के रूप में अवश्य ही पलटेगी।

हम सिर्फ इसी आशा से ढाढ़स पा सकते हैं कि हिंसा से प्रेरित होकर जो आक्रमण आप लोगों के देश पर हो रहा है, उसमें आप लोग वीरता से दुःख को सहन कर लेंगे। उसी दुःख कष्ट में राष्ट्र में नवजीवन प्राप्त होने की सम्भावना है। आप लोग ही पृथिवी के एकमात्र ऐसे महान् राष्ट्र वाले हैं, जिन्होंने सैनिक शक्ति की प्रशंसा किसी दिन राष्ट्र की गौरव-सूचक विशेषता मानकर नहीं की। वही सैनिक पशुशक्ति आज जब आप लोगों का देश दखल कर रही है तब हमारी यही हार्दिक प्रार्थना है कि आप लोग इस शक्ति-परीक्षा में विजयी हों और यही प्रमाणित कर दें कि जहाँ दुर्बल

पृथिवी उच्च आदर्श का त्याग कर रही है, वहाँ आप लोग श्रेष्ठ मानवता की वास्तविक श्रेष्ठता को मानते हैं। अगर आप लोग इस समय बाहरी विजय न भी पा सकें तो भी आप लोगों की नैतिक विजय मलिन नहीं होगी। इस संग्राम द्वारा विजय का जो बीज आप लोगों के हृदय क्षेत्र में बिखरेगा वह बार बार अमर प्रमाणित होगा।"

* * *

देश में हड़तालों का ज़ोर

इस समय अन्य परिवर्तनों के साथ देश का आर्थिक वातावरण भी अत्यन्त क्षुब्ध हो रहा है और बेकारी तथा व्यापार की मन्दी के साथ श्रमजीवियों और मालिकों के झगड़े भी दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं। श्रमजीवी मानवीय अधिकारों की माँग पेश करते हैं, अपने श्रम का न्यायपूर्ण बदला चाहते हैं, मालिकों की कृपा पर जीवित न रह कर स्वावलम्बन की शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। इसके विरोध में मालिक अपने स्वत्वों का दावा करते हैं, जायदाद के 'पवित्र नियम' की दुहाई देते हैं, और विरोध किये जाने पर कारबार को स्थगित करके देश और सरकार को संकट में डालने की धमकी देते हैं। यह कलह अब दिन पर दिन उग्र रूप धारण कर रहा है। इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा सन् १९३७ का जो हिसाब प्रकाशित हुआ है, उससे विदित होता है कि उस वर्ष करीब ६॥ लाख मजदूरों ने हड़तालों में भाग लिया, जिससे ६० लाख दिन का नुकसान हुआ था। इस समय भी कानपुर में जो भीषण हड़ताल महीनों से जारी है, उससे देश की अपार क्षति हो रही है। चालीस-पचास हज़ार व्यक्तियों का इतने समय तक बेकार बैठे रहना और करोड़ों की लागत के कारखानों का किसी उपयोग में न आना थोड़ी हानि नहीं है। हम समझते हैं कि इस प्रश्न का निपटारा सहज नहीं है। इसमें दोनों पक्षों का हित प्राय परस्पर विरोधी जान पड़ता है, पर तो भी अगर देश में व्यवस्था कायम रखना है और आर्थिक उन्नति की गति को रुद्ध नहीं करना है, तो इस समस्या को हल करना ही होगा। हम विशेष रूप से मालिकों से ही अनुरोध करेंगे कि वे पुराने ख्यालात को छोड़ कर परिवर्तन की लहर के रहस्य को समझने और तदनुसार आचरण करने की चेष्टा करें। सदैव अपने स्वार्थ पर ही निगाह रखने से मनुष्य का काम नहीं चल सकता, देश-कालानुसार उसे उदारता का व्यवहार भी करना पड़ता है।

* * *

हरिजनों के साथ अन्याय

यद्यपि हरिजनों के उद्धार का आन्दोलन काफी समय से चल रहा है और महात्मा गाँधी ने उसके लिये अपार परिश्रम किया है, पर अब भी उनकी वास्तविक स्थिति में बहुत थोड़ा अन्तर हुआ है। शिक्षा के सम्बन्ध में शायद उन्हें बहुत थोड़ी सी सुविधायें प्राप्त हुई हों, पर आर्थिक दृष्टि से उनकी अवस्था में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा है। वे लोग प्राय पहले के समान ही गन्दे वातावरण में रहते हैं और उनकी आय पहले के समान ही आवश्यकता से कम बनी हुई है। इसका मुख्य कारण यह है कि सवर्ण कहलाने वाले हिन्दुओं के दृष्टिकोण में, जो वास्तव में हरिजनों की दुरवस्था के लिये अधिकांश में उत्तरदायी हैं, कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। वे लोग उनको अब भी पददलित अवस्था में रखना चाहते हैं, जिससे वे मूकभाव से कम से कम लेकर उनकी सेवा करते रहें। इस नीच उद्देश्य की पूर्ति के लिये कुछ सवर्ण कहाँ तक नीचे उतर आते हैं, इसका कुछ आभास बिहार के हरिजन नेता डॉ० रघुनन्दन प्रसाद एम० एल० ए० के उस पत्र से लगता है, जो उन्होंने इस अवस्था का सुधार करने के सम्बन्ध में कॉंग्रेसी मन्त्रि-मण्डल के सामने पेश किया है। उनका कथन है —

"अछूतों के लिये स्थानीय संस्थाओं में जगहें सुरक्षित न रखी जाने के कारण उनके लिये अपने प्रतिनिधि भेजना असम्भव हो गया है। आगे आकर अछूतों के लिये

स्थान सुरक्षित करने का यह अच्छा अवसर है। सरकारी कार्यों के सम्बन्ध में दलित जातियों को थोड़ी रियायत मिलने के कारण कुछ सवर्ण हिन्दुओं में ईर्ष्या का सञ्चार हो गया है। अक्सर वे अछूत होने का ढोंग कर अछूतों को दी गयी सुविधाएँ हड़पने की चेष्टा करते हैं। एक सर्कुलर जारी कर अछूत समझी जाने वाली जातियों का नाम घोषित कर देने से यह प्रश्न हल हो सकता है। कॉङ्ग्रेस द्वारा पद ग्रहण करने पर भी अछूतों की दशा में विशेष सुधार नहीं हुआ है।"

एक ओर तो सवर्ण लोग हरिजनों को लाभ न पहुँचने देने के लिये इस प्रकार नीचता का कार्य करते हैं कि स्वयं हरिजन कहलाने को तैयार हो जाते हैं, और दूसरी तरफ वे हरिजनों को नीच तथा अस्पृश्य बतला कर उन कामों के करने से भी रोकते हैं जिनको वे स्वयं कर सकने में सर्वथा असमर्थ हैं। इस सम्बन्ध में अभी भागलपुर से आये एक समाचार से विदित हुआ है कि वहाँ के मीट-मार्केट (बकरे मारे जाने के स्थान) में मार्का लगाने का एक स्थान खाली हुआ, जिसके लिये एक हरिजन ने प्रार्थना पत्र भेजा। उसे आश्वासन भी दिया गया था कि वह काम उसे मिल जायगा। पर अन्त में उस जगह पर एक मुसलमान को नियुक्त कर दिया गया। जाँच करने पर मालूम हुआ कि हरिजन की नियुक्ति पर सवर्णों ने यह एतराज़ किया कि हम अस्पृश्य का छुआ माँस नहीं खा सकते। सवर्णों का यह दृष्टिकोण कितना संकुचित, हीनता का द्योतक और अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मारने वाला है, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

* * *

भारतवासियों का स्वास्थ्य

हमारे देश में अन्य समस्याओं की भाँति सार्वजनिक स्वास्थ्य की समस्या भी विशेष महत्व की है। इसमें तो सन्देह नहीं कि हमारे अस्वास्थ्य का मुख्य कारण पौष्टिक पदार्थों का अभाव और हमारे यहाँ पाई जाने वाली कुछ विशेष कुरीतियाँ हैं। तो भी कितने ही रोग ऐसे हैं जिनमें हम अपने रहन सहन को बदल कर तथा बाहरी उपायों का आश्रय लेकर काफ़ी कमी कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में जाँच करने के लिये कुछ समय से सरकार की तरफ से इण्डियन रिसर्च फण्ड एसोसियेशन नामक संस्था की स्थापना की गई है, जो विभिन्न रोगों के मूल कारणों का पता लगाती है और उनसे बच सकने के कारगर उपायों की खोज करती है। गत वर्ष इसने मलेरिया ज्वर के सम्बन्ध में खोज पड़ताल की, और उसे फैलाने वाले मच्छरों को पैदा होने से रोकने का उपाय निकाला। दिल्ली के पास परीक्षार्थ दो गाँवों को मलेरिया से मुक्त करने के लिये प्रयोग किये गये। कोढ़ के सम्बन्ध में कई स्थानों में अन्वेषण कार्य किया गया। इससे ज्ञात हुआ कि इस रोग की चिकित्सा में मक्खन निकले हुये दूध का व्यवहार विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध होता है। प्रसूता स्त्रियों के सम्बन्ध में भी जाँच की गई। इससे विदित हुआ कि इस देश में प्रति १००० ज़च्चाओं में २० मरीं, जब कि इङ्गलैण्ड में यह परिमाण केवल ३·८ है। यह भी पता चला कि इसका प्रधान कारण रक्त की कमी और गर्भावस्था में हानिकारक ढङ्ग का रहन-सहन है। एक नई बात एसोसियेशन की रिपोर्ट में यह बतलाई गई है कि पान खाने से कैंसर (दुष्ट-व्रण) की बीमारी होती है। जिस प्रदेश के लोग जितना अधिक पान का व्यवहार करते हैं, वहाँ उतना ही ज़्यादा यह रोग पाया जाता है। हम आशा करते हैं कि हमारे देशवासी इन खोजों के परिणाम से अवश्य लाभ उठायेंगे और उन तमाम हानिकारक आदतों का वे परित्याग करने की चेष्टा करेंगे, जिनके फलस्वरूप स्वस्थ-जीवन जैसे अमूल्य रत्न को गँवा बैठते हैं।

* * *

शान्ति-सेना की स्थापना

कुछ समय पहले जब कि भारत के विभिन्न भागों में साम्प्रदायिक उपद्रवों का आधिक्य हो गया था, महात्मा गाँधी ने एक ऐसी शान्ति सेना की स्थापना का विचार प्रकट किया था, जो ऐसे अवसरों पर अपने

प्राणों को सङ्कट में डाल कर झगड़े को मिटाने का प्रयत्न करे। इसके अनुसार कई स्थानों में कार्य आरम्भ हो गया है। बम्बई में कुमारी नरीमैन ने इस कार्य को उठाया है और २५ स्वयंसेवक उक्त सेना में भरती किये हैं। अन्य स्थानों में भी कुछ आत्मत्यागी व्यक्ति इसमें भाग ले रहे हैं। महात्मा जी के इस प्रस्ताव की उच्चता और पवित्रता स्वयं सिद्ध है। इस प्रकार बिना हाथ उठाये निरीह व्यक्तियों के रक्षार्थ आत्मोत्सर्ग के लिये प्रस्तुत हो जाना साधारण व्यक्तियों का काम नहीं है। जो लोग वास्तविक अर्थ में त्यागी और तपस्वी होंगे वे ही इस कार्य का बीड़ा उठा सकते हैं। कुछ लोगों को इस उपाय की व्यवहारिकता में सन्देह भी है। उनका ख़्याल है कि जो लोग इस प्रकार के उपद्रवों में भाग लेते है, वे उस समय ऐसे क्रूर बन जाते हैं कि निर्दोष व्यक्तियों का बलिदान भी उन पर कोई तात्कालिक प्रभाव नहीं डालता। इसके विपरीत वे ऐसे ही व्यक्तियों को अपना शिकार बनाने का मौका ढूँढा करते हैं, जो उनका मुक़ाबला न कर सकें। उपर्युक्त आशङ्का सर्वथा निस्सार है, यह तो हम नहीं कह सकते, पर इसके कारण शान्ति कामियों का हतोत्साह होना आवश्यक नहीं। अब तक जो लोग इन आततायियों के हाथों मारे जाते या घायल होते हैं वे कायरों की भाँति जान बचाने को भागते अथवा अन्य प्रकार से ऐसा भाव प्रकट करते हैं। पर जो लोग वीरों की भाँति डटे रह कर अहिंसा का उच्च आदर्श प्रकट करेंगे, उनका प्रभाव कुछ भिन्न ही पड़ेगा। इसलिये शान्ति सेना के सैनिकों के कार्य को तलवार की धार पर चलने से भी अधिक दुस्साध्य समझते हुये भी हम उसके पवित्र उद्देश्य की सफलता की कामना करते हैं।